# Maithilisharan Gupta Aur Vallathol Ke Kavyom Mein Sanskritik Chetana Ka Swaroop

(Cultural Consciousness As Reflected In The Poetry Of Maithilisharan Gupta and Vallathol)

Thesis Submitted to the Cochin University of
Science and Technology for the Degree of
Doctor of Philosophy

By

B. ANIRUDHAN

Professor and
Head of the Department
Dr. P. V. VIJAYAN

Supervising Teacher
Dr. L. SUNEETHA BAI

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI-682 022

1991

## CERTIFICATE

This is to certify that the thesis "MAITHILISARAN GUPTA AUR VALLATHOL KE KAVYOM MEIN SANSKRITIK CHETANA KA SWAROOP" is a bona fide record of work carried out by *B. ANIRUDHAN* under my supervision for Ph.D. and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any other university

Prof. (Dr.) L.Suneetha Bai
(Supervising Teacher)

Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi 682 022

04.09.1991

Dedicated
to
My Parents

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in the thesis entitled "MAITHILISARAN GUPTA AUR VALLATHOL KE KAVYOM MEIN SANSKRITIK CHETANA KA SWAROOP" is based on the original work done by me under the supervision of Dr L.Suneetha Bai, in the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, and that no part thereof has been presented for the award of any other degree.

Kochi 682 022

B.Anirudhan

04.09.1991

# "मैथिली शरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्यों में सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप"

## भूमिका

मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् क्रमशः हिन्दी एवं मलयाळम् काव्य - साहित्य के दो अमूल्य रत्न रहे। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में काव्य रचना करनेवाले इन दोनों कवियों में सुदूर उत्तर एवं दक्षिण का अंतर रहते हुए भी दोनों के काव्य की प्रवृत्तियाँ समान रही हैं । बाहरी असमानताओं के रहते हुए भी दोनों कवियों में कुछ ऐसे मूलभूत तत्व छिपे पडे हैं जो दोनों को एक दूसरे के बिलकुल निकट ला खडा कर देते हैं । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इन्हीं तत्वों को सामने लाने का प्रयास किया है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में सांस्कृतिक नवोत्थान की लहर फैली हुई थी । इसका प्रभाव तत्कालीन भारतीय साहित्य पर भी बडी मात्रा में पडा था । हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त और मलयाळम् में वळ्ळत्तोळ्-नारायण मेनन इस सांस्कृतिक नवजागरण से अत्यधिक प्रभावित रहे । फलस्वरूप उनके काव्यों में भी सांस्कृतिक चेतना की नई उमंग, कई नूतन प्रवृत्तियों के रूप में दिखाई पडने लगी । ये मूल प्रवृत्तियाँ, अतीत के प्रति प्रेम, मानवतावाद की भावना, नारी का उद्धार, राष्ट्र प्रेम आदि रही हैं । प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में चित्रित इन्हीं प्रवृत्तियों के विश्लेषण का प्रयास किया गया है ।

"भारत-भारती " में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप" एम. फिल. केलिए मेरा लघु शोध प्रबन्ध रहा है । तब से लेकर गुप्तजी के काव्यों की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना के प्रति मेरी विशेष श्रद्धा रही थी । मलयाळम् मेरी मातृभाषा है और मलयाळम् के लब्धप्रतिष्ठित कवि वळ्ळत्तोळ् मेरे प्रिय कवि भी रहे हैं गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् के काव्यों को पढ़ते हुए उनमें मुझे कई समान तत्व दिखाई दिए । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन तो पहले हो भी चुका है । डॉ. के. एस. मणि ने "मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् का तुलनात्मक अध्ययन" तो प्रस्तुत किया है । यह शोध प्रबन्ध काफी विवरणात्मक

एवं ज्ञान प्रदायक है फिर भी मैथिलीशरण गुप्त एवं वळ्ळत्तोळ् की सांस्कृतिक चेतना का विस्तृत विश्लेषण इसमें नहीं मिलता । दोनों कवियों के काव्य की सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय है । यों तो मैथिलीशरण गुप्त के काव्य को लेकर कई शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किए गए हैं । डॉ. कमलाकान्त पाठक का "मैथिलीशरण गुप्त व्यक्तित्व और कृतित्व" डॉ. एल. सुनीता बाई का "मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-संस्कृत स्रोत के संदर्भ में", डॉ. जनार्दन पाण्डेय का "मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति", डॉ. उमाकान्त का "मैथिलीशरण गुप्त भारत संस्कृति के आख्याता" आदि इनमें प्रमुख हैं । इनके अलावा गुप्तजी के बारे में अनेक आलोचनात्मक अध्ययन भी हुए हैं । जहाँ तक वळ्ळत्तोळ् का सवाल है, आज तक मलयाळम् साहित्य-क्षेत्र में भी उनके काव्यों का कोई गहरा शोध-परक अध्ययन नहीं हुआ है । उनकी कृतियों का सामान्य एवं आलोचनात्मक अध्ययन तो अवश्य हुआ है । उण्णिकृष्णन् नायर का "वळ्ळत्तोळ्", जोसफ मुंटश्शेरी का "वळ्ळत्तोळ् कविता", शंकरन् तायाट्टु का "वळ्ळत्तोळ् नवयुगत्तिन्टे कवि" आदि इनके बारे में लिखी गई प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । ये सारी रचनाएँ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रणयन में मेरे लिए सहायक रही हैं और मैंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में इनका सहारा ग्रहण करते हुए अपने लक्ष्य की ओर सफलतापूर्वक आगे बढ़ने का प्रयास किया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का ध्येय गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्यों में निहित पुनरुत्थानवादी एवं मानवतावादी मूल्यों को, जो सांस्कृतिक नवोत्थान के प्रभाव से हुआ है प्रकाश में लाने के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता को दिखाना भी है । हिन्दी और मलयाळम् काव्य साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में इसका विशेष महत्व रहेगा । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्यों में सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप" छः अध्यायों में विभक्त किया गया है । इसका सामान्य परिचय नीचे दिया जा रहा है ।

प्रथम अध्याय "मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ्-व्यक्तित्व और कृतित्व" में दोनों कवियों के जन्म, पारिवारिक वातावरण, शिक्षा-दीक्षा , व्यक्तित्व और कृतियों का परिचयात्मक विवरण दिया गया है । इससे दोनों कवियों के जन्म से लेकर काव्य-सृजन तक के जीवन की एक झलक मिलती है ।

द्वितीय अध्याय "सांस्कृतिक नवोत्थान और मैथिलीशरण गुप्त एवं - वळ्ळत्तोळ्" है । इसमें सांस्कृतिक नवोत्थान का स्वरूप, दोनों कवियों पर इसका प्रभाव, नवोत्थान कालीन हिन्दी एवं मलयाळम् साहित्य, संस्कृति के प्रति दोनों कवियों का झुकाव आदि का अध्ययन हुआ है । यहाँ तत्कालीन सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का, जिन्होंने दोनों कवियों को अपनी सृजन-कला की ओर अग्रसर किया था, विवरण दिया गया है ।

तृतीय अध्याय -"मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पौराणिक कथा-प्रमुख प्रसंग", प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का सबसे प्रमुख भाग है । यहाँ दोनों कवियों के पौराणिक - रामायण पर आधारित, महाभारत पर आधारित एवं अन्य पुराणों पर आधारित काव्यों का विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन, पौराणिक कथानकों में लाए गए परिवर्तन, पौराणिक पात्रों का आधुनिकीकरण आदि का विवेचनात्मक अध्ययन हुआ है । इससे हमें गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की सांस्कृतिक प्रतिबद्धता एवं समाज सुधार द्वारा राष्ट्रोन्नति का प्रयास आदि बातों का बोध होता है ।

चतुर्थ अध्याय -"मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् के काव्य में मानवतावाद का स्वरूप" में दोनों कवियों की कृतियों में चर्चित मानवतावादी तत्वों का विवेचनात्मक अध्ययन हुआ है । यहाँ दोनों कवि मानवतावादी तत्वों पर बल देकर एक युद्ध रहित, शांत सुन्दर विश्व की कल्पना करते हैं । प्रस्तुत अध्ययन से दोनों की सांस्कृतिक एवं मानवतावादी विचारधारा का हमें ज्ञान होता है ।

पंचम अध्याय है -" मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी का स्वरूप" । यहाँ नारी के पारिवारिक एवं सामाजिक संबन्धों तथा समस्याओं का अध्ययन, प्राचीन आदर्श नारी के प्रति श्रद्धा तत्कालीन नारी की पीडित स्थिति आदि की चर्चा करके नारी की उच्च-भावना पर बल दिया गया है । इस अध्याय में दोनों कवियों की समाज-सुधार एवं नारी जागरण की प्रवृत्ति पर प्रकाश पडता है ।

षष्ठ अध्याय "मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय चेतना" है । इसमें भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास, गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ में राष्ट्रीय चेतना एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों का प्रभाव, गाँधीजी का दोनों कवियों पर प्रभाव, तत्कालीन राष्ट्रीय पतन, राष्ट्र का नव-निर्माण आदि बातों पर विचार करते हुए दोनों के काव्यों के अंतर्राष्ट्रीय तत्व पर भी विचार किया गया है । यहाँ दोनों कवियों की प्राचीन संस्कृति पर अधिष्ठित मानवतावादी राष्ट्रीयता का सुन्दर चित्र हम देख सकते हैं ।

उपसंहार में दोनों कवियों की मूलगत समानताओं और बाह्य विषमताओं की चर्चा करते हुए उनका मूल्यांकन किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-कार्य मैं ने कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रहकर किया है । इस कार्य में मुझे अपनी निर्देशिका डॉ. एल. सुनीता बाई से काफी सहायता प्राप्त हुई है । उनकी निरन्तर प्रेरणा एवं प्रोत्साहन हमेशा मेरे साथ रहा है । मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ । हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. एन. रामन नायर और वर्तमान अध्यक्ष डॉ. पी. वी. विजयन के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ , जो समय-सम

पर मेरा मार्गदर्शन एवं सहायता बराबर करते रहे । आशा है कि प्रस्तुत अध्ययन गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के साहित्य के अध्ययन के एक अभाव की पूर्ति करेगा और सुधी पाठक इससे संतुष्ट हो जाएंगे ।

कोचिन-22, अनिरुद्धन्. बी.

4- 9 -1991

"मैथिली शरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्यों में

सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय


| | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ्: व्यक्तित्व एवं कृतित्व | |
| 1.1. | जन्म एवं परिवार | 1 |
| 1.2. | शिक्षा दीक्षा | 2 |
| 1.3. | मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् का व्यक्तित्व | 4 |
| 1.4. | गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् का धार्मिक विश्वास | 6 |
| 1.5. | मैथिली शरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् का कृतित्व | 7 |
| 1.5.1. | पौराणिक कृतियाँ | 8 |
| 1.5.1.1. | महाभारत पर आधारित गुप्तजी की कृतियाँ | 8 |
| 1.5.1.1.1. | जयद्रथ-वध | 8 |
| 1.5.1.1.2. | सैरन्ध्री | 8 |
| 1.5.1.1.3. | वन-वैभव | 8 |
| 1.5.1.1.4. | बक-संहार | 9 |
| 1.5.1.1.5. | नहुष | 9 |
| 1.5.1.1.6. | हिडिंबा | 9 |
| 1.5.1.1.7. | जयभारत | 9 |
| 1.5.1.2. | महाभारत पर आधारित वळ्ळत्तोळ् के काव्य | 10 |
| 1.5.1.2.1. | तपती संवरण | 10 |
| 1.5.1.2.2. | अच्छनुं मकनुम् | 10 |
| 1.5.1.2.3. | भार्गव स्वामिन् कै तोषाम् | 10 |
| 1.5.1.2.4. | इन्द्रनुं माबलियुम् | 11 |
| 1.5.1.3. | रामायण पर आधारित गुप्तजी के काव्य | 11 |

पृष्ठ संख्या


| | | |
|---|---|---|
| 1.5.1.3.1. | पंचवटी | 11 |
| 1.5.1.3.2. | साकेत | 11 |
| 1.5.1.3.3. | प्रदक्षिणा | 11 |
| 1.5.1.3.4. | लीला | 11 |
| 1.5.1.4. | रामायण पर आधारित वळ्ळत्तोळ् के काव्य | 12 |
| 1.5.1.4.1. | दण्डकारण्य | 12 |
| 1.5.1.4.2. | शरणमय्यप्पा | 12 |
| 1.5.1.4.3. | रावण्न्टे अंतपुर गमनम् | 12 |
| 1.5.1.5. | अन्य पुराणों पर आधारित गुप्तजी के काव्य | 12 |
| 1.5.1.5.1. | शक्ति | 13 |
| 1.5.1.5.2. | द्वापर | 13 |
| 1.5.1.5.3. | दिवोदास | 13 |
| 1.5.1.6. | अन्य पुराणों पर आधारित वळ्ळत्तोळ् के काव्य | 14 |
| 1.5.1.6.1. | गणपति | 14 |
| 1.5.1.6.2. | शिष्यनुं मकनुम् | 14 |
| 1.5.1.6.3. | बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन् | 14 |
| 1.5.1.6.4. | अंबाडियिल् चेन्नुन्न अक्रूरन् | 15 |
| 1.5.1.6.5. | मुद्दत्ते तुलसी | 15 |
| 1.5.1.6.6. | कर्मभूमियुडे पिंचुकाल् | 15 |
| 1.5.1.6.7. | किळिक्कोञ्चल् | 15 |
| 1.5.2. | ऐतिहासिक कृतियाँ | 16 |

पृ. सं.


| | | |
|---|---|---|
| 1.5.2.1. | गुप्तजी के ऐतिहासिक रचनाएँ | 16 |
| 1.5.2.1.1. | रंग में भंग | 16 |
| 1.5.2.1.2. | पत्रावली | 16 |
| 1.5.2.1.3. | विकट-भट | 17 |
| 1.5.2.1.4. | सिद्ध राज | 17 |
| 1.5.2.1.5. | गुरुकुल | 18 |
| 1.5.2.1.6. | काबा और कर्बला | 18 |
| 1.5.6.1.7. | अर्जन और विसर्जन | 18 |
| 1.5.2.1.8. | विष्णुप्रिया | 19 |
| 1.5.2.1.9. | रत्नावली | 19 |
| 1.5.2.1.10 | कुणालगीत | 20 |
| 1.5.2.2. | वळ्ळत्तोळ् की ऐतिहासिक रचनाएँ | 20 |
| 1.5.2.2.1. | भारत स्त्रीकळ् तन् भावशुद्धि | 20 |
| 1.5.2.2.2. | जातकं तिरुत्ति | 20 |
| 1.5.2.2.3. | नां स्वातंत्र्यमङयावू | 21 |
| 1.5.2.2.4. | अल्लाह | 21 |
| 1.5.2.2.5. | काट्टेलियुडे कत्तु | 21 |
| 1.5.2.2.6. | नरेन्द्रन्टे प्रार्थना | 22 |
| 1.5.2.2.7. | मलयालत्तिन्टे तला | 22 |
| 1.5.2.2.8. | गुरुदक्षिणा | 22 |
| 1.5.2.2.9. | मग्दलन मरियम् | 22 |
| 1.5.3. | समसामयिक रचनाएँ | 23 |
| 1.5.3.1. | गुप्तजी के उद्बोधनात्मक काव्य | 23 |
| 1.5.3.1.1. | भारत-भारती | 23 |
| 1.5.3.1.2. | हिन्दू | 23 |

| | | पृ. सं. |
|---|---|---|
| 1.5.3.1.3. | वैतालिक | 24 |
| 1.5.3.2. | गुप्तजी के राजनैतिक काव्य | 24 |
| 1.5.3.2.1. | किसान | 24 |
| 1.5.3.2.2. | स्वदेश संगीत | 24 |
| 1.5.3.2.3. | अजित | 24 |
| 1.5.3.2.4. | राजा-प्रजा | 25 |
| 1.5.3.3. | गुप्तजी के सांस्कृतिक काव्य | 25 |
| 1.5.3.3.1. | विश्व-वेदना | 25 |
| 1.5.3.4. | वळ्ळत्तोळ् की समसामयिक रचनाएँ | 25 |
| 1.5.3.4.1. | साहित्य मंजरी- 11-भाग | 26 |
| 1.5.3.4.1.1. | उद्बोधनात्मक काव्य | 27 |
| 1.5.3.4.1.2. | राजनैतिक काव्य | 27 |
| 1.5.3.4.1.3. | सामाजिक काव्य | 29 |
| 1.5.3.4.1.3.1. | कोच्चु सीता | 30 |
| 1.5.3.4.1.3.2. | विषुक्कणि | 31 |
| 1.5.3.4.1.4. | सांस्कृतिक काव्य | 32 |
| 1.5.3.4.1.5. | राष्ट्रीय काव्य | 33 |
| 1.5.3.4.1.6. | गाँधीजी से संबन्धित | 35 |
| 1.5.4. | गुप्तजी की अन्य कृतियाँ | 36 |
| 1.5.4.1. | अंजलि और अर्घ्य | 36 |
| 1.5.4.2. | पृथ्वी पुत्र | 36 |
| 1.5.4.3. | भूमि भाग | 37 |
| 1.5.4.4. | झंकार | 37 |
| 1.5.4.5. | मंगलघट | 37 |

| | | पृ० सं. |
|---|---|---|
| 1.5.4.6. | आस्वाद | 38 |
| 1.5.4.7. | उच्छ्वास | 38 |
| 1.5.5. | वल्लत्तोळ् की अन्य कविताएँ | 38 |
| 1.5.5.1. | किरात शतकम् | 38 |
| 1.5.5.2. | व्यासावतारम् | 38 |
| 1.5.5.3. | सल्लापपूरम् | 38 |
| 1.5.5.4. | ऋतुविलासम् | 39 |
| 1.5.5.5. | पंचतंत्रम् | 39 |
| 1.5.5.6. | बधिरविलापम् | 39 |
| 1.5.5.7. | चित्रयोगम् | 39 |
| 1.5.5.8. | विलासलतिका | 41 |
| 1.5.5.9. | ओरु कत्तु | 41 |
| 1.5.5.10. | परलोकम् | 42 |
| 1.5.5.11. | बाप्पुजी | 42 |
| 1.5.5.12. | भगवद् स्तोत्रमाला | 42 |
| 1.5.5.13. | वल्लत्तोळ् रच्यपिल् | 43 |
| 1.5.5.14. | अभिवादयम् | 44 |
| 1.5.5.15. | औषधाहरणम् | 45 |
| 1.5.6. | गुप्तजी के नाटक ग्रन्थ | 45 |
| 1.5.6.1. | तिलोत्तमा | 45 |
| 1.5.6.2. | चन्द्रहास | 45 |
| 1.5.7. | वल्लत्तोळ् की संस्कृत रचनाएँ | 46 |
| 1.5.7.1. | शास्त्र ग्रन्थ | 46 |
| 1.5.7.1.1. | आरोग्य चिंतामणी | 46 |

| | | |
|---|---|---|
| 1.5.7.1.2. | वैद्यभूषणम् | 46 |
| 1.5.7.1.3. | गर्भरक्षाक्रम् | 47 |
| 1.5.8. | अनूदित रचनाएँ | 47 |
| 1.5.8.1. | गुप्तजी की अनूदित रचनाएँ | 47 |
| 1.5.8.1.1. | संस्कृत से अनूदित | 47 |
| 1.5.8.1.2. | बंगला से अनूदित | 47 |
| 1.5.8.1.3. | अंग्रेजी से अनूदित | 47 |
| 1.5.9. | वल्लत्तोळ् की अनूदित रचनाएँ | 48 |
| 1.5.9.1. | संस्कृत से अनूदित | 48 |
| 1.5.9.1.1. | वाल्मीकि रामायण | 48 |
| 1.5.9.2. | पुराणों का अनुवाद | 48 |
| 1.5.9.3. | संस्कृत रूपकों का अनुवाद | 49 |
| 1.5.9.3.1. | ऊरुभंगम् | 49 |
| 1.5.9.3.2. | मध्यमव्यायोगम् | 49 |
| 1.5.9.3.3. | अभिषेक नाटक | 50 |
| 1.5.9.3.4. | पंचरात्रम् | 50 |
| 1.5.9.3.5. | स्वप्न वासवदत्तम् | 50 |
| 1.5.9.3.6. | कपटकेलि | 51 |
| 1.5.9.3.8. | कर्पूर चरितम् | 51 |
| 1.5.9.3.9. | रुक्मिणी हरणम् | 51 |
| 1.5.9.3.10 | त्रिपुर दहनम् | 52 |
| 1.5.9.3.11. | बोधिसत्वापदान कल्पलता | 52 |
| 1.5.9.4. | ऋग्वेद | 52 |
| 1.5.10. | गद्य रचनाएँ | 53 |
| 1.5.10.1. | ग्रन्थ विहार | 53 |
| 1.6. | निष्कर्ष | 54 |

## द्वितीय अध्याय


| | | पृ.सं. |
|---|---|---|
| 2. | सांस्कृतिक नवोत्थान और मैथिलीशरण गुप्त एवं वळ्ळत्तोळ् | 55 |
| 2. 2. | सांस्कृतिक नवोत्थान का स्वरूप | 55 |
| 2. 1. 1. | ब्रह्म समाज | 57 |
| 2. 1. 2. | आर्य समाज | 58 |
| 2. 1. 3. | प्रार्थना समाज | 59 |
| 2. 1. 4. | रामकृष्ण मिशन | 59 |
| 2. 1. 5. | थियोसोफिकल सोसाइटी | 60 |
| 2. 1. 6. | चट्टंपि स्वामिकळ् | 61 |
| 2. 1. 7. | श्री नारायण गुरु | 62 |
| 2. 2. | नवोत्थान का भारतीय साहित्य पर प्रभाव | 63 |
| 2. 3. | आधुनिक हिन्दी साहित्य पर नवोत्थान-का प्रभाव | 64 |
| 2. 3. 1. | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र | 65 |
| 2. 3. 2. | सांस्कृतिक नवोत्थान एवं द्विवेदीयुगीन काव्य | 67 |
| 2. 3. 2. 1. | राष्ट्रीयता | 69 |
| 2. 3. 2. 2. | मानवतावादी विचारधारा | 70 |
| 2. 3. 2. 3. | नारी उत्थान की प्रवृत्ति | 70 |
| 2. 4. | गुप्तजी पर नवोत्थान का प्रभाव | 72 |
| 2. 5. | गुप्तजी की अतीत विषयक मान्यताएँ | 73 |
| 2. 5. 1. | राष्ट्रप्रेम | 75 |
| 2. 5. 2. | मानव की महत्ता | 75 |

| | | |
|---|---|---|
| 2.5.3. | नारी का उद्धार | 76 |
| 2.6. | नवोत्थान का केरल के साहित्य पर प्रभाव | 76 |
| 2.7. | वळ्ळत्तोळ् पर नवोत्थान का प्रभाव | 79 |
| 2.8. | वळ्ळत्तोळ् की अतीत विषयक मान्यताएँ | 80 |
| 2.8.1. | राष्ट्र प्रेम | 81 |
| 2.8.2. | मानव की महत्ता | 82 |
| 2.8.3. | नारी का उद्धार | 82 |
| 2.9. | निष्कर्ष | 83 |

तृतीय अध्याय

| | | |
|---|---|---|
| 3. | मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् के काव्यों में पौराणिक कथा-प्रमुख प्रसंग | 85 |
| 3.1. | गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में महाभारत की कथा-प्रमुख प्रसंग | 86 |
| 3.1.1. | महाभारत | 86 |
| 3.1.1.1. | गुप्तजी पर महाभारत का प्रभाव | 89 |
| 3.1.1.1.1. | गुप्तजी की कृतियों में महाभारतकी कथा प्रमुख प्रसंग | 90 |
| 3.1.1.1.1.1. | "जयभारत" | 90 |
| 3.1.1.1.1.1.1. | एकलव्य | 91 |
| 3.1.1.1.1.1.2. | परीक्षा | 92 |
| 3.1.1.1.1.1.3. | लाक्षा गृह | 92 |
| 3.1.1.1.1.1.4. | लक्ष्य वेध | 93 |
| 3.1.1.1.1.1.5. | द्यूत | 94 |
| 3.1.1.1.1.1.6. | वन-गमन | 95 |
| 3.1.1.1.1.1.7. | वनमृगी | 96 |

| | | |
|---|---|---|
| 3.1.1.1.1.1.8. | यक्ष | 96 |
| 3.1.1.1.1.1.9. | अज्ञातवास | 97 |
| 3.1.1.1.1.1.10. | विदुरवार्ता | 98 |
| 3.1.1.1.1.1.11. | शांति सन्देश | 98 |
| 3.1.1.1.1.1.12. | कुन्ती-कर्ण | 99 |
| 3.1.1.1.1.1.13. | युयुत्सु | 99 |
| 3.1.1.1.1.1.14. | अर्जुन का मोह | 100 |
| 3.1.1.1.1.1.15. | हत्या | 100 |
| 3.1.1.1.1.1.16. | अंत | 101 |
| 3.1.1.1.1.1.17. | स्वर्गारोहण | 102 |
| 3.1.1.1.1.2. | "जयद्रथ-वध" | 102 |
| 3.1.1.1.1.2.1. | उत्तरा से अभिमन्यु की विदा | 103 |
| 3.1.1.1.1.2.2. | अभिमन्यु वध | 103 |
| 3.1.1.1.1.2.3. | उत्तरा विलाप | 104 |
| 3.1.1.1.1.2.4. | जयद्रथ-वध | 105 |
| 3.1.1.1.1.3. | "सैरन्ध्री" | 106 |
| 3.1.1.1.1.4. | "बक-संहार" | 107 |
| 3.1.1.1.1.5. | "वन-वैभव" | 108 |
| 3.1.1.1.1.6. | "नहुष" | 109 |
| 3.1.1.1.1.7. | "हिडिंबा" | 110 |
| 3.1.1.2. | वळ्ळत्तोळ् पर महाभारत का प्रभाव | 111 |
| 3.1.1.2.1. | वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में महाभारत-की कथा-प्रमुख प्रसंग | 112 |
| 3.1.1.2.1.1. | "तपती संवरण" | 112 |

| | | |
|---|---|---|
| 3.1.1.2.1.1.1. | तपती-संवरण-मिलन | 112 |
| 3.1.1.2.1.1.2. | तपती-संवरण-शादी | 112 |
| 3.1.1.2.1.2. | "अच्छनुं मकनुम्" | 113 |
| 3.1.1.2.1.2.1. | विश्वामित्र-पौत्र-मिलन | 113 |
| 3.1.1.2.1.2.2. | शकुन्तला -विश्वामित्र-मिलन | 114 |
| 3.1.1.2.1.3. | "इन्द्रनुं माबलियुम्" | 115 |
| 3.1.1.2.1.3.1. | बलि का इन्द्र को जवाब | 115 |
| 3.1.1.2.1.4. | "भार्गव स्वामिन् कै तोषाम्" | 116 |
| 3.1.1.2.1.4.1. | परशुराम से निवेदन | 117 |
| 3.2. | गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में रामायण की कथा-प्रमुख प्रसंग | 118 |
| 3.2.1. | रामायण | 118 |
| 3.2.1.1. | गुप्तजी पर रामायण का प्रभाव | 119 |
| 3.2.1.1.1. | गुप्तजी की कृतियों में रामायण कथा-प्रमुख प्रसंग | 120 |
| 3.2.1.1.1.1. | "साकेत" | |
| 3.2.1.1.1.1.1. | लक्ष्मण-उर्मिला का प्रेम जीवन | 121 |
| 3.2.1.1.1.1.2. | राम का निर्वासन | 122 |
| 3.2.1.1.1.1.3. | सीता का गृहस्थ जीवन | 124 |
| 3.2.1.1.1.1.4. | कैकेयी का पश्चात्ताप | 125 |
| 3.2.1.1.1.1.5. | उर्मिला- विरह वर्णन | 126 |
| 3.2.1.1.1.1.6. | हनुमान-भरत-मिलन | 127 |
| 3.2.1.1.1.1.7. | अयोध्या वासियों की रण सज्जा | 128 |
| 3.2.1.1.1.2. | "पंचवटी" | 129 |

| | | |
|---|---|---|
| 3.2.1.1.1.2.1. | शूर्पणखा प्रसंग | 129 |
| 3.2.1.1.1.2.2. | देवर भाभी का हास-परिहास | 130 |
| 3.2.1.1.1.3. | "लीला" | 131 |
| 3.2.1.1.1.3.1. | विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना | 131 |
| 3.2.1.1.1.3.2. | सीता स्वयंवर और परशुराम आगमन | 132 |
| 3.2.1.1.1.4. | "प्रदक्षिणा" | 134 |
| 3.2.1.2. | वळ्ळत्तोळ् पर रामायण का प्रभाव | 134 |
| 3.2.1.2.1. | वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में रामायण-की कथा-प्रमुख प्रसंग | 135 |
| 3.2.1.2.1.1. | "दण्डकारण्यम्" | 135 |
| 3.2.1.2.1.1.1. | गुरु पुत्री पर दण्ड का अत्याचार | 135 |
| 3.2.1.2.1.1.2. | गुरु द्वारा शिष्य का सर्वनाश | 136 |
| 3.2.1.2.1.2. | "शरणमय्यप्पा" | 137 |
| 3.2.1.2.1.2.1. | शबरिगिरि की महिमा | 137 |
| 3.2.1.2.1.3. | "रावणन्टे अन्तपुर गमनम्" | 138 |
| 3.3. | गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में अन्य पुराणों की कथा-प्रमुख प्रसंग | 139 |
| 3.3.1. | गुप्तजी पर अन्य पुराणों का प्रभाव | 139 |
| 3.3.1.1. | गुप्तजी की कृतियों में अन्य पुराणों की कथा-प्रमुख प्रसंग | 139 |
| 3.3.1.1.1. | "द्वापर" | 140 |
| 3.3.2. | वळ्ळत्तोळ् पर अन्य पुराणों का प्रभाव | 140 |

| | | |
|---|---|---|
| 3.3.2.1. | वळ्ळत्तोळ् कृतियों में अन्य पुराणों की कथा - प्रमुख प्रसंग | 141 |
| 3.3.2.1.1. | "पुराणङ्ङळ्" | 141 |
| 3.3.2.1.2. | "गणपति" | 142 |
| 3.3.2.1.2.1. | शिव-पार्वती द्वारपाल-झगडा | 143 |
| 3.3.2.1.2.2. | गणपति का जन्म | 144 |
| 3.3.2.1.3. | "शिष्यनुं मकनुम्" | 144 |
| 3.3.2.1.3.1. | गणपति-परशुराम-झगडा | 145 |
| 3.3.2.1.3.2. | शिव-पार्वती -आगमन | 145 |
| 3.3.2.1.3.3. | राधा-कृष्ण-आगमन | 146 |
| 3.3.2.1.4. | "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन्" | 147 |
| 3.3.2.1.4.1. | उषा-कुंभाण्ड-संवाद | 147 |
| 3.3.2.1.5. | "अंबाडियिल चेल्लुन्न अक्रूरन्" | 149 |
| 3.3.2.1.5.1. | अक्रूर का श्रीकृष्ण दर्शन | 150 |
| 3.3.2.1.6. | "मुद्टत्तो तुळसी" | 150 |
| 3.3.2.1.6.2. | तुलसी का महिमा-वर्णन | 151 |
| 3.3.2.1.7. | कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्" | 152 |
| 3.3.2.1.7.1. | कालिय दमन् | 153 |
| 3.3.2.1.8. | "किळिक्कोञ्चल्" | 154 |
| 3.3.2.1.8.1. | सीता जी का बाल्यकाल | 154 |
| 3.4. | गुप्तजी के पौराणिक कथा प्रसंगों में नवीन उद्भावनाएँ | 155 |
| 3.5. | वळ्ळत्तोळ् के पौराणिक कथा प्रसंगों में नवीन उद्भावनाएँ | 161 |
| 3.6. | गुप्तजी के पौराणिक पात्रों में आधुनिकीकरण | 167 |

| | | |
|---|---|---|
| 3.6.1. | युधिष्ठिर | 168 |
| 3.6.2. | कर्ण | 168 |
| 3.6.3. | नहुष | 169 |
| 3.6.4. | श्रीकृष्ण | 170 |
| 3.6.5. | बलराम | 171 |
| 3.7. | वळ्ळत्तोळ् के पौराणिक पात्रों में आधुनिकीकरण | 172 |
| 3.7.1. | विश्वामित्र | 172 |
| 3.7.2. | परशुराम | 173 |
| 3.7.3. | अनिरुद्धन् | 174 |
| 3.8. | गुप्तजी के पौराणिक काव्यों में युगीन समस्याएँ | 175 |
| 3.8.1. | मानवतादर्श | 176 |
| 3.8.2. | पौराणिक संदर्भ एवं गाँधीवाद | 177 |
| 3.8.3. | नारी जागरण | 178 |
| 3.8.4. | जाति-व्यवस्था | 179 |
| 3.8.5. | पारिवारिक जीवन | 180 |
| 3.8.6. | देश प्रेम की भावना | 181 |
| 3.9. | वळ्ळत्तोळ् के पौराणिक काव्यों में - युगीन समस्याएँ | 181 |
| 3.9.1. | नारी जागरण | 181 |
| 3.9.2. | देशप्रेम | 183 |
| 3.9.3. | जाति-व्यवस्था | 184 |
| 3.10. | निष्कर्ष | 185 |

| चतुर्थ अध्याय | | पृ. सं. |
|---|---|---|
| 4. | मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में मानवतावाद का स्वरूप | 188 |
| 4. 1. | मानवतावाद के प्रमुख तत्व | 188 |
| 4. 2. | मानवतावाद एवं गाँधीजी | 189 |
| 4. 2. 1. | गुप्तजी के काव्य पर गाँधीजी का प्रभाव | 190 |
| 4. 2. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य पर गाँधीजी का प्रभाव | 192 |
| 4. 3. | अहिंसा | 193 |
| 4. 3. 1. | गुप्तजी के काव्य में अहिंसा | 194 |
| 4. 3. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में अहिंसा | 197 |
| 4. 4. | सत्य और नीति | 201 |
| 4. 4. 1. | गुप्तजी के काव्य में सत्य और नीति | 202 |
| 4. 4. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में सत्य और नीति | 204 |
| 4. 5. | कर्मण्यता | 206 |
| 4. 5. 1. | गुप्तजी के काव्य में निष्काम कर्म | 207 |
| 4. 5. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में निष्काम कर्म | 210 |
| 4. 6. | वर्ण व्यवस्था | 213 |
| 4. 6. 1. | गुप्तजी के काव्य में वर्ण-व्यवस्था | 214 |
| 4. 6. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में वर्ण-व्यवस्था | 217 |
| 4. 7. | पारिवारिक धर्म एवं उसका पालन | 217 |
| 4. 7. 1. | गुप्तजी के काव्य में पारिवारिक धर्म एवं उसका पालन | 218 |
| 4. 7. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पारिवारिक-धर्म एवं उसका पालन | 221 |
| 4. 8. | समाज-सुधार | 224 |

| | | |
|---|---|---|
| 4.8.1 | सर्व-धर्म-समन्वय | 226 |
| 4.8.1.1. | गुप्तजी के काव्य में सर्व-धर्म-समन्वय | 227 |
| 4.8.1.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में सर्व-धर्म-समन्वय | 229 |
| 4.8.2. | रूढ़ियों एवं कुरीतियों का विरोध | 235 |
| 4.8.2.1. | गुप्तजी के काव्य में रूढ़ियों एवं कुरीतियों का विरोध | 236 |
| 4.8.2.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में रूढ़ियों एवं कुरीतियों का विरोध | 239 |
| 4.9. | युद्ध विरोध एवं विश्व बन्धुत्व | 242 |
| 4.9.1. | गुप्तजी के काव्य में युद्ध विरोध एवं विश्व-बन्धुत्व | 243 |
| 4.9.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में युद्ध विरोध एवं विश्व बन्धुत्व | 245 |
| 4.10. | निष्कर्ष | |

पंचम अध्याय

| | | |
|---|---|---|
| 5. | मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी का स्वरूप | 249 |
| 5.1. | गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी के विविध संबन्ध | 250 |
| 5.1.1. | गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में परिवार और नारी | 251 |
| 5.1.1. | गुप्तजी के काव्य में माता का स्वरूप | 251 |
| 5.1.1.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में माता का स्वरूप | 254 |
| 5.1.1.3. | गुप्तजी के काव्य में पत्नी का स्वरूप | 256 |
| 5.1.1.4. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पत्नी का स्वरूप | 260 |
| 5.1.2. | गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् के काव्य में समाज और नारी विभिन्न समस्याएँ | 263 |
| 5.1.2.1. | गुप्तजी के काव्य में विवाह की समस्या | 264 |

5.1.2.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में विवाह की समस्या

5.1.2.3. गुप्तजी के काव्य में वैधव्य की समस्या

5.1.2.4. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में वैधव्य की समस्या

5.2. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में प्राचीन भारतीय नारी के प्रति श्रद्धा

5.2.1. गुप्तजी के काव्य में प्राचीन भारतीय आदर्श नारी की प्रतिष्ठा

5.2.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में प्राचीन भारतीय आदर्श नारी की प्रतिष्ठा

5.3. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में तत्कालीन नारी की पीडित अवस्था

5.3.1. अशिक्षा

5.3.2. आर्थिक समस्या

5.3.2.1. वळ्ळत्तोळ् की नारी में आर्थिक समस्या

5.3.3. गुप्तजी के काव्य में नारी के प्रति पुरुषों का अत्याचार

5.3.4. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी के प्रति पुरुषों का अत्याचार

5.4. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पौराणिक नारी आधुनिक संदर्भ में

5.4.1. सीता

5.4.2. ऊर्मिला

5.4.3. कैकेयी

5.4.4. हिडिंबा

5.4.5. विधृता

5.4.6. यशोधरा

5.5. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पौराणिक नारी आधुनिक संदर्भ में

| | | |
|---|---|---|
| 5.5.1. | शकुन्तला | 301 |
| 5.5.2. | उषा | 302 |
| 5.5.3. | पार्वती | 305 |
| 5.5.4. | राधा | 396 |
| 5.5.5. | मरियम् | 307 |
| 5.6. | गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी की उच्च भावना | 310 |
| 5.6.1. | गुप्तजी के काव्य में पातिव्रत्य का वर्णन | 311 |
| 5.6.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पातिव्रत्य का वर्णन | 314 |
| 5.6.3. | गुप्तजी की नारी में समता का अधिकार | 318 |
| 5.6.4. | वळ्ळत्तोळ् की नारी में समता का अधिकार | 319 |
| 5.6.5. | गुप्तजी की स्वावलंबन नारी | 322 |
| 5.6.5. | वळ्ळत्तोळ् की स्वावलंबन नारी | 324 |
| 5.6.7. | गुप्तजी के काव्य में संघर्षशील नारी | 326 |
| 5.6.8. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में संघर्षशील नारी | 328 |
| 5.6.9, | निष्कर्ष | |


षष्ठ अध्याय
----------


| | | |
|---|---|---|
| 6. | मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप | 335 |
| 6.1. | आधुनिक भारतीय काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास | 335 |
| 6.2. | गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् पर राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव | 339 |

| | | |
|---|---|---|
| 6.3. | उद्‌बोधन | 343 |
| 6.3.1. | गुप्तजी के काव्य में उद्‌बोधन | 344 |
| 6.3.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में उद्‌बोधन | 347 |
| 6.4. | गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय चेतना | 351 |
| 6.4.1. | मातृभूमि प्रेम | 352 |
| 6.4.1.1. | गुप्तजी के काव्य में मातृभूमि प्रेम | 352 |
| 6.4.1.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में मातृभूमि प्रेम | 355 |
| 6.4.2. | अतीत का गौरव गान | 359 |
| 6.4.2.1. | गुप्तजी के काव्य में अतीत का गौरव गान | 359 |
| 6.4.2.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में अतीत का गौरव गान | 362 |
| 6.4.3. | मातृभाषा प्रेम | 365 |
| 6.4.3.1. | गुप्तजी के काव्य में मातृभाषा के प्रति प्रेम | 366 |
| 6.4.3.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में मातृभाषा के प्रति प्रेम | 367 |
| 6.4.4. | सामयिक दुरवस्था | 369 |
| 6.4.4.1. | गुप्तजी के काव्य में सामयिक दुरवस्था का चित्रण | 370 |
| 6.4.1.1. | आर्थिक पतन | 370 |
| 6.4.4.1.2. | धार्मिक पतन | 371 |
| 6.4.4.1.3. | शिक्षा का पतन | 373 |
| 6.4.4.1.4. | राजनैतिक पतन | 374 |
| 6.4.4.1.5. | अन्य क्षेत्रों में पतन | 376 |
| 6.4.4.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में सामयिक दुरवस्था | 377 |
| 6.4.4.2.1. | आर्थिक पतन | 378 |
| 6.4.4.2.2. | धार्मिकपतन | 379 |

| | | |
|---|---|---|
| 6.4.4.2.3. | राजनैतिक पतन | 380 |
| 6.4.4.2.4. | शिक्षा का पतन | 382 |
| 6.5. | राजनैतिक स्वतंत्रता और स्वराज्य | 383 |
| 6.5.1. | गुप्तजी के काव्य में राजनैतिक स्वतंत्रता और स्वराज्य | 384 |
| 6.5.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राजनैतिक स्वतंत्रता और स्वराज्य | 387 |
| 6.6. | राष्ट्रीय एकताऔर अखण्ड भारत | 389 |
| 6.6.1. | गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीय एकता और अखण्ड भारत का चित्रण | 390 |
| 6.6.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय एकता और अखण्ड भारत का चित्रण | 392 |
| 6.7. | राष्ट्र का नव-निर्माण | 394 |
| 6.7.1. | गुप्तजी के काव्य में प्राचीनता की नींव पर नवीनता की प्रतिष्ठा | 394 |
| 6.7.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में प्राचीनता की नींव पर नवीनता की प्रतिष्ठा | 395 |
| 6.7.3. | गुप्तजी के काव्य में शिक्षा का विकास | 396 |
| 6.7.4. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में शिक्षा का विकास | 397 |
| 6.8. | आर्थिक क्षेत्र में गाँधीजी | 398 |
| 6.8.1. | गुप्तजी के काव्य में आर्थिक सुधार | 399 |
| 6.8.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में आर्थिक सुधार | 400 |
| 6.9. | पूँजीवाद का विरोध एवं कृषक जीवन सुधार | 401 |
| 6.9.1. | गुप्तजी के काव्य में पूँजीवाद का विरोध एवं कृषक जीवन सुधार | 401 |
| 6.9.2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पूँजीवाद का विरोध एवं कृषक जीवन सुधार | 403 |

| | | |
|---|---|---|
| 6. 10. | राष्ट्रीय चेतना के विकास में गाँधीजी का योगदान | 406 |
| 6. 10. 1. | राजनीति एवं गाँधीजी | 406 |
| 6. 11. | गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर | 408 |
| 6. 12. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर | 411 |
| 6. 13. | ग्रामोद्धार | 419 |
| 6. 13. 1. | गुप्तजी के काव्य में ग्रामोद्धार | 419 |
| 6. 13. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में ग्रामोद्धार | 420 |
| 6. 14. | खादी और चर्खा | 421 |
| 6. 14. 1. | गुप्तजी के काव्य में खादी और चर्खे का महत्व | 422 |
| 6. 1. 4. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में खादी और चर्खे का महत्व | 422 |
| 6. 15. | भारतीय राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में | 424 |
| 6. 15. 1. | गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में | 424 |
| 6. 15. 2. | वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में | 427 |
| 6. 16. | निष्कर्ष<br>उपसंहार | 432 |

**************

# प्रथम अध्याय

## मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ्

## व्यक्तित्व एवं कृतित्व

# प्रथम अध्याय

## मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ्

## व्यक्तित्व एवं कृतित्व

### 1.1 जन्म एवं परिवार

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त, सन् 1886 में झाँसी जिले के चिरगाँव में हुआ। वे गहोई वैश्य जाति के थे। उनके पिता रामचरण जी बडे उदार वैष्णव भक्त, कविता प्रेमी व्यक्ति थे। माता काशीबाई धर्म परायण, सीधी-सादी स्त्री थीं। गुप्तजी का पहला नाम कनकने मिथिलाधिपनन्दिनी-शरण रखा गया। बाद में जब लिखने लगे तो उन्होंने अधिक संक्षिप्त नाम "मैथिलीशरण" को स्वीकृत किया। गुप्तजी के पिता "कनकलता" नाम से कविता करते थे। गुप्तजी की कवि प्रतिभा विरासत में मिली संपत्ति है।

गुप्तजी का परिवार संयुक्त परिवार था। यह परिवार प्राचीन के साथ-साथ नवीन सभ्यता को अपनाने के कारण स्वस्थ एवं प्रगतिशील था। गुप्तजी में प्रेम-भाव, सेवा-तत्परता, सहानुभूति, अनुसरणशीलता, कर्तव्य परायणता, बडों के प्रति आदर-सम्मान आदि गुण संयुक्त परिवार की ही देन थे। ग्रामीण परिवार होने से परंपरा के प्रति अटूट आस्था और सबके बीच दृढ़ अनुराग स्वाभाविक रूप में इस परिवार के गुण थे। देवता की उपासना और अटूट ईश्वर-भक्ति को भी यहाँ महत्त्व दिया जाता था। राम इस परिवार के प्रमुख आराध्य देव रहे थे। रामायण का पाठ समय-समय पर इस परिवार में होता रहता था। ऐसी अवस्था में गुप्तजी ने भी राम को अपना इष्ट देव चुन लिया तो उसमें आश्चर्य की बात नहीं। वे राम को ही सब कुछ समझते थे। उनकी दृष्टि में राम से बडा कुछ भी नहीं था।[1]

---

1 राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ - पृ. 147

गुप्तजी की रामोपासना, सम्मिलित परिवार व्यवस्था के प्रति मोह, ललित एवं सरल जीवन का आग्रह, अतिथि सत्कार प्रियता आदि गुण संस्कृति प्रधान परिवार की ही देन थे ।

वळ्ळत्तोळ् श्री नारायण मेनन का जन्म , केरल के मलबार प्रदेश में पोन्नानि तालुक के मंगलम् नामक गाँव में 16 अक्तूबर 1878 में हुआ । उनके पिता कट्टुड्.डोट्टु मल्लिश्शेरि दामोदरन् इळयत्तु थे । वे जाने माने कला-रसिक और "कथकलि" (केरल की नृत्य कला है) के प्रेमी थे । उनकी माता वळ्ळत्तोळ् पार्वती, अत्यंत उदार, विनम्र और ईश्वर भक्ता थी ।

वळ्ळत्तोळ् नाम ही वळ्ळत्तोळ् की पारिवारिक संस्कृति का परिचायक है । केरल में व्यक्तियों के नाम के पहले परिवार के नाम जोडने की प्रथा रही थी । वळ्ळत्तोळ् केरल की एक प्रमुख जाति-नायर, का पारिवारिक नाम है । केरल के नायर परिवारों में संयुक्त परिवार व्यवस्था चलती थी । परिवार में माता को प्रमुख माना जाता था । परिवार के सभी सदस्यों की देखभाल परिवार के अग्रज पर ही निर्भर थी। उसी के कहे अनुसार पूरा परिवार चलता था । वळ्ळत्तोळ् का लालन पालन इस प्रकार के एक संयुक्त परिवार में हुआ था । संस्कार संपन्न उनके परिवार में देवी की पूजा होती थी । वळ्ळत्तोळ् भी देवी-उपासक थे । फिर भी वे रामकथा से आकृष्ट रहे थे । उनका पारिवारिक वातावरण प्राचीनता और रामायण संस्कृति का सदैव अनुकूल रहा है । सांस्कृतिक विषयों पर कवि की आस्था उनकी पारिवारिक संस्कृति की देन

### 1.2. शिक्षा-दीक्षा

गुप्तजी की प्रारंभिक शिक्षा चिरगाँव की एक पाठशाला में हुई । बाल्यावस्था में पढ़ाई में उनका मन नहीं लगता था । लेकिन घर के वैष्णव संस्कार से वे बहुत प्रभावित थे । यही बाद में विकसित होकर उनके व्यक्ति का एक अभिन्न अंग बन गया । प्रारंभिक शिक्षा के बाद गुप्तजी मेक्डानल ह

झाँसी में अंग्रेज़ी पढ़ने केलिए भेजे गए । पहले साल में वे जोश के साथ पढ़ने लगे, बाद में खेल तमाशे में लीन हुए और पढ़ाई में कच्चे रहे गए । पढ़ाई पूर्ण किए बिना वे घर लौटे । इस तरह उनकी स्कूली शिक्षा छठी कक्षा मात्र तक की रह गई ।

झाँसी से घर लौटने पर वे स्वाध्याय में लग गए । हिन्दी और बंगाली से अनूदित हिन्दी उपन्यास और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने में गुप्तजी का बडा शौक था । मुंशी अजमेरी की प्रेरणा से संस्कृत श्लोकों को कण्ठस्थ करने की प्रेरणा भी मिली । बाद में आयुर्वेद की ओर भी उनका मन लगा । ऐसी स्थिति में उन्होंने संस्कृत का और पंडित राम स्वरूप शास्त्री से संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया था । बाल्यकाल से ही गुप्तजी को काव्य से विशेष अनुराग था । नैसर्गिक रूप में ही उत्पन्न यह आकर्षण उचित वातावरण में क्रमशः विकसित हुआ । लडकपन में अजमेरी जी, गुप्तजी को अपने घर बुलाकर कहानियाँ, सवैये, संस्कृत के श्लोक आदि सुनाया करते थे । इस अनुकूल वातावरण में गुप्तजी में काव्य-संस्कारों का आना स्वाभाविक ही था ।

वळ्ळत्तोळ् की शिक्षा का प्रारंभ तो घर में ही हुआ था । वारियंपरंपिल् कुट्टन् नायर उनके प्रथम अध्यापक थे । उनके अधीन में वळ्ळत्तोळ् ने अक्षर से लेकर अमरकोश सिद्धरूप, श्रीरामोदत्तम् और प्राथंमिक गणित शास्त्र का अध्ययन किया था, जो तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली के अनुसार था ।

प्रारंभिक शिक्षा के बाद वळ्ळत्तोळ् ने अपने मामाजी, रामुण्णि मेनन के चरणों पर बैठकर काव्य का अध्ययन शुरू किया । इस समय उनकी अवस्था आठ वर्ष की थी । पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक वे काव्य अलंकार आदि में पटु हुए । उनके बाद मामाजी ने उन्हें अष्टांगहृदय पढ़ाना शुरू किया, साथ ही साथ बच्चों को पढ़ाने का काम भी वळ्ळत्तोळ् की जिम्मेदारी बन गया । बारह वर्ष की आयु में वे काव्य रचना करने लगे । इस समय वे काव्य शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे । उनकी प्राथमिक रचनाओं के रूप में "किरातशतकम्" "व्यासावतारम्" आदि को लिया जा सकता है ।

## 1.3 मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् का व्यक्तित्व

गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् का काव्य सृजन करीब एक ही समय में हुआ था । उनके रचनाकालीन भारतीय समाज की स्थिति समस्याओं से जटिल थी । सामयिक प्रश्नों की ओर दोनों कवि जागरूक रहे हैं । समस्याओं के निवारणार्थ , भारत भर में , आंदोलन का आविर्भाव हुआ । इन आन्दोलनों ने गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् को समान रूप से प्रभावित किया । आन्दोलनों के नेता प्राचीन संस्कार की नवीन व्याख्या पर बल देने लगे । अब गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् ने अपने पारिवारिक वातावरण से ,और स्वयार्जित पौराणिक संस्कार से , युग की माँग के अनुसार काव्य सृजन में लागू करके जन सामान्य को उद्बुद्ध करने का प्रयास किया । हरेक साहित्यकार की रचना में तत्कालीन समय एवं समाज का प्रतिफलन हम देख सकते हैं । सामयिक एवं सार्थक रचना होने के कारण गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् के काव्य में भी हम समकालीन समाज की तडप देख सकते हैं । उनकी रचनाएँ उनके व्यक्तित्व का प्रतिरूप हैं ।

गुप्तजी आदर्श मानवतावादी कवि हैं । अटल राम भक्त होने के कारण उनकी कृतियों की शुरूआत राम के मंगल गान से होती है । परंपरा प्रेमी होने के नाते राम का आदर्श उनका भी आदर्श हैं । इन आदर्शों पर नवीन सभ्यता का प्रभाव भी अवश्य द्रष्टव्य है । यद्यपि गुप्तजी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के पोषक हैं और भारत के अतीत गौरव पर उनको बड़ा गर्व है , फिर भी युग की परिवर्तित विचारधारा से वे पूर्णतया परिचित हैं , और अच्छे विचारों के प्रति सदैव आदर प्रकट किया करते हैं । इसी कारण मार्क्सवादी न होकर भी उन्होंने कार्ल मार्क्स की प्रशंसा की है ।[1] गुप्तजी गाँधीजी के अनुयायी अहिंसा के पुजारी, पतितों के उद्धारक एवं नारी स्वतंत्रता के समर्थक हैं । गाँधी दर्शन याने प्राचीन भारतीय दर्शन के अटूट विश्वासी होने

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन" - द्वारिका प्रसाद सक्सेना-पृ. 6-7

के नाते वे सामाजिक अनाचारों एवं साम्प्रदायिक मत-भेदों के विरुद्ध आवाज़ उठाने में ज़रा भी हिचकते नहीं थे । वे "न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म रे " के समर्थक हैं ।

आंतरिक विशेषताओं के परे उनका बाह्य जीवन भी कुछ असाधारण रहा है । "सर पर गाँधी टोपी , शरीर पर कुर्ता-धोती, गले में एक दुप्पटा डाले, आँखों में दीप्ति, मुख पर कांति, होठों पर सहज खेलती मुस्कान, उन्नत ललाट , साधारण गेहुआ रंग और साधारण सा परिधान धारण किए , पर संपूर्ण व्यक्तित्व से सहज प्रवाहित आत्मतेज और सारल्य को देखकर यदि जैनेन्द्र जी कह उठे- "नाम बडे दर्शन थोडे" तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।[1] उनका संपूर्ण व्यक्तित्व प्राचीन भारत की संस्कृति के उस उज्ज्वल स्वरूप को प्रत्यक्ष कर देता है जिसके सम्मुख हर किसी का मस्तक स्वतः ही झुक जाता है,इसी रूप के कारण लोग उन्हें अपने राष्ट्र का प्रतिनिधि कवि मानते हैं । प्राचीन सांस्कृतिक विषयें को, नवीन युग के योग्य बनाकर , ओजपूर्ण शैली में , समकालीन समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना ही उनके अभीष्ट की बात थी ।

वळ्ळत्तोळ् भी मानवतावादी कवि रहे हैं । मानवतावाद के पीछे जो सत्य है वह प्राचीन भारतीय संस्कृति का ही रूप है । कवि के मन में आर्ष-संस्कृति के प्रति विशेष श्रद्धा थी । प्राचीनता और नवीनता के संगम स्थान से उनके व्यक्तित्व का उदय हुआ है । वे ईश्वर विश्वास , गुरु भक्ति , अंधविश्वास का विरोध आदि सद्गुणों से सज्जित थे । वे सच्चरित्रता , विनम्र एवं उदारता के प्रतीक रहे हैं । गाँधीजी के भी वे बडे भक्त थे । जब उनकी मुलाकात गाँधीजी से पहली बार हुई थीं तो बातचीत में गाँधीजी ने पूछा - "खादी में विश्वास है क्या ? खादी में नहीं आपके समस्त कार्यों में असीम विश्वास है ।[2] कवि के व्यक्तित्व की झाँकी यहाँ स्पष्टतः द्रष्टव्य है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "आधुनिक प्रतिनिधि कवि और उनका काव्य-जीवन प्रकाश जोशी- पृ. 16
2. "महाकवि वळ्ळत्तोळ्"- कुट्टिप्पुरत्तु किट्टुण्णि नायर-पृ. 109

उनके व्यक्तित्व में प्राचीन संस्कृति के प्रति असीम भक्ति थी । अपने देश की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को वे अपने जीवन में महान स्थान देते थे । कवि के अलावा एक प्रमुख दार्शनिक, उत्तम मानव प्रेमी, समुन्नत आलोचक , मर्मज्ञ कला प्रेमी, निर्भय कर्मयोगी, आदि गुणों से युक्त वे एक व्यक्ति से कहीं बढ़कर स्वयं एक संस्था का ही रूप धारण किए हुए थे । [1]

## 1.4. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् का धार्मिक विश्वास

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् हिन्दू धर्म की छत्र-छाया में जन्मे और पले थे । उनकी पारिवारिक संस्कृति हिन्दू धर्म की प्राचीन गरिमाओं के पाठ पढ़ाने वाली थी । ऐसे धार्मिक वातावरण में बचपन गुज़ारने के बावजूद भी दोनों कवि धार्मिक अंध-विश्वासी नहीं रहे, और सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखते रहे ।

गुप्तजी एक समाज के विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच सहिष्णुता और सहयोग-भावना की आवश्यकता पर बल देते हैं । धार्मिक असहिष्णुता उनकेलिए असह्य थी । "भारत-भारती" में कवि पाखण्डियों के प्रति अपनी असहिष्णुता दिखाकर आदर्श समाज-व्यवस्था के प्रति अपनी इच्छा व्यक्त करके देश-भक्ति का आदर्श प्रस्तुत करते हैं । [2] हरिजनोद्धार के क्षेत्र में भी उनकी विशेष रुचि रही थी ।

वळ्ळत्तोळ् सभी धर्मों का आदर करते थे । धर्म संबन्धी अपनी धारणा को वे व्यक्त करते हैं -" सारे धर्म वास्तविक एकता के परिचायक हैं । हम धर्मानुयायी तो विभिन्नता की ही सृष्टि करते हैं । धर्मानुयायियों का यह

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "महाकवि वळ्ळत्तोळ्" - कुछ महान स्मरण- एन. आर. नायर- पृ. 214.
2. "भारत-भारती" - पृ. 170

क्रम मुमुक्षा का बन्धन में परिण होना है ।[1] धार्मिक सहिष्णु होते हुए भी समाज में प्रचलित उच्च-नीच की भावना , जाति-पाँति एवं छुआछूत के प्रति कवि की किसी प्रकार की सहिष्णुता नहीं थी । हिन्दू धर्म पर विश्वास रखते हुए भी वे हिन्दू राष्ट्रीयता पर विश्वास नहीं रखते थे ।

## 1.5. मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् का कृतित्व

मैथिलीशरण और वळ्ळत्तोळ् सुदूर उत्तर और दक्षिण के होते हुए भी दोनों का रचना काल एक ही रहा है । दोनों के काव्य-सृजन के मूल स्रोत पौराणिक ग्रन्थ भी रहे हैं । दोनों की अधिकांश रचनाएँ पौराणिक रही हैं । लेकिन उन्होंने अन्य अनेक प्रौढ़ रचनाएँ भी की हैं । मोटे तौर पर उनकी कृतियों को पौराणिक , ऐतिहासिक, समसामयिक, विविध , अनुदित आदि पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है । दोनों के सृजन काल में समाज एवं साहित्य में जो प्रमुख परिवर्तन हुए हैं , उनकी झलक प्रत्येक रचना में दृष्टि-गोचर होती है । दोनों कवियों की पौराणिक कृतियों का विस्तृत अध्ययन तीसरे अध्याय में हो रहा है । अतः यहाँ उसका परिचय मात्र दिया जा रहा है । कविद्वय की सभी प्रमुख एवं प्रासंगिक रचनाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण आगे के अध्यायों में क्रमानुसार हो रहा है ।

गुप्तजी ने कुल मिलाकर 44 स्वतंत्र काव्य लिखे हैं । इनमें एक महाकाव्य 12 खंड काव्य, तीन कथा काव्य हैं । बाकी प्रबन्ध संकलन , निबन्ध काव्य , गीति नाट्य और पद्य-संग्रह हैं । स्वतंत्र रचनाओं के अलावा उन्होंने 9 ग्रंथों का अनुवाद भी किया है । वळ्ळत्तोळ् ने 43 स्वतंत्र रचनाएँ की हैं । इनमें एक महाकाव्य , आठ खण्ड काव्य , 3 निबन्ध काव्य और साहित्य मंजरी के

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. 'साहित्य मंजरी'- सातवाँ भाग - पृ. 98

11 भाग हैं, जो गीतिबद्ध आख्यानक तथा निराख्यानक पद्य संग्रह हैं। बाकी कृतियाँ गीति काव्य, आख्यानक एवं निराख्यानक काव्य, गीति नाट्य, शोक गीत आदि हैं। इन सभी ग्रन्थों का परिचय आगे किया जा रहा है।

1.5. 1. पौराणिक कृतियाँ

गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् की पौराणिक कृतियों को मुख्यत: तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। महाभारत पर आधारित, रामायण पर आधारित और अन्य पुराणों पर आधारित।

1.5.1.1. महाभारत पर आधारित गुप्तजी की कृतियाँ

महाभारत पर आधारित गुप्तजी की सात रचनाएँ हैं। उनका सामान्य परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

1.5.1.1.1. जयद्रथ वध (सन् 1910)

गुप्तजी की प्रारंभ कालीन रचनाओं में जयद्रथवध का प्रमुख स्थान है। इसकी कथा है अभिमन्यु वध और उसके बाद जयद्रथ का वध। कथा का नायक अर्जुन पुत्र प्रेमी पिता के रूप में एवं सुभद्रा आदर्श नारी, पत्नी आदि रूप में भी यहाँ प्रस्तुत है। युधिष्ठिर कवि की नई भावनाओं का, अभिमन्यु वीरता का और उत्तरा पतिपरायणा-नारी का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

1.5.1.1.2. सैरन्ध्री (सन् 1927)

महाभारत में वर्णित सैरन्ध्री और कीचक की कथा को लेकर कवि ने इसकी रचना की। इसके द्वारा स्त्री चरित्र के महत्व की घोषणा की गई है।

1.5.1.1.3. वन-वैभव (सन् 1927)

"जैसी करनी वैसी भरनी वाली" कहावत की सार्थकता इस कथा से प्रकट होती है। इसका आधार पाण्डव-वनवास है। भाई-भाई में शत्रुता के

होते हुए भी विपत्ति-काल में शत्रु से एकता से काम लेना है - इस तत्व की गरिमा को इसके द्वारा दिखाया गया है । यह कवि की राष्ट्रीय भावना का निदर्शन है ।

1.5.1.1.4. बक संहार {सन् 1927}

"बक संहार" की कथा लाक्षागृह से बचकर पांडवों के एकचक्रा गाँव में एक ब्राह्मण परिवार के अतिथि बनकर रहने की महाभारत की कथा से संबन्धित है । यहाँ ब्राह्मण का दुःख देख कर कुन्ती भीम को बक के भोजन के रूप में भेज देती है । भीम बक का वध करता है । यहाँ पर नारी-चरित्र की महिमा पर प्रकाश डाला गया है ।

1.5.1.1.5. नहुष {सन् 1940}

इस खण्डकाव्य में इन्द्रपद की प्राप्ति के पश्चात् नहुष के अपनी दुर्बलताओं के कारण उक्त पद से च्युत होने का वर्णन हुआ है । यहाँ कवि मानव को दानव न होकर देव बन जाने की घोषणा करते हैं । इसमें कवि की देश-भक्ति एवं मातृभूमि प्रेम उभर आया है ।

1.5.1.1.6. हिडिंबा {सन् 1950}

वनवास के समय वन में विचरण करते हुए भीम से हिडिंबा का वरण होना इसकी कथा है । गुप्तजी ने हिडिंबा को दानवी से मानवी ही नहीं बल्कि वैष्णव भक्त भी बना दिया है । यहाँ, नर-राक्षस , आर्य-अनार्य-प्रेम तथा त्याग और नारीत्व पर बल दिया गया है । हिडिंबा यहाँ सहानुभूति का पात्र बन गयी है ।

1.5.1.1.7. जयभारत {सन्. 1952}

यह महाभारत पर आधारित बृहत् रचना है । महाभारत की संपूर्ण कथा का संक्षिप्त रूप में इसमें प्रतिपादन हुआ है । नहुष के आख्यान से लेकर

पाण्डव के स्वर्गारोहण तक की कथा इसमें वर्णित है । महाभारत के सभी पात्र इसमें भी है और वे अपने व्यक्तित्व से युक्त भी हैं ।

1.5.1.2. महाभारत पर आधारित वळ्ळत्तोळ् के काव्य

महाभारत पर आधारित वळ्ळत्तोळ् के दो खण्डकाव्य एवं साहित्य-मंजरी के दो कविताएँ मिलती हैं ।

1.5.1.2.1. तपती-संवरण (सन् 1906)

यह वळ्ळत्तोळ् का प्रारंभकालीन काव्य है । इसका प्रकाशन पहले "रसिक रंजिनी" पत्रिका में हुआ था । यह "वंचिप्पाट्टु" (नौका गीत) की शैली में लिखा गया है । इसमें पुत्र के अभाव में दुःखी संवरण का सूर्य पुत्री तपती से विवाह करके पुत्र-प्राप्ति होने का वर्णन हुआ है । प्रारंभ-कालीन रचना होने के कारण यह एक श्रेष्ठ रचना नहीं मानी जा सकती ।

1.5.1.2.2. "अच्छनुं मकळुम् " (पिता और पुत्री) (सन् 1940)

यह वळ्ळत्तोळ् को अमर बनाने वाला खण्डकाव्य है । यहाँ विश्वामित्र अपने शिष्य समेत कश्यप दर्शन केलिए हेमकूट पहुँचते हैं । वहाँ उनका मिलन शकुन्तला से होता है । यह पुराण से दूर कवि की कल्पना है । प्रस्तुत काव्य में विश्वामित्र को एक आम पिता के रूप में चित्रित किया है । शकुन्तला का आदर्श भारतीय पुत्री , पत्नी एवं माँ के रूप में वर्णन किया गया है ।

1.5.1.2.3. "भार्गव स्वामिन् कै तोषाम्" (भार्गव स्वामि को नमस्कार) (सन् 1927)

प्रस्तुत कविता "साहित्य मंजरी" के छठे भाग की पहली कविता है । यहाँ कवि केरल की सामाजिक दुरवस्था का विश्लेषण करते हुए भृगुराम से प्रार्थना करते हैं कि वे फिर से एक बार केरल में अवतरित होकर इस पुण्यभूमि की रक्षा करे ।

1.5.1.2.4 इन्द्रनुं माबलियुम् {इन्द्र और महाबलि}

यह साहित्य मंजरी सातवें भाग की सत्रहवीं कविता है । प्रस्तुत भाग का प्रकाशन सन् 1930 में हुआ है । इस कविता में कवि इन्द्र एवं महाबलि के बीच के संवादों की चर्चा करके धन एवं पदवी की अस्थिरता एवं क्षणिकता पर बल देते हैं । यहाँ कवि का तात्पर्य असत् पर सत् की विजय है ।

1.5.1.3. रामायण पर आधारित गुप्तजी के काव्य

रामायण पर आधारित गुप्तजी के चार काव्य हैं । महाकाव्य "साकेत", खण्ड-काव्य "पंचवटी" और "प्रदक्षिणा" और पद्य नाट्य लीला" हैं ।

1.5.1.3.1. पंचवटी {सन् 1925}

"पंचवटी" में शूर्पणखा के चरित्र को मानव मनोविज्ञान के साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया गया है । लक्ष्मण काव्य का प्रमुख पात्र है । उसे आदर्श मानव ठहराया गया है ।

1.5.1.3.2. साकेत {सन् 1932}

यह गुप्तजी की प्रसिद्ध रचना है । यह उर्मिला के चरित्र को प्रकाश में लाने केलिए लिखा गया है । उर्मिला का विरह एवं उसके व्यक्तित्व की महिमा ही काव्य की प्रमुख विशेषता है । यहाँ स्त्रीत्व का महत्व, पारिवारिक संबन्ध , राजा-प्रजा संबन्ध , देश भक्ति , कला आदि का उल्लेख सच्चे अर्थ में हुआ है ।

1.5.1.3.3. प्रदक्षिणा {सन् 1950}

प्रदक्षिणा में संपूर्ण रामकथा का आख्यान परंपरागत ढंग से हुआ है ।

1.5.1.3.4. लीला {सन् 1960}

"लीला" बालकाण्ड की कथा पूर्ति केलिए लिखी गयी है । यहाँ कवि ने रामकथा में कई मौलिक उद्भावनाओं को स्थान दिया है ।

1.5.1.4. रामायण पर आधारित वळ्ळत्तोळ् के काव्य

इस कोटि में वळ्ळत्तोळ् की तीन रचनाएँ आती हैं । इनमें "दण्डकारण्यम्" खण्डकाव्य एवं , "शरणमय्यप्पा" और "रावण का अन्तपुर-गमनम्" कविता है ।

1.5.1.4.1. दण्डकारण्यम् (सन् 1920)

सूर्यवंशी राजा दंड का , एकांत में गुरुपुत्री से बलात्कार , पता लगने पर गुरु शाप द्वारा राज्य और राजा का सात दिन में नष्ट-भ्रष्ट हो जाना आदि का वर्णन इसमें हुआ है । प्राचीन मुनियों के तपोबल का स्पष्ट चित्रण इस काव्य में हुआ है ।

1.5.1.4.2. शरणमय्यप्पा (सन् 1933)

रामायण में शबरी नामक भील-बालिका के शबरिगिरि में तपस्या का उल्लेख है । अब वहाँ अय्यप्पन (हरिहरसुत) का मंदिर की स्थापना हुई है । हर साल भारत के विभिन्न राज्यों से भक्त जनों का , यहाँ प्रवाह होता है । प्रस्तुत काव्य शबरि-गिरि जानेवाले भक्त-जनों के लिए रचा गया है ।

1.5.1.4.3. "रावणन्टे अन्तपुर गमनम्" (रावण का अन्तपुर गमन (सन् 1922)

यह साहित्य मंजरी तृतीय भाग की दसवीं कविता है । रावण का बेटा इन्द्रजित राम-लक्ष्मण पर विजयी होता है । यह शुभ बात सुनकर रावण खुशी मनाने केलिए अपनी पत्नी मंडोदरी के अन्तपुर में जाता है , यही इसका प्रतिपाद्य है ।

1.5.1.5. अन्य पुराणों पर आधारित गुप्तजी के काव्य

अन्य पुराणों पर आधारित गुप्तजी की तीन रचनाएँ हैं । "द्वापर",

"शक्ति" एवं "दिवोदास" । इसमें द्वापर ही एक प्रमुख रचना है और इसका संपूर्ण विश्लेषण तीसरे अध्याय में हो रहा है ।

1.5.1.5.1. शक्ति:

यह मार्कण्डेय पुराण के अध्याय 78 से 89 तक व्याप्त देव्युपाख्यान का संक्षिप्त रूप है । इसका प्रकाशन सन् 1927 में हुआ । यहाँ "संघे शक्तिः" की स्थापना हुई है । दैत्यों के आतंक-पीडित देवगण विष्णु की शरण में जाते हैं । उनकी सहायता विष्णु से नहीं हो सकी । सभी देवों के सम्मिलित शक्ति से मातृभूमि का जन्म होता है । उसके द्वारा महिषासुर का दमन होता है । आगे देवता गण आततायियों से मुक्त होते हैं । इसमें वीर रस का खूब प्रयोग हुआ है ।

1.5.1.5.2. द्वापर (सन् 1936)

इस में कृष्ण कथा का व्यापक वर्णन हुआ है । यह एक पात्र-प्रधान रचना है । यह सोलह खण्डों में विभक्त है । प्रस्तुत काव्य का सामयिक महत्व तीसरे अध्याय में विस्तृत रूप से वर्णित है । द्वापर एक श्रेष्ठ प्रगीत काव्य भी है ।

1.5.1.5.3. दिवोदास

दिवोदास का प्रकाशन सन् 1950 में हुआ । इसका प्रणयन श्री संपूर्णानन्द-जी के "गणेश" से संकेत ग्रहण करते हुए स्कन्दपुराण के काशी खण्ड के आधार पर हुआ है ।[1] यह श्रेष्ठ राजा दिवोदास के उच्चादर्शों को प्रस्तुत करनेवाली रचना है । दिवोदास के राज में काशी नागरी धन-धान्य-संपन्न हो गयी । यह देखकर शिवजी उन्हें निष्कासित करने का विविध प्रयत्न करते हैं । लेकिन दिवोदास के पुण्यों के कारण वह वैसे के वैसे ही रहा । आखिर गणेशजी द्वारा जो ब्राह्मण वेष धारण करके दिवोदास को बहकाते हैं, उद्देश्य सफल होता है । काशी फिर से देव-नगरी बन जाती है ।[2]

---

1. "पृथ्वीपुत्र"-निवेदन- पृ. 1.
2. "स्कन्दपुराण"- काशीखण्ड-अ:. 51-57

1.5.1.6. अन्य पुराणों पर आधारित वळ्ळत्तोळ् के काव्य

अन्य पुराणों का अध्ययन वळ्ळत्तोळ् ने खूब किया है । इस कोटि में उन्होंने सात रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । इनमें "गणपति", "शिष्यनुं मकनुम्" और "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन्" खण्डकाव्य हैं । "अंबाडियिल् चेल्लुन्न-अक्रूरन्" , "मुद्टत्ते तुलसी" , "कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्", किळिक्कोंन्चल्" आदि साहित्य मंजरी के विविध भागों में लिखी गई रचनाएँ भी हैं ।

1.5.1.6.1. गणपति:

शिवपुराण पर आधारित इस रचना का प्रकाशन सन् 1913 में हुआ था यहाँ कवि पार्वती को आधुनिक समाज के योग्य गुणों से युक्त स्त्री के रूप में उपस्थित करते हैं । पार्वती शिवजी की नवोढ़ा पत्नी होते हुए भी , एक आदर्श माता एवं , कर्मोन्मुख भारतीय नारी के रूपमेंखड़ी है , जो "पुरुष" के अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठानेवाली "प्रकृति" का पर्याय बन चुकी है । यह कवि का महत्व बढ़ाने वाली एक उत्तम रचना है ।

1.5.1.6.2. "शिष्यनुं मकनुम्" §शिष्य और पुत्र § §सन् 1918§

यह भी "गणपति" की पृष्ठभूमि में रची गई है । गुरुदर्शन केलिए कैलास पहुँचे परशुराम को गुरु-पुत्र गणपति रोकते हैं । दोनों के संवाद के अंत में गणपति का एक दांत तोड दिया जाता है । यहाँ भी पार्वती का आदर्श माता का रूप अतीव आकर्षक एवं सामयिक बन गया है ।

1.5.1.6.3. "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन्" §बन्दी अनिरुद्ध§ §सन्-1914§

यह कवि की कल्पना शक्ति का पर्याय है । प्रस्तुत काव्य की कथा पुर से संबन्धित होते हुए भी , नवीन उद्भावनाओं से पूर्ण रूप से सजी हुई है ।

कवि इसमें "उषा" को स्वतंत्र नारी , एवं अनिरुद्ध को आदर्श एवं वीर पुरुष के रूप में चित्रित करते हैं ।

1.5.1.6.4. "अंबाडियिल् चेल्लुन्न अक्रूरन्" [गोकुल में पहुँचने वाला अक्रूर]

प्रस्तुत कविता साहित्य मंजरी के तृतीय भाग की है । यह एक भक्ति रस प्रधान कविता है । इसमें अक्रूर के श्रीकृष्ण दर्शन का जीता-जागता चित्रण हुआ है ।

1.5.1.6.5. "मुट्टत्ते तुलसी" [आंगन की तुलसी]

यह भी साहित्य-मंजरी के तृतीय भाग की कविता है । यहाँ तुलसी के पौधे एवं तुलसी देवी की महिमा का भक्ति-रस-प्रधान वर्णन हुआ है । यहाँ कवि नारी की श्रेष्ठता एवं पातिव्रत्य के गौरव पर बल देते हैं । यह कवि की देवी-भक्ति की भी परिचायक है ।

1.5.1.6.6. "कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्" [कर्मभूमि के नन्हे पाँव]

यह साहित्य-मंजरी के चतुर्थ भाग की कविता है । यह गुप्तजी की "द्वापर" की तरह कृष्ण-कथा पर आधारित रचना है । यहाँ कवि कृष्ण को आधुनिक युग-पुरुष के रूप में समाज के सम्मुख अभिमान के साथ प्रस्तुत करते हैं । कृष्ण का कालिय दमन इस रचना की मुख्य कथा है । यह कवि की प्रौढ़ रचनाओं में एक है ।

1.5.1.6.7. "किळिक्कोन्चल्" [तोतली बोली]

यह भी चतुर्थ भाग की कविता है । यहाँ सीताजी के बाल्य-काल का वर्णन हुआ है । बाल-मनोविज्ञान की असली झलक प्रस्तुत रचना की महिमा है । यहाँ कवि कई पौराणिक संदर्भों की ओर हमें ले जाते हैं । यह कविता वळ्ळत्तोळ् की अभिव्यंजना शैली का भी द्योतक है ।

1.5.2. ऐतिहासिक रचनाएँ

गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् ने अनेक ऐतिहासिक रचनाएँ की हैं । वे मुख्यत: हिन्दू, मुसलमान और ईसाई इतिहास पर आधारित हैं । इसका जिक्र आगे हो रहा है ।

1.5.2.1. गुप्तजी की ऐतिहासिक रचनाएँ

गुप्तजी की ऐतिहासिक रचनाओं में , रंग में भंग , पत्रावली विकटभट , सिद्धराज , गुरुकुल , काबा और कर्बला अर्जन और विसर्जन, विष्णुप्रिया, रत्नावली कुणालगीत, आदि प्रमुख हैं ।

1.5.2.1.1. रंग में भंग (सन् 1909)

यह रजपूत इतिहास से संबन्धित एक खण्ड-काव्य है । इसकी रचना से कवि यह सिद्ध करते हैं कि खड़ी बोली में भी व्रज की तरह काव्य रचना हो सकती है । चित्तौड के महाराजा का विवाहोपरान्त अपने ससुर बूँदी नरेश से जो विग्रह हुआ उसी का वर्णन यहाँ हुआ है । यहाँ नारी की धर्मनिष्ठा की प्रशंसा की गई है । इस आदर्श प्रधान काव्य में कवि का देश-प्रेम भी उभर आया है । प्रथम रचना होने के नाते गुप्त-साहित्य में "रंग में भंग" का महत्वपूर्ण स्थान है ।

1.5.2.1.2. पत्रावली (सन् 1916)

यह भी रजपूत इतिहास से संबन्धित रचना है । यह एक पत्रात्मक गीति है । इसमें सात पत्र-गीतियों का समावेश हुआ है । पहला पत्र पृथ्वीराज का है , जो राणा-प्रताप को उद्बोधन देनेवाला है । दूसरा पत्र पहले के उत्तर के रूप में राणा का लिखा हुआ है , जिसमें उनका आत्माभिमान व्यक्त हुआ है । तीसरा वीर शिवजी का औरंगसीब के प्रति है , इसमें जजिया के विरुद्ध शिवजी अपने भावों को प्रकट करते हैं ।

चौथे में औरंगज़ेब का पश्चात्ताप वर्णित है । पाँचवाँ महारानी सिसोदिनी का है , जिसमें वे युद्ध से विरत होकर आए महाराज जसवन्त सिंह के प्रति आक्रोश प्रकट करती हैं । छठा पत्र महारानी अहल्या बाई का दीवान गंगाधरराव के प्रति है । इसमें राव की अनुचित कार्यवाही एवं उसके विरुद्ध दादा पेशवा को चढ़ा लाने का औचित्य पर प्रश्न किया गया है । अंतिम पत्र राजकुमारी रूपवती का राजसिंह के नाम पर है , जिसमें वह अपने पूर्व-प्रेम को सफल बनाने तथा औरंगज़ेब से बचने का प्रयत्न करती हैं । यह पत्र अत्यधिक आत्माभिव्यक्ति-प्रधान है । सभी पत्र वर्णनात्मक हैं और इनमें क्रमशः उद्‌बोधन, कृतज्ञता विरोध , पश्चात्ताप आक्रोश , प्रबोध , प्रेम आदि भावों का चित्रण हुआ है ।

1.5.2.1.3. विकट भट [सन् 1928]

यह रजपूतकालीन काव्य है । यह जोधपुर राज्य से संबन्धित एवं संवाद-प्रधान रचना है । जोधपुर राजा विजयसिंह एवं पोकरण , संवाद का प्रारंभ करते हैं । इसमें षोडश वर्षीय वीर बालक सवाईसिंह की वीरता पूर्ण राजपूती शान का सुन्दर परिचय दिया गया है । रजपूती नारियों की निराली आनबान तथा वीरता का मार्मिक चित्रण भी यहाँ हुआ है ।

1.5.2.1.4. सिद्‌धराज [सन् 1936]

यह गुप्तजी की प्रौढ़ रचनाओं में एक है । यह मध्यकालीन शूरों की कथा है । काल्पनिकता का भी यहाँ प्रयोग हुआ है । यह पाँच सर्गों में विभक्त है । प्रथम सर्ग में सिद्‌धराज जयसिंह की विधवा माता मीलनदे की सोमनाथ यात्र चित्रित है । द्वितीय सर्ग में अपने शूरत्व का यथोचित परिचय देते हुए सिद्‌धराज अवन्तीनाथ नरवर्मा , तथा यशोवर्मा से युद्ध कर विजयी होते हैं और अवन्तीनाथ की पदवी प्राप्त करते हैं । तीसरे में सिद्धराज की परित्यक्ता कन्या राजकदे तथा सोरठराज खंगार की पत्नी बनी हुई रानकदे पर जयसिंह के अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्नों का वर्णन हुआ है । चतुर्थ में सिद्‌धराज की अर्णो राज पर विजय पाने का चित्रण हुआ है । अन्तिम सर्ग में

सिद्धराज के ऐश्वर्यपूर्ण सफल राजव्यवस्था एवं मदनवर्मा से मैत्री स्थापना वर्णित है । काव्य में मुख्यतः युद्धवीरत्व , धार्मिकता , आदर्श राजव्यवस्था मातृभूमि-प्रेम आदि का चित्रण हुआ है । यहाँ कवि की सांस्कृतिक समन्वय की अदम्य अभिलाषा भी व्यक्त होती है ।

1.5.2.1.5. गुरुकुल (सन् 1928)

यह सिख इतिहास से संबन्धित बृहद् आख्यानक काव्य है । यह सिक्ख गुरुओं के जीवन से संबन्धित कृति है । सांप्रदायिक संघर्ष तथा कवि की राष्ट्रवादी प्रवृत्ति इसके मूल प्रेरक हैं । इसमें 12 सिख गुरुओं का जीवन वर्णित है, जिनमें गुरु तेगबहादुर , गोविन्द सिंह आदि प्रमुख हैं । यहाँ कवि की सर्वधर्म समन्वय की भावना और मानवतावादी दर्शन स्पष्ट हुआ है ।

1.5.2.1.6. काबा और कर्बला (सन् 1942)

यह मुस्लिम इतिहास से संबन्धित रचना है । इसमें काबा और कर्बला नामक दो काव्य संकलित है । यहाँ मुख्यतः हिन्दू-मुस्लिम-एकता की स्थापना का प्रयास हुआ है । दोनों संस्कृतियों के धार्मिक आधार को तत्वतः एक सिद्ध करके कवि कहते हैं कि सारा संसार ईश्वर का परिवार है और हमें सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए । काबा के अंतर्गत इस्लाम के महान मुहम्मद साहब के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन हुआ है । इस्लाम धर्म के समन्वयात्मक तत्वों का भी यहाँ प्रतिपादन हुआ है । कर्बला के अंतर्गत स्वधर्म निष्ठा केलिए अपनी तथा परिजनों की आहुति देनेवाले इमाम हुसैन का चित्रण हुआ है । यहाँ हिन्दू एवं मुसलमानों की त्याग भावना का चित्रण करके धर्म-समन्वय की ओर कवि प्रकाश डालते हैं ।

1.5.2.1.7. अर्जन और विसर्जन (सन् 1942)

ईसाई इतिहास से संबन्धित इस रचना में भी दो आख्यानक निबन्ध संगृहीत हैं । अर्जन में सातवीं शताब्दी के सिरिया के इतिहास से संबन्धित एक घटना को काव्य रूप दिया गया है । इसमें कवि प्रेम और कर्तव्य के बीच

गहरा द्वन्द्व दिखाने का प्रयास करते हैं । इसकी कथा सिरिया पर अरबों के आक्रमण से संबन्धित है ।

विसर्जन में अरबों के आघातों को निष्फल करके जब आफ्रिका के भूर लोग विजयोत्सव मनाते हैं तो उनकी रानी काहिना उन्हें उद्बोधन देती हैं - "जीते जी परतंत्र रहें जो मरकर पावेंगे क्या मुक्ति" ? यहाँ स्वतंत्रता की गरिमा की अभिव्यक्ति , काहिना के शब्दों में व्यक्त है । स्वतंत्रता केलिए बड़े त्याग और श्रेष्ठ बलिदान की आवश्यकता है , यही प्रस्तुत रचना का सामयिक संदेश है ।

1.5.2.1.8. विष्णुप्रिया [सन् 1957]

यह मध्यकालीन भारतीय इतिहास से संबन्धित काव्य है । यह कृति चैतन्य महाप्रभु एवं उनकी पत्नी विष्णुप्रिया का चरित्र व्यक्त करनेवाली है । विष्णुप्रिया का चित्रण यहाँ उर्मिला एवं यशोधरा की अनुगामिनी के रूप में हुआ है । विष्णुप्रिया कर्तव्य भावना का समर्थ प्रतिरूप बन गयी है । जीवन भर में वियोग का अनुभव करती हुई वह करुणा की मूर्ति बन जाती है । कवि की नारी भावना का चरमोत्कर्ष "विष्णुप्रिया" में मिलता है ।

1.5.2.1.9. रत्नावली [सन् 1960]

यह भी मध्यकालीन इतिहास से संबन्धित एवं "विष्णुप्रिया" की कोटि में आनेवाली कृति है । इसमें तुलसीदास को राम-भक्ति की ओर उन्मुख करने वाली रत्नावली का चरित्र उतारा गया है । यह भी उपेक्षिता के प्रति कवि की श्रद्धांजलि है । रत्नावली के मार्मिक वचनों ने तुलसी को विरक्त बना दिया । आगे अपनी करनी पर पछताने वाली एवं दुःख का अनुभव करने वाली रत्नावली का अनुभव ही काव्य का विषय है । रत्नावली का विरह-वर्णन ही प्रस्तुत काव्य का आकर्षण है ।

1.5.2.1.10. कुणालगीत (सन् 1941)

यह बुद्धकालीन संस्कृति के उच्चादर्शों को प्रस्तुत करनेवाला गीतिकाव्य है। बौद्ध धर्म के नायक, सम्राट अशोक के पुत्र कुणाल को अपनी सौतेली माँ की कामासक्ति जन्य क्रूरता का शिकार होना पडता है। कुणाल को अंध बनाकर निष्कासित कर दिया जाता है। वह पत्नी के साथ भिक्षाटन के लिए निकलता है। चलते-चलते वह पाटलीपुत्र भी पहुँचता है। पिता-पुत्र-मिलन भी आकस्मिक रूप में होता है। अशोक के पुण्य से कुणाल को दृष्टिलाभ होता है और वह विमाता के अपराध को क्षमा कर देता है। इसमें कुणाल के भावपूर्ण गीतों का सुन्दर चित्रण हुआ है। करुणा, अहिंसा, उदारता आदि मानवतावादी तत्वों का पालन करते हुए कुणाल अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाता है।

1.5.2.2. वळ्ळत्तोळ् की ऐतिहासिक रचनाएँ

वळ्ळत्तोळ् की, इतिहास से संबन्धित रचनाओं का कोई संकलन अलग से प्रकाशित नहीं है। उनकी साहित्य मंजरी के विभिन्न भागों में, ये रचनाएँ बिखरी पडी हैं। उनका जिक्र क्रमानुसार यहाँ किया जा रहा है।

1.5.2.2.1. भारत स्त्रीकळ् तन् भावशुद्धि (भारतीय स्त्रियों की भावशुद्धि) (सन् 1924)

यह साहित्य मंजरी के चतुर्थ भाग की ग्यारहवीं कविता है, जो मुस्लिम इतिहास पर आधारित है। यहाँ मुगल बादशाह हुमायूँ का किसी भारतीय नारी से क्षमा माँगने की कथा को आधार बनाया गया है। साथ ही साथ भारतीय नारियों के सतीत्व का गुण-गान भी हुआ है।

1.5.2.2.2. जातकं तिरुत्ति (जन्म कुण्डली में सुधार)

यह चतुर्थ भाग की बारहवीं कविता है, जो कुरान पर आधारित है।

धर्म प्रचार की वेला में उम्मर नामक एक आदमी मुहम्मद नबि की हत्या करने को तैयार हो जाता है । लेकिन उसके ही बहिन के घर से कुरान का पारायण सुनकर वह अपनी बहिन को इससे रोकने का प्रयास करता है । उस समय उम्मर के तलवार से उसकी बहन फात्तिमा घायल हो जाती है । इस घटना से उम्मर का मन बदल जाता है । आगे वह मुहम्मद का प्रिय शिष्य बन जाता है । वही "उम्मर खलीफ" है ।

1.5.2.2.3. "नां स्वातंत्र्यमडयावु" {हम स्वतंत्र बनें} {सन् 1925}

यह साहित्य मंजरी के पंचम भाग की पहली कविता है । यह बुद्ध-चरित पर आधारित रचना है । यहाँ कवि बौद्ध-धर्म के श्रेष्ठ तत्वों का उद्घाटन करते हुए उनका पालन अपने जीवन में ही करने का उद्बोधन देते हैं । यहाँ सत्य एवं अहिंसा पर विशेष बल दिया गया है । यहाँ बुद्ध देव के बाल्यावस्था से लेकर अंत तक की कथा का संक्षिप्त वर्णन भी किया गया है ।

1.5.2.2.4. अल्लाह

यह पंचम भाग की चतुर्थ कविता है । एक बार, मुहम्मद नबी के, मक्का से मदीना की यात्रा-वेला में घटी एक घटना का चित्रण यहाँ हुआ है । यहाँ भी कुछ लोग उनकी हत्या करने का प्रयास करते हैं । लेकिन उनके चेहरे की दीप्ति देखकर वे ऐसा नहीं कर पाते हैं । यहाँ कवि नबि की एवं इस्लाम धर्म की महिमाओं का सम्यक चित्रण भी करते हैं ।

1.5.2.2.5. "काट्टेलियुडे कत्तु" {जंगली चूहे का पत्र}

यह पंचम भाग की दसवीं कविता है । मध्यकालीन-इतिहास से इसका संबन्ध है । यहाँ शिवजी जयसिंह को जो औरंगज़ेब के आदेशानुसार शिवजी के राज्य पर आक्रमण करने आया था उसे हिन्दुत्व का गौरव समझाते हुए वे मातृभूमि की रक्षा केलिए अपने को अर्पण करने का आदेश देते हैं । यहाँ कवि की हिन्दू जाति के प्रति श्रद्धा का स्पष्ट चित्र उभर आता है ।

1.5.2.2.6. "नरेन्द्रन्टे प्रार्थना" (नरेन्द्र का निवेदन)

यह पंचम भाग की सोलहवीं कविता है । यह स्वामी विवेकानन्द के बारे में लिखी गई कृति है । यहाँ विवेकानन्द जी की पारिवारिक स्थिति, उनकी गुरु भक्ति आदि पर प्रकाश डाला गया है ।

1.5.2.2.7. "मलयाळत्तिन्टे तला" (मलयालम का सिर) (सन् 1927)

यह साहित्य मंजरी के छठे भाग की तेरहवीं कविता है । प्रस्तुत कविता में श्री शंकराचार्य के जीवन से संबन्धित किसी घटना का वर्णन हुआ है । जब शंकराचार्य कैलास में वास करते थे तो एक कापालिक आकर, होम करने केलिए उनका सिर माँगता है । बिना कुछ पूछे शंकराचार्य उसे अनुमति देते हैं । लेकिन उनका एक शिष्य आकर गुरु की रक्षा करता है । यहाँ कवि भारतीय पौराणिक आदर्शों की ओर इशारा करते हुए निष्काम कर्म पर बल देते हैं ।

1.5.2.2.8. गुरुदक्षिणा (सन् 1930)

यह साहित्य मंजरी के सातवें भाग की सातवीं कविता है । यह भी मध्यकालीन इतिहास से संबन्धित है । महाराष्ट्र के उद्धारक शिवजी महाराष्ट्र से मुसलमानों को भगाकर अपने गुरु रामदास स्वामि के पास जाकर उन्हें विजय का समाचार देते हैं । आगे संतुष्ट होकर गुरु, शिष्य को अपना राज सौंपते हैं । यहाँ कवि देश-भक्ति एवं कर्मण्यता की स्थापना करने का प्रयास करते हैं ।

1.5.2.2.9. मग्‌दलन मरियम् ( मगदल की मरियम) (सन् 1921)

यह वळ्ळत्तोळ् की काव्य-साधना की कीर्ति-पताका है । बाइबिल के सातवें अध्याय में 36 से 50 तक के लूकोस के वाक्यों में मरियम का उल्लेख हुआ है । इसका अंग्रेज़ी अनुवाद सन् 1952 में "मेरिडियन बुक लिमिटिड" द्वारा हुआ । इसकी कथा बाइबिल पर आधारित है । लेकिन कवि ने अपनी मौलिक उद्‌भावनाओं का प्रयोग करके काव्य को सामयिक बना दिया है ।

काव्य का विस्तृत अध्ययन तीसरे अध्याय में हो रहा है । इसमें भक्ति एवं रति भावों का संकलित रूप विद्यमान है । कवि ने राधा-माधवम की भक्ति से ओत-प्रोत होकर ही काव्य रचना की है ।

इसके अलावा "तुंचत्तेषुत्तच्छन्" "मणल्काट्टु" {रेतीली हवा} आदि भी इस कोटि की कविताएँ हैं । पहले में मलयाळम् के मध्यकालीन भक्त कवि और आधुनिक काव्य साहित्य के अग्रदूत एषुत्तच्छन् का अनुस्मरण किया गया है। दूसरे में चीनी यात्री हुएनसाँङ, का भारत आगमन में घटित एक घटना का चित्रण हुआ है ।

1.5.3. समसामयिक रचनाएँ

पौराणिक , ऐतिहासिक रचनाओं की अधिकता होते हुए भी गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् ने अनेक गंभीर सामयिक एवं प्रासंगिक रचनाओं को भी जन्म दिया है । उनकी समसामयिक रचनाओं को उद्बोधनात्मक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और फुटकल इन चार भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

1.5.3.1. गुप्तजी के उद्बोधनात्मक काव्य

1.5.3.1.1. "भारत-भारती" {सन् 1904}

यह गुप्तजी के सबसे प्रसिद्ध राष्ट्रीय उद्बोधनात्मक काव्य है । यह तीन खण्डों में विभक्त है । अतीत खण्ड में अतीत का गौरव-गान हुआ है । वर्तमान खण्ड में भारत-वासियों की तत्कालीन हीनावस्था का चित्रण एवं भविष्यत् खण्ड में राष्ट्र का नवनिर्माण एवं उज्ज्वल भविष्य की आशा का चित्रण हुआ है। इस काव्य का विस्तृत विश्लेषण आगे के अध्यायों में प्रसंगानुसार हो रहा है ।

1.5.3.1.2. हिन्दू {सन् 1924}

इसमें भारतीय हिन्दुओं की सामयिक अवनति पर क्षुब्ध कवि उनकी उन्नति के विविध संदेश एवं प्रेरणा देते हैं । इसमें तत्कालीन समाज की मुख्य समस्याओं का रंगीन चित्रण हुआ है । अतीत का गौरव गान इस काव्य की भी मुख्य विशेषता है । यहाँ कवि भारतीय संस्कृति को श्रेष्ठतम संस्कृति मानते हैं ।

इसमें नारी सुधार की आवश्यकता पर ः प्रकाश डाला गया है । कवि के अनुसार भारत का सुधार हिन्दू जाति के उद्धार से ही हो सकता है ।

5.3.1.3. वैतालिक {सन् 1916}

यहाँ कवि चिर-निद्रा में पडी हिन्दू जनता को जगाने का प्रयास करते हैं। कवि जानते हैं कि प्राचीनता का चित्रण करने से ही जनता जाग उठेगी । इसलिए यहाँ भी वे अतीत का गौरव-गान करके जनता को उद्बोधन देने का प्रयास करते हैं ।

5.3.2. गुप्तजी के राजनैतिक काव्य-"किसान" - {1916}

इसमें भारतीय किसानों की दारुण दशा का वर्णन हुआ है । यहाँ मानवता पर बल देकर गाँधीवादी कवि , शोषितों एवं दलितों के बीच ईश्वर को देखने की युगीन प्रवृत्ति करते हैं । काव्य आठ खण्डों में विभक्त है । इसमें पुलीस महाजन एवं ज़मीनदार से पीडित किसान का चित्रोपम चित्रण हुआ है । प्रस्तुत काव्य में कवि किसानों की दुर्दशा कुली-प्रथा आदि के साथ महायुद्ध में भारतीय सैनिकों की वीरता का प्रदर्शन तथा आत्म-बलिदान की ओर प्रकाश डालते हैं ।

5.3.2.1. स्वदेश संगीत {1925}

यह गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना का सशक्त काव्य है । इसमें भी अतीत का गौरवपूर्ण वर्णन हुआ है । यहाँ प्राचीनता एवं नवीनता का मणिकांचन योग हुआ है । राष्ट्रीय चेतना की भावना सत्याग्रह , आफ्रिका प्रवासी भारतवासी , स्वराज्य की अभिलाषा , गाँधीगीत आदि में उभर आयी है । मातृभूमि प्रेम, समाज सुधार , साम्प्रदायिक ऐक्य आदि भी इस गीति काव्य की विशेषताएँ हैं ।

5.3.2.2. अजित {1946}

यह आत्मकथात्मक शैली में रचा गया खण्डकाव्य है । इसकी मूल चेतना

राजनैतिक है । अजित ही वह युवक है जो गाँव के ज़मीनदार द्वारा बिना कसूर के जेल भिजवाया जाता है । सरल-स्वभाव वाला अजित यहाँ आतंकवादी बन जाता है और मातृभूमि को स्वतंत्र बनाने का स्वप्न देखता है । वह क्रांति दल का सदस्य बन जाता है फिर उसे छोडकर मानवतावादी मूल्यों को अपनाता है । गाँधीजी के प्रभाव में आकर वह सत्याग्रही बन जाता है । विभिन्न राजनैतिक उलझनों , हिन्दू-मुस्लिम फूट आदि का इसमें चित्रण हुआ है । कवि का समाज-विषयक आदर्श भी यहाँ व्यक्त हुआ है ।

1.5.3.2.3. राजा-प्रजा (1956)

यह राजनैतिक विचारों को प्रस्तुत करनेवाली एक प्रमुख कृति है । दो खण्डों में विभक्त प्रस्तुत काव्य के पहले खण्ड में प्रजातंत्र के समर्थकों को चेतावनी देते हुए राजतंत्र का समर्थन किया गया है । दूसरे खण्ड में प्रजा का राजा के प्रति असंतोष तथा उनके लोकतंत्र प्रधान विचारों का स्पष्टीकरण हुआ है । यहाँ मानव मात्र की श्रेष्ठता का समर्थन किया गया है । कवि सब को कर्म-निरत रहने की सलाह देते हैं । प्रजातंत्र एवं राजतंत्र के गुण-दोषों का उद्घाटन करके कवि राजनीति को नैतिक आधार प्रदान करने का प्रयास करते हैं

1.5.3.3. गुप्तजी के सांस्कृतिक काव्य

1.5.3.3.1. विश्व वेदना (सन् 1942)

इसमें महायुद्ध से प्रेरित गुप्तजी की शोकपूर्ण मानसिक स्थिति की कारुणिक पुकार सुनाई गई है । युद्ध की विभिन्न विभीषिकाओं एवं दुष्परिण का सम्यक चित्रण यहाँ हुआ है । कवि के युद्ध विरोध एवं सार्वलौकिक प्रेम के तत्वों की पूर्ण झलक मिलती है ।

1.5.3.4. वळ्ळत्तोळ् की समसामयिक रचनाएँ

वळ्ळत्तोळ् की समसामयिक रचनाओं का भंडार है साहित्य मंजरी । ग्या

भागों में रचित इसकी कविताओं का वैविध्य देखते ही बनता है । साहित्य-मंजरी का अध्ययन आगे हो रहा है । उनके अलावा विषुक्कणि , कोच्चुसीता, आदि काव्य भी इस कोटि में रखे जा सकते हैं ।

1.5.3.4.1. साहित्य मंजरी {ग्यारह भाग}

साहित्य मंजरी के प्रकाशन की शुरूआत वळ्ळत्तोळ् के काव्य जीवन की नई उषा की सूचना थी । अपनी सृजन कला की नई रूप-विधा के संबन्ध में कवि ने एक भाषण में कहा -"अब वळ्ळत्तोळ् काव्यधारा के संबन्ध में सब लोग कहते हैं , किन्तु वह एक नई काव्यधारा नहीं , पुरानी ही है ।....ऐसा एक समय था जब कि लोग समझते थे कि अलंकार काव्य का एक अनिवार्य अंग है । अब वह ज़माना नहीं रहा ।.....इसलिए मैं ऋषियों का अनुसरण करना चाहता हूँ ।[1] साहित्य मंजरी के ग्यारह भागों में यह बात व्यक्त होती है । साहित्य मंजरी के विभिन्न भागों का प्रकाशन विभिन्न समयों पर हुआ है

पहले भाग का प्रकाशन सन् 1916 में हुआ था । दूसरा सन् 1918 में , तीसरा सन् 1922 में , चौथा सन् 1924 में , पाँचवाँ सन् 1925 में , छठा सन् 1926 में , सातवाँ सन् 1930 में , आठवाँ सन् 1950 में , नवाँ सन् 1959 में , दसवाँ सन् 1964 में और ग्यारहवाँ भाग सन् 1970 में प्रकाशित हुआ ।

वळ्ळत्तोळ् के काव्य का वैविध्य साहित्य मंजरी के ग्यारह भागों में पूर्ण रूप से दर्शनीय है । इनमें , उद्बोधनात्मक , सांस्कृतिक , सामाजिक , राजनैतिक , ऐतिहासिक आत्मपरक , राष्ट्रीय , प्रकृति-चित्रण संबन्धी आदि अनेक प्रकार की रचनाएँ हैं । कुल मिलकर साहित्य मंजरी में 175 कविताएँ हैं । पहले भाग में 14 , दूसरे में 12, तीसरे में 14, चौथे में 13, पाँचवें में 17, छठे में 15, सातवें में 19, आठवें में 12, नवें भाग में 17, दसवें में 17 और ग्यारहवें भाग में 25 कविताएँ संगृहीत हैं ।

साहित्य मंजरी की मुख्य कविताओं का वर्गीकरण के साथ परिचय यहाँ

1. "गुरुनाथन्"-"एटवम्" अंक-1926

दिया जा रहा है । पौराणिक एवं ऐतिहासिक रचनाओं का परिचय पहले हो चुका है । यहाँ उद्बोधनात्मक , राजनैतिक , सामाजिक , सांस्कृतिक , राष्ट्रीय एवं गाँधीजी से संबन्धित रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है , जिन्हें समसामयिक विषयों के अंतर्गत रखा जा सकता है । इन कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन आगे के अध्यायों में प्रसंगानुसार हो रहा है ।

1.5.3.4.1.1. उद्बोधनात्मक काव्य

साहित्य मंजरी पंचम भाग की आठवीं कविता "पोरा पोरा " §और भी और भी§ चौदहवीं कविता "ऐक्यमे सेव्यात् सेव्यम्" §एकता का महत्व § एवं सत्रहवीं कविता "परस्परं सहायिप्पिन्" §आपस में सहायता करो § पोरा,पोरा में कवि भारत की तिरंगे झंडे का गौरव-गान करके , उसे और भी ऊँचाई में उडाने की आशा करते हुए जनता को उद्बोधन देते हैं ।

"ऐक्यमे सेव्यात् सेव्यम्" और "परस्परं सहायिप्पिन्" दोनों में कवि भारत की जनता को अद्वैव भूमि की मानते हुए , आपस में प्रेम एवं एकता का व्यवहार करके , भारत माता की स्वतंत्रता केलिए निस्वार्थ रूप से काम करने का आह्वान देते हैं ।

"दिवास्वप्न" नामक पद्य संकलन की "चोर तिळयुक्कणम्" §खून उबले§ वळ्ळत्तोळ् की श्रेष्ठ उद्बोधनात्म कविता है । यह केरलीयों के प्रति उद्बोधन है कि भारत का नाम सुनने पर प्रत्येक व्यक्ति का हृदय पुलकित हो उठे और केरल का नाम सुनने पर उसका रक्त उबल पड़े ।

1.5.3.4.1.2. राजनैतिक

साहित्य मंजरी पहले भाग की तेरहवीं कविता "दादाबाई नवरोजी" एक राजनैतिक कविता है । इसमें कवि भारत के आदर्श पुत्र एवं कर्मनिरत , निस्वार्थ, नवरोजी की भारत की स्वतंत्रता केलिए काम करते समय हुई , कारुणिक हत्या का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं । यहाँ कवि का मानवतावा दृष्टिकोण स्पष्ट होता है ।

तृतीय भाग की चौथी कविता "कारक्कण्ड कर्षकन्" {बादलों को देखा - कृषक} छठे भाग की दसवीं कविता "कर्षक जीवितम्" {कृषक जीवन} सातवें भाग का पन्द्रहवाँ पद्य "कृषिक्कारुडे पाट्टु" {कृषकों का गीत} इन तीनों में कवि भारतीय कृषक जीवन का जीता-जागता वर्णन करते हैं । दलित कृषकों एवं गरीब मज़दूरों की दीनता का चित्रण करने के साथ-साथ कवि पूंजीपतियों का विरोध भी करते हैं, जो दलितों को सदैव सदा-कर रखते हैं । इस प्रकार भारत माता की असली संतानों का चित्रण करके कवि अपने देश-प्रेम का भी परिचय देते हैं ।

आठवें भाग की पाँचवीं कृति "एन्टे प्रयाग-स्नानम्" {मेरा प्रयाग स्नान} में कवि सन् 1928 के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के बारे में कहते हैं, जहाँ अधिवेशन में भाग लेने केलिए, पहली बार हज़ारों की तादाद में भारतीय कृषक जन इकट्ठे हुए थे । ऐसी स्थिति को देखकर कवि को लगा कि वे असली प्रयाग में अब ही स्नान कर रहे हैं । यहाँ कवि की मानवतावादी लेखनी का कमाल देखा जा सकता है ।

"अत्याहितम्" {अत्याहित} साहित्य मंजरी के तृतीय भाग का सातवाँ काव्य है । इसमें कवि भारत के वीर पुत्र बालगंगाधर तिलक के निधन का वर्णन करते हैं । कवि आत्मपीडा से कहते हैं कि रोने से अक्सर मन ज़रा शांत हो जाता है, लेकिन यहाँ रोकर भी कोई शांति नहीं मिलती । यह देश-भक्त कवि की आत्मा के शब्दों का काव्य है ।

"शिप्पायि लहळा" {सन् 1857 की गदर} नवें भाग की आठवीं कविता है । इसमें कवि सन् 1857 की गदर की चर्चा करते हुए भारत-वासियों की शक्ति एवं तत्कालीन एकता का परिचय देते हैं । इससे कवि का तात्पर्य शायद उद्बोधन ही है ।

"ओन्नामत्ते मतम्" {प्रथम् धर्म} दसवाँ भाग की नवाँ काव्य है ।

इसमें श्रद्धानन्द स्वामी की हत्या का कारुणिक वर्णन किया गया है । जाति के नाम पर किसी ने स्वामीजी को गोली मारी । यहाँ कवि भारतीयों के अनैक्य की चर्चा करके एकता की अनिवार्यता पर बल देते हैं । यहाँ भी कवि पूर्ण रूप से मानवतावादी बन गए हैं ।

5.3.4.1.3. सामाजिक काव्य

साहित्य मंजरी के दूसरे भाग की "उण्णानिल्ला उडुप्पानिल्ला" (खाने को नहीं पीने को नहीं) और दसवीं "पट्टिल पोतिन्ज तीक्कोळ्ळी" (रेशम में ढका अंगारा" कविताओं में समाज का चित्रण हुआ है । पहले में भारतीय दरिद्रता का असली चित्रण किया गया है । यह भारत के प्रगतिवाद और रूस की क्रान्ति के पहले लिखी गई एक प्रगतिवादी रचना है । दूसरी कविता में एक उन्नत कुलजाता युवती के अभिसरण की कथा कहकर समाज को सचेत करते हैं और इसमें राजा का कर्तव्यपालन भी समझाया गया है ।

"ओरत्तोणि यात्रा" (एक नौका यात्रा" तृतीय भाग की दूसरी कविता है । यहाँ कवि अपनी नौका यात्रा में घटी एक घटना का उत्तम चित्र प्रस्तुत करते हुए समकालीन समाज की जाति-पाँति की विभिन्नता की ओर प्रश्न-चिह्न लगाते हैं । यहाँ मानवतावादी कवि सबको एक ही वर्ण के अंतर्गत मानते हैं, जो मानव का वर्ण है ।

"माप्पु" (माफी) पंचम भाग की पन्द्रहवीं कविता है । इसमें भी भारत की दरिद्रता का यथार्थवादी चित्रण किया गया है । एक गरीब मज़दूर भूख के कारण, प्लाटफर्म पर पड़कर तड़प-तड़प कर मर जाता है । यहाँ कवि कहते हैं- मरना तो स्वाभाविक है, लेकिन इस प्रकार भूखों मरना तो भारत में ही होता है । यह कवि की एक श्रेष्ठ कविता मानी जाती है ।

छठे भाग की नवीं रचना है "शुद्धरिल् शुद्धन् " (विशुद्धों में शुद्ध) ।

यहाँ कवि समाज को अवनति के गर्तों में डुबोनेवाली कुप्रथा छुआछूत आदि पर घोर व्यंग्य करते हैं। यहाँ एक नायर प्रमुख, अपने घर को जलते देखकर भी अछूतों से अपने कुए से पानी भरकर अपने घर की रक्षा करने नहीं देता। यहाँ वह मूर्ख अपनी जाति को सबसे बढ़कर मानता है।

सातवें भाग की तीसरी कविता है "एन्टे कोच्चु मकळ्" (मेरी नातिन)। यहाँ कवि वैधव्य की समस्या के बारे में बताते हुए भारतीय नारी की सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। इसी भाग के "हरे कृष्णा" में सति नामक सामाजिक समस्या का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत भाग की ग्यारहवीं कविता "पैशाचयज्ञम्" में कवि केरल के मंदिरों में होनेवाली पशुबलि का विरोध करते हैं। यहाँ कवि की अहिंसा वादी एवं मानवतावादी भावना उभर आयी है।

"जाति-प्रभावम्" नामक तेरहवीं कविता जाति-व्यवस्था के दुष्परिणामों का विश्लेषण करने वाली रचना है। यहाँ एक धनी और उन्नत कुलीन युवती अपने प्रेमी के साथ, जो गरीब एवं नीच जाति का है, भाग निकलती है। आगे उसका पति रोग-ग्रस्त होता है और वह भीख माँगने लगती है। एक दिन जब वह अपने ही घर पहुँचती है, तो उसके भाई, जाति के नाम पर उसे भगा देता है। यहाँ कवि हिन्दु-जाति की आंतरिक अनीतियों पर प्रकाश डालते हैं। "नित्य कन्यका" आठवें भाग की छठी कविता है। यहाँ कवि एक गरीब कृषक परिवार का चित्रण करके, अहिंसा तत्व पर बल देते हैं। आमिष भोजन का भी यहाँ विरोध किया गया है। नवें भाग की तेरहवीं रचना "विवाह मोचनम्" (तलाक) में कवि अनमेल विवाह की समस्या पर प्रकाश डालते हैं। मुस्लिम समाज में अब भी होनेवाली एक कुप्रथा - स्त्री को धन देकर विवाह करने की प्रथा, पर व्यंग्य किया गया है। यहाँ कवि साबित करना चाहते हैं कि मानवमूल्यों का निर्णय धन से नहीं किया जा सकता है।

1.5.3.4.1.3.1. "कोच्चु सीता" (छोटी सीता) सन् 1921

कोच्चुसीता खण्ड काव्य, कवि का कीर्ति स्तंभ है। इसकी शैली, कथा आदि सामयिक हैं। नायिका चंपकवल्ली है जो एक देवदासी कुल में जन्म

लेती है । बचपन में ही रामायण पढ़ते-पढ़ते वह सीता के समान आदर्श नारी बनने की अदम्य अभिलाषा दिखाती है । लेकिन उसकी नानी उसे कुल-वृत्ति में ही अटल रखना चाहती है । एक दिन नानी एक धनी बूढ़े को उसके शयन-कक्ष में भेज देती है । वह बूढे से बचने केलिए , नानी के नाम पर एक पत्र लिख छोडती है और वहाँ से भाग निकलती है । आगे चलकर वह आत्महत्या कर लेती है । पत्र में अपनी करनी केलिए क्षमा माँगते हुए वह अगले जन्म में स्वतंत्र भारतीय नारी के रूप में पैदा होने की इच्छा प्रकट करती है । यहाँ कवि चंपकवल्ली का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए भारतीय परंपरा, तत्कालीन नारी की पीडित अवस्था , सामाजिक अनीतियाँ आदि समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए आनेवाले उज्ज्वल भविष्य पर प्रश्न-चिह्न लगाते हैं ।

1.5.3.4.1.3.2. "विषुक्कणि" (सन् 1944)

यह वळ्ळत्तोळ् की सन् 1925 से 1932 तक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित दस कविताओं का संग्रह है । इसमें संकलित अधिकांश रचनाएँ सामाजिक है । पहली कविता "विषुक्कणि" में केरल के एक प्रमुख त्योहार का वर्णन है , जो चैत्र के प्रथम् दिन में आता है । दूसरी रचना है "बहिष्कृतयाय अंतर्जनम्" (बहिष्कृत-ब्राह्मण स्त्री), घर से निकाली गयी एक ब्राह्मण स्त्री की दशा का वर्णन है । समाज के जटिल नियमों से , घर उसे एक बन्दी-गृह था । स्मार्त विचार से वह घर से निकाली जाती है तो स्वतंत्र होकर कताई द्वारा वह अपना जीवन निर्वाह करती है । यहाँ समाज सुधार ही कवि का ध्येय है । तीसरी कविता "पुलर्कालं· एप्पोषो " (सुबह कब होगी) में बिहार के मोनगिर किले के इतिहास पर विचार करते हुए सामाजिक अनैक्य पर प्रकाश डाला गया है । यहाँ कवि सोचते हैं कि हमारी स्वतंत्रता का प्रभात कब होगा । "गुरुनाथन्टे तूवल्" (गुरुजी की कलम) में वास्तविक शिक्षा के बारे में संकेत किया गया है । "पूर्ण विश्रम सुखम्" (पूर्ण-विश्राम सौख्य) , महाकवि कुमारनाशान की मृत्यु पर लिखा हुआ शोक गीत है । "स्त्रीकळ्" (स्त्रियाँ) में , स्त्रियों की सर्वोत्तम महिमा की गाथा गाई गयी है ।

यहाँ प्राचीन भारतीय स्त्रियों की श्रेष्ठता एवं गौरव की चर्चा करते हुए नारी सुधार की ओर भी प्रकाश डाला गया है । सातवीं कविता "नूल्पंपरम्" {तकली} में कल्की की महत्ता का वर्णन किया गया है । आठवीं कविता "प्रकृतियुडे-मनोराज्यम्" {प्रकृति की कल्पना} में सन्ध्या का सुन्दर वर्णन हुआ है । नवें पद्य "युव-विद्यार्थिकलोडु" {युव-विद्यार्थियों से } में कवि विद्यार्थियों को भविष्य के प्रति उपदेश देते हुए देश-प्रेम पर ज़ोर देते हैं । अंतिम कविता "पोट्टात्तः-पोन्कंपि" {अच्छिन्न स्वर्ण तंत्रि} में कवि स्वतंत्रता संग्राम में तल्लीन भारतवासियों से , अहिंसा, त्याग आदि शस्त्रों की ओर लक्ष्य करके कहते हैं कि वे अटूट स्वर्ण तंत्रियाँ हैं , जो वर्तमान के विज्ञान की प्रगति से छिन्न-भिन्न नहीं हो सकती । भाव है कि भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ एवं अनश्वर है ।

इस संग्रह की कविताओं का सामयिक महत्व अक्षुण्ण है । कुछ कविताएँ उपदेशात्मक होते हुए भी ज़्यादातर समाज सुधारक हैं ।

1.5.3.4.1.4. सांस्कृतिक

"पुराणङ्ङऴ्" {पुराण} "साहित्य मंजरी" द्वितीय भाग की पाँचवीं रचना है । यहाँ कवि प्राचीन भारत एवं भारतवासियों की श्रेष्ठता का चित्रण करते हैं । प्राचीन ऋषि संसार के सारे रहस्य जाननेवाले थे । वे वीर, धीरे, मानवप्रेमी एवं उदार मनवाले थे । उनके समय में राजा और प्रजा अपना-अपना महत्व रखते थे और सत्य, नीति, धर्म और अहिंसा का पालन सब कहीं होता था। इस प्रकार कवि प्राचीन संस्कृति की एक झलक प्रस्तुत करने में सफल निकले हैं । तृतीय भाग की ग्यारहवीं कविता " वेडिकोंड पक्षी " {घायल पंछी} में कवि भारतीय संस्कृति का परम प्रधान तत्व अहिंसा का प्रतिपादन करते हैं । एक शिकारी की गोली से एक पंछी मारा जाता है । कवि की राय में , एक परिवार उस अत्याचारी शिकारी की हिंसा से तहस-नहस हो गया है । यहाँ भी कवि की मानवता स्पष्ट रूप में झलकती है । "स्वागत" नामक नवें भाग की चौदहवीं कविता में भी कवि अहिंसा तत्व की स्थापना करने की कोशिश करते हैं । यहाँ

कवि पूर्वजों का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं कि हिंसा विश्व का विनाशकारी तत्व है । यहाँ गाँधीवादी कवि हिंसक वृत्तियों से मातृभूमि की रक्षा करने का आह्वान भी देते हैं ।

1.5.3.4.1.5. राष्ट्रीय

"एन्टे कृतघ्नता" {मेरी कृतघ्नता} तृतीय भाग का नवाँ पद्य है । यह कवि का अपना पछतावा है कि वे स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप में भाग नहीं ले सके । अतः वे अपने को कृतघ्न मानते हैं । भारत के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों का भी यहाँ चित्रण हुआ है ।

"निङ्ङळुटे पोक्कु विपरीतमाकोला" {तुम्हारी यात्रा विफल न हो} चतुर्थ भाग की नवीं रचना है । इसमें स्वराज्य संघ की तत्कालीन परिपाटियों की चर्चा की गयी है । यहाँ कवि का राष्ट्र-प्रेम और प्राचीनता के प्रति श्रद्धा दोनों का मिलन हो गया है ।

पंचम भाग का ग्यारहवाँ पद्य "अमान्तं अमान्तम्" {देरी-देरी} में कवि चे नी देते हैं कि स्वतंत्रता देवी के नूपुर की मधुर ध्वनि के सुनते-सुनते आलसी रहना उचित नहीं । उल्टे आलस्य त्याग कर कर्म निरत होना चाहिए । कवि की स्वतंत्रता-कामना का यह सुन्दर परिचायक है ।

छठे भाग की पंचम कविता है "वैशम्यं पोरुं पोरम्" {दुःखी न होइए} । यह एक प्रतीकात्मक कविता है । इसके रचना काल {1923} में कांग्रेस के लोगों में मतैक्य नहीं था । उसे लक्ष्य करके कहा गया है कि इससे दुःखी होने की आवश्यकता नहीं कांग्रेस अपना कर्तव्य निभाएगा ही ।

" नम्मुडे मरुपडि" {अपना उत्तर} सातवें भाग की दूसरी कविता है । भारत की स्वतंत्रता के परिश्रम में अनेक कमियाँ हैं - ऐसे कहने वालों को कवि का जवाब है, नम्मुडे मरुपडि । यहाँ कहा गया है कि जाति एवं उच्च नीचता के भेद-भावों को भूलकर एकता से निस्वार्थ काम करने से स्वतंत्रता मिल सकती है ।

स्वतंत्रता केलिए एकता एवं प्रेम की अनिवार्यता है , यही कवि का मत है ।

"खादि वसनङ्. ड. ळ् कैक्कोळ्ळुविनेवरम्" §सब खादी पहनें § इसी भाग की आठवीं रचना है । इसमें बुनाई में प्राचीन भारत की महिमा एवं वर्तमान समय में उसकी दुर्गति समझाते हुए खादी पहनकर एकता की रक्षा करने का आह्वान दिया गया है।

"ओरु किषवन पेराल्" § एक बूढा बरगद§ भी इसी भाग की कविता है । कलकत्ता के निकट एक पुराने बरगत-पेड की आयु 160 वर्ष जानकर कवि भारत की परतंत्रता की भी करीब उतनी ही आयु समझकर "एक बूढ़ा बरगद" में उसे संबोधित करते हुए पूछते हैं कि अभी इस परतंत्रता की आयु कितनी शेष है ? कवि के देश-प्रेम का यह कविता उत्तम निदर्शन है ।

"इतिले इतिले " §इस रास्ते से § नवें भाग की तीसरी कविता है । इसमें कवि स्वतंत्रता देवी का स्वागत-गान गाते हैं । भारत-माता की रक्षा करने केलिए , उनके पुत्रों को उद्बोधन भी दिया जा रहा है । यह कवि की मातृभूमि से प्रेम का द्योतक है ।

साहित्य मंजरी के 9, 10, एवं 11 वें भागों की कविताओं में कवि की राष्ट्रीय भावना अंतर्राष्ट्रीयता की ओर बढती हुई दिखाई पडती है ।

"पिन्मारुविन्" §पीछे हटो§ , "कन्नालिकळल्ला" §मवेशियाँ नहीं § नवें भाग की इन कविताओं में कवि की दृष्टि , अंतर्राष्ट्रीयता के प्रति उन्मुख है । पाँचवीं कविता "पीछे हटो" सूयस पर साम्राज्यवादियों के आक्रमण पर लिखी गयी है । यहाँ कवि की युद्ध-विरोधी-नीति , विश्व-राज्य की कल्पना उभर आयी है ।

पन्द्रहवीं कविता "कन्नालिकळल्ला" में कहा गया है कि युद्ध में पराजित जर्मनी को साम्राज्यवादी, शिकार में मिले हुए पशु के समान , आपस में बाँटने का प्रयास करते हैं । इस पर कवि कहते हैं कि वहाँ के निवासी मवेशियाँ नहीं है । कवि की अंतर्राष्ट्रीयता यहाँ भी व्यक्त होती है ।

"करुप्पुं" वेळुप्पुम्" ‡काला और गोरा ‡ दसवें भाग का ग्यारहवाँ पद्य है । यहाँ अलजीरियन स्वतंत्रता संग्राम की चर्चा की गई है । मानव रंग एवं जाति के नाम पर आपस में लड मरते हैं , लेकिन ईश्वर के सम्मुख काले और गोरे का कोई अंतर नहीं हो सकता है । यहाँ कवि सभी चराचरों पर ईश्वर की कृपा का विश्वास करते हैं ।

"कर्मभूमियुडे कैकळ्" ‡ कर्मभूमि के हाथ‡ ग्यारहवें भाग की सोलहवीं कविता है । इसमें कवि कहते हैं कि भारत स्वतंत्र हो गया है , पर इस स्वतंत्रता का फल दूसरे राज्यों की भलाई केलिए काम में लाने की ज़रूरत है । यहाँ कवि का सच्चा राष्ट्र एवं अंतारार्ष्ट्र प्रेम स्पष्ट हुआ है । यही भारतीय राष्ट्रीयता, एवं गाँधी-राष्ट्रीयता का मूल तत्व है । "एष्रुवयस्स्" ‡सात वर्ष‡ नामक इसी भाग की बीसवीं कविता में भी कवि उपर्युक्त बात का ही समर्थन करते हैं ।

"पूछो" ‡चोदिक्कुविन्‡ "एक लोक" आदि इसी भाग की कविताओं में कवि अंतर्राष्ट्रीयता की ओर प्रकाश डालते हैं । "चोदिक्कुविन्" में कवि युद्ध विरोध करके विश्वशांति की आशा करते हैं तो "एक लोक" में विश्वराज्य की कल्पना करके , मानवतावाद की स्थापना करने का प्रयास करते हैं ।

1.5.3.4.1.6. <u>गाँधीजी से संबन्धित</u>

"एन्टे गुरुनाथन्" ‡मेरे गुरु‡ साहित्य मंजरी चतुर्थ भाग की तेरहवीं और आखिरी कविता है । इसमें कवि पूज्य बापूजी को अपना गुरु घोषित करते हुए उनके अनुपम महत्व का वर्णन करते हैं । यह कवि के जीवन के अटल निदर्शन हैं । पंचम भाग की तीसरी कविता " चक्रगाथा" में कवि चर्खे की महि गाते हुए खादी प्रचार की ओर संकेत करते हैं और उसे "त्यागी महात्मा" के द्वारा प्रकाशित "श्रीचक्र" भी कहते हैं । "पाप-मोचनं" छठे भाग की दूसरी कविता है । इसमें "वैक्कम्" के सत्याग्रह-काल में कवि को गाँधीजी के जो दर्श

हुए उसे "पापमोचन" का फल कहते हैं । यहाँ भी गाँधीवादी दर्शनों की सुन्दर झलक देखी जा सकती है । "कालं मारी" (समय बदल गया) सातवाँ भाग की उन्नीसवीं कविता है । इसमें शुक्रतारे को गाँधीजी का एवं अँधेरे को अंग्रेज़ों का प्रतीक मानते हुए कहा गया है कि समय का परिवर्तन हो गया है । शुक्र तारे की प्रभा पूरब में फूट निकली है, अतः अँधेरे को हटना ही होगा ।

दसवें भाग की चौदहवीं कविता "पादपांसु" (पैरों की धूल) में भी कवि गाँधीजी का गुण-गान करते हैं । गाँधीजी को लोक-नायक मानकर उनके आदर्शों का अनुकरण करने एवं कराने का प्रयास यहाँ किया जा रहा है । प्रस्तुत भाग की अगली कविता "मोट्टु सूचि" (आलपीन) में गाँधी जी की विलायती यात्रा में घटी एक घटना का वर्णन किया गया है । ग्यारहवीं भाग की "गाँधिजियुडे-तेजस्स्" (गाँधीजी का तेज) "गांधि जयन्ति" "जयिच्चुपोयि" (जीत गयी), "सहवासी का साहस", "नैवेद्यं"और "पोरुत्तरूळुका" (माफ कीजिए) में कवि गाँधीजी से संबन्धित विविध बातों का वर्णन करते हैं । सभी कविताओं में कवि गाँधी-दर्शन के प्रचार-प्रसार का ही काम करते हैं । ऐसे करते हुए भी कवि उनकी आदर्श कर्मपरिपाटियों का कहीं अनुकरण नहीं करते हैं । यहाँ कवि केवल सैद्धान्तिक पक्ष में रहकर, प्रायोगिक पक्ष की चर्चा करते हैं ।

### 1.5.4. गुप्तजी की अन्य कृतियाँ

#### 1.5.4.1. अंजली और अर्घ्य (सन् 1950)

गाँधीजी के निधन से उद्भूत कवि की मानसिक पीडा ही प्रस्तुत काव्य का मुख्य भाव है । आत्मग्लानि से भरा हुआ कवि का दुःख अंजली और अर्घ्य के रूप में बरस पडा । यहाँ गाँधीजी के गुणों एवं असंख्य उपकारों पर बल दिया गया है । श्रद्धांजली के रूप में गुप्तजी बापू को अपना तर्पण ही प्रदान करते हैं और विश्व-कल्याण केलिए गाँधीजी को प्रत्यावर्तन की आशा भी प्रकट करते हैं ।

#### 1.5.4.2. पृथ्वीपुत्र (सन् 1950)

दिवोदास, जयिनी पृथ्वीपुत्र - इन तीनों एक-दृश्यीय संवादों का

सम्मिलित रूप है "पृथ्वीपुत्र" । इन में दिवोदास पौराणिक , जयिनी ऐतिहासिक और पृथ्वीपुत्र काल्पनिक है । जयिनी में कवि समाज की दुर्दशाजन्य दासता को देखकर क्षुब्ध तथा लोक-कल्याण केलिए जीवन सुख तक को त्यागने वाले मार्क्स तथा पतिप्राणा जायिनी के दाम्पत्य का वर्णन करते हैं । जायिनी में कवि भारतीय आदर्श नारी की सहिष्णुता एवं उत्सर्ग भावना की झलक पाते हैं । "पृथ्वीपुत्र" माता भूमि और पृथ्वी पुत्र का संवाद है । यहाँ यांत्रिक सभ्यता में पला नर-पशु पृथ्वी पुत्र अपने को सुसंस्कृत सिद्ध करने की कोशिश करता है । वैज्ञानिक युग के कई विनाशकारी बातों से पीडित कवि की आत्मा का करुण क्रन्दन ही यहाँ सुनाया गया है । यहाँ कवि आधुनिक युग के विनाशकारी प्रश्नों को हल करने का सच्चा प्रयास करते हैं ।

1.5.4.3. भूमिभाग [सन् 1953]

यह सन्त विनोबाजी के भूदान यज्ञ से प्रभावित रचना है । यहाँ कवि भूमि के सम्यक् वितरण का समर्थन करते हैं । यहाँ गुप्तजी भूमिरहितों की कारुणिक अवस्था पर बल देते हुए भूमि पर सबके समान अधिकार की घोषणा करते हैं । यह कवि की एक मानवतावादी रचना है ।

1.5.4.4. झंकार [सन् 1929]

यह गुप्तजी के आध्यात्मिक गीतों का एकमात्र संग्रह है । गुप्तजी को अमूर्त से भी मूर्त ही प्रियतर है तभी वे कहते हैं "निर्गुणत् तो निखिल गुणों का निकला बास बसेरा " । यहाँ कवि नवीनता की ओर उन्मुख हैं । काव्य में उनकी नैतिकता के साथ साथ , साकारोपासना भी स्पष्ट होती है । कहीं वे जीव को विश्वमाया से आबद्ध समझते हैं और कहीं अध्यात्म को बुद्धि से परे मानते हैं । कृति आध्यात्मिक होते हुए भी अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी ।

1.5.4.5. मंगलघट [सन् 1937]

यह एक काव्य संकलन है । इसमें , कथात्मक कविताएँ , भाव प्रधान छंद, नीतिपरक गीत आदि है । कुल मिलकर 62 कविताएँ हैं , कई पहले प्रकाशित भी

हैं । पौराणिक, सामयिक , देशभक्ति परक आदि काव्य इसमें संकलित है । कवि का बहुपक्षीय विचारों का एक खजाना है "मंगलघट" ।

1.5.4.6. आस्वाद (सन् 1938)

यह भी विभिन्न समयों पर लिखी गई वैविध्यपूर्ण कविताओं का संग्रह है । इसमें आवेशपूर्ण राष्ट्रीय कविताएँ , भावुकता-युक्त मधुर काव्य और विभिन्न आध्यात्मिक कविताएँ संकलित हैं ।

1.5.4.7. उच्छ्वास (सन् 1960)

यह गुप्तजी के पुत्रों , भ्रातृजों तथा प्रिय व्यक्तियों के निधन पर लिखी गयी शोक गीतों का संकलन है । "नक्षत्र निपात्र" तथा "पुष्पांजलि" क्रमश सियाराम शरण जी के एक शिशु तथा किशोर बालक पुरुषोत्तम की मृत्यु पर लिखी गई है । "पुकार" , "सान्त्वना", आदि भी ऐसे अवसरों पर लिखी गई कविताएँ हैं ।

1.5.5. वळ्ळत्तोळ् की अन्य कविताएँ

1.5.5.1. किरात शतकम् (सन् 1891)

यह वळ्ळत्तोळ् की सर्वप्रथम रचना है । यह मणिप्रवाल भाषा में लिखा गया है । इसका आधार महाभारत का आरण्य पर्व है । इसमें कवि की बाल-प्रतिभा देखने योग्य है ।

1.5.5.2. व्यासावतारम् (सन् 1893)

प्रारंभकालीन रचना होने के कारण इसमें भी काव्य गुण कम है । फिर भी इसका सामयिक महत्त्व है ।

1.5.5.3. तल्लाप पूरम् (सन् 1895)

वेल्लानश्शेरि मुसत् एवं वळ्ळत्तोळ् के एक दिन का सरस संवाद जो पद्य में हुआ था , इसमें संकलित है ।

1.5.5.4. ऋतुविलासम् (सन् 1900)

इस वर्णनात्मक निबन्ध काव्य में कवि की कोमलकांत पदावली द्रष्टव्य है। नायिका को संबोधित करते हुए प्रत्येक ऋतु का वर्णन यहाँ किया गया है। यह मणिप्रवालम् में लिखी गयी कृति है, जो कालिदास के ऋतु-संहार का स्पष्ट प्रभाव दिखानेवाली है।

1.5.5.5. पंचतंत्रम् (सन् 1902)

यह भी एक मणिप्रवाल काव्य है। इसकी रचना वळ्ळत्तोळ् ने अपने मित्रों समेत की है। किन्तु इसके प्रथम तंत्र का उत्तरार्ध एवं पाँचवाँ तंत्र पूर्णतया वळ्ळत्तोळ् का अपना है।

1.5.5.6. बधिर विलापम् (सन् 1910)

वळ्ळत्तोळ् सन् 1910 में सर्दी के लग जाने से बहरे हो गये। इलाज से कोई फायदा नहीं हुआ। आखिर निराशा में निमग्न कवि के हृदय की पीडा "बधिर विलापम्" में प्रकट हुई। यहाँ कवि अपने अपराधों केलिए देवी से क्षमा माँगते हैं। वे यह शंका भी प्रकट करते हैं कि बहरेपन का कारण अपनी खोटी कविताओं से लोगों को तंग करना है।[1] संसार की मधुर वाणी के श्रवण से वंचित होकर कवि तिलमिला उठे हैं। इन सबका चित्रोपम चित्रण प्रस्तुत काव्य में हुआ है। इसमें भक्ति-भाव एवं करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। संस्कृत शब्दों की बहुलता से युक्त मलयालम की झलक सारे 63 श्लोकों में दर्शनीय है। इसे आत्मपरक शोक काव्य के अंतर्गत रखा जा सकता है।

1.5.5.7. चित्रयोगम (सन् 1914)

यह वळ्ळत्तोळ् का महाकाव्य है। मलयाळम् साहित्य में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में महाकाव्य का प्रणयन करके महाकवि बनने की प्रथा-सी चली थी। वळ्ळत्तोळ् भी इसमें अपवाद न रह सके। वे भी "चित्रयोगम" लेकर प्रस्तुत हुए।

---

1. "बधिरविलाप"- (चौदहवाँ संस्करण-) पृ. 5

यह संस्कृत के महाकाव्य सिद्धान्तों के आधार पर लिखा गया है । इसकी कथा संस्कृत के सोमदेव रचित "कथासरित्सागर" पर आश्रित है । कथा में भारी परिवर्तन नहीं किया है । देश और पात्रों के नामों में, कला-शिल्प में परिवर्तन अवश्य हुआ है ।

"चित्रयोगम्" की कथा है कि अलका के राजा महासेन को मनोरमा में, चन्द्रहास नामक एक पुत्र हुआ । एक दफे कात्यायन नामक योगिनी ने उसे राजा वसुदत्त की कुमारी तारावली का चित्र दिखाया । चित्र देखकर कुमार तारावली से प्रेम करने लगा । महासेन एवं राजकुमारी के पिता दोनों मित्र थे । शादी की बात पक्की की गयी । लेकिन तीन महीनों के बाद ही विवाह केलिए शुभ मुहूर्त था । यह बात राजकुमार एवं कुमारी केलिए असह्य थी । वसुदत्त ने अपनी पुत्री को मंत्री समेत जहाज़ में अलका की ओर बिदा दी । इसी बीच राजकुमार, कुमारी के यहाँ पहुँचने केलिए रवाना हो चुका था । राजकुमारी का जहाज़ तूफान में पडकर डूब गया, लेकिन वह बचकर मातंग महर्षि के आश्रम में पहुँच गयी । राजकुमार की भी यही अवस्था हो गई । आखिर दोनों का मिलन आश्रम में हुआ । महर्षि ने दोनों को उनके राज्य भेजा । लेकिन एक दुष्ट वाणिक ने, राजकुमारी के जहाज़ पर चढ़ते ही जहाज़ चला दिया । राजकुमार किनारे रह गया । फिर राजकुमार एक भील राजा के सेवकों के हाथ में फंस गया । उन्होंने कुमार को बलि चढाना चाहा । संयोगवश भील राजा को पता चला कि कुमार अपने मित्र अलकेश का पुत्र है । सभी बातों का पता लगने पर भील राजा ने कुमारी को भी ढूँढ़ निकाला । आखिर राजकुमार को सकुशल वधू समेत उनके राज्य में भेज दिया गया ।

वळ्ळत्तोळ् ने महाकाव्य केलिए एक लोककथा को चुन लिया है । फिर भी "नगरार्णवशैलर्तु" आदि महाकाव्य के सभी लक्षण "चित्रयोगम्" में विद्यमान है प्रस्तुत काव्य में शृंगार रस के दोनों पक्षों का सफल चित्रण हुआ है । करुण, वीर आदि रसों का भी समावेश स्थान-स्थान पर हुआ है । शिल्प-रचना की दृष्टि काव्य अद्वितीय है । कवि की वैदर्भी रीति, इसके काव्य गुण को पुष्ट बनाती

वल्ळत्तोळ् काव्यों के प्रसिद्ध आलोचक श्री वी० उण्णिकृष्णन नायर का कहना है:- " काव्य की ललित कोमल पदावली और शब्दार्थयुक्त प्रयोग में कवि के औचित्य ने "चित्रयोगम्" को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है । [1]

1. 5. 5. 8. विलास लतिका (सन् 1913)

यह एक श्रृंगारिक रचना है । "अमरुकशतक" के प्रयास से ही कवि ने इसका प्रणयन किया है । नायक-नायिकाओं की श्रृंगारिक चेष्टाओं का अत्यंत अनुभूतिपूर्ण चित्र इसमें उपलब्ध है । इसका अनुवाद अंग्रेज़ी में, शैली की पौत्री द्वारा हुआ था, जो प्रस्तुत काव्य के महत्व का प्रमाण है । इस संबन्ध में कवि ने उण्णिकृष्णन नायर को लिखा -" ऐसा लगता है कि उनको (अंग्रेज़ों को) "विलासलतिका" पसंद आयी है । समस्त कार्यों में अंग्रेज़ों के अनुकरण करनेवाले केरलीयों को वह फिर क्यों अशिष्ट हो गई है । [2] काव्य का प्रारंभ शिवजी की स्तुति के साथ यों किया है -" जब शैलजा का पेलव शरीर कन्दुक-क्रीडा में परिक्षीण होता है और उसका पृथु नितम्ब-मंडल एवं कुचकुंभ संचलित होते हैं और कुंतलावली स्वेद-कणों से युक्त लोल कपोलों पर शोभा पाती है तब शिवजी पर जो पुलक उदित होते हैं वे हमें मंगल प्रदान करें । [3] यहाँ कवि के श्रृंगार भावों की प्रस्तुति की चतुराई व्यक्त होती है ।

1. 5. 5. 9. "ओरु कत्तु अथवा रुक्मयुडे पश्चात्तापम्" (एक पत्र अथवा रुक्म का पश्चात्ताप (सन् 1914)

इसका प्रतिपाद्य विदर्भेश के पुत्र रुक्म का अपनी बहन रुक्मिणी के नाम बीती बातों को भूलकर, अपनी पुत्री के साथ भांजे की सगाई करवाने का निवेदन है । असल में रुक्म ने रुक्मिणी की शादी शिशुपाल से करवाने के लिए बहुत प्रयत्न

---

1. "वल्ळत्तोळ्"-उण्णिकृष्णन नायर (प्र. सं.) पृ. 129
2. --वही-- पृ. 150
3. "विलासलतिका" - श्लोक- 1

किया था । इस कल्पना से कवि साबित करते हैं कि नीच और स्वार्थी लोग अपनी इच्छापूर्ति केलिए अपनी साधुता का परिचय देंगे । यह एक आत्मपरक निबन्ध काव्य है, जो कवि की कुशलता का परिचायक भी है ।

1.5.5.10. परलोकम्

यह तेरह प्रसिद्ध महात्माओं के निधन पर लिखे गए शोक गीतों का संकलन है । इनमें दादा बाई नवरोजी, तिलक एवं महाकवि कुमारनाशान पर लिखे गए गीतों का प्रकाशन साहित्य मंजरी प्रथम और तीसरे भाग तथा "विषुक्कणि" में हुए हैं । बाकी गीत चित्तरंजन दास, कस्तूरबा गाँधी केरलवर्मा राजराजवर्मा कोटुङ्ङल्लूर कुन्जुक्कुट्टन तंपुरान, कुण्टूर नारायण मेनन, रवीन्द्रनाथ ठाकुर वेण्मणि महन नम्पूतिरि श्री चट्टंपिस्वामिकळ् और नटुवत्तच्छन् नंपूतिरि के निधन पर आधारित हैं । इससे व्यक्त होता है कि कवि का इन महात्माओं से आत्मीय संबन्ध था।

1.5.5.11. बाप्पूजी (सन् 1950)

वळ्ळत्तोळ् के गुरुदेव गाँधीजी के निधन पर, की गई अश्रुपूजा का काव्य परिणाम है "बाप्पूजी" । काव्य की शुरूआत, कवि के शोकाभिभूत दिल की अभिव्यक्ति है । बाकी दस खण्डों में गुरु के निधन से लेकर भस्म-प्रक्षेपण तक के विविध कार्यों का संपूर्ण चित्रण है । प्रस्तुत काव्य में दिल्ली का वातावरण, जनता एवं प्रकृति की तब की अवस्था का मार्मिक चित्रण और करुण रस का पूरा परिपाक हुआ है । भाषा, माधुर्य एवं ओज गुणों से काव्य महान हुआ है । कवि की गाँधी भक्ति का यह श्रेष्ठ प्रमाण भी है ।

1.5.5.12. भगवद्-स्तोत्र माला (सन् 1951)

यह कवि की भक्ति-भावना का काव्य-रूप है । कवि वैष्ण-शैव भेद-भाव नहीं मानते थे, फिर भी उनके परिवार में देवी की पूजा होती थी ।

"भगवत्-स्तोत्रमाला" इसका परिचायक है । यह सन् 1905 और 1915 के बीच में विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित स्तोत्रों का संगृहीत रूप है ।

इसकी रचनाएँ वैष्णव-शैव एवं शाक्त उपासना पद्धतियों से संबन्धित है । पहली रचना "वसुदेवाष्टकम्" गुरुवायूर वासुदेव मूर्ति की स्तुति है । दूसरी "नारायणाष्ठकम्" विष्णु की महिमा का है । तीसरी "हनुमदष्ठकम्" में आलत्तूर के हनुमान मंदिर की स्तुति है । "श्रृंगारशिवाभ्युदयम्" शिवजी के प्रति कवि की प्रार्थना है । पांचवीं "अंबास्तवम्" में पार्वती के केशादिपाद का वर्ण्न किया गया है । छठीं "पार्वतीदशकम्" है जिसमें, कवि की अपनी दुर्दशा के निवारण केलिए पार्वती से निवेदन है । आठवें "देवी स्तवम्" में कवि की निजी भक्ति-भावना उमड पडती है । अंतिम भाग शिवजी {वडक्कुन्नाथन्} पर है, जो त्रिचूर के मंदिर की प्रतिष्ठा-मूर्ति है।

यह कवि की भक्ति की माला है । यहाँ संस्कृत भाषा के आधिक्य के साथ-साथ, संस्कृत छंदों का भी प्रयोग पूरे काव्य में हुआ है ।

1.5.5.13. "वळ्ळत्तोळ् रष्यियिल्" {वळ्ळत्तोळ् रूस में} {सन् 1952}

सन् 1951 जून में कवि ने रूस का पर्यटन किया । उस अनुभव के आधार पर लिखी गई पाँच कविताओं का यह संग्रह है । इसका अनुवाद रूसी में हुआ

प्रथम कविता "लेनिन्टे शवकुटीरम्" में मोस्को में लेनिन की कब्र और उसके महत्त्व का वर्णन किया गया है । दूसरी कविता "कडप्पेट्टवर" {ऋणी} में जोर्जिया नागरनिवासियों के स्वागत का अनुस्मरण करते हुए कृषक-जीवन पर बल दिया गया है । "कलाविद्या" में कवि काकेशस पर्वत के ऊपर के स्दन और उसके आसपास का सुन्दर वर्णन करते हैं । आखिरी "मेलिले युद्धम्" {भविष्य युद्ध} में कवि की शांति-भावना की अटल इच्छा प्रकट होती है । कवि यहाँ गाँधीजी के कर्मयोग का भी प्रतिपादन करते हैं । उनकी काव्यशैली का यह उत्तम निदर्शन है ।

1.5.5.14. अभिवाद्यम्

इसमें सन् 1952 और 1956 के बीच की नौ रचनाओं का संकलन हुआ है । कवि की चीन यात्रा से संबन्धित रचनाएँ इसमें संगृहीत है ।

पहली कविता "अभिवाद्यम्" में कवि पीकिंग की उन्नति की चर्चा करते हुए वहाँ भारतीय कलाकारों को प्राप्त स्वागत पर प्रकाश डालते हैं । इसमें चीनियों केलिए युद्ध को पागलपन का पर्याय घोषित किया गया है ।[1] दूसरी कविता "नवंबर सात्" में कवि रूसी क्रांति का अनुस्मरण करते हैं । तीसरी रचना "कादु वीशित्तुडङ्ङी §हवा बहने लगी § है । इसमें युद्ध के स्थान पर शांति स्थापित करने की ओर संकेत किया गया है । चौथे "वायिच्चिट्टिल्ला" §पढा नहीं § में कवि उज़्बेकिस्तान में देखे हुए एक फिल्म का उल्लेख करते हुए उसे देश के पन्द्रहवीं सदी के कवि "आलिशेर के महत्व का वर्णन करते हैं । यहाँ भारतीय एवं रूस की राजनीति के बारे में भी कहा गया है । पाँचवीं कविता "पुतिय कनकाक्षरङ्ङळ्"§ नवीन कनक लिपियाँ" में पीकिंग की आम जनता का वर्णन किया गया है । छठी , "अंचाम् पिरन्नाळ्" §पाँचवीं वर्षगाँठ§भारत की स्वतंत्रता की याद करते हुए उद्बोधन दिया गया है कि वर्तमान में युद्धाग्नि को पाला समझकर सोते रहना बेवकूफी है ।[2] सातवीं कविता है "रिट्सा तडाकम्" §रिट्सा झील§ । इसमें काकेशस की तराई में स्थित रिट्सा झील का चित्रण किया गया है । आठवीं कविता "मट्टोन्निल्ला" §और एक नहीं § में कवि बाढ़ से पीडित कुछ गरीबों को कलामण्डल के निकट आश्रय लेते देखकर पडोसी अमीरों को लक्ष्य करके कहते हैं कि गरीब अछूत और

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1, 2. "अभिवाद्यम"- पृ. 7, 35.

कोई नहीं हमारी ही परछाई हैं । आखिरी कविता है "स्टालिन हा" जो स्टालिन के निधन पर लिखा गया शोक-गीत है । उपर्युक्त कविताओं में कवि का रचना-कौशल एवं बुद्धि-शक्ति का सम्यक् परिचय हमें मिलता है ।

1.5.5.15. औषधाहरणम् [सन् 1918]

यह "कथकली" - केरल की नृत्य-प्रधान कला को आधार बनाकर लिखी गयी कविता है । इसकी कथा लंका युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान का औषध केलिए निकलना है । इन्द्रजित की विजय पर रावण की खुशी एवं उसकी शुभ सूचना देने केलिए मंदोदरी से मिलना आदि प्रसंगों का वर्णन कवि चतुरता से करते हैं । अभिनेता की दृष्टि से यह एक उत्तम "कथकली-रचना" है । इसकी भाषा प्रौढ़ एवं मधुर है । यहाँ श्रृंगार वीर रौद्रादि रसों का अच्छा परिपाक हुआ है ।

1.5.6. गुप्तजी के नाटक ग्रन्थ

1.5.6.1. तिलोत्तमा [सन् 1915]

यह पौराणिक नाटक , नाट्य शास्त्र के तत्वों के आधार पर रचित रूपक है । मूल कथा महाभारत का "सुन्दोपसुन्दोपाख्यान" की है । देवराज इन्द्र के साथ दैत्यराज सुन्द का विरोध , सुन्द की तपस्या, ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करना , इन्द्र पर आक्रमण , इन बातों की ओर संकेत किया गया है । नाटकीय तत्वों का पूर्ण समावेश न होने पर भी संस्कृत नाटक की शिल्प पद्धति का यहाँ अनुसरण हुआ है । नाटक के रूप में प्रस्तुत रचना सफल नहीं है ।

1.5.6.2. चन्द्रहास [सन् 1916]

यह भी पौराणिक नाटक है । यहाँ सद्गुण संपन्न चन्द्रहास के चरित्रोत्कर्ष का प्रयास किया गया है । इसका आधार जैमिनीय अश्वमेध है ।

नाटक संवादात्मक है । इसमें भी नाटकीय तत्वों का समावेश हुआ है । यहाँ कवि कई नवीन उद्भावनाओं का प्रयोग करते हैं । गुप्तजी की प्रजातंत्र भावना, पौराणिक पृष्ठभूमि में यहाँ व्यक्त हुई है ।

## 1.5.7. वळ्ळत्तोळ् की संस्कृत रचनाएँ

बाल्यकाल में वळ्ळत्तोळ् को संस्कृत की अच्छी शिक्षा मिली थी । उनकी प्रारंभिक रचनाओं में अनेक संस्कृत-मुक्तक मिलते हैं । ज़्यादातर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए हैं । "त्रियामा" उनकी सन् 1896 में प्रकाशित एक रचना है । परन्तु वह आज पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है । उनकी पूर्ण प्रकाशित रचनाओं का परिचय यहाँ दिया जा रहा है ।

### 1.5.7.1. शास्त्र ग्रन्थ

बाल्यावस्था में वळ्ळत्तोळ् ने अपने मामाजी से आयुर्वेद का अध्ययन किया था और एक-दो साल तक चिकित्सा भी करते रहे । फलतः आयुर्वेद पर उन्होंने मलयालम् में ग्रंथों की रचना की है ।

#### 1.5.7.1.1. आरोग्य चिन्तामणि

यह कैक्कुलंगरा रामवारियर के "आरोग्यकल्पद्रुम" के आधार पर लिखी गई बाल-चिकित्सा संबन्धी कृति है । इसमें करीब तीन हज़ार श्लोक हैं । इसका साहित्यिक महत्व कम है , फिर भी उसका विषय गत महत्व है । सन् 1901 में इसका प्रणयन हुआ था ।

#### 1.5.7.1.2. वैद्यभूषणम् (सन् 1903)

यह संस्कृत के "वैद्यजीवनम्" के आधार पर लिखा गया एक पद्यात्मक चिकित्सा-ग्रन्थ है ।

1.5.7.1.3. गर्भरक्षा क्रम (सन् 1903)

यह वळ्ळत्तोळ् की पत्नी के गर्भ-काल में पथ्याचरण केलिए लिखी गयी कृति है ।

## 1.5.8. अनूदित रचनाएँ

गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ अपने रचनाकाल से लेकर, उनके सृजन के शायद अंतिम क्षणों तक अनुवाद की कला के उपासक रहे हैं । दोनों कवि अनेक संस्कृत, एवं अन्य भाषाओं की रचनाओं का सफल अनुवाद करते रहे । गुप्तजी की अपेक्षा वळ्ळत्तोळ् अनुवाद की ओर अधिक झुके हुए हैं । वळ्ळत्तोळ् संस्कृत साहित्य के अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों के महान अनुवादक हैं । दोनों की अनूदित रचनाओं का जिक्र यहाँ हो रहा है ।

### 1.5.8.1. गुप्तजी की अनूदित रचनाएँ

1.5.8.1.1. संस्कृत से अनूदित

संस्कृत से अनूदित भास के दो नाटक हैं । "स्वप्नवासवदत्त" का सन् 1914 में और "दूतघटोत्कच" का सन् 1955 में प्रकाशन हुआ था । भगवद्गीत के द्वितीय अध्याय के अनुवाद के रूप में "गीतामृत" नाम से एक अनुवाद भी 1925 में गुप्तजी ने किया । अनुवाद की भाषा संस्कृत-निष्ठ खड़ीबोली है । कालिदास से प्रेरित होकर कवि ने शकुन्तला की सौत पर "शकुन्तला" खण्डकाव्य की रचना की ।

1.5.8.1.2. बंगला से अनूदित

बंगला से गुप्तजी ने माईकेल मधुसूदन दत्त के तीन ग्रन्थों का तथा नवीन-चन्द्र सेन के "पलासी का युद्ध" (1914) भी अनुवाद किया । मधुसूदन दत्त के

अनूदित काव्य "विरहिणी ब्रजांगना" (सन् 1914) "वीरांगना" (सन् 1927) और "मेघनाथ वध" (सन् 1927) हैं । हेमचन्द्र बन्धोपाध्याय का "वृत्रसंहार" (1962) भी यहाँ उल्लेखनीय है । कवि का बंगला अनुवाद सरल एवं पूर्ण भावाभिव्यंजक ढंग से हुआ है ।

1.5.8.1.3. अंग्रेज़ी से अनूदित

गुप्तजी ने उमर-खय्याम की रुबाईयों के फिट्जेल्ड कृत अंग्रेज़ी रूपान्तर का अनुवाद , सन् 1915 में किया था । यह कवि का अपना अनुवाद नहीं है , उनके मित्र रायकृष्णदास के आग्रह और सहायता से किया गया है ।

1.5.9. वळ्ळत्तोळ् की अनूदित रचनाएँ

एक महान कवि के अलावा एक सफल अनुवादक के रूप में भी वळ्ळत्तोळ् का स्थान अद्वितीय है ।

1.5.9.1. संस्कृत से अनुवाद

क्षेमचन्द्र की "भारतमंजरी" का अनुवाद सन् 1904 में और "उन्मत्तराघव" का अनुवाद 1905 में हुआ था ।

1.5.9.1.1. वाल्मीकि रामायण

वाल्मीकिरामायण का मलयालम में अनुवाद का प्रकाशन सन् 1907 में हुआ । प्रस्तुत अनुवाद कवि का यश बढ़ाने के साथ साथ मलयालम भाषा की एक अनमोल संपत्ति भी साबित हुआ ।

1.5.9.2. पुराणों का अनुवाद

मार्कण्डेय पुराण का अनुवाद कवि ने गद्य रूप में किया है । यह उनकी

माधुर्य और ओजपूर्ण शैली का उत्तम निदर्शन है । "पद्म पुराण", "वामन पुराण", "मात्स्य पुराण", "आग्नेय पुराण" आदि पुराणों का अनुवाद कमलालय मुद्रणालय के संस्थापक कुलकुन्नत्तु रामन मेनन की आदेशानुसार किया गया है । इनके अनुवाद की कठिनाइयों के बारे में वामन पुराण के प्राक्कथन में कवि लिखते हैं -" वस्तुत: अष्टादश पुराण भारतीयों की अनर्घ संपत्ति है , जिनमें कहीं-कहीं अपूर्ण वाक्य है तो कहीं-कहीं विषय की गंभीरता और कहीं ऐसे पद जिनका अर्थ कोश में न हो । इन कारणों से स्वत: ये अगम्य है, विशेषकर संशय निवारण केलिए इनकी टीका-टिप्पणी तक नहीं । अनुवादों केलिए उपलब्ध पुस्तकों की दशा भी इससे भिन्न नहीं ।[1] इस प्रकार के गंभीर काव्य का अनुवाद करके कवि अपने महत्व की स्थापना करते हैं ।

1.5.9.3. संस्कृत रूपकों का अनुवाद

वळ्ळत्तोळ् ने संस्कृत के विख्यात नाटककार भास और वत्सराज के रूपकों का अनुवाद किया है । इन रचनाओं में भी कवि की गद्य-पद्य-शैली की विद्वत्ता देखी जा सकती है ।

1.5.9.3.1. ऊरुभंगम् (सन् 1918)

साहित्य में भास के इस एकांकी का महत्वपूर्ण स्थान है । इसमें भीम के गदा-प्रहार से मृत्यु का वरण करनेवाले दुर्योधन के अंत का वर्णन किया गया है । संस्कृत एकांकी का परिचय एवं भास के चरित्र-चित्रण को केरलीयों को समझाने का कवि का उद्देश्य पूर्ण रूप में सफल हुआ है ।

1.5.9.3.2. मध्यम व्यायोगम् (सन् 1920)

इसकी कथा , महाभारत में चित्रित बक-संहार करके ब्राह्मण परिवार की रक्षा करने की है । घटोत्कच की मातृभक्ति , हिडिम्बा का पति प्रेम , ब्राह्मण की सात्विक भक्ति आदि का मार्मिक चित्रण कवि अनुवाद में भी बनाए रखने में सफल निकले हैं ।

---

1. "वामन पुराण - प्राक्कथन- पृ. 2

1.5.9.3.3. अभिषेक नाटक (सन् 1920)

इसमें बालि की हत्या के उपरांत हनुमान लंका पहुँचकर सीता से मिलन, विभीषण का राम की शरण में आना , रावण की हत्या , सीता की अग्नि-परीक्षा आदि वर्णित है । यद्यपि भास के नाटकों में इसका कम महत्व है , तो भी वळ्ळत्तोळ् अपने अनुवाद में बहुत रोचकता एवं गहराई से प्रस्तुत कार्य करते हैं ।

1.5.9.3.4. पंचरात्रम् (सन् 1923)

आचार्य द्रोण का गुरुदक्षिणा के रूप में पाण्डवों को आधा राज्य देने की प्रार्थना पांच दिन में पांडवों का पता लगाने की शर्त पर दुर्योधन का उसे स्वीकार करना , विराट पर कौरवों का आक्रमण और पराजय के साथ पांडवों का प्रकट होना आदि का वर्णन इसमें हुआ है ।

1.5.9.3.5. स्वप्न वासवदत्तम् (सन् 1925)

यह भास का श्रेष्ठ नाटक है । अवंती के राजा महासेन का अपनी पुत्री वासवदत्ता का उदयन से विवाह करने का विचार था । वह इसकेलिए तैयार नहीं था कि धोखे से उसे बन्दी बनाया । फलस्वरूप वासवदत्ता एवं उदयन प्रेम-बद्ध हो गए । मंत्री की कुशलता से उदयन बन्दी गृह से मुक्त हुआ और वह वासवदत्ता को साथ लेकर भाग गया । अब उदयन के राज्य पर शत्रुओं का आक्रमण हुआ । शत्रुओं को भगाने केलिए जब उसने मगध की सहायता मांगी तो राजा ने अपनी बहिन पद्मावती से उसका विवाह करने का प्रस्ताव रखा । उदयन तैयार नहीं हुए । मंत्री की कुशलता से विवाह संपन्न हो गया । राज्य की रक्षा हुई और पद्मावती भी संतुष्ट हुई । वळ्ळत्तोळ् की अनुवाद कला की चतुरता यहाँ स्पष्ट दिखाई पडती है ।

1.5.9.3.6. अभिज्ञान शाकुन्तलम् [सन् 1936]

वळ्ळत्तोळ् ने इसका अनुवाद करके केरलवर्मा को समर्पण किया, जिसने संस्कृत में यह लिखकर पहले केरलीयों को परिचय कराया है। वळ्ळत्तोळ् की कलाभिरुचि इसमें प्रकट होती है।

1.5.9.3.7. कपट-केलि [सन् 1945]

यह कालिंजर के परमर्दि देव के दरबारी कवि एवं मंत्री की रचना है। इसकी मूल रचना "हास्य चूड़ामणि" है। कपट-केलि हास्यचूडामणि की नायिक है। वेश्या कपट-केलि को केन्द्रित करके यह रचना हुई है।

1.5.9.3.8. कर्पूर चरितम् [सन् 1946]

एक विलासिनी गणिका के प्रेमी "कर्पूरक" इसका नायक है। उसका अपने अनुभवों को एक अदृश्य मित्र से कहना ही इसका कथानक है। सरदार के०एम० पाणिक्कर का कथन यहाँ उल्लेखनीय है कि "इतनी सुन्दर काव्य-प्रणा का आवश्यक सुधार करके चालू करना चाहिए, उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।[1]

1.5.9.3.9. रुक्मिणी हरण [सन् 1948]

यह दश रूपकों में ईहामृग के अंतर्गत आता है। उत्कट प्रेम में के हरण के आधार पर ही इस रूपक को यह नाम मिला है। कवि क संबन्धी उदारता यहाँ स्पष्ट हुई है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "कर्पूर चरित भाणम्" [प्र.स.]. प्राक्कथन- सरदार के०एम० पणिक

1.5.9.3.10. त्रिपुर दहनम् (सन् 1948)

नारद, इन्द्र , त्रिमूर्ति गण , असुर आदि इसके पात्र हैं । कथा का केन्द्र बिन्दु असुर निग्रह है । यह दशरूपकों में "डिम" के अंतर्गत आता है ।

उपर्युक्त प्रकार के नाटकों का आज साहित्य में सम्मान विरल ही है , इस बात को ध्यान में रखकर डा०कुन्जुण्णि राजा ने व्यक्त किया है कि सभी कलाओं में कला और वस्तु का संबन्ध होता है , वस्तु का अंश काल-देश के अनुसार परिवर्तित होता रहता है । परन्तु कथा काल-देश के अतीत हैं जो सहृदयों को आनन्द देने में सदा समर्थ ही रहेगी ।[1] इसके अनुसार उपुर्यक्त नाटकों का भी सम्मान होगा और अनुवादक का यश भी अमर रहेगा ।

1.5.9.3.11. बोधिसत्वापदानकल्पलता (सन् 1948)

क्षेमचन्द्र के इस काव्य का अनुवाद , वळ्ळत्तोळ् ने केरल विश्व विद्यालय के उपदेशानुसार ही किया है । इसमें बौद्ध धर्म संबन्धी कथाएँ संकलित हैं । महाकाव्य की विशेषताओं से युक्त प्रस्तुत काव्य वळ्ळत्तोळ् की प्रतिभा का अनमोल निधि है ।

1.5.9.4. ऋग्वेद (सन् 1955)

ऋग्वेद का अनुवाद मातृभाषा में करके वळ्ळत्तोळ् ने अपनी भाषा एवं अपने नाम को अमर किया । इस अनुवाद के द्वारा कवि ने वेदों में वर्णित महान बातों को जन-साधारण के सामने पेश करने का कार्य किया है । साहित्य एवं कला की दृष्टि से गरिमामय प्रसंगों का अनुवाद वळ्ळत्तोळ् ने बडी कुशलता के साथ , रसास्वाद करने केलिए किया है । प्रसंगानुसार गद्य एवं पद्य का भी उपयोग किया गया है ।

---

1. डा० कुन्जुण्णि राजा-"त्रिपुरदहनम्" अवतारिका- पृ. 6.

## 1.5. 10. गद्य रचनाएँ

गुप्तजी की गद्य रचनाएँ पुस्तकाकार में प्रकाशित नहीं हुई है । फिर भी उनकी कविता-निबद्ध गद्य-शैली का आस्वाद काव्यों की भूमिका नाट्य रचनाओं के गद्यांश आदि से किया जा सकता है ।

वळ्ळत्तोळ् महाकवि के रूप में विख्यात हैं । उनका गद्यकार का रूप प्रसिद्ध नहीं है । उनकी गद्य रचनाएँ मुख्यतः तीन रूप में उपलब्ध हैं , पहला-काव्यों के प्राक्कथन , भूमिका या निवेदन, दूसरा-अनुवाद और तीसरा-पत्र संपादन के अवसर पर ग्रन्थ निरूपण । ग्रन्थ निरूपण "ग्रन्थ विहार" नाम से प्रकाशित हुआ है ।

### 1.5.10.1. ग्रन्थ विहार

वळ्ळत्तोळ् सन् 1915 में "केरलोदयम्" पत्रिका के सह-संपाद बने । बाद में पाँच वर्ष तक "आत्मपोषिणी" पत्रिका के संपादक रहे हैं । इस समय किए ग्रन्थों की आलोचना कवि की गद्य-शैली एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है । "केरलोदयम्" में प्रकाशित आठ एवं "आत्म पोषिणी" में प्रकाशित छत्तीस लेख "ग्रन्थविहार" में संगृहीत हैं । इन रचनाओं में चार को छोडकर बाकी वळ्ळत्तोळ् की हैं ।

वळ्ळत्तोळ् अच्छे वक्ता थे । संस्कृत के बडे पंडित होने के कारण वे संस्कृत में भी भाषण दे सकते थे । यहाँ ध्यान देने की बात है कि तत्कालीन साहित्य में संस्कृत में भाषण देनेवाले एक ही कवि थे - वळ्ळत्तोळ् । उनकी गद्य शैली उनके भाषणों से होकर भी प्रकट होती है । जब कभी वे भाषण देते थे , तब उनकी काव्य-मयी भाषा का सुन्दर प्रवाह होता था । भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति केलिए संस्कृत अलंकारों का सहारा भी वे लेते थे ।[1]

---

1. "मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् का तुलनात्मक अध्ययन"- के. ए. मणि पृ. 105

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वळ्ळत्तोळ् महान कवि, सफल अनुवादक एवं प्रतिभावान गद्यकार हैं । फिर भी उनका कवि रूप सबसे बढ़कर है , जो उनकी सारी चेतनाओं में घुल-मिला हुआ है ।

## 1. 6. निष्कर्ष

दोनों कवियों का पारिवारिक वातावरण कई भिन्नताओं के रहते हुए भी समान था । दोनों वैष्णव भक्ति में विश्वास करते थे । भारतीय संस्कृति और मानवतादर्श दोनों केलिए प्रिय थे । दोनों कवि पुराण प्रेमी थे । उनके व्यक्तित्व गाँधीजी से प्रभावित थे । इस प्रकार व्यक्तित्व में थोडी बहुत समानता लिए हुए इन कवियों की कृतियाँ और उनके विषय भी समानता लिए हुए हैं । पौराणिकता जिसमें सामयिक प्रश्नों की अभिव्यक्ति होती थी , दोनों के काव्य साहित्य के प्राण स्वरूप थी । राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक कविताओं का निर्माण दोनों कवि बराबर करते रहे । गाँधीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भी दोनों ने काव्य रचना की है । उनकी मृत्यु पर काव्य के रूप में श्रद्धांजलियाँ भी अर्पित की हैं । सामाजिक अंधविश्वासों से लड़कर मानवतादर्श को अपनाते हुए कर्म मार्ग पर अडिग रहकर सुधार एवं प्रगति के पथ पर चलना गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् की समान विशेषताएँ थीं ।

****************

# द्वितीय अध्याय

## "सांस्कृतिक नवोत्थान और मैथिलीशरण गुप्त एवं वळ्ळत्तोळ्"

# द्वितीय अध्याय

## 2. सांस्कृतिक नवोत्थान और मैथिलीशरण गुप्त एवं वळ्ळत्तोळ्

जीवन में जब कभी कोई गंभीर तनाव आ जाता है , जब एक प्रकार की सर्वव्यापी ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति का आक्रमण होता है , तब संतुलन को बनाए रखने केलिए , उपस्थित कलुषता को दूर करनेवाली ऊर्ध्वगामिनी शक्ति की अभिव्यक्ति अनिवार्य होती है । इसकेलिए उस चिरंतन प्राचीन को स्वयं युगानुसार प्रकट होना पडता है । गीता में भी यही कहा गया है । अजर अमर चिरप्राचीन भगवान भी धर्म की ग्लानि को मिटाने केलिए नरदेह लेकर नवीन अवतार ग्रहण करते हैं । वस्तु या प्राणी की विशिष्टता ही धर्म है । प्राणी का मूल स्वभाव उसके व्यवहार के रूप को निर्धारित करता है । जब तक मानव का आचरण इस मूल स्वभाव के अनुकूल रहेगा तब तक हमारे कार्य सही ढंग से चलते रहेंगे । जब इसका विपरीत होने लगता है तब जीवन की गति भी असंतुलित हो जाती है । ऐसी अधर्म जन्य दुरवस्था के फलस्वरूप नवोत्थान का जन्म होता है । यहाँ मूलतः संतुलन की सृष्टि केलिए प्राचीनता की गहराइयों तक जाना पडता है और युगानुसार नवीन सृष्टि करनी पडती है ।

नवोत्थान में प्राचीन तत्व और तथ्य फिर से प्रकाश में आ जाते हैं । नवोत्थान की प्रक्रिया में भारत-भर में यही हुआ है । नवोत्थान के फलस्वरूप प्राचीनता की अपारता का अनुसंधान यहाँ आरंभ हुआ । प्राचीन गंभीरता, नवीन वैज्ञानिक युग से होते हुए उस के अनुकूल बन गई ।

### 2. 1. सांस्कृतिक नवोत्थान का स्वरूप

उन्नीसवीं शती में भारत की सामाजिक स्थिति अवनति के कगार पर पहुँच चुकी थी । ऐसी अवस्था में एक विकासोन्मुखी संस्कृति से युक्त विदेशी शक्ति के जम जाने और विविध क्षेत्रों में आगे बढ़ती हुई उनकी भाषा का प्रचार,

संस्कृति का प्रभाव आदि का हमारे समाज पर प्रभाव पडना बिलकुल स्वाभाविक था । फिर भी भारतीयों की दार्शनिक प्रवृत्ति पूर्ण रूप से स्थगित न हुई , इतना तो अवश्य हुआ कि भौतिकता की टकराहट में भारतीय जनता को एक धक्का-सा लग गया और वह इस भाव से अपने घर के सामानों पर नज़र दौडाने लगी कि जो चीज़ लेकर यूरप भारत आया है वे हमारे घर में है या नहीं । उन्नीसवीं शताब्दी का यही जागरण भारत का नवोत्थान था । [1] भारतीय समाज एवं धर्म की तत्कालीन अवस्था , ईश्वर में अविश्वास , मुसलमानों का धर्म प्रचार और अंग्रेज़ों का ईसाई धर्म-प्रचार आदि अनेक कारणों से देश की सदियों से सोई हुई चेतना में सहसा जागृति के लक्षण प्रकट हुए और उसमें सुधार की भावना उद्दीप्त हुई । यूरप के क्रान्तिकारी विचारों से अवगत होने के कारण भारत अब पराधीनता को सह न सका और प्रवृत्ति-मार्ग की ओर अग्रसर होने लगा । हिन्दू धर्म को अवनति से बचाने केलिए उसे नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाना था । उसकी नई व्याख्या करनी थी । यहाँ से विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, आन्दोलनों का जन्म हुआ । ब्रह्म समाज, आर्य समाज , प्रार्थना समाज रामकृष्ण मिशन , थियोसोफिकल सोसाइटी इत्यादि ने धर्म सुधार का बीडा उठाया और जबर्दस्त आन्दोलन शुरू हुआ । सामाजिक राजनैतिक एवं धार्मिक परिवर्तन का यह समन्वय एक मुख्य देन है , जो भारतीय मस्तिष्क के सर्वतोन्मुखी एवं ग्राह्य प्रकृति का निर्देश करता है । इस पुनरुत्थान की आवाज़ भारत में सबसे पहले राजाराम मोहनराय ने उठायी । उसके बाद अन्य अनेक नेताओं ने भी यही कार्य किया । केरल में भी इसका प्रभाव हुआ । यहाँ चट्टम्पि स्वामिकल्, श्रीनारायण गुरु आदि सामाजिक नेता केरल की जनता के पुनरुत्थान का स्तुत्य प्रयास करते रहे ।

---

1. "संस्कृति के चार अध्याय" - रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 538

2. 1. 1. ब्रह्म समाज

राजाराम मोहनराय ने सन् 1928 कलकत्ते में ब्रह्मसमाज की स्थापना की । इस संस्था का मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं में प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों अंधविश्वासों और बाह्य कर्मकाण्डों का खण्डन करके वेदों द्वारा प्रतिपादित सत्य धर्म की प्रतिष्ठा और सर्वधर्म समन्वय करने के साथ-साथ समाज के अंतर्गत स्त्रियों की दुर्दशा के विरुद्ध आन्दोलन, विधवा-विवाह का समर्थन , पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा, बाल-विवाह आदि कुप्रथाओं का खण्डन करना तथा जाति-भेद, साम्प्रदायिकता आदि सामाजिक बुराइयों को दूर करना था । उनके अथक प्रयत्न के फलस्वरूप लार्ड विलियम बेनटिक ने सतीप्रथा को नियम द्वारा बंद किया। वे आधुनिक शिक्षा के प्रबल समर्थक और अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता को माननेवाले थे । कवीन्द्र रवीन्द्र ने इसके बारे में कहा है -" अपने समय के संसार में ये एक ही व्यक्ति थे जिन्होंने आधुनिकता के महत्व को पूर्णत: पहचाना था । [1] भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान में मोहनराय ने भारतवर्ष को उस अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य की ओर ले जाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

सन् 1857 के बाद सारा भारत निराशा में डूब गया । जनता अपने को सभी क्षेत्रों में असमर्थ समझने लगी । फलस्वरूप निवृत्तिमार्ग की धारा में बहते-बहते स्वाधीनता-पराधीनता का अंतर न समझने के कारण जीवन का विकास रुक गया । ऐसी अवस्था में यह समझा जाने लगा कि अतीत का सुवर्णमय वातावरण ही इस निराशा को तथा हीनता बोध को हटा सकता है । [2] इस प्रकार जनता को सचेत कराने का दायित्व राजाराम मोहन ने अपने कंधों पर ले लिया ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Rammohan was the only person in his time in the whole world to realize the significance of the modern age. Rabindranath Tagore_quoted Vipin Chandra."Modern India"- P.127.

2. The instinct of Indian mind was that if a reconstruction of ideas and of Society was to be attempted, it must start from a spiritual basis and taken from the first a religious motive and form - C.C.Dutt.
"The culture of India as envisaged by Sri.Arabindo" - Page 38

## 2.1.2. आर्य समाज

आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बंबई में सन् 1875 में की । साहित्य को आधुनिकता की ओर ले जाने का श्रेय इस समाज को है । भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन रचनाएँ आर्य समाज के सुधारवादी आन्दोलन से पूर्ण रूप से प्रभावित हैं । गुजराती होते हुए भी दयानन्दजी हिन्दी को धर्म के प्रचार का माध्यम बनाया और अपनी सुप्रसिद्ध रचना "सत्यार्थ प्रकाश" का प्रणयन हिन्दी में किया । उन्होंने अछूतों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया, जाति-प्रथा को तोडने केलिए अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया , धार्मिक पाखण्डों का विरोध किया और वेदों की ओर लौट आने की आवश्यकता {बैक टु दि वैदिक स्जस} बतायी । पुराणों और स्मृतियों के कारण वैदिक दर्शन में जो धूमिलता आ गई थी, उसे दूर करके सच्चे वैदिक धर्म की स्थापना और हिन्दुत्व का पुनरुद्धार उनका अभीष्ट था । इस संघ का मूल मंत्र था "वेदों की ओर लौटो" । उनके लिए वेद ही सर्वोच्च प्रमाण थे ।[1]

स्त्रियों के उत्थान के लिए आर्य समाज ने स्तुत्य प्रयास किया । स्त्री शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य का आर्य समाज ने इतना अधिक प्रचार किया कि हिन्दी प्रान्तों में साहित्य के भीतर एक प्रकार की पवित्रतावादी भावना उत्पन्न हुई और हिन्दी के कवि कामिनी नारी की कल्पना मात्र से घबराने लगे ।[2] आर्य समाज ने इस दिशा में राजनैतिक जागृति लाने का भी महत्वपूर्ण कार्य किया । वे पहले नेता थे , जिन्होंने स्वराज्य का महत्व प्रस्तुत कर मातृभूमि की महान सेवा की और घोषित किया कि विदेशी शासन स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता ।[3]

---

1. We believe that the Vedas alone are the supreme authority in the ascertainment of true religion, the true conduct of life. Whatever is enjoyed by Vedas, we hold to be right; whilst whatever is condemned by them we believe to be wrong. Therefore we say that our religion in Vedic. All men especially the Aryas should believe in the Vedas and thereby cultivate unity in relig
Dayananda Saraswati. "The Philosophy of Dayananda"- Page 84.
2. रामधारी सिंह दिनकर-संस्कृति के चार अध्याय-पृ. 468
3. दयानन्द सरस्वती - "सत्यार्थ प्रकाश"- अष्ठम समुल्लास-पृ. 195

आर्य समाज की ऐसी बहुमुखी प्रवृत्तियों के कारण बीसवीं शती में जब अन्य समाज केवल इतिहास के संकेतों में रह गए , आर्य समाज आज भी जीवित है । इस समाज का प्रभाव गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् पर प्रचुर मात्रा में पड़ा है । मुख्यत: प्राचीन भारतीय संस्कृति की पुन:स्थापना के सिलसिले में दोनों कवि इस समाज से प्रभावित रहे हैं । उनके काव्य सृजन का एक मुख्य स्रोत भी प्राचीन भारतीय संस्कृति है ।

## 2.1.3. प्रार्थना समाज

सन् 1967 में केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई । जाति-व्यवस्था समाप्त करना विधवा-विवाह , ना शिक्षा का प्रचार तथा बाल-विवाह का निषेध आदि इसके मुख्य उद्देश्य थे । इस समाज की विशेषता यह थी कि उस युग के अन्य समाजों की अपेक्षा यह धार्मिक न होकर सामाजिक संस्था अधिक रही ।[1] महादेव गोविन्द रा की प्रेरणा से सन् 1888 में भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन की स्थापन हुई , जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रथम सामाजिक संस्था थी ।

प्रार्थना समाज का प्रभाव राष्ट्रीय साहित्य पर अधिक नहीं पड़ा उसका कारण यह है कि बंबई और पूना के आंदोलन उत्तर प्रदेश के साहि अधिक प्रभावित नहीं कर सके ।

## 2.1.4. रामकृष्ण मिशन

श्रीरामकृष्ण परमहंस के देहांत के बाद उनके ही शिष्य स्वामी ने अपने गुरु के नाम पर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की । उन्होंने मार्गों और दर्शनों का समन्वय करके सत्य मार्ग की ओर इंगित कि उनका मानवतावादी दृष्टिकोण वेदांत और अद्वैत दर्शन था । अंध

---

1. चण्डी दास जोशी - "हिन्दी उपन्यासों का समाज शास्त्रीय

अंध-विश्वास आदि का विरोध कर स्वाभाविक धर्म की स्थापना करना वे चाहते थे । नारियों को समुचित सम्मान दिलाना उनका एक मुख्य लक्ष्य था । उनका यह कदम बहुत महत्वपूर्ण था -" मैं ऐसे धर्म तथा ईश्वर पर विश्वास नहीं करता , जो विधवा के आँसू न पोंछे तथा अनाथ के लिए रोटी का टुकडा न दे सके । [1] भारतवर्ष में मातृभूमि प्रेम, स्वाभिमान की भावना मानवतावाद एवं राष्ट्रीयता को जागृत करने में स्वामी विवेकानन्द की वाणी ने अद्भुत चमत्कार उत्पन्न किया ।

उनकी इन प्रवृत्तियों से गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् अतीव प्रभावित रहे हैं । उनकी रचनाओं में इसकी झलक दृष्टव्य है ।

2.1.5. थियोसोफिकल सोसाइटी

मैडम ब्लेवात्स्की और आलकाट ने न्यूयार्क में सितंबर सन् 1875 में इस सोसाइटी की स्थापना की थी । भारत में इस संस्था का सूत्रधार श्रीमती-- ऐनिबेसन्ट थी । थियोसोफि ने धार्मिक सहिष्णुता सर्व-धर्म-समन्वय, विश्व-बन्धुत्व, परलोक विधा संधान आदि का कार्य संपन्न किया । शिक्षा क्षेत्र में भी ये अपनी एक तरीके का सूत्रपात किया । बनारस में सेन्ट्रल हिन्दी कालेज उन्हीं के आदर्शों पर स्थापित हुआ । इस आन्दोलन ने भारत में परदा बहुविवाह और बाल-विवाह उन्मूलन, विधवा-विवाह प्रचलन और स्त्री-शिक्षा का प्रचार किया । उनकी बहुमूल्य सेवाएँ देखकर गाँधीजी ने कहा - जब तक भारतवर्ष जीवित है , एनीबसेन्ट की सेवाएँ भी जीवित रहेगी । [2]

अन्य समाज सुधारकों में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर , महाराष्ट्र के अगरकर आदि के नाम उल्लेखनीय है । कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शती के सभी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Quoted: GREAT MEN OF INDIA EDITED, L.F.ROSH BROOKE . P.50
2. दिनकर -"संस्कृति के चार अध्याय"- पृ. 477

प्रमुख सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन एक न एक तरह से धार्मिक भावना से प्रेरित थे । महत्वपूर्ण बात यह है कि आधुनिक काल का उसने अपने ऐतिहासिक महत्व से संबंध जोड़ा था । राम मोहनराय , दयानन्द सरस्वती आदि प्राचीन संस्कृति को पुनः प्रकाश में लाए हैं । संस्कृत साहित्य की गरिमा और आधुनिक भारत के निर्माण में उसका स्थान आदि के बारे में राबिन्सन का कहना है कि यूरोपीय साहित्य तथा दर्शन पर भी उसका व्यापक प्रभाव पड़ा है ।[1] इन सभी आन्दोलनों ने भारतवासियों को अपनी अतीत गरिमा के बारे में बोधवान बनाकर वर्तमान और भविष्य को अत्यंत उज्ज्वल बनाने केलिए दिग्दर्शन किया । यही कार्य आधुनिक काल में आकर हमारे आलोच्य , गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भी कर रहे थे ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शुरु की गई अंग्रेज़ी शिक्षा और प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप पाश्चात्य देशों और वहाँ होनेवाली प्रगति के बारे में ज्ञान प्राप्त करने से भारत के सभी प्रान्तों में एक प्रकार का पुनरुत्थान हो रहा था । केरल भी इसका अपवाद नहीं रहा । दूसरी ओर स्वामी दयानन्द - सरस्वती राजाराम मोहनराय , श्रीरामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि धार्मिक और सामाजिक सुधारकों के संदेशों ने केरल के हिन्दू जाति में भी परिवर्तन किया । इन सबसे बढ़कर केरल में ही जनमे सुधारकों और संस्थाओं के कार्यों का प्रभाव भी समाज को पूर्ण रूप से परिवर्तित करने में सहायक सिद्ध हुआ ।[2]

2. 1. 6, चट्टम्पि स्वामिकळ् (1854-1924)

चट्टम्पि स्वामिकळ् के ज़माने में केरल की स्थिति ऐसी थी कि केवल

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. राबिन्सन- 1948 - "इंडिया"- पृ. 406
2. ए. श्रीधर मेनन , 'केरल चरित्रम'- पृ. 474

ब्राह्मण लोगों को उच्च स्थान दिया जाता था । स्वामीजी ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठायी और नायर ईषवा आदि अन्य जातियों को भी उच्च स्थान दिलाने का अथक प्रयास किया । एक नायर होने के नाते मुख्यतः उन्होंने नायर जाति की वृद्धि पर बल दिया है । उनका विश्वास था कि यदि एक जाति उन्नति प्राप्त कर सकी तो दूसरी जातियों के लोग भी यह महसूस करेंगे कि उन्हें भी उन्नति प्राप्त करनी चाहिए । समाज सुधार एवं सांस्कृतिक नवोत्थान केलिए इनके द्वारा किया गया कार्य इस क्षेत्र में नवीन जीवन प्रदान करता है । वळ्ळत्तोळ् पर इनका बहुत असर पड़ा है ।

## 2.1.7. श्री नारायण गुरु (1856-1928)

केरल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान केलिए श्री नारायण गुरु द्वारा किये गये कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है । इनके समय में केरल जाति-पांति की दुरवस्था के कारण पतन की ओर था । स्वामी विवेकानन्द ने केरल की इस दशा को देखकर उसे "पागलखाना" बताया था । निम्न वर्गों की दुर्दशा के बारे में गांधीजी का यह कथन भी ठीक लगता है - समाज में उनकी स्थिति कैदि की जैसी है । गरीबी के कारण उनकी स्थिति गुलाम लोगों से भी कष्टपूर्ण है, धार्मिक स्थानों में जाने तक की अनुमति उन्हें नहीं है और यही नहीं उनको इतने कष्ट देनेवालों के विरुद्ध कुछ कहने तक का अधिकार उन्हें नहीं है ।[1]

समाज के हताश लोगों के बीच में "मानव संस्कृति एक धर्म एक जाति और एक ईश्वर पर ही अधिष्ठित है" कहते हुए श्री नारायण गुरु समाज के सम्मुख उपस्थित हुए । उनके द्वारा किए गए नवोत्थान एवं सुधारवादी कार्य

---

1. उद्धृत - एम0 अच्युतन, "आशानुम देशीय नवोत्थानवुम्, नालन्दा- आशान स्मारक विशेषांक (1985) पृ. 36

केरलीय समाज को एक हद तक बदलने में सहायक साबित हुआ । वे ज ते के ईष्वा थे । इसलिए मुख्यतः उनका कार्य इस जाति के लोगों का उद्धा ‾ था । फिर भी वे केवल एक जाति तक सीमित न रहते हुए सभी अब्राह्मण जातियों की उन्नति केलिए काम करते रहे ।

केरल में इस प्रकार सांस्कृतिक नवोत्थान एवं समाज सुधार के लिए अनेक सामाजिक संगठनों का उदय हुआ । इनमें प्रमुख थे - एस. एन. डी. पी. -- §श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्§ एन. एस. एस. §नायर सर्विस सोसाइटी§ । एस. एन. डी. पी. की स्थापना सन् 1903 में श्री नारायण गुरु के नेतृत्व में हुई । इसने केरल की सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति में महत्वपूर्ण योद दिया । कई विद्यालय और अस्पताल खोले गए । आज भी शिक्षा के क्षेत्र में यह संस्था महत्वपूर्ण कार्य कर रही है । एन. एस. एस. का स्थापक मन्नत्तु पद्मनाभन है । अस्पृश्यता दूर करने में इनके द्वारा किया गया प्रयत्न विशेष उल्लेखनीय है । शिक्षा के क्षेत्र में इस संस्था का भी महत्व कम नहीं है ।

इन दोनों संस्थाओं के अलावा अय्यंकाली ने "साधुजन परिपालन योगम्" नामक संगठन की स्थापना की थी । यह हरिजनों की स्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न कर रहा है ।

इस प्रकार केरल में भी उत्तर भारत की तरह नवोत्थान से प्रेरित होकर कई सामाजिक उन्नति के कार्य संपन्न हुए हैं । समाज की उन्नति के साथ-साथ सांस्कृतिक स्थिति में भी उन्नति आ जाना स्वाभाविक भी है । आलोच्य कवि वळ्ळत्तोळ् इन नवोत्थानवादी कार्यों से अप्रभावित नहीं रहे ।

## 2.2. नवोत्थान का भारतीय साहित्य पर प्रभाव

नवोत्थान के फलस्वरूप भारतीय समाज में एक नई स्फूर्ति गयी । जीवन

की भी परिस्थितियों में परिवर्तन आने लगे । साहित्य के क्षेत्र में भी यह नव जागरण दिखाई पडा । काव्य, अर्थ, बिंब , संगीत आदि से सज्जित हुआ । इस प्रकार नवोत्थान ने भारतीय समाज को एक नया जीवन प्रदान किया । कलकत्ता के फोर्ट विलियम कालेज {सन् 1800} और पुरानी दिल्ली कालेज {सन् 1825} की स्थापना आधुनिकता का प्रत्यक्ष प्रमाण थी । भारत की सभी भाषाओं के साहित्यों में परिवर्तन आ गया । सबसे पहले नवोत्थान का प्रभाव बंगाली में हुआ था {सन् 1850} और आखिर कश्मीरी में{सन् 1930}। अन्य भाषाओं में नवोत्थान का प्रभाव 19 वीं शताब्दी के 7 से 9 तक के दशकों हुआ था । [1] परिवर्तन के इस काल में भारत-भर में पाश्चात्य जीवन और चिन्तन के प्रभाव से अनेक अनूदित और मौलिक रचनाओं का जन्म हुआ । इन रचनाओं में प्राचीन भारतीय आदर्शों के साथ साथ पाश्चात्य मानवीयता का भी प्रस्फुरण दिखाई पडता है । हिन्दी और मलयाळम् भाषा पर नवोत्थान का जो प्रभाव पडा है उसका अध्ययन आगे हो रहा है ।

## 2.3. आधुनिक हिन्दी साहित्य पर नवोत्थान का प्रभाव

राजाराम मोहनराय के प्रभाव से बंगाल में नवीन नीति-बोध का उद्भव हो सका और साहित्य का नई दिशा में विकास हो सका वैसा हिन्दी प्रान्तों में नहीं हो सका । अतएव स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रभावशाली प्रयत्नों से हिन्दी की आधारशिला को सुदृढ़ बनाने का कार्य किया । जिस समय हिन्दी के पूर्व-पुरुषों और धर्म-ग्रन्थों की एक ओर निन्दा हो रही थी उस समय में आर्यसमाज की पत्रकारिता ने वादविवाद, कटाक्ष और धार्मिक आलोच द्वारा लोगों का ध्यान आकृष्ट किया । इसके अतिरिक्त स्वामीजी संस्कृत पर

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भारतीय साहित्य चरित्रम्" - संपादक के.एम. जोर्ज, भाग-1, पृ. 324. {1982}

भी बल देते थे । उनके मत में संस्कृत ही भाषाओं की मूल थी । वही सारे हिन्दुओं की भाषा थी ।[1] संक्षेप में कहा जा सकता है कि आर्यसमाज ने ही हिन्दी की रक्षा करके आधुनिक युग के योग्य बना दिया है ।

2.3.1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आर्य समाज की प्रवृत्तियों का प्रभाव भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में स्पष्ट होने लगा । इस संक्रान्तियुग[2] में अंधविश्वासपूर्ण पौराणिक विचारों का विघटन एवं नवीन बुद्धिवादी दृष्टिकोण की स्वीकृति हुई । राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में बहुत विकास हुआ । सर्वप्रथम भारतेन्दुजी इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए । सामयिक अशांति की लहरों से अवगत होकर देश के जागरण का उत्तरदायित्व उन्होंने अपने ऊपर ले लिया । वे जानते थे कि भारतीय जनमानस की पुनःसृष्टि अतीत चित्रण द्वारा ही हो सकती है । उन्होंने अपने काव्यों में भारत के गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण किया । पौराणिक पात्रों की धीरता, वीरता, सत्यवादिता आदि के चित्रण में भी वे सफल निकले ।

नवोत्थान की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में अतीत का जो वर्णन हो रहा था उसके पीछे राष्ट्र-प्रेम सक्रिय काम कर रहा था । देश-प्रेम भारतेन्दु साहित्य का मूलस्वर था , फिर भी यहाँ अतीत का स्वर प्रमुख रहा है । उनके -- "भारत दुर्दशा" जैसे नाटकों में आए हुए प्रसंग इसके प्रमाण हैं ।[3] उनकी अन्य कृतियों में भी यह बात दर्शनीय है । अंग्रेज़ों के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. शंभूनाथ सिंह -" हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका"- पृ. 153.
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -"भारत दुर्दशा"- अंक-6
3. शिवकुमार शर्मा- "हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ "- पृ.423

आन्दोलन में पूर्ण रूप से भाग लेते हुए भी वे सामान्य जनता के जागरण में तन-मन से लगे हुए थे । हिन्दी साहित्य की क्रान्तिकारी परंपरा का यह प्रथम प्रवाह "जागरण वेला का यह मंगल गीत" प्रत्येक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं शिक्षाप्रद था । अनेक दृष्टियों से पौराणिक संस्कृति के होते हुए भी आंतरिक दृष्टि से भारतेन्दुजी ने नवीन जीवन के संचार द्वारा प्राचीन कविता में आधुनिक का समावेश किया ।

भारतेन्दुजी का युग एक प्रकार से प्राचीनता और नवीनता का संधियुग था । [1] इस काल के साहित्य में निरंतर अपनी वस्तुओं , भाषा संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार आदि को ग्रहण करने के उपदेश दिए गए हैं । प्रतापनारायण मिश्र का "लोकोक्ति शतक" इसका प्रमाण है । प्रेमधन जी ने "पितर प्रलाप" में अतीत गौरव का स्मरण करते हुए रघुवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं के गुण-गानों का चित्रण किया है । बालमुकुन्द गुप्त ने स्फुट क. [illegible] में प्राचीन भारत के तेज, प्रताप बौद्धिक गौरव , तथा यश का वर्णन किया है । प्रतापनारायण मिश्र का "तृप्यन्ताम्" वेद साहित्य तथा प्राचीन काल के आदर्श गुणों--- पातिव्रत्य, वीरता, तपस्या, भक्ति, विद्वत्ता तथा न्याय का उल्लेख करता है । प्रेमधन जी ने "वर्षा विन्दु" के अंतर्गत "चेतावनी" शीर्षक कविता में व्यास, पतंजली, मनु, पाणिनी , भृगु , कणाद , याज्ञवल्क्य , जैमिनी कपिल आदि सभी का स्मरण किया है । [2]

उपर्युक्त व्यक्तियों के अलावा जगन्नाथदास रत्नाकर और अयोध्यासिंह-उपाध्याय "हरिऔध" का नाम थोडे महत्व के साथ लिये जा सकते हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. शिवकुमार - "हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ"-पृ. 423
2. डा. कीर्तिलता -" भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी साहित्य"- पृ. 8-11

रत्नाकरजी ने मौलिकता के अर्थ को परिवर्तित किया था , फिर भी वे प्राचीन काव्यधारा के ही अनुवर्ती रहे हैं । हरिऔध जी के काव्य में यह प्रवृत्ति और भी सशक्त है । उनके "आर्यपंचक" नामक कविता हमारे बलवान , धीर , वीर गुणसंपन्न पूर्वजों के अद्भुत ऐश्वर्य का आदरपूर्वक वर्णन करती है । भारत की महान नारियों का भी वर्णन उनकी कृतियों में पाया जाता है । उनका "प्रियप्रवास" पौराणिक कथानक का युगानुरूप प्रस्तुति है । उन्होंने भी पौराणिक मूल्यों का प्रभावपूर्ण चित्रण करके उन्नत नैतिक तत्वों से समाज को परिचित कराया है ।

भारतेन्दुयुग में यद्यपि प्राचीनता का विकसित रूप हमें प्राप्त होता है फिर भी मध्यकालीन कुत्सित प्रवृत्तियों का पूर्णतः उन्मूलन नहीं हुआ था । [1] सच्चे अर्थों में आधुनिकता का पूर्ण विकास हिन्दी में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के पदार्पण से ही हुआ है ।

## 2.3.2. सांस्कृतिक नवोत्थान एवं द्विवेदीयुगीन काव्य

सांस्कृतिक नवोत्थान के परिणामस्वरूप द्विवेदी युग के सभी कवियों में युगानुसार विलक्षण क्षमता दिखाई देती है । उनमें युग की बदलती हुई भावनाओं को आत्मसात् करने की क्षमता भी दीख पडती है । भारत का अतीत गौरव एवं सांस्कृतिक उन्नति की स्थापना मुख्य होने के कारण कविता, कामिनी की लाक्षणिकता , चित्रमयी भावना , वक्रता आदि से दूर उसमें इतिवृत्तात्मकता को प्रधानता देने की प्रवृत्ति शुरू हुई । कवियों ने पौराणिक संस्कृति की बौद्धिक व्याख्या करना शुरू किया । क्योंकि बौद्धिकता के अभाव में कोरी प्राचीनता जनता को प्रभावित नहीं कर सकती थी और अंग्रेज़ी सभ्यता के रंग के

---

1. "हिन्दी साहित्य की सामाजिक भूमिका" - पृ. 165

साथ बहनेवाली भारतीय जनता केलिए यह आवश्यक भी था ।

सांस्कृतिक नवोत्थान की नवचेतना से प्रभावित प्रस्तुत युग के अग्रदूत पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं । हिन्दी साहित्य पर इनका प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण है । सन् 1906 में सरस्वती के संपादक बनकर उन्होंने हिन्दी की श की बागडोर अपने हाथों में ले ली । असमर्थ तुतलाती हिन्दी को सक्षम और प्रौढ़ रूप देकर उसके इतिहास को बदल दिया । उन्होंने साहित्य का ही नह नवीन युग का निर्माण किया ।[1] इस प्रकार संपूर्ण हिन्दी साहित्य द्विवेदी की अनन्य सेवा का फल माना जा सकता है । सचमुच वे उस मेघ जैसे हैं जिसने ज्ञान रूपी जलराशि देकर हिन्दी साहित्य के उपवन को हराभरा कर दिया द्विवेदी जी की प्रेरणा से अनेक कवि साहित्योन्नति में योगदान देने केलिए हो गए । इनमें सर्वश्री पद्मसिंह शर्मा , भीमसेन शर्मा , गिरिजाप्रसाद f चन्द्रधर शर्मा , गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, हरिशंकर मिश्र, किशोरी दत्त अमीर अली , शिवशंकर भट्ट , भगवती प्रसाद भट्ट, नित्यानंद शास्त्री श्यामनाथ शर्मा , धनुर्धर शर्मा , मैथिलीशरण गुप्त , लक्ष्मीधर वाजपेयी कवि थे ।[3] युग की मांग के अनुसार ये कवि कार्य करते रहे । f सिद्ध चित्रकार रविवर्मा के पौराणिक तैलचित्र ने भी इनमें पर्याप्त प्रे थी । इस प्रकार पौराणिक वृत्तों का यथेष्ट प्रयोग काव्यों में हो

द्विवेदीयुगीन साहित्य में सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ अधिक ज

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. डा. उदयभानुसिंह - "महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका
2. कुलवन्त कोहली - "युगनिर्माता द्विवेदी" - पृ. 23
3. डा. सुधीन्द्र - "हिन्दी कविता में युगान्तर"- पृ. 8

साथ बहनेवाली भारतीय जनता केलिए यह आवश्यक भी था ।

सांस्कृतिक नवोत्थान की नवचेतना से प्रभावित प्रस्तुत युग के अग्रदूत पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं । हिन्दी साहित्य पर इनका प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण है । सन् 1906 में सरस्वती के संपादक बनकर उन्होंने हिन्दी की शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली । असमर्थ तुतलाती हिन्दी को सक्षम और प्रौढ़ रूप देकर उसके इतिहास को बदल दिया । उन्होंने साहित्य का ही नहीं नवीन युग का निर्माण किया ।[1] इस प्रकार संपूर्ण हिन्दी साहित्य द्विवेदी जी की अनन्य सेवा का फल माना जा सकता है । सचमुच वे उस मेघ जैसे हैं जिसने ज्ञान रूपी जलराशि देकर हिन्दी साहित्य के उपवन को हराभरा कर दिया ।[2] द्विवेदी जी की प्रेरणा से अनेक कवि साहित्योन्नति में योगदान देने केलिए तैयार हो गए । इनमें सर्वश्री पद्मसिंह शर्मा , भीमसेन शर्मा , गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, चन्द्रधर शर्मा , गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, हरिशंकर मिश्र, किशोरी दत्त , सैयद, अमीर अली , शिवशंकर भट्ट भगवती प्रसाद भट्ट, नित्यानंद शास्त्री , श्यामनाथ शर्मा धनुर्धर शर्मा , मैथिलीशरण गुप्त , लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि कवि थे ।[3] युग की मांग के अनुसार ये कवि कार्य करते रहे । फिर युग के सिद्ध चित्रकार रविवर्मा के पौराणिक तैलचित्र ने भी इनमें पर्याप्त प्रेरणा फूँक दी थी । इस प्रकार पौराणिक वृत्तों का यथेष्ट प्रयोग काव्यों में होने लगा ।

द्विवेदीयुगीन साहित्य में सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ अधिक जागरूक हो गयीं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. डा. उदयभानुसिंह - "महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग- पृ. 33
2. कुलवन्त कोहली - "युगनिर्माता द्विवेदी" - पृ. 23
3. डा. सुधीन्द्र - "हिन्दी कविता में युगान्तर"- पृ. 83

इस काल में हिन्दी कविता को अपने विकास में अंग्रेज़ी कविता , संस्कृत काव्य साहित्य , हिन्दी की अपनी पुरानी काव्यधारा तथा बंगला कविता से विशेष सहायता मिली थी । [1] इस युग के काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ , राष्ट्रीय-विचारधारा मानवतावादी विचारधारा , नारी उद्धार , भाषा में परिवर्तन आदि हैं ।

2.3.2.1. राष्ट्रीयता

बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक नवोत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता द्विवेदी युग की प्रधान भावधारा बनी । मातृभूमि प्रेम और स्वदेश गौरव इस युग की कविता के प्राण थे । इस युग में कवियों ने देश की वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ प्रकट किया है । गुप्तजी की "भारत-भारती" लोचन-प्रसाद पांडेय की "उपदेश" रूप नारायण पांडेय की "मातृभूमि" आदि इस कोटि की कविताएँ हैं ।

देश की हीन दशा आलस्य , फूट, खुदगर्जी, मिथ्या कुलीनता आदि अभिशापों की ओर भी इस युग के कवियों की दृष्टि गयी । कविगण समस्त जनता विद्यार्थी, मज़दूर और किसान को देश की स्वतंत्रता और समृद्धि के लिए आत्मबलिदान देने को प्रेरित करते थे । रूप नारायण पांडेय "मातृभूमि" नामक कविता में घोषित करते हैं --

"जैन, बौद्ध , पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख ईसाई
कोटि कंठ से मिलकर कह दो - हम सब हैं भाई भाई । [2]

---

1. डा. नगेन्द्र -" हिन्दी साहित्य का इतिहास"- पृ. 470
2. मातृभूमि - दिसंबर-1913- "हिन्दी कविता में युगान्तर"- सुधीन्द्र -पृ. 245 पर उद्धृत

नेताओं का यश गान इस युग की विशेषता थी । स्वामी रामतीर्थ, तिलक, गोखले आदि की प्रशस्तियाँ गायी गयी थीं । देश-भक्ति के साथ साथ राज-भक्ति की भी प्रशंसा अनेक स्थानों में अनेक कवियों ने की हैं ।

2.3.2.2. मानवतावादी विचारधारा

इस समय काव्य में सामान्य मानव को गौरव प्राप्त होने लगा । कवि-लोग विश्व-प्रेम और मानवता की सेवा के पक्षपाती बने । दीनहीन कृषकों के दुःखों का भी बडा कारुणिक वर्णन इस युग में हुआ । गुप्तजी की "किसान" सनेह की "अनाथ" आदि कृतियाँ विशेष रूप से प्रस्ताव्य हैं ।

2.3.2.3. नारी उत्थान की प्रवृत्ति

द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रमुख विशेषता है नारी उत्थान । प्रस्तुत युग में भारतीय नारी का जीवन घर की चहार दीवारी में बंद था । स्त्रियों के प्रति होनेवाले अनाचारों के प्रति अनेक काव्य हुए । शंकर की "बिटिया-विलाप" सनेही की दहेज की कुप्रथा" आदि इसके उदाहरण हैं । "कान्य-कुब्ज-अबला विलाप" में महावीर प्रसाद जी ने अपने युग की नारी जीवन की दुर्दशा को प्रकट किया था । उसी प्रकार नारी शिक्षा की पुनःप्रतिष्ठा, अशिक्षा के कारण नारी दुःस्थिति आदि के बारे में भी काव्य हुए हैं । नाथूराम शंकर शर्मा ने "भारत-भक्ति" शीर्षक कविता में नारियों को शिक्षित करने और उनके प्रति सद्व्यवहार का प्रसार करने का बीडा उठाया है ।[1] इसके परिणाम स्वरूप स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने लगीं । इसी कारण काव्य में फिर नारीत्व के प्रति उच्च भावना का विकास हो रहा था ।

---

1. कृष्ण बिहारी मिश्र-" आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य"- पृ. 140

इन मुख्य प्रवृत्तियों के अलावा सामाजिक , आर्थिक-आन्दोलन, पुरोहितीय धार्मिक शोषण विरोधी भावना, उच्च वर्गीय शोषण-विरोधी भावना सामाजिक सांस्कृतिक भावना , जाति व्यवस्था-विरोध आदि विषयों के बारे में बहुत काव्य लिखे गए हैं । इस युग के काव्य आदर्श एवं नीति परक रहे हैं । इतिहास, पुराण आदि से गृहीत कथा प्रसंगों के अनुसार अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे गए । उन सभी में असत् पर सत् की विजय , स्वार्थ त्याग, कर्तव्य पालन, आत्म गौरव आदि उच्चादर्शों का वर्णन हुआ है ।

गुप्तजी के "साकेत", "रंग में भंग", "जयद्रथ-वध", "विकट भट", रामनरेश त्रिपाठी कृत "मिलन" आदि आदर्शवादी रचनाएँ ही हैं । [1] कवियों ने प्रेम को भी आदर्श रूप में ग्रहण किया था । "प्रियप्रवास", "साकेत" आदि में इसका उदात्त स्वरूप देखा जा सकता है । इस प्रकार प्रस्तुत युग के काव्य वैविध्यपूर्ण रहे हैं ।

काव्य भाषा का ब्रज से खड़ी बोली हो जाना इस युग की सबसे महत्वपूर्ण बात है । गुप्तजी लोचन प्रसाद पांडेय, आदि खड़ी बोली के कवि हैं । वस्तुत: द्विवेदी युगीन सुधारवादी काव्य का विकास इस बात का इतिहास है कि खड़ी बोली अपरिपक्वता, अव्यवस्था और अमार्दव से किस भाँति परिपक्वता व्यवस्था और मार्दव तक पहुँची । साहित्य क्षेत्र में यह सुधारवादी भावना भाषा शैली में परिमार्जन से लेकर उसकी स्वस्थ मानवतावादी मंगलमयी कामना तक प्रसारित हुई , जिसके परिणाम स्वरूप हरिऔध के प्रियप्रवास और मैथिलीशरण-गुप्त के "साकेत" जैसे स्वस्थ काव्य ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ । [2]

इस युग के प्रमुख कवि नाथूराम शंकर शर्मा §1859-1932§, श्रीधर पाठक

---

1. डा. नगेन्द्र -" हिन्दी साहित्य का इतिहास" - पृ. 500
2. रामाशिरोमणि "होरिल" -" आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप वर्णन"- पृ. 174

359-1928) महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) गया प्रसाद शुक्ल - सनेही (1883-1964), रामचरित उपाध्याय (1872-1938), मैथिलीशरण गुप्त (1886-1964), रामनरेश त्रिपाठी (1889-1962) आदि रहे हैं ।

द्विवेदी युग के गुप्तजी के बारे में एक बात ऐसी कहनी पडेगी कि गुप्तजी के बिना द्विवेदी युग का कोई भी परिचय या विश्लेषण अपूर्ण या अधूरा ही होगा । गुप्तजी इस आदर्शवादी युग के प्रतिनिधि कवि है । अतीत की स्तुति करते हुए वर्तमान पर व्यथा प्रकट करते हुए उज्ज्वल भविष्य केलिए संघर्ष करना, यही गुप्तजी के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दर्शन का मूल तत्व रहा है ।

## 2.4. गुप्तजी पर नवोत्थान का प्रभाव

प्रत्येक कवि के काव्य में युग का सफल प्रतिबिंब होता है । कवि जितना भी प्रभावशाली क्यों न हो वह अपने आंतरिक जगत् को समाज एवं परिस्थितियों से विलग नहीं रख सकता । युगानुकूल प्रवाह में बहते हुए युग के धर्म तथा उसकी मान्यताओं, दुर्बलताओं एवं विशेषताओं को अपने काव्य में चित्रित करता चलता है ।[1] गुप्तजी तो कविता में समसामयिक भावों के चित्रण पर बल देनेवाले थे । गुप्तजी का युग परिवर्तन और क्रान्तिकारी समस्याओं का युग था । समस्या पूर्ति के प्रस्तुत समय का सबसे प्रमुख विषय हिन्दू जाति का नवोत्थान था, जिसमें मूलत: पौराणिक बातें युगानुकूल नया अभिप्रेत ग्रहण कर रही थीं । यहाँ कवि ने भी पौराणिक आदर्शों को अपनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया । गुण और परिणाम की दृष्टि से नवोत्थान को गुप्तकाव्य में जितनी अभिव्यक्ति मिली है उतनी सारे हिन्दी साहित्य में उनके पूर्व या बाद में नहीं दिखाई पडती । अतीत की उज्ज्वल उपलब्धियों के चित्रण द्वारा कवि ने पौराणिक भारत की अमिट भावनाओं को अपनी रचनाओं में चित्रित करने

---

1. Literature has a peculiar merit of faithfully recording the features of the times and of preserving the most pictevesque and expressive representation of manners - Thomas Warton.
Quoted from : "Theory of Literature" - Page 103.

का प्रयास किया । उनकी रचनाओं में देश की अतीत संस्कृति के प्रति प्रेम और श्रद्धा विशेष रूप में पाया जाता है ।

2.5. गुप्तजी की अतीत विषयक मान्यताएँ

समय की मांग को प्रधानता देकर गुप्तजी ने अपने काव्यों में पौराणिक कथा-खंडों को प्रमुखता दी है । गुप्तजी के कथाचयन को लक्ष्य करते हुए डा. उमाकांत ने कहा है -" वे इतिहास से कोई घटना लेकर उसी पर अपनी कल्पना का प्रयोग करते हैं । किन्तु उनका इतिहास आज का मान्य इतिहास नहीं है । वे रामायण, महाभारत और पुराणों को भी उसके अंतर्गत परिगणित करते हैं । [1] "कविता किस ढंग की हो" में गुप्तजी ने स्वयं इसकी महानता पर प्रकाश डाला है । उनका विश्वास था कि ज्यों-ज्यों अतीत की खोज बढ़ती जाएगी त्यों-त्यों हमारा वर्तमान उज्ज्वल बनता जाएगा । [2] "रंग में भंग" में पूर्वजों की श्रेष्ठता गाने को कहा जयद्रथवध में पूर्वजों के शील की शिक्षा-तरंगों में बहने का उपदेश दिया और "भारत-भारती " में आकर बताया :-निज-पूर्वजों के सद्गुणों को यत्न से मन में धरो " । गुप्तजी जानते थे कि पराधीनता की सुप्त स्थिति में अतीत का गुणगान ही जागरण उत्पन्न कर सकेगी । मौर्य-विजय की भूमिका में उन्होंने कहा भी है -" यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और वह उस पर अभिमान करे तो उसका भविष्य भी गौरव-पूर्ण हो सकता है । ऐसा होते हुए भी केवल प्राचीनता का अनुगामी बनते हुए लकीर का फकीर बनना उनको अभीष्ट नहीं था । परिवर्तन को वे सहज रूप में स्वीकार करते थे । इसलिए वे कह सके -

---

1. "मैथिली शरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता"- पृ. 205
2. "भारत-भारती"- पृ. 72

प्राचीन बातों ही भली हैं यह विचार अलीक है
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है । [1]

गुप्तजी का विचार था कि युगीन परिस्थितियों के अनुकूल अपनी धारणाओं में निखार लाने से अस्वस्थता एकदम दूर हो जाएगी । लेकिन सभ्यता के कुचक्र में पडकर एकमात्र परिवर्तन को सत्य मानना कवि के विचारों के विरुद्ध है । वे स्पष्ट करते हैं -

परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं
किन्तु मुझे तो सीधे सच्चे पूर्व भाव ही भाते हैं । [2]

अपने युग की नवीनतम प्रगति से वे जागरूक थे । वे सामयिक मूल्यों के साथ पौराणिक महत्वपूर्ण तत्वों का संतुलन करते जाते थे । यहीं समन्वय उनकी सांस्कृतिक चेतना का मूलाधार है और अद्वितीय महत्ता का प्रथम कारण है । गुप्तजी का पारिवारिक वातावरण भी इसके लिए बिलकुल योग्य था । आस्तिकता और निष्ठा से सज्जित उनके घरेलू वातावरण में राम साहित्य का अध्ययन यहाँ विशेष महत्व की बात है । इसी परिस्थिति ने उनकी पनपती हुई श्रद्धापूर्ण नैतिक चेतना एवं प्राचीनता प्रेम को दृढ़तर बना दिया और अतीत वर्णन की पृष्ठभूमि में उन्होंने नवोत्थान की विविध प्रवृत्तियों का चित्रण किया ।

अतीत संस्कृति पर श्रद्धा रखते हुए भी गुप्तजी युगीन प्रवृत्तियों से अनवगत नहीं रहे । समकालीन युग की मुख्य प्रवृत्तियाँ, राष्ट्र प्रेम, मानव की महत्ता, नारी का उद्धार आदि रही हैं ।

---

1. "भारत-भारती"- पृ. 166
2. "पंचवटी"- पृ.

2.5.1. राष्ट्र प्रेम

नवोत्थान के प्रभाव से भारतीय जनता में जागरण का सूत्रपात हुआ और धीरे-धीरे प्रजातंत्रीय विचारधारा प्रमुख होती आयी । अनेक उद्बोधनात्म प्रवृत्तियों के कारण जनता में देशभक्ति का स्वर ज़ोर पकडता जा रहा था और वह जहाँ तक मानने लगी थी कि पराधीन देश में राज्यद्रोह पाप नहीं पुण्य है । महावीर प्रसाद द्विवेदी की राष्ट्रीय जागरण की वाणी से गुप्तजी बहुत प्रभावित रहे । उन्होंने देशभक्ति के स्वर को मुखरित कराने केलिए पौराणिक आख्यानों की पृष्ठभूमि तैयार की और बताया --

अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है । [1]

"जयद्रथ-वध" में कवि ब्रिटिश शासन रूपी अंधकार में मार्ग टटोलनेवाले भारतीयों को उपदेशों के सहारे प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं । "जयद्रथ-वध" से प्रवर्तित यह गुप्तजी की काव्यधारा "भारत-भारती", "हिन्दू", "साकेत" "पंचवटी" आदि से बहती हुई "जयभारत" में आकर पर्यवसित हुई ।

2.5.2. मानव की महत्ता

नवोत्थान की विभिन्न सुधारात्मक प्रवृत्तियों ने मानवतावाद की श्रेष्ठता प्रदान की । रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती आदि ने समाज को अंधविश्वासों से बाहर लाने का प्रयास किया । हरिजनों का उद्धार उनकी नीति रही । उनके प्रयत्नों से जाति-पाँति का भेदभाव मिटने लगा । "जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः" वाले पौराणिक कथन को मान्यता प्राप्त हुई । इसका प्रभाव गुप्तजी में भी पडा । अस्पृश्यता निवारण और सर्वधर्म समन्वय पर ज़ोर देते हुए कवि ने "एक अतुल हम सबका मूल , हमको भिन समझना भूल" कहकर मानव मात्र को प्रमुखता प्रदान की । इसकी प्रतिछाया

---

1. "जयद्रथ-वध" - पृ. 5.

उनकी सभी रचनाओं पर पडी है । इसका विस्तृत अध्ययन आगे अध्यायों में हो रहा है ।

### 2.5.3. नारी का उद्धार

नवोत्थान ने नारी संबन्धी मध्यकालीन अंधविश्वासपूर्ण विचार का भी अंत कर दिया । नवीन युग के बुद्धिवाद ने स्त्रियों को ऊँचा उठने का अवसर दिया । आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप भारतीय जनमानस में, यह भाव जगा कि नारी निन्दा का पात्र नहीं बल्कि पूजा की अधिकारिणी है । आर्य समाज आदि संस्थाओं ने नारी जागरण केलिए विविध कन्या-विद्यालय खोल दिए । भारत भर में नारी की जागृति की शुरूआत हुई । गुप्तजी ने अपनी अमर रचना "भारत-भारती" में प्राचीन नारी के उज्ज्वल रंग से अवनति ग्रस्त आधुनिक दुरवस्था में पडी नारी की तुलना करके उसके जागरण में विशेष योग दिया । सांस्कृतिक इतिहास की उपेक्षिताओं को उन्होंने वाणी दी । उर्मिला, यशोधरा, विधृता आदि काव्य-मंच पर साकार हो उठीं । इन बातों का भी गहरा अध्ययन आगे के अध्यायों में हो रहा है ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गुप्तजी, तत्कालीन समाज की नूतन-प्रवृत्तियों से दूर नहीं रह सकते थे । नवोत्थान की हरेक सुधारात्मक प्रवृत्ति से गुप्तजी अवगत और प्रभावित रहे हैं । जहाँ तक हो सके, कवि अपने काव्यों के ज़रिए जनता को नवोत्थान की देन के बारे में सचेत करने का प्रयास भी करते रहे ।

### 2.6. नवोत्थान का केरल के साहित्य पर प्रभाव

भारत के सभी देशों पर नवोत्थान का गहरा असर पडा था । सुदूर दक्षिण का केरल भी नवोत्थान के प्रभाव से वंचित न रहा । आधुनिक हिन्दी काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में गुप्तजी के पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीर-प्रसाद द्विवेदी ही हमारे सामने आते हैं । लेकिन मलयालम की बात अलग है ।

यहाँ वळ्ळत्तोळ् के पूर्व एक महान परंपरा को ही हम देख सकते हैं । इसका मुख्य कारण हिन्दी और मलयालम के आधुनिक काल के बीच का अंतर है ।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जबकि संपूर्ण भारतीय साहित्य में पाश्चा संपर्क के कारण पुनरुत्थान हो गया था , तब मलयालम साहित्य में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पडी । अब तक शुद्ध मलयालम भाषा शैली में लिखित साहित्य में फिर पुराने मणिप्रवाळ् याने भाषा संस्कृत मिश्रित शैली को लाने का प्रयास वेण्मणि अच्छन् और महन {वेण्मणि पिता और पुत्र} इन दो कवियों ने किया । इनके द्वारा चलाया गया काव्यांदोलन "वेण्मणि आन्दोलन्" नाम से विख्यात है । इनका काल बीसवीं शती के प्रथम दशक तक व्याप्त था । इनके समकालीन अन्य प्रसिद्ध कवि हैं केरलवर्मा वलियकोइत्तंपुरान्, राजराजवर्मा , कोट्टारत्तिल शंकुण्णि, पंतलम् केरलवर्मा आदि ।

काव्य के क्षेत्र में इस समय जो पुनरुत्थान हुआ, इसके पीछे अनेक पत्र-पत्रिकाओं का हाथ है । मलयाळ मनोरमा, रसिक रंजिनी, विद्या-विनोदिनी भाषा-पोषिणी विद्याविलासिनी आदि इनमें प्रमुख हैं ।

वेणमणि कवियों के समय दक्षिण केरल के , प्रसिद्ध कवि और लेखक थे केरलवर्मा वलियकोयित्तंपुरान् । ये संस्कृत के बडे पंडित थे । इन्होंने जब संस्कृत से "शाकुन्तलम्" का अनुवाद मणिप्रवाळम् शैली में किया , तो इनकी कीर्ति बढ़ गयी । इसके बारे में "आधुनिक मलयालम् साहित्य" में लिखा गया है -" मलयाल में इसके पहले एक नाटक कृति स्वतंत्र रूप में , या अनुकरणात्मक रूप में रचित नहीं थी ।[1] इनकी शैली सरल न होने के कारण काव्य के क्षेत्र में उनका अनुकरण करने वाले बहुत कम ही हुए । लेकिन केरलवर्मा अपनी शैली की गंभीरता और विशेषता से विचलित नहीं हुए । इस समय मलयालम साहित्य में ऐसी-ऐसी

---

1. पी.के. परमेश्वरन नायर" {1984} "आधुनिक मलयाल साहित्य"- पृ. 253

घटना हुई जिसने काव्य की गति-विधियों में भारी परिवर्तन कर दिया ।

पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा जब कविगण अपना पांडित्य प्रदर्शन करने लगे तब मनोरमा दैनिक पत्र में किसी ने द्वितीयाक्षर प्रास की उपादेयता पर एक लेख लिखा । इस लेख के फलस्वरूप कवि-लोग दो दलों में विभक्त होकर प्रासवाद के पक्ष और विपक्ष में वाद-विवाद करने लगे । केरलवर्मा, कुन्जिकुट्टन तंपुरान आदि प्रासवाद के पक्ष में और राजराजवर्मा पुन्नश्शेरि तंपी आदि इसके विपक्ष में थे । इनके बीच आंदोलन चलते रहे । अंत में उनके उन्नायकों को स्वयं मालूम हुआ कि शब्द और अर्थ दोनों के समुचित प्रयोग पर ही काव्य की सुकुमारता बनी रहती है । अब आंदोलन भी शांत हुआ । इसके फलस्वरूप मलयालम् साहित्य को कई अच्छे काव्य उपलब्ध हुए और आगे चलकर वह काव्य में नई रूपविधा एवं प्रवृत्तियों के जन्म का कारण भी हुआ ।

द्वितीयाक्षर प्रास के बाद मलयालम साहित्य क्षेत्र में महाकाव्यों का एक युग आरंभ हुआ । महाकाव्यों के उदय के पीछे केरलवर्मा एवं राजराजवर्मा के हाथ थे । दोनों दो नेतृ स्थानों में रहकर उल्लूर. एस. परमेश्वर अय्यर और के. सी. केशव पिल्लै द्वारा अपने विद्वेष को आगे बढ़ा रहे थे । मलयाळम् का पहला महाकाव्य अष्कत्तु पद्मनाभ कुरुप का "रामचन्द्रविलासम्" है । उसके बाद उल्लूर ने "उमाकेरळम्" लिखा तो उसके विपरीत केशव पिळ्ळै ने "केशवीयम्" लिखा आगे चलकर महाकाव्यों के इस स्थान को खण्डकाव्यों ने ले लिया । केरलवर्मा लिखित "दैवयोगम्" इस नवीन विधा को सूचित करता है । केरलवर्मा कालीन एक अन्य प्रसिद्ध कवि हैं कोडुङ्डल्लूर कुन्जिक्कुट्टन् तंपुरान् । उनकी अधिकांश रचनाएँ पुराणों पर आधारित हैं । केरलवर्मा कालीन कवि सामन्तीय सभ्यता के अंतिम खेमे के थे ।

उन्नीसवीं शती के आखिरी चरण में दो प्रकार के काव्य-सृजन हुए-- संस्कृत से अनुवाद एवं स्वतंत्र काव्य । स्वतंत्र रचनाएँ अधिकांशतः नाटक रहे हैं

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में मलयालम में जो आख्यानात्मक निबन्ध व खण्डकाव्य हुए, उनमें मलयालम की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का आरंभिक रूप उपलब्ध है। श्री. के. सी. केशवपिल्लै का "आसन्नमरण चिन्ताशतकम्" कुन्जिक्कुट्टन् तंपुरान का "पालुल्लियचरितम्", नारायण मेनोन का "कोमप्पन्" आदि इस नई प्रवृत्ति के काव्य हैं।

केरल का काव्य क्षेत्र उपर्युक्त ढंग से नई प्रवृत्तियों को जन्म दे रहा था, कि हमारे आलोच्य कवि वळ्ळत्तोळ् ने अपनी रचना "ऋतुविलासम्" को सन् 1900ई में "कवनोदयम्" में प्रकाशित किया, जो मलयालम काव्य केलिए नवीन सूत्र का नवसंदेश था।

## 2.7. वळ्ळत्तोळ् पर नवोत्थान का प्रभाव

समकालीन युग का प्रभाव जिस प्रकार गुप्तजी पर पडा है उसी प्रकार वळ्ळत्तोळ् पर भी पडा है। भारतीय नवोत्थान से और केरल के नवोत्थान से संबन्धित आंदोलनों से वळ्ळत्तोळ पृथक् नहीं रहे हैं। उनकी कृतियों में सामयिक समस्याओं का प्रतिफलन सशक्त रूप में हुआ है। युग की माँग को स कर वळ्ळत्तोळ् ने भी पौराणिक विषयों को काव्य-सृजन की सामग्री बना दिय प्राचीन संस्कृति के बहुमूल्य तत्वों को नवीन संदर्भ में प्रस्तुत करने में वे पूर्णतः र हुए हैं। समकालीन गतिविधियों को सूक्ष्म रूप से परख कर, प्रगति के मार्ग अपना कर्तव्य क्या है, यह वळ्ळत्तोळ ने अच्छी तरह पहचान लिया था। प्राचीन भारतीय संस्कृति की पवित्रता को क्षति पहुँचाने वाली शक्तियों का करना उनका लक्ष्य रहा है।[1] उनका विश्वास था कि पौराणिक संस्कृ अलावा कोई भी अन्य वस्तु या शक्ति अधःपतित भारतीय जनता को उन्न मार्ग पर अग्रसर नहीं कर सकती। इसी विश्वास पर वे अटल रहे। वळ् के काव्य दर्शन और साहित्य स्रोत एक महान भूतकालीन संस्कार की महान के भाग हैं। इस गत-संस्कृति से उन्होंने कालानुकूल एवं उपयोगी तत्वों

---

1. वळ्ळत्तोळ् पौर्णमि - पृ. 2-3

किया । उनका पारिवारिक और शैक्षणिक वातावरण भी इस महान प्रवृत्ति के अनुकूल रहा है । इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् तत्कालीन जनसामान्य को सचेत करने का महान प्रयास करते रहे ।

## 2.8. वळ्ळत्तोळ् की अतीत विषयक मान्यताएँ

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् ने भी पौराणिक प्रसंगों की युगानुकूल व्याख्या करके समय की माँग की पूर्ति करने का महान कार्य किया है । उनके कवि हृदय को अच्छी तरह पहचानकर महाकवि जी. शंकरक्कुरुप्पु ने कहा है - "वळ्ळत्तोळ् की समकालीन कविताएँ अंतरात्मा को स्पर्श करनेवाली देश-भक्ति एवं सुदृढ़ अहिंसावादी आंदोलन के विश्वास से सज्जित और दीप्त आत्मा की मंत्रध्वनि ही रही हैं । उन कविताओं की पौराणिक संस्कृति के अभिमान , ने हमारी तत्कालीन साहित्य को आनन्द पुलकित किया था । [1] "पुराणङ्ङळ्" में वे प्राचीन महाशयों की प्रौढ़ता, धीरता एवं उदारता की चर्चा करते हुए पुराणों की ओर लौटने पर बल देते हैं । यहाँ नवोत्थान के प्रभाव की अच्छी झलक हम देख सकते हैं । "गणपति", "अच्छनुम् मकळुम्" "शिष्यनुम् मकनुम्" आदि खण्डकाव्यों में भी वे पौराणिक मूल्यों का पुनराख्यान करके उन मूल्यों को सामयिक बनाने की कोशिश करते हैं । साहित्यमंजरियों की छोटी छोटी कविताओं में भी कवि का यह स्तुत्य प्रयास हम पा सकते हैं । "भारत स्त्रीकळ्तन् भावशुद्धि" "मुट्टत्ते तुलसी", "कर्मभूमियुडे पिन्चुकाल्", "इन्द्रनुम् माबलियुम्" आदि इस कोटि की सशक्त कविताएँ हैं । वे कालोचित एवं सार्वजनिक नीति तत्वों को उनकी रचनाओं में स्थान देते हैं । नवोत्थान का संदेश जनसामान्य तक पहुँचाते हुए कवि कहते हैं --

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "वळ्ळत्तोळ् पौर्णमि" - पृ. 38

"भूतकालत्तिन् प्रभावतन्तुक्कळाल्
भूमिमत्तायोरु भाविये नेयुकनाम् "

§भूतकाल के प्रभावशाली तत्वों के आधार पर ही हमें एक ऐश्वर्यपूर्ण भविष्य का निर्माण करना है । § भविष्य निर्माण के बारे में गुप्तजी का भी यही विचार है ।

पौराणिक तत्वों एवं आदर्शों पर अतीव श्रद्धावान् होने के बावजूद भी वळ्ळत्तोळ् प्राचीनता का अंधानुकरण करनेवाले नहीं हैं । समकालीन समस्याओं से वे पूर्ण रूप से अवगत थे । उनकी कृतियों मे राष्ट्र-प्रेम , मानव की महत्ता, नारी उद्धार आदि मुख्य युगीन प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिफलन हम देख सकते हैं ।

2. 8. 1. राष्ट्र प्रेम

राष्ट्रीय विचारधारा नवोत्थान की महत्त्वपूर्ण देन है । इस राष्ट्र प्रेम के कारण ही तत्कालीन साहित्यकार पौराणिक मूल्यों की खोज में निकल पडे थे । नवोत्थान की उद्बोधनात्मक प्रवृत्तियाँ वळ्ळत्तोळ् की रचनाओं में कम नहीं हैं । जैसा कि आगे कहा जा चुका है , वळ्ळत्तोळ् पौराणिक मूल्यों की क्षति और अवनति कभी भी सह नहीं सकते थे । वे ब्रिटीश शासन के बडे विरोधी थे । "कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्" में वे दावा करते हैं कि इस कर्मभूमि के नन्हे पाँव ही तुम्हारे अनीतिपूर्वक शासन को मिटाने केलिए पर्याप्त हैं । [1] -"इन्द्रनुम्-माबलियुम्" में भी कवि अनीतिपूर्ण शासन का विरोध करके, राष्ट्र प्रेम का परिचय देते हैं । उनकी साहित्य मंजरियों की अन्य अनेक कविताओं में भी राष्ट्र-प्रेम , पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है । इसका विस्तृत अध्ययन छठे अध्याय में हो रहा है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: भाग-4 - पृ. 17

2.8.2. मानव की महत्ता

तत्कालीन पुनरुत्थानवादी एवं सुधारवादी आंदोलनों के फलस्वरूप मानवतावाद का विकास हुआ और मानवतावादी दृष्टिकोण का महत्व बढ़ा एवं इन सबका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा । गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी मानवतावाद के पक्षपाती रहे हैं । प्राचीन मूल्यों का आधार-भूत तत्व ही मानव एवं मानवता की महत्ता है । कवि केलिए कोई जाति भेद या वर्ण भिन्नता नहीं थी । यह विश्व ही उनका परिवार था । उनके लिए जाति नरक से उत्पन्न दो अक्षर थे, जो विश्व के लिए विनाशकारी थे । उनके युग में जाति मानव के बीच में दीवार बनाकर विच्छिन्नता फैलानेवाली थी । याने जब वर्ण-भेद का आधार कर्म अथवा प्रवृत्ति न होकर जन्म हो गया तब स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ गई और मानव का पतन हुआ । -- ए. श्रीधर मेनन ने लिखा है -- "वह समय ऐसा था कि लोगों का नैतिक बोध नष्ट हो चुका था । इसका प्रमुख कारण जाति-व्यवस्था पर सामन्तवाद या पूँजीवाद का बुरा प्रभाव था ।[1] इस पूँजीवाद का भी कवि घोर विरोध करते हैं । उनकी "कारक्कण्ड कर्षकन्" "कर्षक जीवितम्", "माप्पु" आदि अनेक कविताएँ इस कोटि की हैं । इस प्रकार कवि अपनी रचनाओं में, नवोत्थान की प्रेरणा पाकर मानव की महत्ता की स्थापना का कार्य करते हैं ।

2.8.3. नारी का उद्धार

नवोत्थान की सबसे महान प्रवृत्ति थी नारी जागरण । उन्नीसवीं शताब्दी में नारी की दयनीय अवस्था की ओर समाज सुधारकों का ध्यान गया । सामाजिक क्रान्ति केलिए नारी के प्रति अत्याचार मिटाकर उसे पुरुष वर्ग के समान ही समता प्रदान करना आवश्यक बन गया । रामविलास शर्मा लिखते हैं -

---

1. श्रीधर मेनन (1978) "केरल चरित्रम्" पृ. 33।

"देश के राजनीतिक सांस्कृतिक जीवन में तब तक पूरी शक्ति नहीं उठ सकती जब तक समानता के आधार पर उसमें पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी भाग न लेंगी । हमारे देश के लोग इस समय एक हाथ से काम करते हैं । उनका दूसरा हाथ निष्क्रिय है । जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जाएँगे तभी कार्य की सफलता हमें प्राप्त होगी । [1] आर्य समाज आदि विविध संस्थाओं के प्रभाव में वळ्ळत्तोळ् भी तत्कालीन नारी की पतित अवस्था को सुधारने का प्रयास करते रहे । उनकी कृतियों में प्राचीन नारी के आधुनिकीकरण और नवीन नारी की धीरता एवं कर्मोन्मुखता का सामंजस्य हम देख सकते हैं । उनके सभी नारी पात्र युगानुकूल एवं स्वाभिमानी हैं । उनकी , शकुन्तला उषा, पार्वती, राधा आदि आधुनिक युग की समस्याओं के समाधान के रूप में उपस्थित हैं ।

इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् भी गुप्तजी की तरह समय की माँग सुनकर उसके अनुसार युगानुकूल कार्य करने में जागरूक रहे ।

इस प्रमुख सामयिक समस्याओं के अलावा धार्मिक एवं शिक्षा की स्थिति में सुधार , रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का विरोध आदि बातों पर भी दोनों कवि कार्य कर रहे थे । संक्षेप में कहा जा सकता है , तत्कालीन समाज के दोषों को जैसे - धार्मिक विघटन , बाल-विवाह , विधवा की दुर्दशा जाति-भेद, अंध-विश्वास, समुद्र यात्रा का निषेध , स्त्री-शिक्षा निषेध , जाति बहिष्कार आदि समस्याओं को देखकर उन्हें सुलझाने का प्रयास दोनों कवियों ने किया है । इस नवोत्थान का उद्देश्य मानव और संसार को पहचानना था । [2]

## 2.9. निष्कर्ष

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भारत के संक्रमण कालीन कवि हैं । समाज-सुधार के क्षेत्र में आविर्भूत सभी समाजों के प्रति दोनों कवि अवगत थे । इन समाजों के सुधारवादी आन्दोलनों से दोनों कवि परिचित भी रहे हैं । "आर्य समाज"

---

1. निराला की काव्य साधना- पृ. 36
2. मलयालम भाषा विश्व विज्ञान कोश (1972) पृ. 542

एवं "ब्रह्म समाज" का असर दोनों कवियों पर प्रचुर मात्र में पड़ा है । जब उत्तर भारत में आर्य समाज , ब्रह्म समाज , प्रार्थना समाज , थियोसोफिकल - सोसाइटी आदि का उदय हुआ तो केरल में , श्रीनारायण गुरु, चट्टंपिस्वामिकळ् अय्यंकाली आदि के नेतृत्व में सुधार वादी संस्थाओं की स्थापना हुई थी । वळ्ळत्तोळ् उत्तर और दक्षिण की सभी नवोत्थानवादी एवं सुधारवादी आंदोलनों से अभिज्ञ रहे । इन सभी आन्दोलनों का लक्ष्य सांस्कृतिक पुनर्जागरण से समाज-सुधार था । प्राचीन भारतीय संस्कृति के मानवतावादी तत्वों की बुद्धिवादी व्याख्या करके चेतनाहीन भारतवासियों को नवोत्थान की ओर आकृष्ट करने का प्रयास सभी संस्थाओं ने किया है । इस प्रवृत्ति से प्रभावित होकर गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् भी अपनी रचनाओं में , प्रस्तुत प्राचीनता को प्रमुखता देते रहे । दोनों कवियों की रचनाओं में तत्कालीन समाज की मुख्य प्रवृत्तियों का जो प्रतिपादन हुआ है , वह उनकी अतीत विषयक मान्यताओं के साथ ही हुआ है । इस प्रकार सांस्कृतिक नवोत्थान से प्रभावित होकर गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् समकालीन समाज की उन्नति केलिए सच्चे अर्थ में प्रवृत्त रहे ।

*****************

# तृतीय अध्याय

## मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ्-
## के काव्यों में पौराणिक कथा - प्रमुख प्रसंग

# तृतीय अध्याय

## मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ्-

## के काव्यों में पौराणिक कथा -प्रमुख प्रसंग

भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बहुत विशाल एवं पुरानी है । ऐसा कहना कभी असंगत नहीं होगा कि पौराणिक भारतीय संस्कृति ने ही संसार को सबसे पहले साहित्य, विज्ञान, कला आदि से परिचित कराया था । विज्ञान , साहित्य , कला आदि विधाओं का मूल-स्रोत आर्ष-भारत के अमूल्य संस्कृत ग्रन्थ-पुराण हैं । पुराणों की उत्पत्ति के बाद के सभी साहित्य किसी न किसी प्रकार पुराणों से संबन्ध रखते हैं । वाल्मीकि , व्यास आदि के बाद भास , कालिदास , भवभूति से लेकर आज तक के साहित्यकार काव्य सृजन केलिए पुराणों का सहारा लेते हैं । हमारे आलोच्य कवि मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् भी पुराणों की ओर अतीव आकृष्ट रहे हैं । दोनों कवियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि संस्कृत साहित्य से ओतप्रोत थीं । दोनों अपने बचपन से ही संस्कृत साहित्य के अध्ययन में निपुण रहे हैं ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् अपनी छोटी सी आयु में ही काव्य सृजन करने लगे थे । उनका रचनाकाल आधुनिक भारतीय इतिहास का संक्रमण काल था । भारत-माता जो संस्कृति और संपत्ति से विभूषित थी सो, आलोच्य कवियों के रचनाकाल की शुरूआत में पराधीनता की जंजीरों में पडकर कष्टता झेलती थी तत्कालीन भारतीय जनता अपने पूर्वजों की महिमा और धीरता को एकदम भूलकर अकर्मण्य जीवन बिता रही थी । तब भारतीय जनता को उस सुषुप्ति से जगाने केलिए राजाराम मोहन राय स्वामि दयानन्द सरस्वति रामकृष्ण-परमहंस , स्वामि विवेकानन्द आदि पुनरुत्थान के संदेश लेकर समाज में उपस्थित हुए । उन्होंने स्वाभिमान हीन जनता को पुराणों की अमृत धारा में आप्लावि

करके तत्कालीन पराधीनता से अवगत कराया और पराधीनता की ओर आवाज़ बुलन्द करने केलिए उत्तेजित किया । इस प्रकार भारत में एक सांस्कृतिक एवं वैचारिक पुनरुत्थान का सूत्रपात हुआ । मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् ने भी, इन समाज सुधारकों के ही पथ में रहकर अपनी रचनाओं के द्वारा वही काम करने का प्रयास किया है । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त उत्तर भारत में रहकर वहाँ की जनता को एक नया जीवन प्रदान करने का प्रयास करते रहे । उसी प्रकार उसी समय सुदूर दक्षिण में रहकर महाकवि वळ्ळत्तोळ् भी वही कार्य करते रहे । वळ्ळत्तोळ् वास्तव में संग्राम भूमि के बहुत दूर रहते हुए भी भारत-माता का करुण क्रन्दन सुनते रहे । दोनों कवि अपने काव्यामृत से जनता को उद्बोधित करने का प्रयास करते रहे ।

वळ्ळत्तोळ् एवं गुप्तजी ने काव्य सृजन केलिए पुराणों को ही मूल स्रोत के रूप में चुन लिया था । दोनों ने महाभारत , रामायण , भागवत , वेद , उपनिषद और अन्य पुराणों का गहरा अध्ययन किया था । इसी कारण से उनका काव्य जनता को वेदों की ओर लौटने का इशारा देता रहा । इस प्रकार पौराणिक आख्यानों की सहायता से रचना करके दोनों कवियों ने चेतनाहीन जनता को जगाकर, तत्कालीन पीडित अवस्था के खिलाफ़ आंदोलन करने के योग्य बना दिया । उनके काव्यों की पौराणिक कथाओं को तीन प्रकार से-महाभारत पर आधारित , रामायण पर आधारित और अन्य पुराणों पर आधारित विभाजित किया जा सकता है । इसका विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में हो रहा है ।

## 3. 1. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में महाभारत की कथा - मुख्य प्रसंग

### 3. 1. 1. महाभारत

वाल्मीकि और व्यास तिमिराच्छन्न जनसमुदाय को "तमसो मा ज्योति के अनुसार प्रकाश की ओर आनयित करते रहे हैं । अपनी रामायण और महाभा

जैसी अमूल्य कृतियों द्वारा इन्होंने भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास को समुज्ज्वलित किया । मानव के चिन्तन के विकास में जीवन के मूल तत्व, धर्मार्थ काम मोक्ष से संबन्धित विविध दर्शनों का अभ्युदय जो हुआ उसका किसी न किसी रूप में महाभारत में चित्रण हुआ है, यही महाभारत का महत्व है । यह ग्रन्थ समूचे साहित्य का प्रतिरूप और भारतीय ज्ञान परंपरा का विश्वकोश है । काव्यत्व, भाषा वर्णन-शैली आदि बातों में महाभारत अपना सानि नहीं रखता ।

कर्तव्यपालन और धर्माचरण इसका मूल प्रतिपाद्य है । जीवन का परमोत्कर्ष धर्म के पालन में है और धर्मभ्रष्ट मानव का सर्वनाश होता है । इसलिए धर्म का प्रतिपादन करनेवाला, महाभारत उसे जीवन की संहिता मानता है । इसमें कहा गया है

धारणाद् धर्ममित्याहुः धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यत् स्यात् धारण संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः । [1]

महाभारत का यह धर्म मूलतः परोपकार पर प्रतिष्ठित है "धर्मोरक्षतिरक्षितः" इसका मूल मंत्र है और "यतोधर्मस्ततोजयः" की मूल ध्वनि को घोषित करता हुआ चलता है ।

महाभारत पंचम वेद कहा जाता है । अन्य चारों वेदों के विपरीत यह ग्रन्थ, जाति-भेद, सांप्रदायिकता, आदि को नहीं मानता । स्वयं व्यास मुनि ने इसका माहात्म्य स्पष्ट किया है कि जो मनुष्य चारों वेद, उपनिषद, वेदांग आदि के पंडित हो किन्तु इस आख्यान को नहीं जानता विचक्षण नहीं कहा जा

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. महाभारत - आदि पर्व-अध्याय- 109-श्लोक-11

सकता । सभी ग्रन्थों का सारतत्व होने के कारण महाभारत का रद और महत्व सब ग्रन्थों से बढकर है । [1]

पंद्रह सौ वर्षों से भारतीय जनता के मनोरंजन , शिक्षा तथा ज्ञान-वृद्धि का कारण-रूपी यह ग्रन्थ परवर्ती कवियों केलिए अत्यधिक प्रेरक रहा है । स्वयं महाभारतकार ने कहा है कि महाभारत अनेक आधुनिक कवियों का उपजीव्य रहा है । [2] महाभारत ने परवर्ती संस्कृत साहित्य को पूर्णतः प्रभावित किया है । कालिदास का "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" भास के अधिकांश नाटक {पंचरात्र , दूतवाक्य , मध्यमव्यायोग दूतघटोत्कच , कर्णभार , ऊरुभंग} भट्टनारायण का वेणी संहार" आदि इनमें प्रमुख हैं । महाभारत के कथानक को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करनेवाला "चंपूभारत" , "युधिष्ठिर विजय", "शिशुपाल वध", "नैषध चरित", किरातार्जुनीय" आदि काव्य सर्व प्रसिद्ध हैं ।

संस्कृत के अलावा अधिकांश भारतीय साहित्यों पर महाभारत का प्रभाव अक्षुण्ण है । हिन्दी साहित्य प्रारंभ से ही इस ओर झुका हुआ था । काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में ऐसे अनेक ग्रन्थों का विवरण मिलता है । गुप्तजी के पूर्व जरासंध वध {1874} कृष्ण सागर {1875}, देवयानी {1886}, महाभारत दर्पण {1891}, धनंजय विजय {1892}, कृष्णायन {1903}, संग्रामसार {1905} आदि ग्रन्थ लिखे गए हैं । आदि काल में लिखा गया "पंचपांडव रास" महाभारत पर आधारित है । भक्तिकाल के अंतर्गत सबलसिंह चौहान का महाभारत, कुलपति मिश्र का संग्रामसार महाभारत के विविध पर्वों का हिन्दी रूपांतर आदि उल्लेखनीय है । आधुनिक काल में

---

1. सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यों भविष्यति । पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः
   म:भ:आ:प:अ. 1. श्लो. 92
2. अष्टादश पुराणानि धर्म शास्त्राणि सर्वशः वेदाः साङ्गस्तथैकत्र भारतं चैकत् महत्वाद् भारवत्वाच्च महाभारत मुच्यते । "महाभारत-माहात्म्य" स्थितम् ।

आकर अपने आलोच्य कवि इस ग्रन्थ से अधिक प्रभावित रहे हैं ।

3.1.1.1. गुप्तजी पर महाभारत का प्रभाव

गुप्तजी लगभग पचास सालों तक महाभारत विषयक रचनाएँ करते रहे । अपने काव्य सृजन की शुरूआत से ही उन्होंने इस महान ग्रन्थ का सहारा लिया है । रविवर्मा के चित्रों पर आधारित रचनाएँ जो "सरस्वती" में प्रकाशित होती थीं अधिकांशतः महाभारत पर आधारित थीं । "उत्तरा और - अभिमन्यु", "कीचक की नीचता" §1969§, "उत्तरा का उत्ताप", §1909§ आदि इस श्रेणी में आती है । इसके साथ ही इसी साल उन्होंने "उत्तरा से - अभिमन्यु की विदा", "द्रौपदी दुकूल", "केशों की कथा", "अर्जुन और उर्वशी", "भीष्म प्रतिज्ञा", "प्रणपालन", "अर्जुन और सुभद्रा", "द्रौपदी हरण", "कुन्ती- और कर्ण" आदि प्रमुख कृतियों की रचना कीं । ये सब कविता-कलाप में प्रकाशित हुई थीं । इनके अतिरिक्त "सरस्वती" में "धृतराष्ट्र का द्रौपदी को वरदान", "धृतराष्ट्र और संजय", "उत्तरा और बृहन्नला" "विदुरवाणि" आदि रचनाएँ 1908 से 1910 तक प्रकाशित हुईं । महाभारत परंपरा का यह प्रारंभिक अनुकरण उनके साहित्य में विशेष महत्त्व रखता है ।

गुप्तजी महात्मा व्यास के विशेष उपासक रहे हैं । "मंगलघट" के अंतर्गत व्यास महिमा गाते हुए उन्होंने इसकी स्थापना की है ।[1] गुप्तजी पर महाभारत का रामायण से कहीं अधिक प्रभाव पड़ा है । उनपर महाभारत के प्रभाव को लक्ष्य करते हुए डॉ. पाठक ने कहा है -" धर्म , नीति, दर्शन , इतिहास केलिए वह उनका ऋणी है । इनमें धर्म उसका प्रतिपाद्य नहीं , आचरण की वस्तु है । नीति ने उसकी भावुकतामयी नैतिकता का निर्माण किया है । दर्शन ने उसकी उस जीवनदृष्टि का निर्माण किया जो श्रीमद्भगवद्गीता पर आधारि है और इतिहास तो उसका कथा विषय ही रहा है ।[2]

---

1. "मंगलघट"- पृ. 62
2. "मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य"- डा. पाठक-पृ. 410

### 3.1.1.1.1. गुप्तजी की कृतियों में महाभारत की कथा-प्रमुख प्रसंग

महाभारत के अनेक प्रकरणों से आकृष्ट होकर कवि ने उन प्रसंगों को अपनी भावना में ढालकर विभिन्न खण्डकाव्यों में नवीन समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है । उन्होंने महाभारत के आधार पर एक बृहत आख्यान काव्य "जयभारत" और सात खण्डकाव्यों-"जयद्रथ वध", "सैरन्ध्री" "बक-संहार", "वन-वैभव", "नहुष," "हिडिंबा", "युद्ध" - की रचना की । इनके मुख्य प्रसंगों का जिक्र आगे हो रहा है ।

### 3.1.1.1.1.1. "जयभारत"

महाभारत के अमिट प्रभाव के फलस्वरूप अनेक ग्रन्थकारों ने वस्तुचयन केलिए उसका आधार ग्रहण किया । लेकिन उनकी रचनाओं में महाभारत के किसी-न-किसी अंग मात्र को स्थान मिला है । गुप्तजी ने भी इसी ओर काव्य रचना की लेकिन इसकी पूर्ति "जयभारत" में आकर हुई जिसमें उन्होंने समग्र रूप में पांडवों की कथा को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है ।

"जयभारत" में महाभारत के संपूर्ण कथानक को सैंतालीस खण्डों में विभक्त किया गया है । महाभारत के अठारह पर्वों के आधार पर ही इन खण्डों का विभाजन हुआ है । यहाँ मूल कथा के एकलव्य, परीक्षा लाक्षागृह, लक्ष्यवेध, वनवास, द्यूत, वन-गमन, वन-मृगी, यक्ष, अज्ञातवास, विदुरवार्ता, शांति संदेश कुन्ती और कर्ण, युयुत्सु, युद्ध, अंत, स्वर्गारोहण आदि प्रमुख प्रसंग मिलते हैं । "जयभारत" का प्रारंभ नहुष खण्ड से होता है, जो महाभारत के आदिपर्व के 19 वें अध्याय में वर्णित है और अंत स्वर्गारोहण से, जो महाभारत का भी अंतिम प्रसंग है । यहाँ प्रत्येक खण्ड का नामकरण उससे संबन्धित व्यक्ति और घटना के आधार पर किया गया है । इनमें "नहुष", "हिडिंबा", "बक-संहार", "सैरन्ध्री", "वन-वैभव" आदि रचनाओं का अध्ययन स्वतंत्र रूप से आगे किया जाएगा इनको छोड़कर "जयभारत" के अन्य प्रमुख प्रसंगों का अध्ययन यहाँ हो रहा है ।

एकलव्य-3. 1. 1. 1. 1. 1. 1.

एकलव्य का नाम चिरकाल से गुरु-भक्ति का पर्याय बन गया है । फिर भी उसका विस्तृत प्रतिपादन बहुत कम हुआ है । "एकलव्य" की मूल कथा महाभारत के आदिपर्व के 131 वें अध्याय में बताई गई है । अपने में प्रमुख रहते हुए भी एकलव्य काव्य केलिए उपेक्षित पात्र ही रहा है । परन्तु, जब आधुनिक युग में, मानवीय गुणों का मूल्य बढ़ता आया और उच्च-नीच का भेद-भाव मिटता गया और उपेक्षित पात्रों को वाणी देने की धूम मच गई तो गुप्तजी ने भी एकलव्य के चरित्र का उद्धार करने का प्रयास किया । गुप्तजी का एकलव्य महाभा के एकलव्य से कहीं अधिक धीर एवं परिष्कृत है । वह द्रोण के पास आकर अपने को शिष्टाचार जाननेवाला बताता है ।[1] यह कवि की कल्पना मात्र है । कवि एकलव्य को प्रकाश में लाकर समाज की कुरीतियों पर व्याघात करना चाहते हैं । महाभारत में द्रोण एकलव्य की इच्छा का मूल से विच्छेद कर डालते हैं ।[2] लेकिन गुप्तजी के द्रोण उसकी भक्तियुक्त विनती को टाल नहीं सकते ।[3] प्रस्तुत प्रसंग का कवि ने खूब उपयोग किया है । गुप्तजी का एकलव्य द्रोण को मुँहतोड उत्तर देने में समर्थ निकला है --

"गुरुवर क्या नहीं अराजन्यों में क्या ईश्वर का अंश ?
और नहीं हैं क्या उनकी भी वही मूल मनु वंश ?[4]

मानवतावादी और वसुदैवकुटुंबकम् के विश्वासी कवि जाति के भेदभाव से घृणा करते हैं । उनका अटल विश्वास है कि "जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः" । उनके एकलव्य में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । एकलव्य का यह क्रान्तिकारी रूप महाभारत केलिए बिलकुल नवीन है । इतने मात्र से कवि तृप्त नहीं होते । द्रोण जब अपने शिष्यों सहित एकलव्य के शस्त्राभ्यास देखने जाते हैं

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "जयभारत"-पृ. 53
2. म. भा. आ. प. अ. 131. श्लोक 32
3. "जयभारत" -पृ. 53
4. --वही--

तो महाभारत से भिन्न गुप्तजी का एकलव्य अपना परिचय देता है जिसमें वह जातिगत भेद-भाव को समूल तोड़ फेंकता दिखाई पड़ता है । एकलव्य की गुरु-भक्ति की तीव्रता तथा शरसंधान की प्रवणता को दिखाने की अंतिम घड़ी में भी कवि ने विशेष ध्यान से कार्य किया है । [1] उन्होंने एकलव्य के चरित्र की मौलिक विशेषता गुरु के प्रति श्रद्धा भावना आदि को चिरप्रकाशमान बनाया ।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 2. परीक्षा

परीक्षा खण्ड में शस्त्र-शिक्षा प्राप्त कौरव पांडवों की परीक्षा की कथा है । इनके गुरु थे द्रोणाचार्य , जो द्रुपदराज से अपमानित होकर कुरु प्रदेश में आए थे । उनके कौरव और पांडवों के शस्त्राभ्यास के बाद एक दिन द्रोणाचार्य उनकी परीक्षा लेने का विचार करते हैं । शस्त्रास्त्र परीक्षा की यह कथा महाभारत में 133 से 135 तक के अध्याय में व्याप्त है । गुप्तजी ने इसी आधार पर परीक्षा प्रसंग का चित्रण किया है लेकिन उन्होंने यहाँ पर कर्ण के स्वर को सशक्त बनाने की कोशिश की है । अर्जुन का प्रति द्वन्द्वी बनकर आया हुआ कर्ण महाभारत में कृपाचार्य के धिक्कारों के आगे चुपचाप सिर झुकाता है । लेकिन गुप्तजी का कर्ण वर्ण-भेद को तुच्छ मानकर उसका विरोध करता है । [2] यहाँ कर्ण के प्रौढ चरित्र को खींचकर कवि सामाजिक कुरीतियों की ओर प्रश्न चिह्न लगाते हैं ।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 3. लाक्षागृह

लाक्षागृह का वर्णन महाभारत में 140 से 147 वें अध्याय तक व्याप्त है । युधिष्ठिर के ऐश्वर्य पर दुर्योधन की असूया भड़क उठी और उसने षड्यन्त्र करके लाक्षागृह में पांडवों को जला देने की योजना बनाई । इस योजना में धृतराष्ट्र ने भी अपने मनोयोग के साथ सहयोग प्रदान किया । [3] लेकिन विदुर ने यह

---

1. "जयभारत"- पृ. 56
2. म. भा. आ. प. अ. 135. श्लोक. 32-34, "जयभारत"-पृ. 64
3. --वही-- अ. 139-श्लोक-1

पांचाली परिणयवाली मुख्य बात को कवि ने आधुनिकता के साथ प्रस्तुत किया है

3. 1. 1. 1. 1. 1. 5. द्यूत

कौरव पक्ष की नीचता और वैर वृद्धि निरंतर होती रही । दुर्योधन ने युधिष्ठिर को द्यूत केलिए निमंत्रित किया । उन्होंने निमंत्रण को स्वीकारा द्यूत में युधिष्ठिर सब कुछ हार गए और अंत में कृष्णा को भी पण पर वार दिया । [1] द्रौपदी केशों में खींचकर लाई गयी । दुःशासन ने उसे विवस्त्र करना चाहा । यहाँ द्रौपदी का तीव्र आक्रोश देखने लायक है । [2] आगे धृतराष्ट्र पांडवों को मुक्त करके उन्हें राज्य वैभव लौटा देते हैं । दुर्योधन मन ही मन जल रहा था । उसने युधिष्ठिर को फिर से द्यूत केलिए बुलाया । यहाँ हारकर उन्हें बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास स्वीकार करना पडा ।

कवि ने कथा को संक्षिप्त करके उसमें कई नवीन प्रसंग जोड दिए हैं । "द्यूत" में दुर्योधन शकुनि का द्यूत विषयक संलाप दुर्योधन का दुःख वर्णन , विदुर को पांडवों को बुलाने केलिए भेजना, विदुर का द्यूत-विरोध, शकुनि एवं युधिष्ठिर का द्यूत विषयक संलाप आदि प्रसंग "जयभारत" में नहीं मिलते । यहाँ कृष्ण की वाणी को विस्तार प्रदान किया गया है । वह मानवता को ही चुनौती देते हुए कहती है ।----

"रे नर आगे नरक-वह्नि में तू निज मुख की लाली देख,
पीछे , खडी पंचमुख शव पर, नग्न कराला काली देख । [3]

यहाँ कृष्ण की अलौकिक शान्ति का प्रदर्शन नहीं बल्कि दुष्ट दुःशासन के मन में भय का संचार करना दिखाया है , जिससे स्तंभित हो वह पापवृत्ति से दूर हो जाता है । [4]

---

1. म. भा. स . प. अ. 48-49, जयभारत-पृ. 145.
2. अ. 67 श्लोक. 50
3. जयभारत-पृ. 148
4. 148.

यहाँ कवि ने द्रौपदी के चरित्र को उज्ज्वलतर बनाकर नारी जागरण पर बल दिया है । कथा में नवीनता लाने केलिए उन्होंने पांडवों की प्रतिज्ञा को छोड दिया और भीष्म पितामह के आक्रोशपूर्ण दुःख और उनकी शरशय्या एवं इच्छामरण को यहाँ जोड दिया है । यह परिवर्तन अत्यंत प्रभावक्षम सिद्ध हुआ है।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 6. वन-गमन

वनगमन की कथा महाभारत में सभापर्व के 12 वें अध्याय में चित्रित है । यहाँ पांडवों के वनगमन की खबर सुनकर द्रौपदी से युक्त सभी बन्धुजन धर्मराज के समीप आए । कृष्ण के अपमान की बात उससे सुनकर श्रीकृष्ण ने "छले गए वे स्वयं जिन्होंने तुम्हें छला" कहकर उसे सान्त्वना दी । यहाँ संक्षिप्तता और कुछ नवीन उद्भावनाओं से कवि ने "वनगमन" की रचना की है । यहाँ युधिष्ठिर के भावों को ही प्रधानता दी है, साथ ही साथ अर्जुन और धृष्टद्युम्न को भी वाणी प्रदान की है । इस खण्ड के सुभद्रा-द्रौपदी-वार्तालाप बिलकुल नवीन हैं । यहाँ सुभद्रा के शब्दों में पारिवारिक वातावरण की सुन्दर झलक है ।[1] वनगमन के बाद अर्जुन के अस्त्रलाभ की कथा है जो महाभारत में वनपर्व के 37 से 46 वें अध्याय तक व्याप्त है । व्यास के निर्देशानुसार धर्मपुत्र ने पार्थ को पाशुपत केलिए तप करने को प्रेरित किया । तप करते समय किरात वेश में आए शिवजी से उनका युद्ध होता है आगे शिवजी का दर्शन और अस्त्रलाभ हुआ । इसके बाद वे सदेह स्वर्ग में जाकर इन्द्र से मिलते हैं । यहाँ उर्वशी उन्हें क्लीव बन जाने का शाप देती है । यहाँ पार्थ के व्यक्तित्व को प्रबल बनाने की कोशिश की गयी है ।

इसके बाद तीर्थयात्रा का वर्णन हुआ है जो महाभारत में वनपर्व के 80वें अध्याय में चित्रित है । यहाँ पांडव अर्जुन के अभाव में दुःखित हैं । द्रौपदी अपमान का साकार रूप बन गयी है । गुप्तजी ने तीर्थयात्रा में कृष्ण के प्रतिशोध को ऊँचा स्थान दिया है । यहाँ पर पति के पतन का असह्य दुःख उसके उपालंभों

---

1. "जयभारत" - पृ. 157

के रूप में बरत पड़ता है । [1] कवि ने यहाँ अपनी कल्पना के अनुसार घटोत्कच-द्रौपदी-संवाद चित्रित किया है । उन्होंने घटोत्कच का आगमन महाभारत के विपरीत नाटकीय ढंग से चित्रित किया है । [2] प्रसंग को अधिक युगानुकूल बनाने में यह सहायक रहा है ।

3.1.1.1.1.1.7. <u>वनमृगी</u>

प्रसंग की मूल कथा महाभारत में वनपर्व के 258वें अध्याय में हैं । मृगों की निरंतर हत्या को देखकर वनमृगी की मनोव्यथा का यहाँ चित्रण हुआ है । द्वैतवन में रहते समय युधिष्ठिर ने सपने में देखा कि हतशेष दुःखी मृग आकर सहायतार्थ उनके सामने खड़े हैं । गुप्तजी ने कथा को सामयिक बनाने केलिए उसमें कई परिवर्तन किए हैं । मूल के मृगों के स्थान पर "जयभारत" में वनमृगी का वर्णन हुआ है । [3] वनमृगी मानव को, वन्यमृगों से और यम से भी गया बीता ठहराती है । यहाँ प्रसंग अतीव कारुणिक बन गया है । अपने बचे हुए अकेले शिशु को भी युधिष्ठिर के पैरों पर अर्पण करने केलिए वह तैयार हो जाती है । यहाँ युधिष्ठिर की मानवता सजग हो उठी है और एकाएक वे अहिंसा का व्रत धारण कर लेते हैं ।

यहाँ कवि अहिंसा पर बल देते हैं । गाँधीजी के उपासक गुप्तजी ने अपने युधिष्ठिर के चरित्र को इस युगीन समस्या के उत्कर्ष से सजाया है । इस प्रकार यहाँ तत्कालीन मानव को गाँधीवाद के तत्वों के निकट लाने की कोशिश की गई है, जो युग की सबसे बड़ी माँग थी ।

3.1.1.1.1.1.8. <u>यक्ष</u>

यक्ष की कथा महाभारत में वनपर्व के 311 से 313 तक के अध्याय में

---

1. "जयभारत"- पृ. 166
2. पृ. 172
3. पृ. 220

व्याप्त है । कथा ऐसी है बटु की अरणि मथानी को मृग ले भागा और पांडवों ने उसे खोजने का असफल प्रयत्न किया । प्यास के कारण उन्होंने जलाशय पा लिया और एक-एक करके जल लेने चले, लेकिन लौटे नहीं । आखिर युधिष्ठिर गए और जल लेने उतरे, तो सुनाई पड़ा.. "जल पीछे लेना, पहले मुझको उत्तर देना", उत्तर दिए बिना जल लेने से मृत्यु होगी । इस प्रकार धर्मपुत्र को सचेत करके उनसे अनेक धर्म नीति विषयक प्रश्न पूछे गए । उनके उत्तरों से संतुष्ट यक्ष की इच्छा के अनुसार युधिष्ठिर अपने मृत भाइयों में नकुल का जीवन माँगकर धर्म परीक्षा में विजयी निकले ।

प्रस्तुत प्रसंग से कवि का तात्पर्य केवल युधिष्ठिर के चरित्र को उज्ज्वलतम बनाना था । यहाँ पर एक आदर्शवान और दार्शनिक पुरुष के रूप में युधिष्ठिर को चित्रित किया है, जो गाँधीवाद के प्रभाव से ही हो सका है ।

3.1.1.1.1.1.9. <u>अज्ञातवास</u>

अज्ञातवास महाभारत में वनपर्व के 315 वें अध्याय में चित्रित कथा है । यहाँ अज्ञातवास केलिए उद्यत युधिष्ठिर के क्षोभ तथा धौम्य द्वारा उनकी सान्त्वना का वर्णन हुआ है । कथा को उसी प्रकार स्वीकारते हुए भी कवि ने युधिष्ठिर के चरित्र पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है । राजा विराट की सभा में युधिष्ठिर के कंक, भीम के वल्लव, अर्जुन के बृहन्नला, नकुल के ग्रान्थिक सहदेव के तन्तिपाल और द्रौपदी के सैरन्ध्री बनने का उल्लेख वैसे के वैसे हुआ है ।[1] यहाँ अर्जुन का बृहन्नला रूप उल्लेखनीय है । कीचक-वध की बात सुनकर कौरवों को निश्चय हो गया कि पांडव विराट राजधानी में हैं । उनकी प्रेरणा पाकर सुशर्मा ने विराट राजा पर आक्रमण किया । नर्तक होने के नाते अर्जुन युद्ध में न

---

1. म.भा.वन.प. अ.1. श्लोक-24/ अ.2. श्लो.1-2/अ.3.श्लो-3-4/ अ.4. श्लो-8-9/18-21

जा सके । उनका प्रबल वीर अंदर ही अंदर तडपने लगा ।[1] आखिर उत्तरा की प्रेरणा से वे युद्धभूमि की ओर चले और युद्ध जीत आए ।

यहाँ कवि ने युद्ध भूमि में जाने में असमर्थ बृहन्नला के मानसिक उत्ताप का सुन्दर और कारुणिक वर्णन किया है ।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 10. विदुरवार्ता

मूल कथा महाभारत में उद्योग पर्व के 33 वें अध्याय में चित्रित है । राजा धृतराष्ट्र युद्ध की आशंका से घबडा उठे । विदुर को बुलवाया गया । विदुर ने उन्हें धर्माचरण की प्रेरणा देकर राजा के कर्तव्य के बारे में सचेत किया ।[2] कवि ने प्रसंग को अत्यंत संक्षिप्त बनाया और धृतराष्ट्र की अधिकार-शून्यता एवं पुत्र-प्रेम जनित मोह पर प्रकाश डालकर कथा को युगानुरूप बनाने का प्रयास किया है । मनुष्य की स्वार्थता का परिणाम घोर होगा । यहाँ धार्मिक जीवन की ओर ही कवि का इशारा है जो महाभारत का मूल मंत्र भी है । आगे "रणनिमंत्रण" प्रसंग में दुर्योधन के भौतिक प्रेम को व्यक्त किया है, वह भी धर्म के विरुद्ध है ।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 11. शांति संदेश

कृष्ण दौत्य ही प्रस्तुत प्रसंग का विषय है । धर्म रक्षक श्रीकृष्ण ने पांडवों की ओर से संधि-प्रस्ताव रखा ।[3] भीष्म द्रोणादि की भरी सभा में धृतराष्ट्र ने प्रस्ताव को मान लिया किन्तु दुर्योधन इसके विपरीत बोल उठे ।[4] यहीं भगवान को अपना विश्वरूप दिखाना पडा । गुप्तजी ने मूल कथा को कुछ परिवर्तनों के साथ अपनाया है । महाभारत में पांडव संदेश दुर्योधन के प्रति भेजते हैं तो

---

1. "जयभारत"- पृ. 279
2. म. भा. उ. प. अ. 33. श्लो. 69
3. " " 95 " 3. 33. "जयभारत"- पृ. 324
4. 22-25 327-332

"जयभारत" में धृतराष्ट्र के प्रति भेजकर प्रसंग को अधिक औचित्यपूर्ण बनाया है महाभारत के उद्योग पर्व के 129 वें अध्याय के गाँधारी के वक्तृत्व को भी परिवर्तित किया है । उसका चरित्रोत्कर्ष दिखाने का प्रयास ही यहाँ हुआ है, जो तत्कालीन नारी जागरण समस्या से संबन्धित है । कर्ण के पश्चात्तापपूर्ण वचनों से उसके चरित्र को भी श्रेष्ठ बनाया है ।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 12. कुन्ती और कर्ण

मूल प्रसंग महाभारत में उद्योग पर्व के 144 और 145 वें अध्याय में वर्णित है । कथा है -दुर्योधन को अटल युद्ध को निश्चित जानकर कुन्ती व्याकुल हो उठी । कुन्ती ने कर्ण के पास जाकर उसे समझाने की कोशिश की और पांडवों से मिलने की प्रेरणा भी । लेकिन वह माता को आश्वासन देते हुए, "युद्ध में पुत्र पाँच के पाँच तुम्हारे अर्जुन व कर्ण रहें", अपने निश्चय पर स्थिर रहता है ।[1] यहाँ कवि ने कुन्ती के मातृत्व जन्य वात्सल्य को सुन्दर रूप में चित्रित किया है । कर्ण का चरित्रोत्कर्ष भी यहाँ कवि का उद्देश्य रहा है । कुन्ती के प्रलोभन पर भी दुर्योधन से मित्रता एवं स्वामि भक्ति उसे विपक्ष की ओर प्रेरित नहीं करती । यहाँ प्रसंग बिलकुल युगानुकूल हुआ है । असल में कर्ण की चरित्र-सृष्टि उद्बोधनात्मक है ।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 13. युयुत्सु

यह प्रसंगपूर्णतः कल्पित है । यहाँ कवि ने धृतराष्ट्र के दासी पुत्र युयुत्सु तथा कुन्ती के कानीन पुत्र कर्ण के चरित्रों के परस्पर विरोधी तत्वों पर प्रकाश डाला है । कर्ण के पश्चात्ताप जन्य मानसिक विकलता का यहाँ सुन्दर विश्लेषण हुआ है । युयुत्सु द्वारा कर्ण को युद्धविरत करने का प्रयास हुआ है । वह माँ का पक्ष समर्थक है और युद्ध में भाग लेना नहीं चाहता । वह कौरवों का

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. म. भा. उ. प. अ. 145. श्लो. 2., "जयभारत"- पृ. 341

भाई और पांडवों का समर्थक है । युयुत्सु की धर्म भावना की झलक यहाँ मिलती है । प्रसंग में आद्यंत कर्ण और युयुत्सु के चरित्रों का सीधा विकास दिखाई पड़ता है , जो पूर्णतः युगीन समस्या से जुड़ा हुआ है ।

3.1.1.1.1.1.14. अर्जुन का मोह

कौरव सेना में मान्य पितामह , गुरुवर तथा अन्य स्वजनों को देखते हुए अर्जुन विमोहित हो गए । कृष्ण ने उन्हें धर्मोपदेश देकर ज्ञान तथा कर्म योग का बोध करा कर अपने विराट रूप का दर्शन कराया और युद्ध के लिए प्रेरित किया । महाभारत के भीष्मपर्व में श्रीमद्भगवद्गीता नाम से प्रसिद्ध प्रस्तुत प्रसंग को कवि ने संक्षिप्त रूप में स्वीकार किया है । [1] कवि ने यहाँ गीता के प्रमुख तत्वों का पद्य-बद्ध रूपान्तर प्रस्तुत किया है । गीता के "कर्मण्येवाधिकारस्ते-मा फलेषु कदाचन", द्वितीय अध्याय के अंतर्गत वर्णित कर्मयोग , तृतीय में वर्णित स्वधर्माचरण, चतुर्थ में वर्णित निष्काम कर्म आदि का भी कवि ने संकेत किया है । इसी प्रसंग में युधिष्ठिर का भीष्म , द्रोण , कृप शल्यादि की अनुज्ञा लेने का भी वर्णन हुआ है ।

3.1.1.1.1.1.15. हत्या

महाभारत के सौप्तिक पर्व के एक से दस तक वें अध्याय की कथा का यहाँ वर्णन हुआ है । युद्ध के अंतिम दिनों में दोनों पक्षों के वीर अपने अपने शिविरों में शिथिल पड़े सो रहे थे । तब अश्वत्थामा ने सोते हुए पांडवों पर प्रहार करने की सोच ली । [2] उन्होंने सोते हुए पांचालों के साथ द्रौपदी के पाँच पुत्रों की हत्या की पाण्डव शिविर को जला दिया । [3] पांडव कृष्ण के साथ अन्यत्र जाने के कारण बच गए । अश्वत्थामा ने पांडवों पर ब्रह्मास्त्र का

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. म.भा.भीष्मपर्व- अ. 25
2. "जयभारत"- पृ. 361
3. म.भा.सौ.प. अ. 1.

प्रयोग किया । पार्थ ने उसे मंगल संकल्पों द्वारा प्रशांत किया । भीम ने उसकी चूडामणि छीन ली और उसे ऋषियों के कथनानुसार छोड दिया ।

कथा को संक्षिप्त बनाने पर भी पांडवों के शोक के चित्रण में कवि सफल निकले हैं । द्रौपदी के शोक को भी विस्तृत रूप में चित्रित किया है , जो अधिक औचित्यपूर्ण दिखाई पडता है । नारी उद्धारक कवि , कृष्ण को युगीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं । आगे धृतराष्ट्र के विलाप प्रसंग को कवि ने अत्यंत कारुणिक बनाया है ।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 16. अन्त

यह महाभारत के अंतिम अंशों का धारावाहिक चित्रण है । युधिष्ठिर द्वारा मृत लोगों का क्रिया क्रम संपन्न हुआ आगे उनका राज्याभिषेक भी हुआ ।[1] भीष्म ने अपने प्रयाण के ही तत्व दर्शन का आदेश दिया । परीक्षित का जन्म हुआ । व्यास तथा कृष्ण के आदेश से युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ की तैयारी की । धृतराष्ट्र , गाँधारी विदुर तथा कुन्ती को लेकर वन चले । वृष्णिवंश का सर्वनाश हुआ कृष्ण बलराम के साथ परमधाम चले गए । अंत में द्रौपदी सहित पांडव राज्य युयुत्सु और परीक्षित को सौंपकर महाप्रस्थान केलिए चल पडे ।[3]

महाभारत के सात पर्वों में वर्णित विस्तृत कथा को कवि ने "अंत" शीर्षक में समेट लिया । कथा के अंत में अनिच्छापूर्वक प्रसंगों को एक साथ मिलाकर कथा को अत्यंत कारुणिक बनाया है और सुभद्रा द्वारा नारी की करुणा पर प्रकाश डाला है ।

---

1. म.भा. शान्ति पर्व.अ. 40.
2. म.भा. आश्रम वासिक पर्व- अ. 15.
3. म.भा. महा प्रस्थानिक पर्व- अ. 1.

"मैं सब की धात्री , मेरा भी कोई धाता-त्राता ?
अगति सुभद्रा को जगति में तू न भूल ओ भ्राता ।[1]

यह गुप्त-कालीन , अशरण नारी-जाति की आवाज़ है , जो उद्धारित होने केलिए तरस रही थी ।

3. 1. 1. 1. 1. 1. 17. स्वर्गारोहण

यह महाभारत का अंतिम प्रसंग है । यहाँ कवि ने युधिष्ठिर की सहिष्णुता, दृढ़ निश्चय, तत्वज्ञान एवं मानवता की भावना का चित्रोपम-चित्रण किया है । महाभारत में वे पांडव के पतन को उसके विशेष पापकर्म का दुष्फल मानते हैं , तो गुप्तजी के युधिष्ठिर सभी पापों को अपने में ही देखते हुए, आखिर सबसे मुक्त होकर नित्य शुद्ध मुक्त आत्मा में परिणत हो जाते हैं । यहाँ गाँधी-वाद की झलक उभर आती है । कवि ने युधिष्ठिर को गाँधीवादी तत्वों का साकार रूप बना दिया है , जो दूसरों के कल्याण में आनन्द पाता है ।

युधिष्ठिर के चरित्र का आध्यात्मिक विकास तथा उनकी पूर्णत्व-प्राप्ति ही "स्वर्गारोहण" का मुख्य लक्ष्य है । कवि ने इस प्रकार "जयभारत" को पराधीन भारत की विजय के प्रेरणास्रोत के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है

3. 1. 1. 1. 1. 2. जयद्रथ-वध

"जयद्रथ-वध" का प्रकाशन सन् 1910 में हुआ था । द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से राजा रविवर्मा के चित्र पर आधारित 1908 की "सरस्वती" में छपी हुई "उत्तरा से अभिमन्यु की विदा" नामक कविता में "जयद्रथवध" का आंशिक रूप-निर्धारण पहले ही हुआ था । बाद में कवि ने इसे और व्यापकता प्रदान की और जयद्रथ-वध का आज का स्वरूप सामने आया । इसकी कथा सात

---

1. "जयभारत"- पृ. 435

सर्गों में विभाजित की गई है । उनमें से प्रमुख प्रसंगों का जिक्र यहाँ हो रहा है ।

3.1.1.1.1.2.1. उत्तरा से अभिमन्यु की बिदा

महाभारत युद्ध के तेरहवें दिन आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की तब अर्जुन की अनुपस्थिति के कारण युधिष्ठिर व्याकुल हो उठे । तब अभिमन्यु ने व्यूह-भेद का दायित्व स्वयं ले लिया । आगे युधिष्ठिर से अनुग्रह लेकर वह अपनी नववधू उत्तरा से बिदा लेने गया । सारा हाल सुन कर उत्तरा ने पति को रोकने का प्रयास किया , वह जानती थी कि "सर्वथा सर्वभूतानाम् नास्ति - मृत्युरलक्षण:" । लेकिन वीर-धर्म के पालन पर उसने कोई प्रतिबन्ध न लगाया । वह खूब जानती थी ---

क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बडा गौरव यही
सज्जित करें पतिपुत्र को, रण केलिए जो आप ही । [1]

ऐसी स्थिति में शीघ्र ही रण से लौटने का वादा करके अभिमन्यु चल पडा । [2] इस कारुणिक प्रसंग में भारतीय संस्कृति के दाम्पत्यविषयक आदर्श को सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है । यह एक नवीन प्रसंग है । यह कवि-कल्पना की चरम सीमा दिखाता है ।

3.1.1.1.1.2.2. अभिमन्यु वध

कुरुक्षेत्र में जाकर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह का भेदन करके अति-मानवीय वीरता दिखाई । [3] उसकी सहायता केलिए आनेवाले पांडवों को दुष्ट जयद्रथ ने रोक लिया और असहाय अभिमन्यु को अधर्म युद्ध से निशस्त्र करके शत्रुओं ने

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "जयद्रथवध" पृ. 9
2. पृ. 11
3. म. भा. द्रो. प. अ. 36-42

क्रूरतापूर्वक मार डाला । [1] कवि ने युद्ध वर्णन के क्रम में भिन्नता उपस्थित करके अधिक मार्मिक बनाया है । अभिमन्यु से लडते हुए कौरव वीरों का क्रम उन्होंने कर्णभ्राता, कर्ण , लक्ष्मण , दुःशासन, बृहद्बल और सप्तरथी इस प्रकार गिनाया है । यहाँ मूल कथा के शल्यभ्राता, दुर्योधन आदि से युद्ध छूट गए हैं । अंत में निरस्त्र अभिमन्यु का गदायुद्ध अध्याहार में रखकर दौशासनी को उस पर अत्याचार करते दिखाया है । [2] यहाँ परिवर्तन कौरव पक्ष के अत्याचारों पर बल देने केलिए लाया गया है ।

3. 1. 1. 1. 1. 2. 3. <u>उत्तरा विलाप</u>

महाभारत के द्रोणपर्व के 51 वें अध्याय का सहारा लेकर कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा विलाप की योजना की है । महाभारत में इसका केवल संकेत है । अपनी पति की मृत्यु की बात सुनकर उत्तरा बेहोश हो जाती है । [3] अब वह सामान्य स्त्रियों की तरह छाती और सिर पीटने लगती है । यहाँ राजवधू को सामान्य धरातल पर लाने का प्रयास किया गया है । यहाँ विरह में अहं के आहत होने से उत्पन्न पीडा के अनेक रूप उपस्थित किए जा सकते हैं । इन रूपों में प्रिय के गुण , प्रियकृत पूर्व सुख , दुर्दैव का कोसना अपने को धिक्कारना , प्रिय के प्रति मनुहार आदि का वर्णन हुआ करता है । गुप्तजी ने यहाँ भी इन तत्वों का समावेश किया है । आखिर दुःख की चरम सीमा में वह पति की मृत्यु पर स्वयं जीवित रहना पसंद नहीं करती और वह सह-मरण का भी निश्चय कर लेती है । [5] यहाँ कवि ने परंपरा का पालन मात्र नहीं , मानव की सहज प्रकृति को भी चित्रित किया है । इस प्रकार उत्तरा विलाप

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. म. भा. द्रो. प. अ. 42-49
2. "जयद्रथ-वध"- पृ. 20
3. पृ. 21
4. "आधुनिक हिन्दी काव्य में विरह भावना"- डा. मधुर मालती सिंह-पृ. 55
5. "जयद्रथ-वध" पृ. 23

का कारुणिक चित्र बनाया गया है , साथ ही साथ "जयद्रथ-वध" अपने करुणा प्रवाह केलिए प्रख्यात भी हो गया ।

इसके अलावा द्रौपदी के दुःख का भी यहाँ विस्तृत चित्रण हुआ है । युधिष्ठिर की आत्मग्लानि को भी विलाप के रूप में चित्रित किया है । इस प्रकार जयद्रथ-वध को उन्होंने महाभारत का अनुवर्ती बनाते हुए भी अधिक युगानुकूल बनाया है ।

3.1.1.1.1.2.4. जयद्रथ-वध

अभिमन्यु की मृत्यु की सारी कथा सुनकर दुःखातिरेक और प्रतिशोध की भावना से अर्जुन जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा लेते हैं । द्रोणाचार्य ने जयद्रथ की रक्षा केलिए शकट-व्यूह का निर्माण किया और उसका द्वार-रक्षक बने ।[1] अर्जुन अनेक योद्धाओं से युद्ध करके गुरु के पास पहुँच गए । दोनों में घमासान लडाई हुई । आगे व्याकुल युधिष्ठिर ने उसकी सहायता केलिए सात्यकी और भीम को भेज दिया । सात्यकी-भूरिश्रवा-युद्ध में भूरिश्रवा मारा गया ।[2] कर्ण-भीम-युद्ध में कुन्ती को दिए हुए वचन के अनुसार कर्ण ने भीम को जीवित छोड दिया । कौरव वीर जयद्रथ को छिपाए व्यूह बनाकर खडे थे । अर्जुन आखिर वहाँ पहुँच गया । युद्ध करते-करते सूर्यास्त भी होता गया ।[3] पार्थ को अस्वस्थ होते देखकर श्रीकृष्ण ने अपनी माया का संवरण कर लिया[4] और सूर्यास्त से प्रहृष्ट होकर बाहर आया हुआ जयद्रथ , अर्जुन द्वारा मारा गया ।[5] गुप्तजी ने इस कथांश को युगानुकूल बनाने केलिए उसमें कुछ परिवर्तन किए हैं । जयद्रथवध की वेला में उनके अर्जुन सीधे गुरु के पास जाते हैं इसलिए कि "अभिमन्यु का बदला

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. म.भा.द्रो.प.अ. 87. श्लो. 22, "जयद्रथ वध"-पृ. 61
2. अ. 142, 49, -"" पृ. 79
3. "जयद्रथ वध"- पृ. 80
4. म.भा. अ. 146 श्लो. 61-63
5. 143 "जयद्रथवध"- पृ. 81

तुम्हें लेकर दिखाना है अभी " । जयद्रथवध के पहले महाभारत में कृष्ण अपनी योगमाया के बारे में अर्जुन को बता देते हैं । "जयद्रथवध" में जब सन्ध्या होती है तो व्याकुल होकर पार्थ कृष्ण के पास जाते हैं, और अपनी प्रतिज्ञा के बारे में याद दिलाते हैं । यहाँ कौरवों के दुराचारों को चित्रित करने का अवसर खोज निकाला है । उनका जयद्रथ कहता है -"गोविन्द अब क्या देर है प्रण का समय जाता टला " । [1] इसी क्षण अंधकार दूर हो जाता है और कृष्ण के संकेत पर जयद्रथ का वध भी होता है । आस्तिक कवि पौराणिक विषयों पर अविश्वास नहीं करता, फिर भी युगानुकूल अपने विश्वासों के साथ, प्रसंग की बुद्धिपूर्वक व्याख्या प्रस्तुत की है ।

3.1.1.1.1.3. सैरन्ध्री (सं. 1984)

मूलकथा महाभारत के विराट पर्व के 7 से 24 वें अध्याय तक व्याप्त है । अज्ञातवास में पांडव विराट की राजधानी में छद्मवेश धारण करके रहने लगे । तब द्रौपदी राणी सुदेष्णा की दासी-सैरन्ध्री बन गई । [2] ऐसे रहते समय विराट का सेनापति कीचक द्रौपदी पर मुग्ध हो गया । [3] सैरन्ध्री के इनकार करने पर कीचक ने अपनी भागिनी सुदेष्णा की सहायता से उसे अपने पास भिजवाने की योजना बनायी । अब भी द्रौपदी ने विरोध किया तो कीचक ने उसपर बलात्कार करना चाहा । [4] लेकिन द्रौपदी विराट की न्यास सभा की ओर भाग चली । सभा की असफलता से अतृप्त सैरन्ध्री उसी रात भीम के पास चली गयी । सारी बात सुनकर भीम ने कीचक वध का प्रण करके उसे सान्त्वना दी । [5] भीम की योजना के अनुसार कीचक नर्तनशाला में सैरन्ध्री की प्रतीक्षा में आ गया । क्षण में ही घोर द्वन्द्व युद्ध छिड गया । कीचक भीम के हाथों मारा गया ।

गुप्तजी ने मूल कथांश को संक्षिप्त रूप में स्वीकारकर उसमें आधुनिकता

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "जयद्रथ वध"-पृ. 84
2. म. भा. वि. प. अ. 7-12
3. -14श्लोक-4-5
4. 16- श्लोक-16
5. 21-श्लोक-1.3.6.

भरने की कोशिश की है । उन्होंने महाभारत के पूरे एक अध्याय में वर्णित भीम-कीचक-युद्ध को एक छंद में कह दिया है । [1] कवि ने कीचक को भी आधुनिक बनाया है । [2] निस्संदेह गुप्तजी ने प्रतंग को आधुनिक प्रेमव्यवहार के अनुकूल बनाया है । [3] सैरन्ध्री की सच्चरित्रता ही कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है , जो अधिक सामयिक और औचित्यपूर्ण है ।

3.1.1.1.1.4. बक-संहार ¶सं. 1984¶

महाभारत में आदिपर्व के 156 से 160 वें तक के अध्याय में इसकी कथा मिलती है । लाक्षाभवन से बचकर पांडव एक चक्रा नगरी में पहुँचे । वहाँ एक धर्म निष्ठ ब्राह्मण परिवार के अतिथि हुए । [4] उस नगर में बक नामक एक असुर रहता था । राजाज्ञा थी कि नगर का एक व्यक्ति प्रति दिन उसका भक्ष्य बन जाय । [5] एक दिन उस ब्राह्मण परिवार की बारी आयी । ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्र सहित आत्मत्याग केलिए प्रस्तुत हुए । कुन्ती ने यकायक वह विवाद सुना तो उसने कहा कि तुम लोगों के केवल एक पुत्र है , मेरे पाँच पुत्र हैं , आज मैं उनमें से एक को भेज दूँगी । विप्र परिवार संतुष्ट हो गया और भीम इस कार्य केलिए नियुक्त किया गया । [6]

कवि ने कथा को अधिक परिवर्तन के बिना स्वीकारा है , फिर भी कथा में आधुनिकता लाने का प्रयास किया गया है । पूरा काव्य संवादात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है । यहाँ महाभारत के विपरीत गुप्तजी का विप्र बक केलिए अपने को आहुति देने में गौरव का अनुभव करता है । [7] यह तत्कालीन भयभीत पौरुष केलिए उद्बोधन मात्र नज़र आता है । आधुनिक परिष्कृत विचारों में पली उनकी ब्राह्मणी भी बिलकुल आधुनिक है । प्रस्तुत रचना के द्वारा आधुनिक समाज में कवि नवीन आदर्शों के साथ पारिवारिक जीवन के कई मार्मिक संदर्भों का उद्घाटन करते हैं ।

---

1. 'सैरन्ध्री'- पृ. 40
2. सैरन्ध्री- पृ. 6-8
3. "मैथिली शरण गुप्त का काव्य" ¶संस्कृत स्रोत के संदर्भ में¶ डा. एल. सुनीता-पृ. 121-122
4. म. भा. आ. प. अ. 155- श्लोक-10-11
6. म. भा. अ. प. अ. 160 श्लोक-19-20
7. बकसंहार-पृ. 10-11

3.1.1.1.1.5. वन-वैभव [सं-1984]

इसकी कथा महाभारत के वनपर्व के 237 से 246 तक के अध्यायों में फैली हुई है। वनवास में पांडवों के कष्ट देखते हुए शकुनि, कर्ण, दुर्योधन आदि संतोष में मस्त थे। शकुनि और कर्ण ने दुर्योधन को सुझाव दिया कि वह जाकर पांडवों को अपना ऐश्वर्य दिखा आवें।[1] लेकिन धृतराष्ट्र की अनुमति प्राप्त करना कठिन था। द्वैतवन के आसपास की घोष-यात्रा के व्याज से धृतराष्ट्र को आप्यायित करने की कोशिश की गई। लेकिन वह चुप थे। अंत में शकुनि के यकीन दिलाने पर कि पांडवों की ओर दृष्टि न डालेंगे, तो धृतराष्ट्र ने हामी भर दी।[2] ससक्त कौरव दल द्वैतवन की ओर चल पड़ा। रास्ते में चित्ररथ नामक गन्धर्वराजा से कौरवों का युद्ध हुआ। युद्ध में कौरवों की पराजय हुई। सेना तितर बितर हो गयी। कुछ सैनिक पांडवों की शरण में गए। उनसे सारी कथा सुनकर सनातन धर्मी युधिष्ठिर को यह अच्छा नहीं लगा। भीम उन्हें पूर्व स्मरण दिलाने लगा। आखिर युधिष्ठिर के आदेशानुसार बाकी पांडवों को कौरवों के रक्षार्थ जाना पड़ा। अर्जुन ने कौरवों को मुक्त करने को कहा तो गन्धर्व असहमत रहे। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। चित्रसेन को यह अभीष्ट न था, उसने तुरन्त कौरव दल को मुक्त कर दिया।[3] फिर सब युधिष्ठिर के पास चले। उन्होंने गन्धर्वों का अभिनन्दन किया और कौरवों को हस्तिनापुर जाने का उपदेश भी दिया।

कवि ने यहाँ भी मूल कथा को संक्षिप्त बनाया है। यहाँ कौरवों के कुकर्मों से दुःखी कृष्णा को सान्त्वना देते हुए भीम का चित्रण हुआ है, जो उनके बीच के विशेष प्रेम का द्योतक है।[4] चित्रसेन-दुर्योधन-युद्ध में दुर्योधन के दंभ पर चित्रसेन आघात करता है। चित्रसेन-अर्जुन-युद्ध का प्रारंभ मित्रता के नाम पर होता है। यहाँ दोनों की उदात्त वीरता का भी चित्रण किया गया है। महाभारत में तो दोनों में घोर युद्ध होता है। इस प्रकार कुछ धार्मिक सत्कर्मों और

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. म.भा.व.प.अ.237.श्लो-12.14.15.
2. " " 240 " 22
3. 246 " 13; 'वनवैभव'-पृ.38
4. 'वनवैभव'-पृ.13

सद्विचारों का समावेश करके कथा को युगानुकूल और आधुनिक बनाने का प्रयास किया गया है ।

3.1. 1. 1. 1. 6. नहुष [सं. 1997]

मूल कथा महाभारत के उद्योग पर्व में चित्रित है । यहाँ मद्रराज शल्य, युधिष्ठिर की जिज्ञासापूर्ति के रूप में प्रस्तुत आख्यान सुनाते हैं । एक बार स्वर्ग की रक्षा करने केलिए महाराज नहुष को इन्द्र पथ पर प्रतिष्ठित किया गया । स्वर्ग के सुख भोग से धर्मात्मा नहुष , कामात्मा बन गया । एक दिन , अकस्मात् उसने इन्द्राणी को देखा , तो उसने उस पर दावा करने का प्रयास किया ।[1] भयभीत शची अब देवगुरु बृहस्पति की शरण में गई । तब नहुष के असामान्य क्रोध को शांत करने केलिए सभी देव तथा ऋषि लोग बृहस्पति के पास जाकर नहुष केलिए शची की प्रार्थना करने लगे ।[2] आखिर शची को नहुष के पास भेज दिया । इसके बीच इन्द्राणी ने निशादेवी अपश्रुति की उपासना की । देवी उसे सूक्ष्म रूप में इन्द्र के पास ले गयी । सारी कथा सुनकर इन्द्र ने उसे बचने का उपाय भी सिखा दिया । इस विशिष्ट क्रिया के दुर्बल पक्ष पर ध्यान न देकर कामासक्त नहुष ने शची की निश्चित कालावधि की बात मान ली और सप्तर्षियों का वाहन तैयार हो गया ।[3] श्रमार्त होकर जब तपस्वी नहुष को वहन कर रहे थे , तो नहुष का पैर अगस्त्यमुनि के मूर्धा पर लग गया ।[4] उसे शाप दिया गया और उसका पतन हो गया ।

गुप्तजी ने कथांश को सात शीर्षकों में - शची, नहुष, उर्वशी स्वर्ग-भोग , संदेश , मंत्रणा और पतन - विभाजित किया है । "नहुष" खण्ड में नहुष-नारद-संवाद चित्रित है । नहुष का मातृभूमि प्रेम और लोकहित चिन्तन इस खण्ड की विशेषताएँ हैं ।[5] "उर्वशी" खण्ड में उर्वशी-नहुष-संवाद चित्रित है । यहाँ

---

1. म. भा. उ. प. अ. 11. श्लो-16"-18
2. 19-26
3. -15 16, 20, 22
4. -17 13. 17
5. 'नहुष' -पृ. 29

उर्वशी स्वर्ग की वैधानिक राजव्यवस्था का वर्णन करती है । भूतल को स्वर्ग सदृश बनाने की नहुष की इच्छा पर विरोध प्रकट करती हुई वह कहती है कि सुरलोक की समृद्धि भू पर आ जाएगी तो वह लोगों को अकर्मण्य बना देगी । वह मानव केलिए उद्योगशीलता की अनिवार्यता स्पष्ट करती है । [1] "स्वर्ग-भोग" में मानवीय पुरुषार्थ में अटल रहनेवाला नहुष स्वर्ग भोग में मग्न हो जाता है । नहुष के शची दर्शन के वर्णन से कवि ने अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है । "मंत्रणा" खण्ड में स्वर्ग परिषद के वर्णन में इन्द्राणी के मत को प्रमुखता दी गई है । यहाँ कवि की नारी उद्धार की कल्पना की झलक मिलती है । स्वर्ग-परिषद का वर्णन कवि का अपना है । "नहुष" में देवसमूह नहुष के शचीपति होने के संबन्ध में अपना मत प्रकट नहीं करता क्योंकि इन्द्र के वैधानिक अधिकार को वे स्वीकार नहीं कर सकते । गुप्तजी का नहुष पतित होने पर भी आत्मविश्वासी है । [2] इस प्रकार कवि ने मूल कथा को युगानुकूल चित्रित करने का सफल प्रयास किया है । यहाँ नहुष के मातृभूमि प्रेम , लोकहित चिंतन, मानवतावाद और आत्मविश्वास अवश्य ही उद्बोधनात्मक है ।

3.1.1.1.1.7. हिडिंबा (सं. 2007)

महाभारत में आदिपर्व के 146 से 153 वें तक के अध्यायों में इसकी कथा वर्णित है । कथा में , विदुर की कृपा से कुन्ती-पाँडवों सहित लाक्षा-भवन से बच निकली । चलते-चलते मार्ग में हिडिंब नामक एक राक्षस आ पहुँचा । मनुष्य गन्ध पाकर उसने अपनी भगिनी हिडिंबा को भेज दिया । [3] वह भीम को देखते ही उनपर मोहित हो गई और उससे प्रणय प्रस्ताव किया । [4] थोड़े समय बाद हिडिंब वहाँ आया और हिडिंबा को खूब फटकारा । यह देखकर भीम ने उसे द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारा । [5] युद्ध में राक्षस मारा गया । आखिर भीम ने हिडिंबा को वर लिया ।

---

1. "नहुष"- पृ. 34 2. "नहुष" - पृ. 65-66
3. म. भा. आ. प. अ. 150 श्लो-1 4. म. भा. आ. प. अ. 151 श्लो-27
5. 152 21, 24, 43

गुप्तजी कथा को उसी प्रकार स्वीकारते हुए भी उसे नवीन ढंग से प्रस्तुत करने में सफल निकले हैं । यहाँ भीम-हिडिंब -संवाद, हिडिंबा-भीम-संवाद , और कुन्ती-हिडिंबा-संवाद को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में चित्रि किया गया है । हिडिंबा का आगमन विशेष रूप में दिखाया गया है ।[1] उनके हिडिंब महाभारत के विपरीत मरते-मरते अपनी बहन को बधाई देते हुए जाता है , मानो हिडिंबा को योग्य वर के हाथों समर्पित कर देता है ।[2] हिडिंबा-कुन्ती-संवाद में अपने भाई की मृत्यु पर तीन दिन तक शोक मनाने के बाद हिडिंबा कुन्ती के पास आती है । यहाँ कवि के आदर्श की अभिव्यक्ति हिडिंबा द्वारा हुई है ।[3] यहाँ भी कवि के गार्हस्थ्य-धर्म-बोध की झलक उभर आयी है । जाति-भेद, वर्ण-भेद आदि की ओर भी यहाँ तीखा व्यंग्य किया गया है, जो कवि के समाज सुधारवादी मन को व्यक्त करता है ।

इस प्रकार गुप्तजी ने महाभारत से सामग्री संचित करके उसे अपनी बुद्धि शक्ति और कल्पना के सहयोग से सामयिक बनाकर, समकालीन समाज की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया है ।

### 3.1.1.2. वळ्ळत्तोळ् पर महाभारत का प्रभाव

वळ्ळत्तोळ् ने अपने बाल्य-काल में ही काव्य रचना शुरू की थी । गुप्तजी की तरह उन्होंने भी काव्य-सृजन की शुरूआत से ही महाभारत का सहारा लिया है । उनकी सबसे प्रथम रचना -"किरातशतकम्" महाभारत पर आधारित थी । इसे लिखते समय वे 12 साल के बालक थे । इसका प्रकाशन सन् 1894 में हुआ था । इसके बाद "व्यासावतारम्" §1893§, "अर्जुन विजय" §नाटक§, "कीचक वध" §लोक गीत§ आदि की रचना हुई । गुप्तजी की तरह महाभारत परंपरा का यह प्रारंभिक अनुकरण उनके भविष्य के साहित्य में विशेष महत्व रखता है । आगे चलकर उन्होंने "दिवास्वप्न" कविता संग्रह में "पडवाळिन्टे पुंचिरी" §1965§ नामक कविता का प्रकाशन किया , वह भी महाभारत पर आधारित है ।

---

1. "हिडिंबा"- पृ. 14    2. "हिडिंबा" -पृ. 23    3. "हिडिंबा"-पृ. 34

### 3. 1. 1. 2. 1. वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में महाभारत की कथा-प्रमुख प्रसंग

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी व्यास जी के उपासक रहे थे । उनकी "व्यासावतारम्" नामक रचना इसका द्योतक है । महाभारत के अनेक प्रकरणों से आकृष्ट होकर, वळ्ळत्तोळ् ने उन प्रसंगों को अपनी भावना के रंग में रंगाकर सामयिक रूप में प्रस्तुत किया है । उन्होंने महाभारत के आधार पर "तपती संवरणम्" , "अच्छनुं मकनुम्", "इन्द्र और महाबलि", "भार्गवस्वामिन्-कै तोषाम्" आदि रचनाएँ की हैं ।

### 3. 1. 1. 2. 1. 1. "तपती संवरण"

"तपती संवरण" एक नौका गीत है । इसकी मूल कथा महाभारत के आदिपर्व के 170 से 172 तक के अध्यायों में व्याप्त है । इसके प्रमुख प्रसंग "तपती-संवरण-मिलन" एवं "तपती-संवरण-शादी" है ।

### 3. 1. 1. 2. 1. 1. 1. तपती-संवरण-मिलन

तपती सूर्य पुत्री है और संवरण चन्द्र वंशी राजा ऋष का पुत्र । एक बार राजा संवरण वन में शिकार करते करते थक गए । अकस्मात् सूर्यपुत्री तपती से उनका मिलन हुआ । देखते ही दोनों प्रेम-बद्ध हो गए ।[1] संवरण ने तपती से विवाह करना चाहा । तब तपती ने कहा , विवाह करना हो तो मेरे पिताजी सूर्य से अनुमति लेनी पडेगी, तभी हमारा गांधर्व विवाह संभव है ।[2]

### 3. 1. 1. 2. 1. 1. 2. तपती-संवरण-शादी

महात्मा वसिष्ठ संवरण के महामंत्री थे । संवरण ने वसिष्ठ को बुलाकर सारी बात बता दी , और उनसे प्रार्थना की कि तपती से मेरा विवाह संपन्न हो ।[3] बात का गौरव समझकर स्वयं वसिष्ठ ने सूर्यदेव की पूजा की । अंत में सूर्यदेव प्रत्यक्ष हुए । तब वसिष्ठ ने उनसे कहा कि आप अपनी बेटी की शादी राजा संवरण से करके उनकी पुत्रप्राप्ति का मार्ग खोल दीजिए । इस बात से प्रसन्न होकर सूर्य ने तपती को बुलाकर कहा कि तुम वसिष्ठ के साथ जाकर संवरण

---

1. म. भा. आ. प. अ. 170. श्लोक-1-2 2. म. भा. आ. प. अ. 171. श्लो-20. 24
3. " .172 " 12-13

को अपने पति के रूप में वर लो । [1] इस प्रकार उनकी शादी संपन्न हुई । तपती और संवरण अतीव संतुष्ट होकर उसी जंगल में अनेक दिन सुख से जिए । यहाँ पर कवि ने मूल कथा का केवल अनुवाद किया है और कथा को अतीव संक्षिप्त भी बनाया है ।

3.1.1.2.1.2. "अच्छनुं मकळुम्"

यह वळ्ळत्तोळ् का एक प्रमुख खण्डकाव्य है । "पिता और पुत्री" की मूल कथा महाभारत में प्रसिद्ध शकुन्तलोपाख्यान पर आधारित है, जो महाभारत के आदिपर्व के 70 से 74 वें अध्यायों में उपलब्ध है । इसी के आधार पर "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" की रचना हुई थी । लेकिन इन दोनों में विश्वामित्र के पितृ-हृदय के चित्रण का अभाव है । वळ्ळत्तोळ् ने उस अभाव के पूर्तीकरण के रूप में "अच्छनुं मकळुम्" की रचना की है । इस खण्ड काव्य में दो प्रमुख प्रसंग हैं । पहला "विश्वामित्रपौत्र {सर्वदमन}- मिलन" दूसरा "विश्वामित्र-शकुन्तला-संवाद" ।

3.1.1.2.1.2.1. विश्वामित्र-पौत्र-मिलन

"अच्छनुं मकळुम्" को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । पहले भाग में विश्वामित्र का अविचारित परिस्थिति में अपने पौत्र से मिलन होता है । भर्तृ परित्यक्ता शकुन्तला पुत्र समेत कश्यपाश्रम में रहती थी । एक दिन महर्षि विश्वामित्र कश्यप मुनि से मिलने केलिए शिष्य सहित वहाँ आते हैं । गुरुदर्शन के समय के बारे में जानने केलिए शिष्य शुनःशेफ को कश्यपाश्रम में भेजकर विश्वामित्र वहाँ विश्राम करते हैं । [2] इतने में -"मैं दिखाता हूँ नानाजी को"- कहता हुआ एक सुन्दर बालक वहाँ आता है । [3] बालक का मन मोहक भाव और छवि में आकृष्ट होकर महामुनि, उसका वात्सल्यातिरेक से आलिंगन करते हैं।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "वळ्ळत्तोळ्" पद्य कृतिकळ्- पृ. 100
2. "पिता और पुत्र"- पद-2
3. पद-6
4. पद-11

बालक का -" माताजी मैं यहाँ हूँ -" शब्द सुनकर एक सुन्दरी युवती (शकुन्तला) वहाँ आती है । आगे किसी खिलौने को देखकर बालक विश्वामित्र की गोदी से भाग जाता है । इस नई पृष्ठभूमि का उद्घाटन करके कवि विश्वामित्र में पितृहृदय का बीजवपन करते हैं ।

3.1.1.2.1.2.2.

शकुन्तला-विश्वामित्र-मिलन

"पिता और पुत्री" के दूसरे भाग में, पिता और पुत्री के बीच में वार्तालाप होता है । पहले भाग में जब शकुन्तला को देखा तो विश्वामित्र को लगा कि वह साक्षात् मेनका है, उन्होंने उससे पूछा भी कि इस सुन्दर बालक की माँ, तुम कौन हो वत्से ? शकुन्तला उत्तर देती है --

"मुक्तात्मन्, पिऱन्नन्ने वनत्तिल् मातापितृ-
त्यक्त आन् कण्वर्षियाल् एडुत्तु पोट्टप्पेट्टोळ्,
मन्ननाम् दुष्यन्तनाल् गान्धर्व परिणीत-
येन्नुडे जनकनो विश्रुतन् विश्वामित्रन्"। [1]

(हे महामुने जन्म लेते ही माता-पिता ने मुझे वन में त्याग दिया फिर कण्व मुनि ने मुझे पाला पोसा । राजा दुष्यन्त से मेरा गांधर्व विवाह भी हो गया मेरे पिताजी विश्रुत विश्वामित्र हैं ।) यह सुनकर महामुनि आश्चर्य-चकित होते हैं -" क्या मैं हूँ " । फिर उन्होंने पुरानी बातों की याद की और पुत्री को वात्सल्य-भरे चुंबनों से स्वीकार किया । आगे वे अपने जामाता के बारे में पूछते हैं तो शकुन्तला कहती है कि पतिदेव भी मुझे छोड़कर चले गए । विश्वामित्र अब एकदम क्रुद्ध होकर दुष्यन्त को शाप देने पर उतारू हुए । शीघ्र ही शकुन्तला ने रोकते हुए कहा -" मेरे बारे में सोचकर आप ऐसा मत कीजिए आप की पुत्री को पति के विनाश का कारण मत बनाइए । [2] मेरे जीवन में ऐसा

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "अच्छनुं मकळुम्" -पद-31-32-पृ. 38
2. --वही-- पद-55- पृ. 50

हो गया , लेकिन मेरे ही दोष के कारण मेरे पुत्र के जीवन को भी ऐसा मत बनाइए । इस प्रकार पुत्री के आंसुओं ने पिता की कोपाग्नि को शांत कर दिया । अंत में उन्होंने पुत्री को आशीर्वाद दिया --

> "भद्रं ते , पिटिच्चेन्नेक्करेट्टि निन् सौशील्यम् ,
> भर्तावोटचिरेण चेर्नालुं सपुत्र नी । " [1]

(तुम्हारा मंगल् हो, तुम्हारी सुशिलता ने मुझे सजग किया है । तुम तुरंत ही सपुत्र अपने पति से मिल जाओगी ) यहाँ काव्य की और विश्वामित्र के पितृ-हृदय की चरमसीमा है । यहाँ विश्वामित्र के चरित्र के चित्रण से कवि का उद्देश्य नारी जागरण है ।

### 3.1.1.2.1.3. "इन्द्रनुं मावलियुम्"

यह "साहित्य मंजरी" के सातवें भाग की सत्रहवीं कविता है । इसकी मूल कथा महाभारत के शांति पर्व के 223 और 224 वें अध्याय में मिलती है । कविता की पृष्ठभूमि है कि इन्द्र पद से महाबलि च्युत किए गए । तब बलि का रहस्य वास स्थान ब्रह्मा से जानकर इन्द्र वहाँ जाते हैं । [2] बलि की हँसी उडाकर इन्द्र कई प्रश्न भी करते हैं । इसके जवाब में बलि ने जो कहा वही इस कविता का विषय है । इस कविता का प्रमुख प्रसंग "बलि का इन्द्र को जवाब" है।

### 3.1.1.2.1.3.1. बलि का इन्द्र को जवाब

इन्द्र पद के नष्ट होने पर भी महाबलि को ज़रा भी दुःख नहीं था । उन्होंने इन्द्र से कहा --

> "इन्द्रविभूतिकळ् निल्कट्टे पोकट्टे-
> यन्नुमिन्नुं सखे , मावलिसन्ने भान् " । [3]

---

1. "अच्छनुं मकळुम्" -पृ. 52, पद-59
2. "साहित्य मंजरी"- सातवाँ भाग-पृ. 101
3. --वही-- पृ. 102, म. भा. शा. प. अ. 223. श्लोक-29

(इन्द्र पदवी रहे या न रहे , मेरे दोस्त, मैं तब और अब महाबलि ही हूँ । ) समचित्त वाले महान लोग धन के आने या जाने से सुखी या दुःखी नहीं होते । बलि को अपनी इन्द्र-पदवी पर कोई गर्व नहीं था । आगे बलि कहते हैं - हे महात्मन् फिर भी आप ऐसा समझते हैं -" मैं ने जीत लिया है ", तो वह क्या जीत है ? आप जैसे महानुभाव , जब मैं इन्द्र पद पर था तब "नमस्तस्य दिशेप्यस्तु यस्यां वैरोचनो बलिः" कहकर मेरा नमस्कार करते थे ।[1] अब मेरी पराजय आप से नहीं काल से हुई है । बलि के मत में संसार की सारी बातें कालगति के अनुसार ही बदलती हैं । उसके ऊपर आदमी या देवता का कोई कार्य नहीं है । इसलिए भविष्य में मैं फिर भी इन्द्र पद प्राप्त कर सकता हूँ ।[2] इसलिए इन्द्र पद हमारे आपस में बाँटने की चीज़ नहीं है । अगर काल चाहे तो इन्द्र पद नहीं सारा ब्रह्माण्ड भी बदल जाएगा । बलि कहते हैं - धन या पदवी स्थिर नहीं है । आप अपने को काल विजयी समझकर गर्व न कीजिएगा । आज का धन कल नष्ट हो जाएगा । तब आपको दुःखी होना पडेगा ।[3] आखिर बलि ने इन्द्र से कहा - आपकी ये अहंकार की बातें एक भारतीय को शोभा नहीं देतीं । आपके इस अहंकार ने इन्द्र के मुकुट को भी नीचा कर दिखाया है । अब वह किसी भी प्रकार ऊँचा नहीं किया जा सकता । कवि यहाँ धन और अहंकार की ओर संकेत करते हैं । समचित्तवालों के सामने धन और पदवी निष्प्रभ हो जाते हैं । - यही कवि का संदेश है । समचित्तता से काम लेकर समाज के आगे बढ़ने की ओर कवि इशारा करते हैं । यहाँ कवि बलि को आदर्शवान् चरित्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

### 3. 1. 1. 2. 1. 4. "भार्गव स्वामिन् कै तोषाम्"

यह "साहित्य मंजरी" छठे भाग की पहली कविता है । इसकी मूल कथा

---

1. सा:म:सा:भाग-पृ. 104. म:भा:शा:प:अ:223
2. अगले मन्वन्तर में महाबलि इन्द्र बन जाएगा, ऐसा पौराणिक मत है ।
3. सा:म:सा:भा:पृ. 105-106-म:भा:शा:प:अ:224-श्लोक-58

महाभारत के आदिपर्व के 130 वें अध्याय वनपर्व के 117 वें अध्याय और शान्तिपर्व के 49 वें अध्याय में मिलती है । यहाँ कवि केरल के जन्मदाता परशुराम जी से निवेदन करते हैं कि यहाँ के अनाचारों को दूर करने केलिए आप फिर से एक बार अपने परशु का प्रयोग कीजिए ।

3.1.1.2.1.4.1. "परशुराम से निवेदन"

कविता की शुरूआत में कवि परशुराम को प्रणाम करते हुए उनके अद्भुत कर्मों का वर्णन करते हैं । ब्राह्मण जमदग्नि महर्षि का क्षत्रिय युवती रेणुका के गर्भ में जन्मा पुत्र है परशुराम । वे कर्मकुशल और अतीव तेजस्वी थे ।[1] इस प्रकार उनकी महिमाओं का वर्णन करके कवि उनसे निवेदन करते हैं - हे शिव शिष्य महामुने आप की दी हुई पुण्य-भूमि केरल[2] में अब अनीति और अनाचार बढ़ता जा रहा है । वह श्रेष्ठ राज्य अब जंगल जैसा हो गया है । क्या आप ने यह नहीं देखा है ? अब आप इस दुःस्थिति को दूर करने में ज़रा भी विलंब न कीजिएगा ।[3] अब केवल आप ही इस राज्य लक्ष्मी का उद्धार कर सकते हैं । हम, आपके आभारी केरल जनता आपसे निवेदन करती है कि आप हमारी मातृभूमि को इन अनाचारों और पराधीनता से मुक्त कराने केलिए अपने परशु का प्रयोग फिर से कीजिए ।[4] यहाँ कवि केरल और भारत के सामयिक अनाचारों और दुःस्थितियों से दुःखी दिखाई पड़ते हैं । छोटी होने पर भी इस कविता में सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन अच्छी तरह हुआ है । कवि का देशप्रेम और समाज-बोध यहाँ द्रष्टव्य है ।

---

1. सा:म:छ:भा:-पृ. 2
2. --वही-- पृ. 8 म:भा:शा:प:अ:49 श्लोक-64-66
3. --वही-- पृ. 7
4. महाभारत में परशुराम शूर्प का प्रयोग करते हैं । ऐतिह्य है कि परशुराम ने परशु का प्रयोग करके केरल को बनाया है । कवि ने ऐतिह्य को स्वीकारा है । (म:भा:शा:प:अ:49)

## 3.2. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ की कृतियों में रामायण की कथा -प्रमुख प्रसंग

### 3.2.1. रामायण

आदिकवि वाल्मीकि के रामायण को भारतीय लोग एक स्वर से पवित्र तथा आदर्श काव्य ग्रन्थ मानते हैं । वास्तव में रामायण वह श्रेष्ठ , पुनीत, भव्य काव्य है जो अपनी दीप्ति से सभी लोगों को देदीप्यमान बनाता है । [1] वाल्मीकि ने इसके द्वारा आदर्श जीवन का चित्रण करके संस्कृत साहित्य को ही , नहीं , भारत की महान संस्कृति को भी प्रकाशित किया है । इस विषय में रवीन्द्र बाबू का कहना है -" हिमालय जैसे ऊँचे एवं व्यापक आदर्शों और सागर जैसे गंभीर विचारों का एक साथ किसी ग्रन्थ में समावेश हो पाया है तो वह रामायण ही है । [2] मोनियर विलियंस ने भी "इंडियन विस्डम" में रामायण की प्रशंसा की है । अपने व्यापक रूप में रामायण परवर्ती साहित्य का प्रेरक रहा है । महाभारत के हरिवंश से ज्ञात होता है कि इस कथा को लेकर विविध नाटकों का अभिनय हुआ करता था । [3] इससे रामायण की लोकप्रियता बढ़ने लगी । महारामायण , संवृत रामायण, लोमश रामायण, अगस्त्य रामायण, मंजुल रामायण , सौप्रद्य रामायण, रामायण महामाला, सौहार्द रामायण, रामायण मणिरत्न,, सौर्य रामायण , चान्द्र रामायण, स्वायंभुव रामायण, सुब्रह्म रामायण , सुवर्चस रामायण , देव रामायण, श्रवण रामायण, दुरंत रामायण, रामायण चंपू आदि रामायण के विविध रूप विकसित हुए । [4]

आदि कवि का रामायण संसार की समस्त रचनाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है । ब्रह्माण्ड पुराण में भी रामायण को समस्त काव्य, इतिहास, पुराण आदि का मूलस्रोत माना गया है । यहाँ उसे महाभारत तक का प्रेरणास्रोत माना

---

1. "रामायण" अध्याय-1, श्लोक-3।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास-वाचस्पति गैरोला- पृ. 202
3. म:भा:विष्णु पर्व-अ. 93
4. रामकथा-कामिल बुल्के -पृ. 183-188

गया है । [1] महाकवि कालिदास ने रामायण का आधार लेकर "रघुवंश" की रचना की । कुमारदास के "जानकी हरण" अभिनन्द-कृत "रामचरित", "क्षेमेन्द्र रचित "रामायण मंजरी" तथा "दशावतारचरितम्", साकल्यमल्ल कृत "उदार राघव" आदि भी रामायण पर आधारित हैं । नाटक के क्षेत्र में भास {प्रतिमानाटक}, भवभूति {महावीर चरित}, शक्ति भद्र {आश्चर्य चूडामणि}, मुरारी {अनर्घ राघव}, जयदेव {प्रसन्न राघव} आदि उल्लेखनीय हैं । संस्कृत के अतिरिक्त रामकथा ने आधुनिक भारतीय भाषाओं को भी प्रभावित किया है । तमिल का कंबरामायण ,तेलुगु का द्विपद रामायण , मलयालम का रामचरित, कृष्णगा रामायणम, अध्यात्म रामायण तथा आर्यभाषाओं में काश्मीरी में रामावतार चरित , असमिया में माधव कंदली , बंगाली का कृत्तिवासी , उडिया का विलंका रामायण , मराठी का भावार्थ रामायण आदि प्रमुख हैं । [2]

हिन्दी साहित्य में इस सुदीर्घ परंपरा की जडें बहुत ही गहरी है । हिन्दी में इसकी परंपरा गोस्वामी तुलसीदास के "रामचरित मानस" से शुरू होती है । रामायण की प्रसरण शीलता और विस्तार को लक्ष्य करते हुए तुलसीदास ने कहा -" रामायण सत कोटि अपारा" और "हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता" । आज भी विकासमार्ग में अग्रसर होती हुई रामायण की कथा ब्रह्मजी की उक्ति को सत्य सिद्ध करती है --

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति । [3]

### 3.2.1.1. गुप्तजी पर रामायण का प्रभाव

गुप्तजी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे । उन्होंने संस्कृत साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया था । राम कथा के क्षेत्र में वाल्मीकि रामायण से लेकर लगभग सभी कृतियों की ओर उनकी दृष्टि चली है, फिर भी वे रामचरित मानस के

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "रामकथा"- कामिल बुल्के-पृ. 190
2. "मैथिलीशरण गुप्त का काव्य" - डा. एल. सुनीता- पृ. 52
3. वा:रा:आ:का:स:2, श्लोक-37-38

विशेष ऋणी रहे हैं । उत्तरवर्ती काव्यों में से हनुमन्नाटक, प्रसन्न राघव, रघुवंश आदि ग्रंथों का प्रभाव उनपर पडा था । "साकेत" के प्रत्येक सर्ग के प्रारंभ में चित्रित महाकवियों की वन्दना से यह स्पष्ट है । कवि ने राम के चरित को काव्य की अन्तर्वाहिनी मानते हुए कहा है --

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाय , सहज संभाव्य है । [1]

3.2.1.1.1. गुप्तजी की कृतियों में रामायण की कथा-प्रमुख प्रसंग

रामायण की कथा पौराणिक है , तो भी उसके पात्र और आदर्श चिर-नवीन हैं । महान चरित्रों की परंपरा में जहाँ तक उदात्त सामाजिक एवं राष्ट्रीय संदर्भों का प्रश्न है वहाँ राम के उदात्त चरित्र से टक्कर लेने वाला कोई अन्य नहीं है । [2] कवि ने रामकथा को समग्ररूप में ग्रहण करने का प्रयास किया है । इस पर "शिवसिंह सरोज" में उन्हें कलियुग का वाल्मीकि कहा गया है । उन्होंने युगीन परिस्थितियों के अनुसार राम कथा के विभिन्न पक्षों को सुन्दरता के साथ प्रस्तुत करके उपेक्षित पात्रों को वाणी भी प्रदान की है । अनास्था, अविश्वास, निराशा तथा विडंबनाओं से विकल नई पीढ़ी के बीच में राम जैसे महान चरित्र को आलोकपूर्ण चित्रित करने का कठिन कार्य कवि ने किया है । फलस्वरूप राम कथा पर आधारित उनके "साकेत", "पंचवटी", "प्रदक्षिणा", "लीला"- पाँच काव्य हमें प्राप्त हुए । इन कृतियों के प्रमुख प्रसंगों का जिक्र आगे हो रहा है ।

3.2.1.1.1.1. "साकेत"

"साकेत" रामायण पर आधारित गुप्तजी की सर्वश्रेष्ठ रचना है । पुनरुत्थानवादी युग की रचना होने के कारण तत्कालीन मुख्य प्रवृत्तियों का भी सीधा प्रभाव इस पर पडा है । यहाँ कवि ने रामकथा को युगीन परिस्थितियों

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत-" मुख पृष्ठ
2. "नूतन राम कथा"- डा. रामनाथ त्रिपाठी-पृ. 6

के अनुसार , नवीन उद्भावनाओं के साथ प्रस्तुत किया है । काव्य को उन्होंने बारह सर्गों में विभाजित किया है । इसके मुख्य प्रसंग हैं - लक्ष्मण-उर्मिला का प्रेम-जीवन , राम का निर्वासन , कैकेयी का पश्चात्ताप , सीता का गृहस्थ जीवन उर्मिला का विरह वर्णन, हनुमान-भरत-मिलन और अयोध्या वासियों की रण सज्जा आदि । इनका विश्लेषण आगे किया जा रहा है ।

3.2.1.1.1. 1.1. लक्ष्मण-उर्मिला का प्रेम-जीवन

राम-कथा को उर्मिला की कथा बनाने की गुप्तजी की यह प्रथम चरण है । मंगलाचरण के बाद मुख्य पात्रों का परिचय देकर कवि उर्मिला-वर्णन में लग जाते हैं । यह रामायण केलिए एक नवीनता भी है । आगे वे लक्ष्मण-उर्मिला के सहज प्रेमालाप को चित्रित करते हैं । लक्ष्मण-उर्मिला-संवाद में कवि ने नव दंपति के प्रेमपूर्ण उद्गार , उनके उत्तर-प्रत्युत्तर , हार-जीत, आनन्द-उल्लास, पारस्परिक प्रति स्पर्धा, हावभावपूर्ण क्रीडाएँ आदि का चित्रोपम चित्रण किया है । इससे कथा वस्तु में सुन्दरता और आधुनिकता आई है । उर्मिला के चरित्र का विकास संगठन ही यहाँ कवि की पसंद का विषय रहा है इस प्रकार उर्मिला और लक्ष्मण को नायिका एवं नायक बनाकर कवि अपनी उद्देश्यपूर्ति की ओर शीघ्रतर बढ़ता हुआ दिखाई देता है । यही नहीं "साकेत" का कार्य, लक्ष्मण-उर्मिला-पुनर्मिलन होने के कारण प्रस्तुत प्रसंग बिलकुल प्रासंगिक और आवश्यक है । आगे राम के राजाभिषेक की पवित्र वेला में भी कवि ने उर्मिला और लक्ष्मण को भरत की अनुपस्थिति के बारे में चर्चा करते हुए चित्रित किया है । लक्ष्मण उर्मिला के प्रेम-जीवन की चरम सीमा वहाँ मिलती है जहाँ लक्ष्मण राम के साथ वन जाने केलिए तैयार हो जाता है । अब "साकेत" में लक्ष्मण रामायण के विपरीत उर्मिला के बारे अत्यंत विचारग्रस्त है । -" मैं क्या करूँ ? चलूँ कि रहूँ " । यह अवश्य ही आधुनिकता की देन है । यह राम कथा केलिए बिलकुल नवीन है । इस प्रकार लक्ष्मण-उर्मिला के प्रेम-जीवन का सहज, युगानुकूल मनोवैज्ञानिक चित्रण करके कवि ने प्रसंग को प्रभावशाली बना दिया है ।

3.2.1.1.1.1.2. राम का निर्वासन

प्रस्तुत प्रसंग इसलिए प्रमुख है कि यहाँ से असल में रामायण की कथा की शुरूआत होती है । "साकेत" के आरंभ में ही कवि उर्मिला-लक्ष्मण-संवाद के बीच में राम के राजाभिषेक का वर्णन करते हैं । ऐसा पूरा वर्णन करके आनेवाली दुर्घटना की ओर संकेत करते हैं । राज्याभिषेक की तैयारियों को देख कर मंथरा मन ही मन जल उठती है । वह कैकेयी को अपने अधिकारों के प्रति सजग करना चाहती है । [1]

मूल कथा में कैकेयी के अहित की बात करती है । "साकेत" में कैकेयी मंथरा से पूछती है " अरी, तू क्यों उदास है आज , वत्स जब होगा कल युवराज । [2] यहाँ कैकेयी की विकल्पपूर्ण मानसिक अवस्था का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है । [3] अब पूरा राजमहल अभिषेक और भरत की अनुपस्थिति के बारे में चर्चा करता है । कैकेयी को दुःखी देखकर दशरथ इस ओर संकेत करके उसे सान्त्वना प्रदान करते हैं । यह कवि की कल्पना का परिचायक है । आगे राम-लक्ष्मण , कैकेयी के पास जाते हैं । रामायण में राम अकेले जाते हैं । दशरथ की दुःखजन्य कातरता को भी यहाँ व्यक्त किया है । [4] वस्तुस्थिति के ज्ञान पर राम की प्रतिक्रिया का वर्णन रामायण के अनुसार कवि ने भी किया है । राम पितृभक्ति से सबकुछ प्रेम से ही बोलते हैं , लेकिन लक्ष्मण तीव्र आक्रोश में अपनी वीरता की घोषणा करते हुए राम से अपना राज्य वापस माँगने को ही कहते हैं । [5] यहाँ लक्ष्मण को प्रधानता दी गई है । प्रस्तुत प्रसंग में दशरथ के पश्चात्ताप का भी चित्रण हुआ है । [6] यह रामायण केलिए नवीन है । मूल की ओर संकेत मात्र करके उन्होंने प्रसंग को भावपूर्ण बनाने की कोशिश की है । यहाँ

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत" -पृ. 46-49 वा:रा:अया:का
2. पृ. 44 "मानस" - अयोध्याकाण्ड
3. पृ. 49
4. पृ. 73
5. पृ. 78, वा:रा:अ:का:स:29, श्लो:9-11
6. पृ. 83

सुमन्त्रागमन वर्णित है । उसके व्यक्तित्व का सूक्ष्म परिचय भी कवि प्रस्तुत करते हैं । [1]

आगे राम कौसल्या-दर्शनार्थ जाते हैं । कौसल्या तथा सीता के हृदय बिलकुल आनन्द से भरपूर थे । वे राम की बातों को हँसी में ही टाल देती है। कौसल्या के सरल हृदय का चित्र यहाँ उभर आया है । वस्तुस्थिति को जानकर वे काँप उठती है , फिर भी उनका हृदय मातृत्व जन्य वात्सल्य से भर उठता है । रामायण में रामवनागमन की बात सुनकर वह बेहोश होकर गिर पडती है । यहाँ वह धैर्य से केवल माता का वात्सल्य से राम की भिक्षा माँगती है । [3] यहाँ कवि ने उर्मिला तथा सुमित्रा को भी प्रस्तुत करके अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने का प्रयास किया है । यहाँ राम-सुमित्रा-संवाद बिलकुल नवीन है । प्रस्तुत संवाद में सांस्कृतिक परंपरा , स्त्रियोचित गौरव , जातिगत स्वाभिमान , स्वभावगत तीव्रता, कोमलता आदि के दर्शन होते हैं । साकेत का यह स्थल अत्यंत सजीव एवं सुन्दर है । [4] यहीं कौसल्या राम को वनगमन की अनुमति देती है । "साकेत" में "प्रभु की वाणी न कर सकने और एक भी युक्ति न अट सकने के कारण वह कहती है -" जाओ तब वन ही , पाओ नित्य धर्मधन ही " । यहाँ से राम-लक्ष्मण और सीता दशरथ के पास जाते हैं और कैकेयी उन्हें वल्कल प्रदान करती है । "साकेत" में वे कौसल्या के यहाँ से सीधे वन केलिए प्रस्थान करते हैं , जो अधिक मौलिक है । [5] वनगमन की वेला में भी कवि अपना इष्ट पात्र उर्मिला का चित्रण करते हैं , जो बिलकुल नवीन है । सारे परिवार का चित्रण करके प्रवास की वेला को बडा कारुणिक बनाने का प्रयास हुआ है । डा. नगेन्द्र के शब्दों में- "प्रवास का चित्र बडा करुण है । यहाँ कवि ने प्रत्यक्ष रूप से भावप्रकाशन नहीं कराया , यहाँ तो परिस्थिति की गंभीरता ही विरहिणी की व्यथा की ओर

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत" - पृ. 90
2. "साकेत" - पृ. 98-99
3. " पृ. 100
4. "साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन"- द्वारिका प्रसाद- पृ. 92
5. "साकेत" - पृ. 113-114

निर्देश करती है । उर्मिला को देखकर सभी कातर हो जाते हैं । लक्ष्मण आँखें बन्दकर लेते हैं, सीता भयभीत होकर व्यजन डुलाने लगती है । ....राम भी व्यग्र हो जाते हैं । [1] प्रवास के समय साकेत में भी प्रजा राम के साथ जाने केलिए तैयार हो जाती है । [2] यहाँ नहीं "साकेत" में प्रजा राम का मार्ग रोकती भी है, जो गाँधीजी के सत्याग्रह का प्रतिरूप मात्र बन गया है । यहाँ मूल का सौन्दर्य फीका पड गया है । यहाँ राम प्रजा को सान्त्वना देते हुए आगे निकलते हैं । अयोध्या की सीमा पहुँचकर वे मातृभूमि की वन्दना भी करते हैं । राष्ट्रकवि का स्वदेश प्रेम यहाँ रोके न रुक सका, वर आगे बढ़ने लगा [3]

कवि ने कथा-वस्तु को प्रसंगानुकूल चित्रित करके आधुनिक बनाया है । उन्होंने प्रस्तुत प्रसंग में कैकेयी के चरित्र को नई दिशा देने का प्रयास किया है । पारिवारिक जीवन के सुसंस्कृत चित्र खींचने में, राम-लक्ष्मण के चरित्रोत्कर्ष दिखाने में, प्रवास के कारुणिक चित्र प्रस्तुत करने में, गाँधीवाद और देशभक्ति के चित्रण में वे सफल निकले हैं ।

### 3.2.1.1.1.1.3. सीता का गृहस्थ जीवन

गुप्तजी ने युगीन परिस्थितियों के अनुसार सीता के पौराणिक चरित्र में आधुनिक युग की नारी के स्वतंत्र किन्तु सुसंस्कृत रूप का समावेश किया है । कवि ने साकेत के अष्टम सर्ग में सीताजी के सुखी गृहस्थ-जीवन का विस्तृत चित्र खींचा है । उत्साहपूर्ण वातावरण में जीनेवाली सीता का चित्र सुन्दर गीत में चित्रित किया गया है । [4] वह राम के साथ सुखी जीवन व्यतीत करती है जो गृहस्थ जीवन की दिव्यता और भव्यता से पवित्र भी है । पूरा प्रसंग कवि की मौलिक कल्पना एवं कवि की राम भक्ति का द्योतक है । गुप्तजी ने उसके जीवन

---

1. "साकेत एक अध्ययन"- डा. नगेन्द्र- पृ. 54-55
2. "साकेत" - पृ. 127
3. पृ. 34
4. "साकेत"- पृ. 223

को युगीन परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है । सीता जी की कोलकिरात बालाओं के सभा बनाने की इच्छा एवं उन्हें कातना बुनना आदि सिखाने की तत्परता युगीन प्रभाव का परिणाम है । [1]

प्रस्तुत भाग में कवि राम-सीता-संवाद वर्णित करके , राम के जीवनादर्श को व्यक्त करते हैं । आदर्श की शिक्षा, त्याग का महत्व, पीड़ितों की रक्षा, सुख-शान्ति की स्थापना आदि उनका जीवनोद्देश्य है । उन्होंने मानव मात्र की सेवा भावना को अपनाया है जो कवि के मानवतावाद का द्योतक है । इस प्रकार कथा को आधुनिक बनाने में वे सफल निकले हैं । यहाँ गाँधीवाद चिंतन और समाज सुधार की भी सुंदर झलक मिलती है ।

3.2.1.1.1.1.4. कैकेयी का पश्चात्ताप

गुप्तजी ने "साकेत" के अष्टम सर्ग में चित्रकूट की योजना की है । रामायण में अब सभी लोग एकत्र होकर विचार विमर्श करते हैं जिसमें भरत राम के लौटने पर ज़ोर देते हैं । [2] "साकेत" में राम भरत का अभीप्सित पूछते हैं । यहीं भरत की ग्लानि उमड पडती है । आगे रामायण से भिन्न होकर यहाँ कैकेयी का भी चित्रण हुआ है , जो राम से घर लौटने की प्रार्थना करती है । वह कहती है -" यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को " । कैकेयी की इस दयनीय अवस्था का चित्रोपम चित्रण कवि ने किया है । उसके शब्दों में दैन्य नहीं , मातृत्व की गर्व है । उमड़ते हुए भावों से पड कर वह कहने लगती है --

> दुर्बलता का चिह्न विशेष शपथ है
> पर अबलाजन केलिए कौन सा पथ है ? [3]

वह निराशा की आग में जलती है, और आत्मग्लानि से कहती है......

---

1. साकेत- पृ. 226-227
2. वा. रा. अयो. का. सं. 104. श्लोक-8-10
3. साकेत-पृ. 248

थूके मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके
जो कोई जो कह सके कहे क्यों चूके । [1]

वह किसी को भी दोषी न ठहराकर सब कुछ अपने ऊपर ले लेती है और पश्चात्ताप से जलती है । [2]

कैकेयी का यह रूप पूर्णतः नवीन है । इस प्रकार पश्चात्ताप में जलाकर कवि ने कैकेयी के चरित्र को सुवर्ण बना दिया है । "साकेत" में आकर कैकेयी "गोमुखी गंगा" बन गई । इस हृदयस्पर्शी एवं कारुणिक चित्र से कवि ने पारिवारिक जीवन के अटूट संबन्धों को चित्रित करने का प्रयास किया है ।

3.2.1.1.1.1.5. उर्मिला विरह वर्णन

"साकेत" के नवम और दशम सर्ग में उर्मिला का विरह वर्णन हुआ है । राम के निर्वासन के बाद सारी अयोध्या में विषाद छा जाती है । उर्मिला पर इसका बडा प्रभाव पडता है । उर्मिला का यह विरह वर्णन पूर्णतः कल्पित है । यहाँ आकर राम की कथा उर्मिला की कथा बन जाती है । गुप्तजीकालीन सामाजिक परिस्थितियों और क्रान्तिकारी दृष्टियों ने उपेक्षित उर्मिला को महत्त्व प्रदान किया और उनकी तीव्र वेदना को वाणी मिल गई । गुप्तजी की उर्मिला त्याग एवं अनुराग की मूर्ति बनकर राजमहल में पडी पडी विरह वेदना में तडपती है । उसे देखकर उसकी माँ कहती है -" मिला न वन ही न भवन ही तुझको । अपने हृदय में लक्ष्मण की मूर्ति की स्थापना करके आरती के समान वह रात दिन जलती रहती है । बीती गई स्मृतियाँ उसे सदा सताती रहती है । इसलिए वह समदुःखिनी प्रोषितपतिकाओं को निमंत्रण भी देती है । [3] विरहिणी उर्मिला कोई चारा नहीं पाकर अंत में विरह को ही प्यार करने लगती है । वेदना उसके लिए प्रिय बन जाती है । [4] अब वह अपने उपवन में पुरबालाशाला खुलवाना

1. "साकेत" पृ. 249-
2. पृ. 249
3. पृ. 275
4. पृ. 283

चाहती है , जिससे शानवर्धन और विरह भी शांत हो । वह निष्फल ही निकलता है ।

विरहिणी उर्मिला का मन क्षण-क्षण बदलता रहता है । बढ़ती हुई व्याकुलता से वह उन्माद की अवस्था तक पहुँचती है और सोचती है कि वनवास की अवधि पूर्ण हो गयी है , प्रियतम से उसकी भेंट हो गई है । फिर भी कर्तव्य और मर्यादा का ध्यान बराबर बना रहता है । वह कहती है

"प्रभु कहाँ, कहाँ किन्तु अग्रजा जिनके लिए था मुझको तजा ।
वह नहीं फिरे क्या तुम्हीं फिरे ? हम गिरे अहो । तो गिरे गिरे ।" [1]

ऐसी स्थिति में भी उसका विश्वास अटल है । यह कवि कल्पना की चरम-सीमा है । युगीन परिस्थितियों ने गुप्तजी को इस क्षेत्र में विशेष प्रेरणा एवं सहायता दी है । "काव्येर उपेक्षिता" की बात तो रही समाज सुधार के अंतर्गत नारी जागरण ने इसमें विशेष योगदान दिया है । विरहिणी उर्मिला अपने सेवाकार्य से अत्यंत प्रभावित हुई है । पुरबालाशाला वाली बात इसका द्योतक है । प्रत्येक क्षण बदलने वाली विरहिणी के भावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण यहाँ किया गया है । दशम सर्ग में बालकाण्ड का वर्णन होते हुए भी कवि का मूल उद्देश्य उर्मिला का विरह वर्णन ही रहा है । इस प्रकार कवि ने उर्मिला के ज़रिए उपेक्षित पात्रों को जीवन-दान देकर नारी जागरण में विशेष योगदान दिया है ।

3.2.1.1.1.1.6, हनुमान-भरत-मिलन

रामकथा में लक्ष्मणशक्ति के प्रसंग में हनुमान और संजीवनी बूटी की बात अलौकिक एवं अद्भुत है । रामायण में राम के आज्ञानुसार हनुमान मनुष्य रूप में अयोध्या जाते हैं । [2] यहीं भरत हनुमान मिलन होता है । कवि ने इसी के आधार पर "साकेत" में, अति-प्राकृत तत्व {हनुमान का पर्वत को लेकर उडना} को हटाकर बुद्धिवादी ढंग से अयोध्या में ही संजीवनी बूटी की प्राप्ति का चित्रण

---

1. "साकेत" - पृ. 334
2. वा. रा. यु. का. स. 128. श्लो. 17-18

किया है । यहाँ भरत-शत्रुघ्न की मंडली में हनुमान का प्रवेश यकायक दिखाकर प्रसंग को नाटकीय बनाया है । रामायण में संजीवनी बूटी का प्रसंग तीन बार आती है । [1] कवि की नई उद्भावना के साथ कथाक्रम में ही परिवर्तन आया है । फलतः हनुमान के द्वारा राम-रावण-युद्ध की संक्षिप्त कथा भरत को सुना सके हैं , और साकेत को पूरी कथा का केन्द्र भी बना दिया, जिससे संबन्ध निर्वाह के साथ साथ नामकरण भी सार्थक बन गया है । प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने लक्ष्मण-शक्ति का भी चित्रण किया है ।

3.2.1.1.1.1.7. अयोध्यावासियों की रण-सज्जा

गुप्तजी ने द्वादश सर्ग में युद्ध का संक्षिप्त चित्रण किया है । यहाँ भी लक्ष्मण-शक्ति की स्थापना की ओर उनकी तूलिका चली है । यहाँ उन्होंने अयोध्या वासियों की रण सज्जा का भी चित्रण किया है , जो पूर्णतः कल्पित है । राम-रावण-युद्ध और लक्ष्मण-शक्ति की बात सुनकर मूल रामकथाओं के विपरीत राजमहल में एक नई स्फूर्ति का उदय होता है । मांडवी कातर हो तुम आर्य पुत्र होकर नर-नामी कहकर भरत में युद्धोचित जोश पैदा करती है । [2] शत्रुघ्न , जो अपने भाई की आज्ञा की प्रतीक्षा में थे , सहसा युद्ध केलिए तैयार हो जाता है । यहाँ विधवा रानियों के दुःखपूर्ण उद्गार, जवान वधुओं की धैर्यपूर्ण विदा आदि का भी वर्णन हुआ है । [3] साकेत परिवार का यह वर्णन पूर्णतः नवीन है । यहाँ कैकेयी तथा उर्मिला के चित्र खींच में भी कवि अतीव सफल निकले हैं । यहाँ कैकेयी समरक्षेत्र में जाने केलिए तैयार हो जाती है । [4] उर्मिला का अटूट आत्मविश्वास यहाँ उभर आया है । वह स्वयं वीर क्षत्रणी बनी हुई आगे बढ़कर सेना संचालन करती हुई कहती है

"ठहरो, यह मैं चलूँ कीर्ति सी आगे आगे,
भोगें अपने विषम कर्म-फल अधम अभागे । [5]

पतिपरायणा उर्मिला के इस चित्रण को सशक्त और वीरतापूर्ण बनाने में कवि सफल निकले हैं । यहाँ भी वे अपनी लक्ष्य पूर्ति की ओर बढ़ने की कोशिश करते हैं । प्रजा के उत्साह का भी यहाँ सजीव चित्रण हुआ है , जो सच्चे अर्थ में उद्बोधनात्मक है । गुप्तजीकालीन भारतीय जनता स्वाधीनता के बोध से अवगत न होकर चेतनाहीन जीवन बिताते रही थी । कवि ने यह भली-भाँति समझकर जनता को नई चेतना और स्वाधीनता के बोध से सजाकर , संग्राम भूमि की ओर उद्यत कराने का प्रयास किया है । इस प्रकार कवि ने अपनी उद्देश्य पूर्ति की ओर बढ़ने का सफल प्रयास किया है ।

कथा के अंत में लक्ष्मण-उर्मिला का मिलन चित्रित करके काव्य को अधिक औचित्यपूर्ण बनाया है । काव्यारंभ और काव्यांत में उर्मिला के मिलन का वर्णन हुआ है । यहाँ युद्ध क्षेत्र में प्रेम की मूर्ति बनकर वह अपने पति के सामने आती है । यहाँ भी वह आदर्श पत्नी का रूप ही दिखाती है । [1] यहीं कवि की सफलता की भी चरम सीमा है ।

3.2.1.1.1.2. "पंचवटी" (सं. 1982)

पंचवटी में कवि ने रामायण में चित्रित शूर्पणखा की कथा को स्वीकार किया है । प्रसंग में कुछ विचित्र परिस्थितियों का उद्घाटन कर कवि ने कथा को रोचक बनाने का प्रयास किया है ।

3.2.1.1.1.2.1. शूर्पणखा प्रसंग

पंचवटी में राम-सीता , लक्ष्मण के साथ पर्णशाला में रहते हैं । तब शूर्पणखा का वहाँ आगमन होता है । कवि ने प्रसंग को पारिवारिक परिवेश में , संपूर्ण माधुर्य और मानवीय आदर्शों के साथ वर्णित किया है । उनकी शूर्पणखा मूल की तरह दुर्मुखी , महोदरी, विरूपाक्षी और कुरूपा नहीं है । [2] "पंचवटी" में सुन्दरी , सतृष्णा और वासना की मूर्ति बनी हुई है । [3] यहाँ शूर्पणखा का

---

1. 'साकेत'- पृ. 497
2. वा. रा. आ. का. स. 17. श्लोक-10-11
3. 'पंचवटी'- पृ 21

प्रवेश पूर्णतः नाटकीय है । वह लक्ष्मण से एकांत में मिलती है । राम के पास वह जाती तक नहीं है । कवि ने लक्ष्मण-शूर्पणखा-संवाद को मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित किया है । शूर्पणखा को देखकर लक्ष्मण पूछते हैं -" तुम्हीं बताओ कि तुम कौन हो रंजित रहस्यवाली " । [1] यहाँ का सीता-शूर्पणखा-संवाद भी बिलकुल मौलिक है । सीता शूर्पणखा से बहन का-सा व्यवहार करती है, जो विचित्र दिखाई पडता है । [2] श्रीराम से शूर्पणखा का मिलन भी "पंचवटी" में विशिष्टता के साथ हुआ है । यहाँ शूर्पणखा राम के पूछने पर एक स्वेच्छाचारिणी स्वतंत्र नारी कहकर , अपना परिचय देती है । वासना की पुतली , वह राम पर मुग्ध होकर वरमाला पहनाने जाती है । राम अब इनकार करके उसे लक्ष्मण के पास भेजते हैं । [3] लेकिन लक्ष्मण भी चतुरता के साथ उसे टाल देते हैं । अब तिरस्कृत शूर्पणखा राम के पास जाती है तो राम साफ-साफ उसे अस्वीकार करते हैं । [4] वह उलझन में पडकर क्रुद्ध हो जाती है और अपने राक्षसी रूप प्रकट करती है । इसका अनोखा चित्र यहाँ खींचा गया है । [5]

गुप्तजी ने शूर्पणखा के राक्षसीत्व को मानवत्व बना दिया है । यहाँ का लक्ष्मण-शूर्पणखा-संवाद अधिक युगानुकूल हुआ है । यहाँ कवि जाति-भेद, नारी जागरण आदि समस्याओं की ओर प्रश्न चिह्न लगाने की कोशिश करते हैं जो युगीन प्रभाव का द्योतक है ।

3.2.1.1.1.2.2. देवर-भाभी का हास-परिहास

कई पुरानी बातें आज की जनता मंजूर नहीं कर सकती । आज की नारी वाल्मीकि की सीता में अपने को देख नहीं सकती , उनके लक्ष्मण गंभीरता का प्रतीक भी बने रहेंगे । इसलिए गुप्तजी ने उनके चरित्रों में युगानुकूल परिवर्तन उपस्थित किए है । उनके सीता-लक्ष्मण, हास-परिहास करते हुए अपने भाभी-देवर के संबन्ध

---

1. "पंचवटी-" पृ. 25.
2. पृ. 43
3. पृ. 54-55
4. पृ. 56
5. पृ. 60-61

को सरस बनाते हैं । "पंचवटी" में सीता जी लक्ष्मण से पूछती है ......

ये पति की आज्ञा से अब छोड चले ,
पर देवर तुम त्यागी बनकर क्यों घर से मुह मोड चले ? [1]

यह प्रसंग अन्यत्र मिलना कठिन है । लक्ष्मण भी मूल से कहीं आगे बढ़ जाते हैं । [2] कवि की सीता, लक्ष्मण के इतने निकट है कि कहती है -"रहो रहो पुरुषार्थ यही है पत्नी तक न साथ लाए " । राम भी भाभी-देवर के इस सरल स्नेह पर रीझ गए हैं । [3]

सीता-लक्ष्मण का यह हास-परिहास "साकेत" में भी बडी सरसता के साथ चित्रित किया गया है । [4] इसके अलावा "साकेत" में ऊर्मिला-शत्रुघ्न के हास-परिहास की ओर भी संकेत किया गया है । [5]

इस प्रकार कवि ने देवर-भाभी के हास परिहास को बडी चतुरता के साथ प्रस्तुत करके कथा को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके राम-कथा की परंपरा में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया है ।

3.2.1.1.1.3. लीला [सं. 2017]

यह एक गीति नाट्य है । यहाँ राम की नरलीला पर बल देते हुए उनको स्पष्ट रूप से अवतार पुरुष माना गए हैं । [6] कथा को नौ स्वतंत्र दृश्यों में विभक्त किया है । इसके प्रमुख प्रसंग , "विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना" "सीता स्वयंवर" एवं "परशुरामागमन" है । इनका जिक्र यहाँ हो रहा है ।

3.2.1.1.1.3.1. विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना

रामावतार के वर्णन से कृति की शुरूआत होती है । इससे पृथ्वी तक

---

1. "पंचवटी"- पृ. 22
2. "पंचवटी"- पृ. 53
3. पृ. 69
4. "साकेत"- पृ. 145
5. "साकेत"- पृ. 297
6. "लीला"- पृ. 5

उत्फुल्लित हुई । आगे रामादि बालकों की मृगया विषयकयोजना का चित्रण होता है । इसी बीच विश्वामित्र के अयोध्या में आने की सूचना वीर द्वारा देकर कथा को आधुनिक बनाया गया है । अब बालक उनके दर्शनार्थ जाते हैं । [1] आगे राम का विश्वामित्र के साथ वन जाना निश्चित हो जाता है । रामायण में विश्वामित्र के आने की वार्ता कुमारों को तभी प्राप्त होती है जब दशरथ उन्हें विश्वामित्र के आग्रह के अनुसार बुलावा भेजते हैं । [2] "लीला" के कुमार विश्वामित्र के आने की खबर सुनकर स्वयं दशरथ के सम्मुख उपस्थित होते हैं । यही नहीं, रामायण में वसिष्ठ की सान्त्वना पाकर ही राजा राम को विश्वामित्र के साथ भेजने का धैर्य करते हैं । [3] "लीला" में राम कहीं पिताजी को सान्त्वना देते हैं तो कहीं उनको उपदेश भी देते हैं । यहाँ राम के चरित्र का गौरव नष्ट हुआ सा जान पडता है । फिर भी उनके राम बिलकुल आदर्शवान है । "यतो धर्मस्ततो जय:" के अनुसार उनका जीवन लक्ष्य धर्म है । रामायण में दशरथ का वात्सल्य जितना मुखरित हो सका है [4] उतना "लीला " में नहीं । यहाँ उसका संकेत मात्र है । [5]

इस प्रकार गुप्तजी ने कथांश को युगानुरूप बनाया है । प्रस्तुत प्रसंग की प्रधानता है कि यहाँ से राम कथा का आरंभ होता है । राम का चरित्र-गौरव और दशरथ का पुत्रवात्सल्य का अनोखा चित्रण भी यहाँ हुआ है, जो आधुनिक युग के अधिक निकट है ।

### 3.2.1.1.1.3.2. सीता स्वयंवर और परशुराम आगमन

कवि " लीला" के सातवें दृश्य में सीता-राम-कथा की नींव डालते हैं । यहाँ मानस के अनुसार सीता-राम-प्रथम मिलन चित्रित किया है । लीला" में

---

1. "लीला"-पृ. 19
2. वा.रा.बा.का.स.22 श्लो. 1-3
3. वा.रा.बा.का.स.21, श्लो-6-8
4. 19, 20-21
5. "लीला" -पृ. 29

सीता सखि के द्वारा राम-लक्ष्मण के आने की खबर नहीं पाती , उर्मिला से ही सारी बात जान लेती है । यहाँ प्रेमियों के विविध मनोभावों का अत्यंत सुन्दर और मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा गया है । आगे धनुःशाला में चाप न चढ़ पाने के कारण जनक के क्षोभ का वर्णन हुआ है , जो पिता सहज अवश्य है । अब राम-लक्ष्मण का आगमन होता है । रामायण में राम-लक्ष्मण के आग्रह पर उन्हें धनुष के दर्शन प्राप्त होती हैं । [1] वहाँ जनक का संताप जन्य क्षोभ और लक्ष्मण का क्रोध जन्य आक्रोश भी नहीं । विश्वामित्र की आज्ञा से राम चाप चढाते हैं और विजयी होते हैं । [2] "लीला" में यह बात राम के विस्मय द्वारा चित्रित है

अरे खींचने के ही संग यह कोदण्ड हुआ क्यों भंग ? [3]

यह राम की वीरता और शस्त्र कुशलता का द्योतक है । प्रस्तुत दृश्य में परशुराम का आगमन होता है, यहाँ गुप्तजी मानस के अनुवर्ती हुए हैं । [4] रामायण में राम-सीता-विवाह के बाद परशुरामागमन होता है । [5] लेकिन गुप्तजी ने मानस के अनुकरण करके विवाह के पहले राजा जनक की धनुःशाला में ही परशुराम का आगमन , उनका क्रोध, लक्ष्मण से कहा सुनी और अंत में परशुराम का पराभव भी चित्रित किया है । रामायण के विपरीत "लीला" में परशुराम अपने स्वर्ग भोग का स्वयं अवरोध करते हैं । [6] "लीला" में भयानक का अंश तक नहीं मिलता । यहाँ परशुराम क्रोधी न होकर समझदार अधिक है । आगे काव्य के अंत में राम-सीता-विवाह संपन्न होता है और "नयन नई यह झलक निहारो " वाले गीत के साथ काव्य का भी शुभांत होता है ।

रामकथाओं के अनुवर्ती होते हुए भी "लीला" अपने में मौलिक और युगानुकूल है । कवि ने कई प्रसंगों को नये सिरे से चित्रित करके कथावस्तु को सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल सजाने का कार्य किया है ।

---

1. वा. रा. बा. का. स. 66, श्लोक-6, 26
2. " " " " 15, 16/सर्ग 67, श्लोक-17
3. "लीला" -पृ. 107
4. "मानस"- बालकाण्ड
5. वा. रा. बा. का. स. 74-श्लोक-8-10
6. "लीला"- पृ. 115

3.2.1.1.1.4. "प्रदक्षिणा" {सं. 2007}

प्रदक्षिणा में कवि ने संपूर्ण रामकथा को अतीव संक्षिप्त रूप और नए परिवेश में प्रस्तुत किया है । इसमें मंथरा वृत्तान्त और कई अन्दर कथाओं को छोडकर रामायण के बालकाण्ड और अयोध्या कांड की सारी घटनाओं का वर्णन हुआ है । आखिर राम-राज्य के प्रस्थापन से "प्रदक्षिणा" समाप्त होती है । यहीं कथा का प्रथम और अंतिम विराम भी है । कवि की कार्य कुशलता से यहाँ भी आधुनिकता की झलक मिलती है । यहाँ लक्ष्मण की चारित्रिक दृढ़ता को बनाए रखने में कवि सफल निकले हैं । "प्रदक्षिणा" में वे अपने आदर्श और उद्देश्य को प्रकट करते हैं ---

"धर्महेतु अवतीर्ण हुए प्रभु मुनियों ने यह जाना था ,
नर रूपी निज परमेश्वर को पहले ही पहचाना था । [1]

यहाँ उनका राम स्व-कर्तव्य को व्यक्त करते हैं । -"मुझे आत्मरक्षा के पहले है स्वदेश रक्षा का कर्तव्य । [2] यह बिलकुल युगानुकूल और उद्बोधनात्मक प्रसंग है । ये सब राम के होते हुए भी कवि का आदर्श एवं कर्तव्य बोध है । यहाँ उनका स्वदेश प्रेम भी उभर आया है । इस प्रकार कथा को आधुनिक विचारों से सजाकर युगानुकूल बनाने में प्रदक्षिणाकार सफल हुए हैं ।

3.2.1.2. वळ्ळत्तोळ् पर रामायण का प्रभाव

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी संस्कृत के बडे पंडित थे । वळ्ळत्तोळ् की पारिवारिक पृष्ठभूमि ऐसी थी कि उन्होंने अपनी छोटी आयु में ही वेद, पुराण, अमरकोश , आयुर्वेद आदि संस्कृत ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया था । वाल्मीकि-रामायण पर भी उनकी दृष्टि पडी थी । वे वाल्मीकि रामायण की ओर इतनी आकृष्ट थे कि उन्होंने उसका अनुवाद मलयालम में किया था । वह उनकी कीर्तिपता बन गया । इसके बारे में केरलवर्मा वलिय कोयित्तंपुरान ने अवतारिका में कहा है-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "प्रदक्षिणा" - पृ. 11
2. पृ. 13

"अनुवाद मूलानुसारी अत्युत्तम, अनन्य लालित्य एवं रम्यता से युक्त और दोषहीन है , अत: अनिर्वचनीय धन्यवाद के पात्र हैं । [1]

3.2.1.2.1. वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में रामायण की कथा-प्रमुख प्रसंग

वळ्ळत्तोळ् ने रामायण से सामग्री संचित करके कई रचनाएँ की हैं । उनमें "दण्डकारण्यम्" रावणन्टे अन्तपुरगमनम्" "शरणमय्यप्पा" आदि प्रमुख हैं । इनके मुख्य प्रसंगों का जिक्र आगे हो रहा है ।

3.2.1.2.1.1. "दण्डकारण्यम्"

"दण्डकारण्य" वळ्ळत्तोळ् की रामायण पर आधारित मुख्य रचना है । इसकी मूल कथा वाल्मीकि-रामायण के उत्तर काण्ड के 80 और 81 वें अध्याय में वर्णित है । कवि ने यहाँ मूल कथा को उसी प्रकार स्वीकारा है । इस खण्डकाव्य के मुख्य प्रसंग "गुरु पुत्री पर दण्ड का अत्याचार" और "गुरु द्वारा शिष्य का सर्वनाश" हैं ।

3.2.1.2.1.1.1. गुरु पुत्री पर दण्ड का अत्याचार

दण्ड सूर्यवंश का एक राजा था । मनु के सौ पुत्रों में यह सबसे छोटा था । वह बड़ा अत्याचारी और दुष्ट था । इसलिए ही उसका नाम दण्ड रखा गया । [2] उसने परशुराम वंशज उशनुस को अपना कुलगुरु बना दिया । एक दिन गुरु के तपोवन की ओर जाते समय उसने वृक्षलतादियों के बीच में फूल तोडनेवाली एक सुन्दरी को देखा । आकार और सौन्दर्य से उसको मालूम हुआ कि वह गुरु पुत्री है । उसके सुन्दराकार में दण्ड काममोहित हो गया । [3] दण्ड अपने आप को संभाल नहीं सका । उसका कामावेश बढ़ता आया । तब गुरु सुता ने कहा --

"अस्तयनयमां समुद्यमं, निन् गुरुसुत आनरजा"ख्य राजमौले !
करुतुक भृगुमुख्यनां पिताविन् वरुतियिल् निल्पोरु कन्ययेन्नुमेन्ने " । [4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "वाल्मीकि रामायण, प्रथम संस्करण, अवतारिका
2. "दण्डकारण्यम्" पद. 3- पृ. 6
3. -- पद-15, पृ. 12
4. -- पद-25-पृ. 17

§हे, राजन ऐसा अत्याचार मत करो , मैं तुम्हारे गुरु की पुत्री अरजा हूँ । मुझे अपने पिता के आग्रह के अनुसार मात्र चलने वाली एक कन्या समझो । § अगर तुम मुझे चाहते हो तो मेरे पिताजी से जाकर पूछिए । उसके विपरीत यदि कुछ किया तो उसका फल कठिन होगा । तुम्हारे गुरु शिष्यों पर वात्सल्य रखने-वाले हैं । इसलिए वे तुमको निराश नहीं छोड़ेंगे । तब दण्ड ने कहा - तुम मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो । उनका शिष्य होने के कारण उनको इस बात में कोई विरोध नहीं होगा । तुम जैसे अनाघ्रात कुसुम को अगर ऐसा ही छोड दिया तो मेरा जन्म ही असफल होगा । तुम्हारे भोग के बाद यदि मेरा नाश हो , तो भी मैं चिंता नहीं करूँगा ।[1] अरजा के अनेक बार कहने पर भी दण्ड पर उसका कोई असर नहीं पडा । कामान्धता से उसने गुरु पुत्री पर बलात्कार किया । अब कवि कहते हैं ----

"अरजयुडय कन्यकानिलयुक्कुं , करकवियुं निजमन्मथव्यथयुक्कुं ,
परमरुति वरुत्तियुळकुलित्ता नरपति तन् नगरिक्कुतान् नडन्नु " ।[2]

§अरजा के कन्यकात्व और अपनी सीमाविहीन कामान्धता का शमन करके वह राजा संतुष्ट होकर अपने नगर की ओर चला । § कवि यहाँ कामान्ध मनुष्य का मनो-वैज्ञानिक चित्र खींचकर उससे होनेवाले दुष्परिणामों की ओर टिप्पणी लगाते हैं ।

### 3.2.1.2.1.1.2. गुरु द्वारा शिष्य का सर्वनाश

अरजा के आश्रम पहुँचने के तुरंत बाद उसके पिताजी वहाँ आ गए । पुत्री की दुःस्थिति को देखकर उनको दिव्य दृष्टि से सब कुछ ज्ञात हो गया । मुनि अतिशीघ्र कोप से जल उठे । मुनि ने उग्र होकर अपनी तपशक्ति से ऐसा शाप दिया ---

"कडुतयोडु कडन्नु कन्ययालिलक्कोडुति तुडर्नोरु चंडनाय दण्डन्
पेडुमषयिलुषन्नशेष संपत्तोडुमरुति पोडुमेषुनालिनुल्लिल्" ।[3]

---

1. "दण्डकारण्यम्" -पद-31, पृ. 20
2. --वही-- पद-35, पृ. 21
3. --वही-- पद-44, पृ. 24

{वह क्रूर दण्डराज ने मेरी बेटी से जो अत्याचार किया उसके कारण सात दिनों के अन्दर वह अपनी सारी संपत्ति के साथ मिट्टी में मिल जाएगा । } राजा के साथ राज्य का भी नाश होने के कारण उस राज्य से सभी साधुओं को दूर जाने की भी उशनस ने आज्ञा दी । अपने पाप के मिटने तक पुत्री को वहीं रहने का भी आदेश दिया गया । पुत्री के रहने के आस-पास की सभी चीज़ें ज्यों की त्यों रहेंगी - ऐसा भी मुनि ने कहा । महर्षि के शाप के अनुसार सात दिनों में दण्ड का सर्वनाश हुआ । उसी विशाल प्रदेश को फिर दण्डकारण्य कहा जाने लगा । [1] यहाँ कवि कुकर्मों की दुष्परिणामों की ओर इशारा करते हैं । आर्ष भारत के ऋषिवर्यों की ज्ञानदृष्टि एवं तपोबल के बारे में भी कवि हमें सचेत करते हैं । अबला नारी की ओर पुरुष के अत्याचार का चित्रण करते हुए कवि नारी जीवन सुधार की ओर प्रकाश डालते हैं ।

3. 2. 1. 2. 1. 2. "शरणमय्यप्पा"

यह एक भक्तिरस प्रधान काव्य है । यह केरल के "शबरिमला" नामक तीर्थ-स्थान में जाने वाले भक्तों के निवेदन के अनुसार लिखा गया काव्य है । इसका प्रकाशन सन् 1941 में हुआ था । यह काव्य रामायण की शबरी से जुड़ा हुआ है । रामायण में प्रतिपादित शबरी के वासस्थान था शबरिगिरि । [2] वहीं परशुराम ने एक मंदिर बनाकर अय्यप्पन [3] की मूर्ति की प्रतिष्ठा की । प्रस्तुत कविता में कवि अय्यप्पन की शक्ति, शबरिपीठ की पवित्रता आदि आध्यात्मिक बातों की ओर प्रकाश डालने की कोशिश करते हैं ।

3. 2. 1. 2. 1. 2. 1. शबरिगिरि की महिमा

रामायण में प्रसिद्ध शबरि का विहार स्थान है शबरिगिरि । नवंबर-दिसंबर महीनों में केरल और भारत के समस्त भक्त जन शबरिगिरि में अय्यप्प दर्शन केलिए आया करते हैं । आगे कवि अय्यप्पन से निवेदन करते हैं -" है धर्मशास्त

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "दण्डकारण्य" पद-50-पृ. 27 2. वाल्मीकि रामायण-आरण्यकाण्ड-सर्ग-7
3. असुरों से अमृत कुंभ को वापस लेने केलिए महाविष्णु ने मोहिनी का रूप धारण किया । तब शिवजी उस रूप पर कामित हो गया । फलस्वरूप मोहिनीसुत अथवा हरिहर पुत्र का जन्म हुआ । वही अय्यप्पन है । कम्परामायण-बालका

हम मानवों ने इन्द्रिय सुख-भोगों केलिए अनेक पाप कर्म किए हैं । आप हमें उन पापों से मुक्त करके शाश्वत परिशुद्धि के मार्ग में ले जाइए ।[1] यहाँ शबरिगिरी की सुन्दरता का भी कवि वर्णन करते हैं । अय्यप्पन की शक्ति के बारे में भक्त कवि कहते हैं कि हे शबरिगिरि में वास करनेवाले भगवान, आपके चरण-कमलों के दर्शन केलिए कितना-कितना कष्ट उठाना पडता है उतना ही मोक्ष हमें मिलता है । आपके दर्शन से मूर्ख बुद्धिमान , दरिद्र धनवान और निम्न श्रेणी के लोग उच्च श्रेणी के परिणत होते हैं ।[2] आखिर कवि कहते हैं -"

"निन्दुक्कलेक्कुल्लु मह त्तामी वन्यमार्गं विमुक्ति मार्गं ध्रुवं ।
श्री शबरिमलक्कुमेल मेवुन्न केशवविव प्रेम विपाकमे ,
हा, शरणमियृयेष्कळक्कयृयप्पा । पाप मोचनं निन् पदमोन्नुतान्-"[3]

{हे हरिहर पुत्र, शबरिगिरि पर चढ़ने का जंगली रास्ता ही भवसागर पार करने का मार्ग है और शबरिपीठ का दिव्य दर्शन ही साक्षात् मोक्ष है । } यहाँ भक्त कवि के दार्शनिक मन की अच्छी झलक मिलती है । तत्कालीन भक्तिहीन भारतीय जनता को कवि भक्ति मार्ग की सफलताओं के बारे में सचेत करते हैं ।

3.2.1.2.1.3. "रावणन्टे अन्तपुरगमनम्"

यह साहित्य मंजरी तीसरे भाग की दसवीं कविता है । इसका प्रकाशन सन् 1922 में हुआ था । यह वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड के 73 वें सर्ग के आधार पर लिखी गई कविता है । इन्द्रजित ने ब्रह्मास्त्र से वानर सेना के साथ राम-लक्ष्मणादि को भी मूर्च्छित कर दिया । यह बात सुनकर रावण आनन्दमग्न होकर मण्डोदरी को देखने केलिए मंडोदरी-मंदिर जाते हैं । मूल कथा में रावण खुश तो होते हैं , लेकिन इस समय वे मंडोदरी मंदिर नहीं जाते । यहाँ रावण का अन्तःपुर गमन कवि की कल्पना मात्र है । कविता में रावण के मार्ग का प्राकृतिक

---

1. "शरणमय्यप्पा"-पद-8, पृ. 9
2. --वही-- पद-23, पृ. 16-17
3. --वही-- पद-35, 36, पृ. 22

सौन्दर्य वर्णित है । कवि यहाँ रावण को भक्तिहीन, राम के प्रतिद्वन्द्वी और सीताजी में अत्यासक्त आदि रूपों में चित्रित करते हैं । [1] यहाँ कवि की राम,भक्ति, धर्म के प्रति आस्था , अधर्म के प्रति विरोध आदि भावों की मार्मिक झलक उभर आती है ।

3.3. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में

अन्य पुराणों की कथा - प्रमुख प्रसंग

रामायण और महाभारत के समान पुराण साहित्य भी भारत के अतीत गौरव के रखवाले अमूल्य ग्रन्थ हैं । पुराणों का अस्तित्व अत्यंत पुराना है । छान्दोग्योपनिषद् में पुराणों को वेदज्ञान में सहायक सिद्ध किया है । [1] भारतीय वाड्.मय में पुराण के जो लक्षण गिनाए गए हैं उनमें भी वंशानुचरित पुराण का अभिन्न अंग माना जाता है । पुराणों की संख्या अठारह गिनायी गयी है । [2] इनके विषय विवेचन के बारे में कहा गया है कि इनमें ब्रह्मा के विविध रूपों की कल्पना करके उनके अवतारों की चर्चा की है । [3]

3.3.1. गुप्तजी पर अन्य पुराणों का प्रभाव

महाभारत और रामायण के बाद पुराण गुप्तजी की प्रेरणा के प्रमुख स्रोत रहे हैं । पुराणों के द्वारा प्रतिष्ठित आदर्शों को मानते हुए समाज और संस्कृति आगे बढ़ते हैं । इसी कारण से आज के युग में भी इनका विशेष महत्व है । पुराणों की कथाओं को लेकर हिन्दी में सुन्दर काव्यों की रचना हुई है । गुप्तजी पुराणों से अत्यधिक प्रभावित थे । व्यासदेव को प्रमाण बनाकर रहनेवाले कवि का पुराणों से प्रभावित होना स्वाभाविक है । "मंगलघट" में उन्होंने यह व्यक्त किया है । [4]

3.3.1.1. गुप्तजी की कृतियों में अन्य पुराणों की कथा-प्रमुख प्रसंग

पुराणों को आधार बनाकर गुप्तजी ने तीन कृतियों की रचना की है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समपबृहयेत्"- छान्दोग्योपनिषद-7/1/1-मत्य पुराण-53/3
2. वायुपुराण - 60/21
3. "भागवत दर्शन"- हरबंशलाल शर्मा-पृ. 20
3. "मंगलघट"-पृ 60

हैं," "द्वापर", "शक्ति" और "दिवोदास" । इनमें "द्वापर" ही प्रमुख है, जिसका आधार श्रीमद्भागवत पुराण है । "द्वापर" का विस्तृत अध्ययन यहाँ हो रहा है ।

3.3.1.1.1. "द्वापर"

"द्वापर" का प्रकाशन सन् 1937 में हुआ था । इसका विषय कृष्ण कथा है । भागवत पुराण पर आधारित होते हुए भी इसमें कथा का अंश बिलकुल क्षीण है । यहाँ कवि ने एक नई शैली का प्रयोग किया है । यह पात्र-प्रधान रचना है । पात्रों के पुनरुत्थान द्वारा सामयिक समस्याओं का उद्घाटन ही कवि का लक्ष्य रहा है । "द्वापर" के रचनाकाल में भारत दासता की चक्की में पिस रही थी । अब भारतीय नारी की स्थिति भी अत्यंत शोचनीय थी । भारत का पौरुष भी अतीव क्षीण था । ऐसी अवस्था में कवि ने "द्वापर" के विविध पात्रों द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं और उसके समाधान की ओर प्रकाश डालकर जनता को सचेत बनाने का प्रयास किया है । कथा सोलह खण्डों में विभक्त है, जो आत्म-संलापात्मक रूप में कही गई है । "द्वापर" की कथा सूत्रों में बताई गई है । कथा का जो अंश भागवत पुराण से लिया गया है उसका विशद विश्लेषण द्वापर के प्रमुख पुरुष पात्रों में आधुनिकीकरण वाले भाग में किया जाएगा इसके स्त्री पात्रों में राधा, विधृता, कुब्जा, गोपि आदि प्रमुख हैं । उनका जिक्र पाँचवाँ अध्याय में हो जाएगा ।

3.3.2. वळ्ळत्तोळ् पर अन्य पुराणों का प्रभाव

महाभारत और रामायण की अपेक्षा अन्य पुराण ही वळ्ळत्तोळ् के काव्य-सृजन का मुख्य स्रोत रहे हैं । समाज को सुसंस्कृत बनाने के तत्व पुराणों में निहित हैं । इसलिए ही कवि ने पुराणों के पथ को प्रमुख रूप से अपनाया है । वळ्ळत्तोळ् पुराणों से अत्यधिक प्रभावित थे । उन्होंने पुराणों की महिमा बताते हुए "पुराणङ्ङळ्" नामक एक कविता की रचना की है । फिर उन्होंने, मार्कण्डेय-पुराण, पद्म पुराण, वामन पुराण, मत्स्य पुराण, आग्नेय पुराण आदि का

मातृभाषा में अनुवाद भी किया है । ये पुराणों के प्रति उनकी आस्था के निदर्शन हैं ।

3.3.2.1. वळ्ळत्तोळ् की कृतियों में अन्य पुराणों की कथा - प्रमुख प्रसंग

वळ्ळत्तोळ् ने अन्य पुराणों के आधार पर अनेक रचनाएँ की हैं । इन में "गणपति" "शिष्यनुं मकनुम्", "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन्" नामक तीन खण्डकाव्य और "अंबाडियिल् चेल्लुन्न अक्रूरन्" , "कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्", "किलिक्कोंचल्", "मुट्टत्ते तुलसी" नामक चार कविताओं की भी रचना की है । इन काव्यों के प्रमुख प्रसंगों का जिक्र यहाँ किया जा रहा है ।

3.3.2.1.1. "पुराणङ्ङळ"

इस में कवि पुराणों के महत्व को उद्घाटित करते हैं । यह साहित्य-मंजरी के दूसरे भाग की पाँचवीं कविता है । इसका प्रकाशन सन् 1920 में हुआ था । कविता की शुरुआत में ही कवि हमारे पूर्वजों के बारे में कहते हैं कि वे संसार की सारी बातों से अवगत थे और वे सांसारिक सुख भोगों में सुख पाने वाले नहीं थे । वे आडंबरहीन जीवन बितानेवाले आध्यात्मिक पुरुष थे ।[1] वे तत्वचिंतन में निमग्न और वाग्देवी के अत्यंत निकट थे । इसलिए वे पुराणादि ग्रन्थों का निर्माण आसानी से कर सकते थे । कवि का मत है कि भास, कालिदास आदि महाकवियों के उपजीव्य ग्रन्थ ये पुराणेतिहास हैं और इन पुराणों का उद्भव वेदों से हुआ है ।[2] यहाँ उपनिषदों के बारे में कहकर कवि धर्मार्थ काम मोक्ष की चर्चा करके पुराणों की ओर लौटने का इशारा करते हैं । आर्षभारत की सुन्दरता और नीतियुक्तता के बारे में भी कवि कहते हैं --

1. "पुराण" - पृ. 34-35
2. पृ. 37

"नीतियुमनीतियुं धर्मवुमधर्मवुं
वेर्तिरिच्चिट्ट अङ्.ङ.ळ भरणं नडत्तुन्नु" । [1]

(नीति-अनीति, धर्म-अधर्म आदि को अच्छी तरह पहचान कर ही वे यहाँ शासन करते थे । ) संसार को नित्य शांति और जनता को परमानन्द प्राप्त करने के मार्ग ही पुराण बताते हैं । लौकिक सुखों से मुक्त होकर आध्यात्मिक चिंतन की ओर मुड़ने केलिए कवि आह्वान देते हैं । इस संसार में छुटकारा पाना ही स्वातन्त्र्य है और वही साक्षात् मोक्ष भी । [2] ब्रह्मा विष्णु महेशों को सूचित करनेवाली प्रणव ध्वनि है "ॐ" कार । करणत्रय (मनसा वाचा कर्मणा) से प्रयत्न करके परमानन्द प्राप्ति के मार्ग बतानेवाले ग्रन्थ हैं पुराण ।

यहाँ कवि जनता को पुराणों की महिमा और गहराई के बारे में अवगत कराते हैं । सन्मार्ग पर चलकर ब्रह्मानन्द प्राप्त करने के उपाय भी कवि बताते हैं । यहाँ कवि का आध्यात्मिक मन , वेद पुराणादि ग्रन्थों पर उनका पांडित्य आदि द्रष्टव्य हैं । "लोका समस्ता: सुखिनो भवन्तु" का भी कवि समर्थन करते हैं । ऐसा करके कवि ने जनता को "हम कौन थे" इसके बारे में अवगत कराकर तत्कालीन दु:स्थिति की ओर आन्दोलन करने केलिए उद्बोधन देने का सफल प्रयास किया है ।

3.3.2.1.2. "गणपति"

यह वल्लत्तोळ् का एक प्रमुख खण्डकाव्य है । इसका पहला प्रकाशन सन् 1913 में "कवनकौमुदी" में हुआ था । आगे पुस्तक रूप में इसका प्रकाशन उसी साल में हुआ था । इसकी मूल कथा महाशिवपुराण में मिलती है । कवि ने कथा को उसी प्रकार स्वीकार करते हुए भी उसे सामयिक बनाने का सफल प्रयास किया है । इसका प्रमुख प्रसंग "शिव-पार्वती द्वारपाल-झगडा" एवं "गणपति का जन्म"

---

1. "पुराण"- पृ. 40
2. -वही- पृ. 41

है । "गणपति" कवि का पहला पौराणिक खण्डकाव्य है ।

3.3.2.1.2.1. "शिव-पार्वती द्वारपाल-झगडा"

शिव-पार्वती-विवाह के बाद वे श्वेदशैल में रहते थे । पार्वती बालिका होने के कारण अतीव शर्मीली थी । उसकी ऐसी स्थिति को बदलाने केलिए शिवजी ने कई कोशिशें कीं । एक दिन पार्वती नहाने गई तो शिव वहाँ अकस्मात आ पहुँचा । शिव को देखकर नवोढ़ा अतीत लज्जित हुई और पति को किसी-न-किसी प्रकार दूर किया । बाद में पार्वती ने अपने शरीर के मालिन्य से एक पुत्र को जन्म देकर द्वारपाल के रूप में खडा कर दिया ।[1] उसको आवश्यक बल और एक लाठी भी दी गई । अगले दिन भी शिव आ गए तो द्वारपाल ने उन्हें रोका और कहा माँजी नहाती हैं । आप बाद में आइएगा । शिव ने उसका कहना न मानकर अंदर घुसने का प्रयास किया तो द्वारपाल ने लाठी से शिव को मारा ।[2] मार खाकर शिव चले गए और उससे युद्ध करने केलिए भूतगणों को भेज दिया । यहाँ फिर से शिव की पराजय हुई । यहाँ कवि युद्ध का जीता जागता वर्णन करते हैं ।[3] युद्ध से तंग आकर विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि शिव के पास पहुँच गये । शिव के आदेशानुसार ब्रह्मर्षियों पार्वती मंदिर के पास आए तो द्वारपाल ने उनको भगा दिया । यह देखकर विष्णु हज़ारों सैन्य और देवों के साथ वहाँ पहुँचे । उनके शस्त्रास्त्र सब उस लाठी की हवा में उड गए ।[4] यह देखकर पार्वती ने कुपित होकर अपने पुत्र की सहायता केलिए दो देवियों को जन्म दिया । फिर घोर युद्ध हुआ । विष्णु का चक्रायुध भी उनके सामने निष्फल साबित हो गया । सेना रोने चिल्लाने लगी । पृथ्वी और आकाश में हाहाकार मच गया । सारा संसार स्तब्ध रह गया ।[5] आखिर

---

1. "गणपति"- पद-10, पृ. 3.
2. --वही-- पद-24, पृ. 6
3. --वही-- पृ. 9-10
4. "गणपति- पद-85- पृ. 18
5. --वही-- पद-90 पृ. 20

जब शिवजी सामने आए तो वे देवियाँ हट गईं । तब द्वारपाल ने अपनी सारी शक्ति लगाकर विष्णु को मार डाला । क्रुद्ध होकर शिवजी ने त्रिशूल से द्वारपाल का सिर काट डाला । यहाँ कवि द्वारपाल को कर्तव्य बोध से युक्त एक युवा नायक के रूप में प्रस्तुत करते हैं । यह एक उद्‌बोधनात्मक काव्य है । द्वारपाल आखिरी दम तक अपने कर्मपथ से नहीं हटाकर अपना कर्तव्य पालन करता रहा ।

3.3.2.1.2.2. गणपति का जन्म

पुत्र वध का समाचार सुनकर कुपित पार्वती के शरीर से संसार नाशकारी "भानुश्री शक्ति सहस्रकम्" का उदय हुआ । तब देवर्षियों ने बड़े परिश्रम से कुपित देवी को भक्ति से शान्त किया । तब पार्वती एक प्रस्ताव रखा---

"एन्नालेन्नुण्णि, जीविच्चिवनखिल गणाध्यक्षनायुप्पुज्यनायुम्
वन्नालल्लाते पारिन्नस्मलितोषिकयिल्ला , यतिन्नाय श्रमिप्पिन्[1]

(ऐसा हो तो मेरे बेटे को फिर से जीवित करके उसे अखिल गणनायक बनाना चाहिए , यही इसके लिए एक परिहार है । आप लोग इसके लिए परिश्रम करें ।) तब शिव के आज्ञानुसार सुरमुनियों ने पश्चिम की ओर जाकर एक एक दन्तवाला हाथी का मस्तक काटकर लाया । उसे पार्वती सुत के शरीर से मिला दिया । तब वह गजमुख बन गया । शिवजी ने उसे गणनायक बनाकर अभिषिक्त किया ।[2] ब्रह्मादि अनुग्रह देकर चले गए ।

3.3.2.1.3. "शिष्यनुं मकनुम्"

यह वल्लत्तोळ् के सबसे प्रतिष्ठित खण्डकाव्यों में एक है । इसकी मूल कथा ब्रह्माण्ड पुराण के प्रथम खण्ड के भार्गव-चरित्र वर्णन एक और दो भागों में मिलती है । "गणपति" के जैसे , इस काव्य की भी पृष्ठभूमि कैलास है । यह भी शिव-पार्वती के घरेलू झगडे से संबन्धित रचना है । इसके मुख्य प्रसंग हैं - "गणपति-परशुराम-झगडा", "शिव-पार्वती-आगमन", और "राधा-कृष्ण-आगमन" ।

---

1. "गणपति"- पद-96-पृ. 22. 2. "गणपति"- पद-99-पृ. 23

3.3.2.1. 3.1. गणपति-परशुराम-झगडा

एक दिन अपने गुरु शिवजी को देखने केलिए उनका प्रिय शिष्य भार्गवराम कैलास आए । गणपति और सुब्रह्मण्य बाहर द्वारपाल बनकर खडे थे । लेकिन परशुराम उनकी परवाह नहीं करके अंदर जाने केलिए उद्यत हो गए । लेकिन द्वारपालों ने उनको रोका । दोनों में वाद-विवाद हुआ । [1] अब परशुराम क्रुद्ध होकर गणपति पर प्रहार करने केलिए उद्यत हुए तो गणपति ने शीघ्र ही अपने हाथ से परशुराम को ऊपर उठाकर सारे भूगोल और परलोक घुमा दिया । [2] इससे परशुराम एकदम क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने परशु से गणपति का बायाँ दाँत काट डाला । [3] यहाँ कवि पुत्र का कर्तव्य और शिष्य की वीरता का जीता जागता चित्रण करते हैं । यहाँ शिष्य और पुत्र विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने पर वीर ही हैं । यह एक उद्बोधनात्मक प्रसंग है ।

3.3.2.1.3.2. शिव-पार्वती-आगमन

गणपति के दाँत के पात से धरातल विध्वस्त हो गया था । लोगों में बडा भारी त्रास उत्पन्न हो गया । स्वर्ग के देवगण भी यह देखकर हाहाकार मचाने लगे । सारा संसार आतुर होकर क्रन्दन करने लगा । यह सुनकर शिव और पार्वती वहाँ आ पहुँचे । [4] पार्वती ने पुत्र को उठाकर गोद में बिठा दिया । लेकिन शिवजी निश्चेष्ट रहे । एक ओर प्रिय पुत्र खून बहाते हुए पडा था तो दूसरी ओर प्रिय शिष्य अपने चरणों में पडा था । ऐसी स्थिति देखकर पार्वती का मातृ-हृदय तडप उठा । उसने क्रुद्ध होकर पति से कहा --"

"किट्टीलयो दक्षिण वेण्डुवोलं, विशिष्टनां शिष्यनिलनिन्नि-दानीं,
दिव्यायुधं वल्लतुमुण्डु बाक्कि एन्नालतुं नल्कियनुग्रहिक्काम्" । [5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "शिष्यनुं मकनुम्" पद-8-10-पृ. 19, ब्र:पु:प्र:ख:भार्गव चरित्र वर्णन-1-श्लो-52
2. "शिष्य और पुत्र" पद-13, पृ. 30, ब्र:पु:प्र:ख:भा:च:वर्णन-1, श्लोक-54
3. --वही-- पृ. 32 --वही-- भा:च:व:2, श्लो-2-3
4. --वही-- पद-7-9, पृ. 34-35 श्लो-5-7
5. --वही-- पृ.36 श्लो-10-14

§अब विशिष्ट शिष्य से जी भर गया है न । अब कोई दिव्य शास्त्र बच गया है तो वह भी शिष्य को देकर आशीर्वाद दीजिए । इस व्यंग्य से पार्वती का पुत्र वात्सल्य एवं परशुराम के कर्म के प्रति विरोध स्पष्ट है । यहाँ शिवजी के शिष्य प्रेम की ओर भी माता पार्वती प्रश्न चिह्न लगाती है । यहाँ एक साधारण माता की हृदय स्पंदनों की झलक पार्वती में उभर आती है ।

3.3.2.1.3.3. राधाकृष्ण-आगमन

शिव-पार्वती के बीच का वाद-प्रतिवाद जारी रहा । आखिर शिवजी चिंता में फँस गए । "शिष्यन प्रवर्तिच्चु वीरधर्मं सुतंगवैकल्पमोस्गा शल्यं" §शिष्य ने जो किया वह वीर धर्म है, फिर भी पुत्र का अंग भंग एक शाप सा बन गया । § आगे परिस्थिति शांत होनी लगी तो आकाश में कैलास के ऊपर संगीत ध्वनि सुनाई पडी । थोडी देर के बाद मालुम हुआ कि वह लोकनायक श्रीकृष्ण और उनकी सखी राधा है । शिव-पार्वती ने उनका प्रणाम किया । राधा ने गणपति का स्पर्श किया तो उसका घाव ठीक हो गया । [1] अब परशुराम भी वहाँ उपस्थित थे वे अपनी गर्दन झुकाए हुए खडे थे । ऐसी स्थिति में राधा ने पार्वती से कहा --

"परस्परं कुद्दिटकळ् कादुकाद्दियालोरम्मयित्रक्करिशप्पेडावतो" । [2]

§बच्चों के आपस में ऐसा करने पर माता का इस प्रकार क्रुद्ध होना क्या अच्छा है § हे पार्वती, तुम उसे क्षमा कर दो । उसको भी अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करो । आज से तुम्हारे तीन पुत्र हैं । उसको पुत्र के रूप में स्वीकार करना अपने लिए कीर्ति की बात बन जाएगी । आगे राधा बोली - गणपति तुमको प्रसववेदना के बिना मिला हुआ पुत्र तो है न, इसलिए भार्गवराम को क्षमा करने में विलंब न करो । [3] इन आश्वास वचनों ने पार्वती को शांत कर दिया । उसने

---

1. 'शिष्य और पुत्र'- पृ. 44
2. --वही-- पृ. 45
3. --वही-- पृ. 45

भृगुराम को अपना पुत्र स्वीकार भी किया । यहाँ भी पार्वती के मातृवात्सल्य की झलक उभर आयी है । यहाँ कवि ने देवों को मनुष्य के बीच में लाकर शांति स्थापना करने का प्रयास किया है । इससे कवि की भक्ति और पुराणों के प्रति श्रद्धा उभर आती है । शिव-पार्वती और राधा-कृष्ण के मिलन को दिखाकर वळ्ळत्तोळ् ने इस कविता में शैव और वैष्णव के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है । यहाँ कवि " वसुधैव कुटुंबकम" की ओर प्रकाश डालते हैं ।

3.3.2.1.4. "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन्"

यह वळ्ळत्तोळ् का सर्वश्रेष्ठ खण्डकाव्य है । पुस्तकाकार में फिर इसका प्रकाशन हुआ था । "बन्दी अनिरुद्ध" में कवि, कवि-परंपरा के बन्धनों से मुक्त होकर स्वतन्त्र कल्पना की उडान भरते नज़र आते हैं । यह काव्य उनकी काव्य-रचना के एक नए मोड की सृष्टि करने वाला है । इसकी मूलकथा श्रीमहाभागवत के दशमस्कन्ध के 61 से 63 वें तक के अध्याय में व्याप्त है । मूल कथा को आधार मात्र बनाकर कवि सामयिक सामाजिक समस्याओं की पूर्ति के रूप में "बन्दी अनिरुद्ध" को प्रस्तुत करते हैं । इसके प्रमुख प्रसंग "उषा-कुंभाण्ड-संवाद" एवं "उषा-अनिरुद्ध-मिलन" है ।

3.3.2.1.4.1. उषा-कुंभाण्ड-संवाद

"बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन्" के दो भाग हैं । कथा के पहले भाग में "उषा-कुंभांड" संवाद है । मायारण में बाणासुर श्रीकृष्ण के प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध को पराजित करता है । यह समाचार उषा की अंतरंग सखी चित्रलेखा से पाकर बाणासुर के महासचिव कुंभाण्ड उषा के पास आते हैं । वहाँ निश्चेष्ट, अतीव दुःखी एवं आँसू बहानेवाली उषा को देखकर कुंभाण्ड स्तब्ध हो जाते हैं । थोडी देर बाद उन्हें प्रणाम करके उषा कहती है ---

"भानालयच्चिह वरुत्तियताणु, कय्येरानाय स्वयं वरिकयल्ल ममार्यपुत्रन्,
नानासरित्तिलपराधमोराळ्क्कु, बन्धस्थानाप्तियन्यनु, मितो -
बलिवंश धर्मम्[1]

---

1. "बन्दी अनिरुद्धन" पद-18-पृ.28

§मेरे प्रिय स्वयं यहाँ युद्ध करने आए नहीं , मैं ही उनको बुलवा लायी हूँ । नाना प्रकार की गलतियाँ एक ने की हैं , फिर भी दूसरे को बन्दी बना दिया गया है । क्या यही बलिवंश धर्म है । § उनको दिए हुए दण्ड मुझे देकर उन्हें छोडने की कृपा कीजिए । अब तो दण्ड की कोई ज़रूरत नहीं है । क्योंकि ऐसा करके आप लोगों ने मुझे बिना मारे मार डाला है । ऐसा कहकर उषा बच्चों की तरह रोने लगी । [1] इस तरह की हृदय-स्पर्शी बात सुनकर आत्म-विभोर होकर कुंभाण्ड कहते हैं "वत्से दुःखी मत हो , सब ठीक हो जाएगा । तुम्हारे पिताश्री का क्रोध बुझने दो , तब सब कुछ मैं ही ठीक करवा दूँगा । [2] कुंभाण्ड जब चलने लगे तो उषा रो-रोकर कह उठी - यदि मेरे बन्धुजनों को मेरे जीवन की कोई इच्छा है तो, मुझे वहाँ तक अकेले जाने की अनुमति दें , जहाँ मेरे प्रियतम कैदी पडे हैं । [3] यह सुनकर मंत्रि मुख्य निश्चेष्ट हो गए । कुमारी-वात्सल्य और कर्तव्य के बीच में पडकर वे तडपने लगे । आखिर उन्हें उषा को मौनानुमति देनी पडी । यहाँ पहला भाग समाप्त होता है । यहाँ कवि उषा के परिशुद्ध प्रेम के मार्मिक और मनोवैज्ञानिक चित्र खींचने में सफल निकले हैं । साथ ही साथ दुविधा झेलनेवाले मंत्रिप्रमुख के मनोभावों का भी सुन्दर उद्घाटन किया गया है ।

3. 3. 2. 1. 4. 2. उषा-अनिरुद्ध-मिलन

यह "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन-" का दूसरा भाग है । यहाँ जेल में ज़मीन पर अचंचल बैठे अनिरुद्ध को हम देखते हैं । यहाँ कवि ने बिलकुल नाटकीय चित्रण किया है । अनिरुद्ध जेल में आयी हुई उषा का आलिंगन कर स्वीकार करते हैं और पूछते हैं कि तुम इस कारावास में कैसे आयी ? इस हतभाग्य को वर लेने के कारण मेरी प्रियतमा को अब कारागृह ससुराल बन गया है । आगे अनिरुद्ध सधैर्य कहते हैं

---

1. "बन्दी अनिरुद्धन" -पद-21 - पृ. 29
2. "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन- पद-26-28- पृ. 32-33
3. --वही-- पद-51, पृ. 44.

"मेरे निरुद्ध होने में चिंतित या दुःखी मत बनो, अगर ईश्वर चाहें तो देवता सिर्फ कीडा बन जाएगा महासागर मरुस्थल भी ।[1] अर्थात् अनिरुद्ध का वहाँ से मुक्त होना कोई बडी बात नहीं है । इसलिए तुम यहाँ से शीघ्र ही वापस जाओ - यही मेरी प्रार्थना है । लेकिन उषा मानती नहीं । वह कहती है- मुझे आपकी पादसेवा करके यहीं बैठने की अनुमति दीजिए । आपकी असली स्थिति को पहचान कर भी मुझे यहाँ से जाने को न कहिए । उषा रोने लगी तो उन्होंने उसे सान्त्वना देकर कहा - यदि कोई तुम्हें यहाँ देखेगा तो बात और बढ़ जाएगी । इसलिए तुम्हारा यहाँ रहना मुझे दुःसह लगता है ।[2] फिर भी उषा अनिरुद्ध को किसी न किसी प्रकार जेल से भाग बचने को कहती है । यह सुनकर वीर अनिरुद्ध कहते हैं , "हा, अतीव भयभीत होकर जेल से भाग जाने केलिए क्या मैं एक चोर हूँ ? तुम्हारे पिताश्री को अपने जामात की कुलीनता के बारे में समझाकर तुम्हारे ससुरालय-वाले आकर तुम्हें द्वारका ले चलेंगे ।[3] इस प्रकार अनिरुद्ध के द्वारा अपनी प्रेयसी को बिदा कराते हुए काव्य का शुभांत होता है । यहाँ कवि उषा-अनिरुद्ध-प्रेम का जीता जागता वर्णन करते हैं । अनिरुद्ध की आदर्श धीरता और पौरुष का उद्बोधनात्मक चित्र कवि हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं । इस प्रकार प्रसंग को सामयिक बनाने में कवि सफल निकले हैं ।

3.3.2.1.5. "अंबाडियिल् येल्लुन्न अक्रूरन्"

यह "साहित्य मंजरी" के तृतीय भाग की ग्यारहवीं कविता है । इसका प्रकाशन सन् 1922 में हुआ था । यहाँ कवि ने मूल कथा को यथावत् स्वीकार किया है । मूल कथा श्रीमत् भागवत् के दशमस्कन्ध के 38 वें अध्याय में उपलब्ध है । इसका प्रमुख प्रसंग "अक्रूर का श्रीकृष्ण दर्शन" है । कवि ने कथा को भक्तिरस प्रधान बनाकर अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति की है ।

---

1. "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन" - पद-51- पृ. 44
2. "बन्दी अनिरुद्ध" - पद-66- पृ. 52
3. -पद-71- पृ. 54

3.3.2.1.5.1. अक्रूर का श्रीकृष्ण दर्शन

कंस ने राम एवं कृष्ण के वध का निश्चय कर लिया । उन्हें धनुर्योग देखने का झूठ बोलकर बुला लाने केलिए अक्रूर नामक एक यादव को गोकुल में भेजा जाता है । अक्रूर कृष्ण का परम भक्त और कृष्ण दर्शन का प्यासा है । वह एक दिन शाम को कालिन्दी के तट पर पहुँचता है । अक्रूर वृन्दावन भूमि में एक घास के रूप में जन्म लेने की इच्छा करता है, ताकि कृष्ण का चरण-स्पर्श आसान से मिल सके । वह सोचता है कि वृन्दावन ही सबसे सुन्दर देश है क्योंकि वहीं लीलामय कृष्ण का नित्यवास है ।[1] वहाँ के सर्व चराचरों में अक्रूर कृष्ण का प्रतिबिंब देखकर उन सबको धन्य समझते हैं । आगे अक्रूर कहते हैं -" मुझे प्रणाम करने दो, यही मेरे प्राणनाथ का वासस्थान है " । गोकुल में पहुँचते ही सारथी ने कहा - हे अक्रूर चातक यहीं उतरो । उधर देखो तुम्हारा प्रिय कान्ह गायों को दुहते देखकर खड़ा है । कृष्ण को देखकर अक्रूर को लगा कि कृष्ण नंद के गेह में भगवान का जला हुआ भद्रदीप है ।[2] वे गोपालों के सखा और वेद-ज्ञानी हैं । कृष्ण को पास से देखकर अक्रूर आनन्द से आँसू बहाने लगे । उस महाभक्त को कुछ क्षणों में ऐसा लगा कि किसी विशिष्ट प्रक्रिया से उसका जीवन ही धन्य हो गया है । कृष्णदर्शनामृत में निमग्न अक्रूर को अब कृष्ण के बिना कुछ भी नहीं दिखाई दिया । भक्ति पारवश्य में वह उस भूमि में लेटकर लोटने लगा ।[3] तब कवि को लगा कि भक्ति के उन्माद से प्रज्ञावान मनुष्य भी पागल जैसा बन जाएगा । यहाँ कवि अक्रूर के साथ अपनी भी भक्ति का परिचय देते हैं । भक्ति की परवशता का यहाँ रंगीन चित्रण हुआ है ।

3.3.2.1.6. "मुट्टत्ते तुळसी"

यह "साहित्य मंजरी" के तृतीय भाग की चौदहवीं कविता है । इसकी मूल कथा देवी-भागवत् पुराण के नवमस्कन्ध के 18 से 26 वें तक के अध्याय में मिलती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "सा:म:तृ:भा:पृ-80, भा :दु:स्क:अ:38 श्लोक-26-27
2. --वही-- पृ. 84
3. --वही-- पृ. 87 वही श्लोक-34

कवि मूल कथा को आधार बनाकर तुलसी देवी और तुलसी पौधे की महिमा का वर्णन करते हैं । इस कविता के मुख्य प्रसंग "तुलसी देवी की कथा" और "तुलसी की महिमा" है ।

3.3.2.1.6.1. तुलसी देवी की कथा

तुलसी देवी राधा देवी के शाप के कारण गोलोक से भूमि में आकर राजा धर्मध्वज की पुत्री के रूप में अवतरित हुई । उसने कठिन तप किया और शंखचूड को, वह भी शापग्रस्थ था पति के रूप में मिला ।[1] आगे शंखचूड ने सारे संसार को वश में किया और अपने कर्मयोग के कारण इन्द्र पद पर आसीन हुआ । इसपर दुःखी देवताओं ने शिवजी से प्रार्थना की कि शंखचूड इन्द्रपद से च्युत हो । पर तुलसी देवी के पातिव्रत्य के कारण शिवजी शंखचूड का कुछ भी बिगाड नहीं सके ।[2] आखिर भगवान विष्णु ने शंखचूड के रूप में जाकर तुलसी का पातिव्रत्य नष्ट किया । अब शिवजी ने शंखचूड का वध किया । पति-पत्नी दोनों शापमुक्त हो गए । तुलसी का शरीर गंडकी नदी बन गई और उसका बाल तुलसी पौधा ।[3] हिन्दू घरानों में घर के सामने तब से तुलसी की पूजा की प्रथा चल पडी । कवि यहाँ केवल पौराणिक कथानक की अपनी मातृभाषा में चर्चा करते हैं । शिवजी और विष्णु के सहयोग को दिखाकर कवि वैष्णव-शैव की एकता की ओर इशारा करते हैं ।

3.3.2.1.6.2. तुलसी का महिमा-वर्णन

कवि तुलसी देवी की आज की स्थिति के बारे में कहते हैं कि आज वह देवी घर के आंगन में पत्थर के बनाए हुए एक छोटे से मंडप में हमारे लिए जीती हैं ।[84] कवि हाथ जोडकर देवी का प्रणाम करते हैं । भारत की कुटुंबिनियाँ सन्ध्या को तुलसी मंडप में दीप जलाती हैं । यह देवी के प्रति श्रद्धा का द्योतक है । कवि कहते हैं - हे मानव, तुम लोग विष्णु की प्रिय सखी तुलसी देवी का प्रणाम करो ।

---

1. देवी भागवत्:न:स्क:अ:19, श्लोक: 3, सा:म:तृ:भा:पृ. 104
2. --वही-- 90-92/, वही पृ. 105
3. --वही-- अ:24 वही पृ. 114

हे देवी ! कौस्तुभरत्न प्रभावाली आपके आगे हमारे यह सन्ध्या दीप कितना तुच्छ है , "हम तो पराधीन और दरिद्र हैं । एक ज़माना ऐसा था जब हमारा राष्ट्र धन-धान्य-संपन्न था । लेकिन आज वह सब नष्ट हो गया ।[1] चाहे हमारा उपचार तुच्छ हो, स्नेह भरा है । हमें आशीर्वाद दीजिए देवी , हमें केवल आपकी दासता का आशीर्वाद चाहिए । तुलसी देवी के पातिव्रत्य के आगे कवि नम्रशिरस्क होते हैं , जिसके आगे शिवजी तक निष्प्रभ रहे हैं । शंखचूड की हत्या के बारे में कवि कहते हैं -" समचित्त" वाले देवताओं ने त्रैलोक्य सम्राट की अकारण हत्या की थी । कारण केवल जाति था , देव जाति को असुरों की उन्नति कभी अच्छी नहीं लगती है । यहाँ कवि विकाराधीन होकर कहते हैं - एक ही पिता के पुत्र जाति के नाम पर आपस में लड मरते हैं । आगे कवि देवी की महिमा के बारे में बताते हैं कि तुलसी देवी की पूजा सबसे महनीय है और वह कभी भी निष्फल नहीं होगी । कवि अपनी भक्ति को प्रकट करते हुए देवी को अनेक नामों जैसे , वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसार, नान्दिनी तुलसी और कृष्ण जीवनी, पुकारते हुए उनका प्रणाम करते हैं ।[2] यहाँ कवि की देवी भक्ति एवं आध्यात्मिक चिंतन द्रष्टव्य है । वे भारत की पराधीनता, जाति-व्यवस्था, तत्कालीन दरिद्रता आदि सामाजिक दुःस्थितियों के बारे में हमें सचेत करते हैं । इस प्रकार पौराणिक कथानक को आधारशिला बनाकर कवि सम-सामयिक समस्याओं का समाधान ढूँढने का प्रयास करते हैं ।

3.3.2.1.7. "कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्"

यह "साहित्य मंजरी" के चतुर्थ भाग की तीसरी कविता है । यह श्रीमहाभागवत पुराण के दशम स्कन्ध के 16 वें अध्याय के आधार पर लिखी गई कविता है । यहाँ भक्त-कवि कालिय दमन केलिए कालिन्दी में कूदने वाले बालकृष्ण को चेतावनी देते हैं । कवि ने मूल कथा को पूर्ण रूप से सामयिक बनाकर उद्‌बोधनात्मक

---

1. सा:मा:तृ:भा:पृ. 109-110
2. सा:मा:तृ:भा.पृ. 119/ दे:भा:न:स्क:अ:25 श्लोक 14

रूप में नवीन उद्भावनाओं के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । इसका मुख्य प्रसंग "कालियदमन" है ।

3.3.2.1.7.1. कालिय दमन

कवि कान्ह को चेतावनी देते हुए कहते हैं --

"आट्टिलेक्कच्युत , चाडल्ले, चाडल्ले , काड्डिले पोयुकयिल् पोयि नीन्ताम्: कालकूडील्कडकाकोलमालिन कालियन् पार्पुण्डिक्कालिन्दियिल्" । [1]

{हे अच्युत नदी में कूदो मत , हम तैरने केलिए दूसरी नदी में जा सकते हैं । कालिन्दी कालकूट विष से दूषित है । } कृष्ण ने उस दूषित जल में कूदकर उसे प्रकाशमान बना दिया । ऐसे तैरते समय पानी में एक हाहाकार हुआ । कवि स्तब्ध रह गए । वह हज़ारों फणवाला कालिय नाग था । ऐसी स्थिति में वृन्दावन के सभी लोगों की तरह भक्त कवि भी सोचते हैं कि कान्हा को क्या हुआ । कृष्ण दिखाई भी नहीं देते थे । [2] कालिय का हरेक निश्वास में कालिन्दी दो भागों में विभाजित हो जाती थी । फिर भी बालकृष्ण ने निडर होकर उसकी ओर कूद पडे और उसके सिर पर चढ़कर अपने नन्हें पाँवों से नाचना शुरू किया । [3] अब कालिय के मुँह से खून बहने लगा । गोकुलवासी भयभीत हो गए कि यह खून कान्ह के पाँवों से निकला है । कालिय एकदम थक गया । यह देखकर देवर्षि लोग संतुष्ट हुए । ऐसी अवस्था में कवि कहते हैं - हे विषैले कालिय तेरा सिर कितना ही ऊँचा क्यों न हो उसे धराशायी बनाने केलिए इस कर्म भूमि के नन्हे पाँव सशक्त और पर्याप्त है । [4] यहाँ कवि का व्यंग्य अंग्रेज़ी शासन की ओर है । विदेशी शासन को कालिय के रूप में और कृष्ण को गाँधीजी के रूप में कवि चित्रित करते हैं । कवि का स्वतंत्रता प्रेम, विदेशी शासन से विरोध , पूर्वजों के कर्मबल पर विश्वास और आध्यात्मिक चिंतन आदि इस कविता में प्रबल हैं । तत्कालीन युवजनता को कर्मभूमि की ओर अग्रसर कराने वाली संजीवनी थी "कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्" ।

---

1. सा:म:च:भा:पृ. 12
2. सा:मा:च:भा:पृ. 14/भा:द:स्क:अ: 16 श्लोक-14-15
3. --वही पृ. 14/ भा:द:स्क:अ:16 श्लोक- 26
4. --वही--पृ. 17 श्लोक-26

3.3.2.1.8. "किळिक्कोंचल्"

यह "साहित्य मंजरी" के चतुर्थ भाग की छठी कविता है । "तोतली - बोली" श्री महापद्मपुराण के तृतीय भाग के पाताल खण्ड के 57 वें अध्याय के आधार पर रची गयी कविता है । यहाँ सीताजी की बाल्यावस्था की कुछ घटनाओं की ओर कवि हमें ले जाते हैं । इसका प्रमुख प्रसंग "सीताजी का बाल्यकाल" है ।

3.3.2.1.8.1. सीताजी का बाल्य काल

कवि हमें भूतकाल में यात्रा कराने केलिए त्रेतायुग के मिथिलापुर में ले चलते हैं, जहाँ पाँच वर्षीय सीताजी खेलती रहती है । सीताजी वहाँ उद्यान में रखी गयी, गार्गी और मैत्रेयी की मूर्तियों को देखकर आनन्द लेती है । उनसे वह बहुत कुछ पढ़ भी लेती है, सीताजी के भविष्य जीवन में - अयोध्या के गृहणी-पद, वनवास, वाल्मीकी के आश्रम में पुत्रों के साथ जीवन, आखिर राम के आगे समाधि, आदि- उपयोगी सिद्ध हो जाता है । [1] यहाँ सीता की बाललीलाओं के चित्रण में भी कवि सफल निकले हैं । आगे उद्यान में दो तोत्ते आते हैं । ये देवगण, आकाश, वायु आदि को नमस्कार करते थे । उन्हें देखकर सीता ने चाहा कि उन्हें अपना बनाये । इसके अनुसार वे पकड लाये गये । [2] सीता उन्हें घर लाकर खिलाने लगी तो वह श्रम विफल निकला । पक्षी स्वतंत्रता चाहते थे । उन्हें प्राकृतिक वातावरण ही अच्छा लगता था । कवि का मतलब है कि स्वाधीनता ही सबसे कीमती चीज़ है । आगे सीता तोतों के साथ अपनी माँजी के पास जाती है और कहती है कि माँजी ये तोत्ते कहते हैं "राम आकर मुझसे शादी करेंगे । अब रानी ने उसकी सखी से पूछा कि उद्यान में क्या हुआ था ? सखी ने कहा - वाल्मीकि के आश्रम से दो तोत्ते आये थे उन्होंने रामायण की रचना, दाशरथी राम का सीताजी से विवाह, आदि के बारे में गा सुनाया । [3] यह सुनकर रानी अतीव संतुष्ट हो गयी । तब सीता ने पूछा -

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:मं:च:भा:-पृ. 36
2. --वही-- पृ. 40/पद्म:पु: तृ:भा:पा:ख:अ:57-श्लो-5-6
3. --वही-- पृ. 47/ वही श्लो-20-21

"ओमल् वोदिक्कयाणे "न्तिनी वाल्मीकि
रामनेक्कोण्टेन्ने वेल्पिक्कुन्नु ?[1]

ॐक्यों यह वाल्मीकि राम से मेरी शादी करवाता है ।ॐ मुझे और कोई शादी नहीं करनी है , मैं अपनी माँ जी से ही शादी करूँगी । यहाँ कवि पौराणिक कथा को दुहराने के साथ-साथ शिशु सहज क्रीडा और विभिन्न समस्याओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हैं । स्वाधीनता की महिमा के बारे में भी कवि पाठकों को समझाने की कोशिश करते हैं ।

## 3.4. गुप्तजी के पौराणिक कथा-प्रसंगों में नवीन उद्भावनाएँ

मूल कथा को अधिक युगानुकूल बनाने केलिए कवि नवीन उद्भावनाओं का प्रयोग करते हैं । उपेक्षित पात्रों की पुन:प्रतिष्ठा , नारी-जागरण, मानवतादर्श , जाति-भेद आदि इन में प्रमुख हैं । कर्ण , एकलव्य , हिडिंबा , उर्मिला, आदि पात्रों को कवि ने नवजीवन प्रदान किया है । कैकेयी आदि पात्रों का उद्धार करते हुए उन्हें पाठकों के सामने एक नया रूप प्रदान किया है । पौराणिक प्रसंगों में कई परिवर्तन लाकर मानवतादर्श , नारी जागरण, गाँधीवाद आदि का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है । इसके द्वारा कवि ने युगीन समस्याओं का भी समाधान निकाल दिया है । उनका मानवतावादी दृष्टिकोण एक धर्मराष्ट्र की स्थापना का सफल प्रयास करता है ।

महाभारत से सामग्री संचयन करते हुए उन्होंने कई प्रसंगों की नवीन एवं युगानुकूल व्याख्या प्रस्तुत की है । अनेक जगहों पर प्रसंग वर्णन एवं पात्र-चित्रण में मनोविज्ञान का भी सहारा लिया है । पौराणिक अंध श्रद्धा को बनाए रखना गुप्तजी का लक्ष्य नहीं है । इन प्रसंगों की बुद्धिवादी व्याख्या ही उन्हें अभीष्ट

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:मच:भा:पृ.47

रही है । महाभारत के अनेक अतिप्राकृतिक एवं अतिमानवीय तत्वों को कवि ने आज के योग्य बनाया है । द्रौपदी चीरहरण का प्रसंग इन में एक है कवि ने इसे परिवर्तित नहीं किया फिर भी अविवेकपूर्ण अतिप्राकृतिक घटना को दूर किया है । छोटे से मोड द्वारा उन्होंने प्रसंग को प्रभावपूर्ण और विश्वसनीय बनाया है ।

गुप्तजी की रामकथा में भी महाभारतीय कथा के समान कई नवीन उद्भावनाओं का प्रयोग हुआ है । लक्ष्मण-उर्मिला के प्रेम-जीवन, राम का निर्वासन, कैकेयी का पश्चात्ताप उर्मिला विरह वर्णन, अयोध्यावासियों की रणसज्जा, देवर-भाभी का हास-परिहास आदि इनमें प्रमुख हैं । चूँकि गुप्तजी ने प्राचीन की रामकथा को लक्ष्मण-उर्मिला की कथा बनाया है इसलिए यह परिवर्तन औचित्यपूर्ण रहा है । उर्मिला का विरह-वर्णन कवि की भावना की तीव्रता और कल्पना के उत्कर्ष को दिखाता है । चित्रकूट में कैकेयी का पश्चात्ताप कैकेयी के चरित्र के कलंक निवारण का प्रयत्न करता है । चित्रकूट के वर्णन के अंतर्गत दिए हुए छोटे-से संकेत पर चलते हुए गुप्तजी ने इसे सुन्दर प्रसंग का रूप दिया है । इसी प्रकार "पंचवटी" का शूर्पणखा प्रसंग भी कवि की नूतन उद्भावना का सुन्दर परिचय देता है, जिसके जरिए उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि -"नरकृत शास्त्र बन्धन हैं नारी को ही लेकर अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर ।[1]

"जय-भारत" की कथा में उन्होंने कर्ण एकलव्य हिडिंबा आदि तिरस्कृत पात्रों को नया जीवन प्रदान किया है । द्रौपदी के अपमान के साक्षी होने के कारण कर्ण मनोव्यथा से अपने पर ही खीझ उठे और आत्मग्लानि में डूब गए ।[2] कवि ने उनके हृदय के कोमल पक्ष को भी चित्रित करने का प्रयास किया है सूत पुत्र धिक्कृत होने पर भी उनमें स्वाभाविकता तथा औचित्य की प्रतिष्ठा करने का सफल प्रयास किया गया है । एकलव्य युयुत्सु आदि धिक्कृत पात्रों में भी कवि

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "पंचवटी"- पृ. 32
2. "जयभारत-" पृ. 338

का यह भाव विद्यमान है । "जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः" के अनुसार उन्होंने कुल से नहीं शील से ही तो होता है कोई जन आर्य " कहा ही नहीं बल्कि एकलव्य के चरित्र में इसको व्यावहारिक रूप दिया है । [1] गुप्तजी मानवतावादी हैं । एक ही मनुष्य-वसिष्ठ महामानव भी बन सकता है और मानव पतन का प्रतीक भी । आदिपर्व के 175 वें और 176 वें अध्यायों में वर्णित कल्मषपाद के उपाख्यान में गुप्तजी ने मानवता की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है । [2] वसिष्ठ जानते हैं कि राजा हलबोध है और यह उन्हें विदित है कि उनका शाप रूपी प्रतिशोध निकृष्टता का कारण बनेगा । ऐसी स्थिति में यह विकल्प उचित है कि "मैं क्रोध करूँ या दया करूँ, " उनकी यह उदार वृत्ति और करुणा-मयता दानव राजा को भी महामानव बना देती है ।

"जयद्रथ-वध" में "उत्तरा से अभिमन्यु की विदा" एवं "उत्तरा का विलाप" प्रसंग नवीनता लिए हुए हैं । पहले प्रसंग को कवि ने अतीव कारुणिक बनाया है । अभिमन्यु को विदा करते समय उत्तरा वीर क्षत्राणी की तरह कार्य करती है फिर भी उसकी करुणा चीत्कार कर उठी -" उत्तरा के धन रहो तुम उत्तरा के पास ही " । अब अभिमन्यु उस क्षत्रिय वंशी वीरों के कर्तव्यों के बारे में सचेत करते हुए सान्त्वना देकर चले जाते हैं । [3] महाभारत एवं अभिमन्यु की कथा चित्रित करनेवाले अधिकांश काव्यों में इस प्रसंग का अभाव देखकर गुप्तजी की सृजनशील आत्मा चीत्कार कर उठी , यह प्रसंग उसी का परिणाम है । [4] प्रस्तुत प्रसंग कवि-कल्पना का परिचायक और युगानुकूल है ।

"उत्तरा-विलाप" के चित्रण में कवि ने महाभारत का सहारा अवश्य लिया है । प्रस्तुत प्रसंग के चित्रण में द्विवेदीजी की प्रेरणा भी स्पष्ट है । [5] चक्रव्यूह में अभिमन्यु मारा गया । उसकी यौवन-युक्ता नववधू उत्तरा के जीवन

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "जयभारत"-पृ. 53
2. पृ. 53 म. भा.
3. "जयद्रथ वध"-पृ. 11
4. "मैथिलीशरण गुप्त का काव्य" (संस्कृत स्रोत के संदर्भ में) -पृ. 116 डा. एल. सुनीता

में वैधव्य का अंधकार छा गया । वह दुःख के मारे तडप-तडप कर विलाप करने लगी । [1] गुप्तजी ने उत्तरा को साधारण स्त्रियों की तरह छाती और सिर पीट-नेवाली चित्रित कर, उसके दुःख को सामान्य बनाने का प्रयास किया है । यहाँ उत्तरा के भावों का जो साधारणीकरण हुआ है , वह बिलकुल नवीन है । इस प्रकार प्रसंग को कारुणिक , बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण से नवीनताओं से भर दिया है ।

"बक-संहार" में कवि ने कुन्ती द्वारा अपने राजविषयक विचारों को स्पष्ट किया है । "जनान् रंजयतीति राजा" के तत्व का भी समर्थन किया है । [2] कुन्ती और पुत्रों के संवादों में कुन्ती का अपनी स्वर्गीय सपत्नी की ओर आदर प्रकट करना भी नवीन है । महाभारत में कुन्ती केवल युधिष्ठिर के सामने सफाई प्रस्तुत करती है । "बक-संहार" में कुन्ती स्वमत पर भीम को बक के पास भेजने की प्रतिज्ञा करती है , जिसका पता तक पांडवों को नहीं रहता । [3] इस प्रकार यहाँ नारी का नवीन जागृत रूप प्रस्तुत करने में गुप्तजी ने अपनी चतुराई दिखाई है ।

"वन-वैभव" में उन्होंने जातीय एकता की ओर प्रकाश डाला है । यहाँ उनेक युधिष्ठिर इसका वक्ता बन गए हैं । [4] यही एकता आगे चलकर गंधर्वों से मोर्चा लेने में पांडवों की सहायता करती है । इस प्रकार अतीत से वर्तमान को और उलटे मिलाकर , कवि इस तत्व को आत्मसात्कर सके कि त्याग तपस्या, नम्रता, आदर आदि के प्रभाव वाले भारत को कलह, फूट और वैमनस्य ने घेर लिया है । यहीं कवि मानवता को प्रमुखता देते हैं । इन नवीन उद्भावनाओं के ज़रिए कवि ने तत्कालीन जनता में , भारतीय संस्कृति के सद्गुणों के बारे में सचेत करने का प्रयास किया है ।

"नहुष" में कवि ने नहुष के उत्थान-पतन के द्वारा समस्त मानव जाति के उत्थान-पतन को दिखाने और निराश मानव के भीतर आशा भरने का प्रयास किया है । यह गुप्तजी कालीन चेतनाहीन मानव समूह को सुख सुषुप्ति से जगाने का मंत्र

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. जयद्रथ-वध- पृ. 23/ 2. बक-संहार- पृ. 22

3. बक-संहार- पृ. 26-27 4. वन-वैभव-पृ. 33

साबित होता है । "नहुष" की मुख्य नवीनता यह है कि प्रस्तुत काव्य मनोविज्ञान की नई शैली पर लिखा गया है । नहुष के चरित्र , मानवीय सद्वृत्तियों के विकास और असद्वृत्तियों के दमन के रूप में व्यंजित है । इसकी नवीनता की ओर लक्ष्य करते हुए उदयशंकर भट्ट कहते हैं -" आज के जीवन में नहुष की चेतना उसके कार्य कलाप , उसके प्रच्छन्न लक्ष्य जैसे मनुष्य का अवांतर रूप बन गया है जिसे वह अपने अंतरमन की अवचेतना में सहज आबद्ध पाता है इसके साथ ही इस प्रकार के साहित्य का युगीन प्रभाव भी पाठकों केलिए एक हमदर्दी है । उसी के मन की बात है । 1. "हिडिंबा" में कवि ने हिडिंबा द्वारा आर्य-अनार्य की कृत्रिम पृथकता , मानव राक्षस का जातीय सम्मेलन आदि कई मानवतावादी चिन्तन को व्यक्त करते हैं जिससे पुरानी कथा को नया अभिप्रेत मिला है ।

"साकेत" की प्रमुख नवीन उद्भावनाएँ "नारी पात्रों की नवीन कल्पना" और "उपेक्षित संदर्भों का उत्थान" है । "नारी पात्रों की नवीन कल्पना" गुप्तजी कालीन सामाजिक स्थिति की देन है । "साकेत" की रचना तिरस्कृत उर्मिला के चरित्रोत्कर्ष केलिए ही हुई है । उसका विरह वर्णन "साकेत" की केन्द्र-बिन्दु है । "साकेत" की शुरूआत से अंत तक उर्मिला का चरित्र सब कहीं झलक रहा है । यह परंपरा से दूर पूर्णत: कल्पित है । कैकेयी की प्रस्तुति भी नया रंग देने योग्य है । उसके कुटिल चरित्र को गुप्तजी ने "पश्चात्तापेन पापमुक्ति:" के अनुसार पश्चात्ताप की अग्नि में जलती हुई दिखाकर पावन बना दिया है । "उपेक्षित संदर्भों का उत्थान" में , कवि ने परंपरागत घटनाओं का भली-भाँति अनुसन्धान करके मार्मिक प्रसंगों को चुनकर युगानुकूल प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । "साकेत" में मंथरा के "भरत से सुत पर भी सन्देह बुलाया तक न उन्हें जो गेह" वाला वाक्य जादू का काम करके कैकेयी को कुकर्म की ओर अग्रसर करता है । यह बिलकुल नवीन संदर्भ है । राम वन-गमन के समय सुमित्रा का आगमन और राम-सुमित्रा-संवाद भी मौलिक है । राम वन-गमन के प्रसंग में कवि ने देश-भक्ति का संचार करके प्रसंग को नवीन बना दिया है । "यदि जा सको तो इस को

---

1. -"नहुष निपात"- उदयशंकर भट्ट- भूमिका

रौंदकर जाओ " वाले प्रसंग में सत्याग्रह की युगीन छाप की सुन्दर झलक है । आठवें सर्ग में वर्णित सीता का गार्हस्थ्य जीवन , द्वादश सर्ग के साकेत वासियों की समर सज्जा आदि भी अपने में नूतन हैं । इस प्रकार तिरस्कृत पात्रों एवं उपेक्षित संदर्भों में नए जीवन भरके कथा को युगानुकूल बनाकर तत्कालीन जनता को उद्बोधन देने में कवि एक बार फिर सफल निकले हैं ।

"पंचवटी" में "शूर्पणखा प्रसंग" और देवर-भाभी का हास-परिहास पूर्णतः नवीन है । कवि ने रामकथा की शूर्पणखा की राक्षसता में स्त्रीसुलभ मुग्धभाव एवं वाग्वैदग्ध्य को दर्शाया है । "पंचवटी" की सबसे बडी नवीनता है कि कवि ने प्रसंग को प्रकृति के परिवेश में सुन्दरता से सजाने का प्रयास किया है । [1]यहाँ का लक्ष्मण-शूर्पणखा-संवाद अधिक युगानुकूल है । इस प्रकार के नवीन उद्भावनाओं से "पंचवटी" बिलकुल नवीन युग केलिए योग्य बन गयी है ।

"लीला" में कवि ने अनेक नवीनताओं का समावेश किया है । "विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना" और "सीता स्वयंवर एवं परशुरामागमन" अपने में नवीन हैं । इसके अतिरिक्त पुष्पवाटिका प्रसंग में उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन, तथा माँडुवी, श्रुतिकीर्ति आदि की उपस्थिति , अटाल-कराल का चित्रण , मृगया की योजना, कौसल्या-सुमित्रा-संवाद आदि बिलकुल नवीन हैं । मानवोत्कर्ष , नारी व्यक्तित्व आदि बातों को व्यक्त करनेवाली परंपरागत संस्कृति की रखवाली भावनाएँ "लीला" में सफलता से अंकित हैं ।

"द्वापर" में आदर्शवादी कवि ने श्रीकृष्ण को पराधीन भारत के उद्धारक के रूप में चित्रित करके भारतमाता की पराधीनता की जंजीरों को तोडने का प्रयास किया है । उनके बलवान बलराम कर्मण्य-धर्मात्मा एवं पुरोगमनवादी है । बलराम कवि की कल्पना का पात्र है । उनके नारद सुधारवादी क्रान्ति के दूत हैं । कंस अंग्रेजी शासकों का प्रतीक एवं कृष्ण स्वतंत्रता आन्दोलन के नायक माना जा सकता

---

1. "पंचवटी"- पृ. 5

है । सुदामा का कथन आज की आर्थिक समस्या की वाणी है ।[1] कवि ने कुब्जा को सौत न रखकर राधा की सेविका का पद दिया है । उनकी गोपियाँ राधा की परमप्रिया सखियाँ हैं जो केवल राधा को लेकर जीवित हैं । उनकी विधुता तत्कालीन नारी की पीड़ित अवस्था का प्रतीक है, फिर भी वह अपने अधिकारों की माँग करती है ।[82] ऐसा होते हुए भी वह क्रान्तिकारी न होकर आत्मोत्सर्ग करने वाली देवी है । इस प्रकार "द्वापर" द्वारा तत्कालीन जनता को उद्बोधन देते हुए कवि अपनी उद्देश्यपूर्ति की ओर एक कदम आगे रखते हैं ।

गुप्तजी ने यहाँ प्रमुख पौराणिक प्रसंगों में कई तरह की नवीन उद्भावनाओं का उद्घाटन करके कथांश को नया जीवन प्रदान किया है । तत्कालीन समाज के अनुकूल कथा में परिवर्तन लाकर उन्होंने युगीन समस्याओं की ओर प्रकाश डाला है । गुप्तजी कालीन जनता को अपनी परिस्थितियों के बारे में सचेत करके, अपनी लक्ष्यपूर्ति -" एक धर्मराष्ट्र की स्थापना" की ओर कवि सदैव कर्मोन्मुख रहे।

## 3.5. वळ्ळत्तोळ् के पौराणिक कथा-प्रसंगों में नवीन उद्भावनाएँ

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी मूल कथा को अधिक युगानुकूल बनाने केलिए नवीन उद्भावनाओं का प्रयोग करते हैं । पुराने पात्रों का आधुनिकीकरण, नारी-जागरण, जाति-व्यवस्था आदि इनमें प्रमुख हैं । परशुराम, विश्वामित्र, अनिरुद्ध, गणपति, पार्वती, उषा, शकुन्तला आदि पात्रों को कवि ने नये साँचे में ढालकर युगानुकूल प्रस्तुत किया है । ऐसे पात्रों के द्वारा कवि ने युगीन समस्याओं का भी समाधान दिया है । यहाँ वळ्ळत्तोळ् का मानवता वादी दृष्टिकोण भी गुप्तजी की तरह एक धर्म-राष्ट्र की स्थापना का है ।

---

1. "द्वापर"- पृ. 222
2. पृ. 33

महाभारत से सामग्री संकलन करके वळ्ळत्तोळ् ने अनेकों की नवीन एवं युगानुकूल व्याख्या प्रस्तुत की है । फिर भी उन्होंने पौराणिक अंधश्रद्धा को बनाए रखने का कोई कार्य नहीं किया है । उनका विश्वामित्र महाभारत केलिए नवीन है । वे एक साधारण पिता की तरह अपनी पुत्री और पौत्र से स्नेह और वात्सल्य बाँटते हैं । उनका अनिरुद्ध , परशुराम , गणपति आदि कर्मकुशल और उद्बोधनात्मक पुरुष हैं । उनकी उषा पतिभक्ता और पार्वती आदर्श माता का उत्तम निदर्शन हैं । "इन्द्र और महाबलि" का महाबलि समचित्त एवं द आदर्श पात्र का पर्याय बन गया है । इस प्रकार पुराने प्रसंगों को कवि ने नये समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

वळ्ळत्तोळ् के रामायण पर आधारित काव्यों में भी इस प्रकार की नवीन उद्भावनाएँ विद्यमान हैं । राजा दण्ड की अनीति पूर्वक राजशासन, परशुराम की धीरता, रावण की राम के प्रति प्रतियोगिता आदि प्रसंगों को कवि ने नये समाज के सम्मुख प्रस्तुत करके , जनता को सचेत करने का प्रयास किया है । वळ्ळत्तोळ् रामायण से कम प्रभावित नहीं थे । फिर भी उन्होंने रामायण पर आधारित अधिक रचनाएँ प्रस्तुत नहीं की हैं ।

वळ्ळत्तोळ् महाभारत और रामायण से अधिक अन्य पुराणों की ओर आकृष्ट रहे । उन्होंने अन्य अनेक पुराणों के विविध संदर्भों को नवीन उद्भावनाओं के साथ , नये तरीके से प्रस्तुत करके युगीन समस्याओं का समाधान ढूँढने की चेष्टा की है । वळ्ळत्तोळ् के अनिरुद्ध , परशुराम आदि आधुनिक युग के वीर युवक हैं । उषा, शकुन्तला आदि सामयिक कर्मोन्मुख नारी के प्रतीक हैं । यहाँ कवि नारी जागरण , जाति-व्यवस्था, स्वदेश प्रेम, स्वाधीनता का महत्त्व आदि के बारे में जनता को सचेत करते हैं ।

"अच्छनुं मकळुम्" में कवि ने वाल्मीकि रामायण और अभिज्ञान शाकुन्तल के पितृहृदय राहित्य को दूर किया है । [1] इस काव्य की सबसे बडी विशेषता

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "वळ्ळत्तोळ् उपहार ग्रन्थ" -अच्युत मेनन- पृ. 42

विश्वामित्र प्रसंग है । अभिज्ञानशाकुन्तलम और शकुन्तलोपाख्यान में विश्वामित्र एक मुख्य पात्र नहीं है । वळ्ळत्तोळ् ने उनको अपने खण्डकाव्य में पिता के रूप में प्रमुख स्थान दिया है । काव्य के पहले भाग में शकुन्तला के पुत्र के द्वारा विश्वामित्र को लौकिक धरातल में लिवालाने का प्रयास किया गया है । वळ्ळत्तोळ् के शब्दों में --

"आरितेन्नरियानल्ल अवनेच्चिक्कोन्नु तन्
मारत्तोन्नणप्पानाणिच्छिच्चतृषि प्रौढन्" ।[1]

{वह कौन है, यह जानने की इच्छा से अधिक, उनको उसे एक बार छाती से लगाकर आलिंगन करने की थी । } यहाँ विश्वामित्र का आध्यात्मिक हृदय लौकिक स्नेह से भर जाता है । यह कवि-कल्पना की चरमसीमा है । आखिर उनकी पुत्री स्वार्थ जन्य लौकिक स्नेह से उनका उद्धार करके उन्हें धार्मिकता के पवित्र पद पर प्रतिष्ठित करती है । "मेरे बारे में सोचकर दुष्यन्त को शाप न दीजिए "- सुनकर उनके हृदय से स्नेह की एक पवित्र नदी फिर से बहने लगती है । अगर शकुन्तला ने ऐसी प्रार्थना नहीं की होती तो विश्वामित्र की तपोनिष्ठा से दुष्यन्त का सर्वनाश के साथ साथ उनके तपोबल की क्षति भी होती । इस प्रकार शकुन्तला एक साथ अपने पिता, पति, पुत्र और अपने की रक्षा करती है । यहाँ कवि आदर्श नारी के रूप में शकुन्तला का और आदर्श पिता के रूप में विश्वामित्र का चित्रण करते हैं । यहाँ कवि का उद्देश्य नारी उद्धार है ।

"इन्द्र और महाबलि" में कवि बलि को आदर्शवान पुरुष के रूप में प्रस्तुत करते हैं । समचित्तता से काम करनेवाले पुरुषों को, सांसारिक जीवन सदैव एक जैसा ही रहता है । कवि के बलि कहते हैं --

"बुद्धिमान्मार्क्कित्र मंभ्रलिक्किल्ल कण्णु
अस्थिर वृत्तियाँ लक्ष्मितन् मिन्निलिल्" ।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "पिता और पुत्री- पद-9-पृ. 26
2. सा:म: 7, पृ. 105

§अस्थिर धन की चमक से समचित्तता वालों की आँखें इतना निष्प्रभ नहीं होतीं§ वे विकार से नहीं विवेक से काम लेते हैं । इस काव्य से कवि यह साबित करते हैं कि स्थित प्रज्ञों के आगे देवता और ईश्वर भी हाथ जोडते हैं । यहाँ कवि अहंकार और आडंबर का भी विरोध करते हैं । आखिर बलि के द्वारा कहलाया गया है कि आदर्श भारतीय को आत्म प्रशंसा और अहंकार शोभा नहीं देती ।

"बन्दी अनिरुद्ध" में कवि ने मूल कथा को आधार मात्र बनाकर , उसे अपनी कल्पनाशक्ति के रंगीन कलेवर से सजाकर नवीन उद्भावनाओं के साथ प्रस्तुत किया है , जो युगानुकूल और सफल निकला है । जहाँ मूल कथा का करीब अंत होता है वहाँ से वळ्ळत्तोळ् की कथा शुरू होती है । मूल कथा की उषा द्वारा अनिरुद्ध को सपने में देखना , चित्रलेखा द्वारा संसार के सारे राजाओं का चित्र खींचकर उषा को दिखाना उसकी कुशलता से अनिरुद्ध-उषा-रहस्य मिलन [1] आदि प्रमुख प्रसंगों को कवि छूते तक नहीं । कवि ने मूलकथा के एक भावनिर्भर प्रसंग-उषा के अनिरुद्ध को बन्दीगृह में जाकर मिलना"- को केन्द्र बनाकर उसे औचित्य के साथ प्रस्तुत किया है । यह संदर्भ मूल कथा केलिए बिलकुल नवीन है । वळ्ळत्तोळ् की उषा का मंत्रि प्रमुख से तर्क-वितर्क , उसके जेल में जाकर अपने प्रिय अनुरुद्ध से मिलन, उनके आपसी प्रणय सल्लाप आदि कवि की कल्पना के वास्तविक परिचायक हैं । "उषा-कुंभाण्ड-संवाद" के बीच वह स्वतंत्र नारी के रूप में अपनी कुल-मर्यादा की ओर प्रश्न-चिह्न लगाती है --

"नानासरस्सिलपराधमोराळकु, बन्ध-
स्थानास्थितयन्यनु, मितो बलि वंश धर्मम्" । [2]

§एक व्यक्ति ने नाना प्रकार के अपराध किए , फिर भी दूसरे को बन्दी बनाया- क्या यही बलिवंश धर्म है ? § अनिरुद्ध को कवि ने एक स्वाधीनता बोध से युक्त नव-युवक के रूप में प्रस्तुत किया है । वह धीर, वीर एवं समचित्तता से काम करनेवाला पात्र है । इस प्रकार कवि ने भावनिर्भर और परिस्थितियों के अनुसार,

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भागवत पुराण", दशमस्कन्ध अध्याय-62
2. "बन्दी अनिरुद्ध"- पद-18-पृ. 28

स्वाभाविक रूप में जन्म लेनेवाले , प्रत्येक प्रकृति के पात्रों से युक्त नए इतिवृत्त का उद्घाटन किया है , जो कि अन्य पुराण कवियों ने अभी तक नहीं किया हो । इस प्रयास में कवि सफल भी निकले हैं ।

"शिष्यनुं मकनुम्" में कवि ने परशुराम , पार्वती, गणपति और राधा को युगानुरूप बनाकर चित्रित किया है । परशुराम आदर्श धीर एवं कर्मोन्मुख पुरुष है , जो तत्कालीन सुषुप्त भारतीय युवचेतना को जगानेवाला है । भृगुराम की कर्मोन्मुखता के बारे में कवि कहते हैं "एन्नारु कण्डु भृगुरामनु पिन्मटक्कम्" §कब किसने देखा - भृगुराम का पीछा हटना § [1] यहाँ कवि हमें कर्मनिरत होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने का आह्वान देते हैं । वळ्ळत्तोळ् कालीन भारत परशुराम और गणपति जैसे कर्म के पथ पर अटल रहनेवाले पुरुषों की कमी से तडपता था । इस कविता से कवि उस कमी की पूर्ति करने का प्रयास करते हैं । उनकी पार्वती एक आदर्श पत्नी से अधिक एक वात्सल्यमयी माँ के रूप में उपस्थित है । काव्य के अंत राधाकृष्ण आगमन है । मूल कथा में कृष्ण ही पार्वती को शांत करते हैं लेकिन "शिष्य और पुत्र" में राधा से यह कार्य करवाया है । [2] यह कवि की देवी भक्ति एवं नारी जाति के प्रति श्रद्धा का परिचायक है ।

"गणपति" में वळ्ळत्तोळ् ने पार्वती के द्वारपाल को परशुराम की तरह कर्तव्य निष्ठ भारतीय युवक के रूप में उपस्थित किया है । उसका चरित्र भी उद्बोधनात्मक है । वह अपने कर्म के पथ पर अटल रहनेवाला है । उसको अनेक कष्ट झेलने पडे , फिर भी वह आखिरी दम तक निडर होकर युद्ध करता रहा । स्वतंत्रता संग्राम कालीन भारत के अकर्मण्य युवकों को , वळ्ळत्तोळ् का द्वारपाल एक कर्मोन्मुक सेनानायक था । "गणपति" की पार्वती स्वतंत्रता में पली आधुनिक नारी का प्रतीक है । वह अपने पति को अपनी स्वतंत्रता छीनने से रोकने केलिए एक सशक्त द्वारपाल को जन्म देती है और अपनी स्वतंत्रता की स्थापना करती है ।

---

1. "शिष्यनुं मकनुम्" -पद-7- पृ. 28
2. --वही-- पृ. 45/ ब्र:पु:प्र:ख:भार्गव चरित्र वर्णन:श्लो:28-29

यहाँ कवि ने यह साबित करने की कोशिश की है कि सच्चे कर्मयोगि के आगे सारी शक्ति निष्प्रभ और असफल हो जाएगी ।

"अंबाडी में जानेवाला अक्रूर" में वळ्ळत्तोळ् ने संक्षिप्तता के अलावा ज़्यादा कुछ नहीं किया है । भागवत में कृष्ण को देखने के पहले ही अक्रूर ऐसी कई बातें सोचता है, जो उनके साक्षात्कार से सफल होने की संभावना है । [1] यहाँ कवि ने संक्षिप्त रूप में, थोडे ही शब्दों में अक्रूर की भक्ति का वर्णन करके गागर में सागर भरने का प्रयास किया है । यह कवि की रचना-चातुरी का परिचायक है ।

"आंगन की तुलसी" में वळ्ळत्तोळ् ने मूल कथा का आधार बनाकर, काव्य को समकालीन समस्याओं से पुष्ट करके प्रस्तुत किया है । यहाँ तुलसी देवी का पातिव्रत्य ही कवि को सबसे प्रिय रहा है, जो नारी जागरण की ओर प्रकाश फैलाने का कार्य करता है । देवी की शक्ति का वर्णन असल में कवि की भक्ति का वर्णन है । [2] कवि देवी के आशीर्वाद के साथ आगे बढ़ना चाहते हैं, साथ ही साथ दूसरों को आगे बढ़ाना भी ।

"कर्म भूमि के नन्हे पाँव" प्रतीकवादी दृष्टिकोण से लिखी गई कविता है । यहाँ कवि भारत को कर्मभूमि, कालियनाग को विदेशी शासन तथा कृष्ण को गाँधीजी के रूप में चित्रित करते हैं । तत्कालीन भारत केवल अकर्मण्य जनों से भरा पडा था । तब कृष्ण जैसे कर्मधीर और ज्ञानी पुरुष को भारत माँ की सेवा केलिए उपस्थित कराकर कवि समस्या का समाधान ढूँढने का प्रयास करते हैं । अंग्रेज़ी शासन रूपी विषैली नदी का पानी पीकर भारत की आम जनता छटपटा रही थी । तब उस जनता की रक्षा के लिए गाँधीजी जैसे कर्मयोगी का पदार्पण भारत में हुआ । उस युगपुरुष ने, अपने धर्म के रूप में, भारत वर्ष को उस विषैले सर्प की पराधीनता की जंजीरों से मुक्त करने की कोशिश की । कविता के अंत में कवि विदेशियों को चेतावनी देते हैं ।

---

1. भा:द:स्क:अ:38 श्लोक-5-22
2. सा:म:तु:भा:पृ. 138

"इक्कर्मभूमितन् पिञ्चुकाल् पोरुमे ,
चिक्केन्नतोक्के चवुद्दिटताषूतान् " । [1]

(इन अत्याचारों का दमन करने केलिए इस कर्मभूमि के नन्हे पाँव ही पर्याप्त है । यों कवि स्वाभिमान से दावा करते हुए लोगों को इस कर्मभूमि की रक्षा करने का उद्बोधन देते हैं ।

"किळिक्कोञ्चल्" में कवि सीता को पाँचवर्षीय लडकी के रूप में चित्रित करते हैं । मूल कथा में सीता युवति है । [82] इस काव्य में कवि बच्चों के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर ज़ोर देते हैं । यहाँ कवि सीताजी के भूमि से जन्म से लेकर अन्तर्धान तक की बातों की सूचना देते हैं । [83] यह कवि की देवी भक्ति का द्योतक है ।

## 3. 6. गुप्तजी के पौराणिक पात्रों में आधुनिकीकरण

चूँकि कवि पौराणिक पृष्ठभूमि को छोडकर स्वतंत्र या कल्पित कथानक का निर्माण करते रहे इसलिए उनकी पात्र-सृष्टि भी काल्पनिक एवं मनोनुकूल रही हैं । फिर भी परंपरागत पौराणिक चरित्रों को एकदम भूलकर नवीन सृष्टि नहीं की जा सकती । कवि, ऐसी अवस्था में समन्वयात्मक भावना से काम लेते हैं । उनके अधिकांश चरित्र आदर्श एवं संस्कारयुक्त हैं , जो परिस्थितियों से प्रभावित भी अवश्य हैं । परंपरागत चरित्रों की अलौकिकता एवं असाधारणता गुप्तजी के चरित्रों में युगानुसार बदल गई हैं । कवि जितने प्राचीनता की ओर झुके हुए हैं उतने ही आधुनिक जीवन से प्रभावित भी । उनकी रचनाओं में अधिकांश चरित्रों का पुनर्गठन हुआ है और कहीं-कहीं उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन भी दिखाई पडता है । कहीं-कहीं पात्रों की पूर्णत: नवीन सृष्टि भी उन्होंने की है । उनके पात्रों में युधिष्ठिर, एकलव्य, कर्ण, नहुष, उर्मिला, हिडिंबा आदि प्रमुख हैं । इनमें पुरुष पात्रों का जिक्र यहाँ हो रहा है । स्त्री पात्रों का विश्लेषण पाँचवें अध्याय में विस्तार से किया जायगा ।

---

1. सा:मा:च:भा: पृ. 17
2. पद्मपुराण:तृ:भा:पाताल खण्ड-अ:57 श्लोक-30
3. पृ. 33-48

### 3.6.1. युधिष्ठिर

कवि ने युधिष्ठिर को स्थिरचित्त, धैर्ययुक्त एवं अपने ध्येय पर अटल दिखाया है ।[1] गुरु द्रोण के प्रति उनका असत्य तो प्रसिद्ध है । कवि ने इसका उचित समाधान दिया है --

"संरक्षक सब का मैं, सोचा युधिष्ठिर ने,
दुर्गति तो मेरी भले, सबकी सुगति हो ।[2]

यह उनकी कल्याण कामना का उत्तम निदर्शन है । कवि ने सर्वोपरि उनकी मानवता को चित्रित किया है । लेकिन स्वर्गारोहण के समय गिरते हुए बन्धुजनों को देखकर उनकी गलतियों पर टिप्पणी करना उनकी महानता केलिए सर्वथा प्रतिकूल है ।[3] गुप्तजी ने इसे हटाकर युधिष्ठिर को इसे अपने ही अहंभाव का नाश मानते हुए चित्रित किया है । डा. नगेन्द्र के शब्दों में -" वैसे तो युधिष्ठिर अपने आप ही मानवता के प्रतीक हैं, फिर भी गुप्तजी ने स्थान-स्थान पर उनके मानवत्व को और भी निखार कर सामने रख दिया है ।.... "जयभारत" वास्तव में युधिष्ठिर की मानवता ही है ।[4] उनके चरित्र में मानव सहज कमियों का भी चित्रण हुआ है । "जयद्रथवध" में अभिमन्यु की मृत्यु पर वे कहते हैं -" मत धर्मराज कहो मुझे यह कर जन भूभार है ।[5] फिर भी अंत में श्रीकृष्ण द्वारा इसे ठीक कराया है । इस प्रकार युधिष्ठिर के आदर्शवान चरित्र को नवीन समाज के सम्मुख प्रस्तुत करके कवि उद्बोधन का कार्य करते रहे ।

### 3.6.2. कर्ण

कर्ण महाभारत के सर्वश्रेष्ठ पात्रों में एक है । उसकी प्रशंसा श्रीकृष्ण तक करते हैं ।[6] उसका प्रभावशाली चरित्र, वीरता, दानशीलता, करुणा, आत्मविश्वास

---

1. "जयभारत"- पृ. 443
2. "युद्ध"- पृ. 21.
3. म. भा. महा. प्र. प. अ. 2
4. "विचार और विश्लेषण"-डा. नगेन्द्र-पृ. 127
5. "जयभारत"- पृ. 318
6. म. भा. उ. प. अ. 140 श्लोक-7

आदि से युक्त है । कवि की आधुनिक सुधारवादी भावना को कर्ण के चरित्र में परिष्कार का अवसर प्राप्त हुआ है । वहाँ वर्ग-भेद, जाति-भेद, धर्म-भेद आदि के विरुद्ध शब्द उठाया गया है । गुप्तजी कर्ण के चरित्र का विश्लेषण ऐसा करते हैं -" दंभी भी दृढ़- चरित अधिक उदारमान था " ।[1] कलंकित पौरुष और मानवता के प्रतीक "कर्ण-चरित्र" को कवि ने वीरत्व के आदर्श, पुरुषार्थ , निष्ठा, त्याग आदि से सज्जित करके परंपरागत तत्वों को सशक्त बनाकर कर्ण-चरित की निष्कलंकता एवं उदारता की ओर संकेत किया है । उसकी स्वामि-भक्ति और आदर्श मित्रता उन्हें दुर्योधन के विरुद्ध जाने नहीं देती । फलतः उसका मानसिक द्वन्द्व पश्चात्ताप की ज्वाला में परिवर्तित हो जाता है ।[2] "जयभारत" की शुरूआत में जब कर्ण को जाति-गत निकृष्टता के कारण रंग-प्रदर्शन केलिए सर्वदा अस्वीकार्य मानते हैं - तब वह कहता है --

"मैं मनुष्य हूँ और वर्ण सब देख रहे हैं ,
पूछो उनसे , लोग मुझे क्या लेख रहे हैं ।[3]

कवि के ये सुधारवादी विचार कर्ण-चरित्र को अवश्य उज्ज्वलतर बनानेवाले हैं । इस प्रकार कवि ने समाज सुधार की ओर संकेत किया है । एकलव्य के तिरस्कृत चरित्र को भी युगानुकूल प्रस्तुत करके कवि जाति-प्रथा और वर्णाश्रम की ओर प्रश्न चिह्न लगाते हैं ।

3.6.3. "नहुष"

पुराने नहुष के स्थान पर कवि ने बिलकुल नवीन नहुष की प्रतिष्ठा की है । गुप्तजी का नहुष देवत्व या देवराज्य को कोई अमूल्य वस्तु नहीं मानता फिर भी अतिविषयासक्ति उसे अकर्मण्य बनाती है । कामान्धता क्रोध का रूप धारण करके बुद्धि का नाश करती है । अभिशप्त नहुष उत्थान की चेष्टा से अप्रतिहत नहीं रहता । वह कह उठता है --

---

1. "जयभारत"- पृ. 63 2. जयभारत-" पृ. 338

3. पृ. 63 4. -नहुष" - पृ. 66

"फिर भी उठूँगा और बढ़के रहूँगा मैं,
नर हूँ, पुरुष हूँ चढ़के रहूँगा मैं। [1]

कवि ने नहुष को मानव के दुर्लभ शक्ति का प्रतीक बनाकर भी विजयी के रूप में चित्रित किया है। मानव जीवन के उत्थान पतन में सत् असत् दोनों का संघर्ष वर्तमान है और मानवतादर्श तो परम पुरुषार्थ में है। [2] उनका नहुष आत्मविश्वासी है। "मानता हूँ और सब, हार नहीं मानता" - यही उसका रूप है जो बिलकुल उद्बोधनात्मक है। कवि ने नहुष के निवेदन में व्यक्त किया है - "व्यास देव के द्वारा वर्णित इस आख्यान में स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य बार-बार ऊँचे उठाने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलताएँ बारबार उसे नीचे ले आती हैं। मनुष्य को उनपर विजय पानी ही होगी। [3] यह विचारधारा यहाँ समा ली गयी है। महाभारत में नहुष स्वाधिकार शची को माँगता है तो गुप्तजी के नहुष में अधिकार से भी अधिक मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव है।

इस प्रकार नहुष के चरित्र द्वारा कवि ने आधुनिक जीवन में भोग-लालसा का विरोध किया है। संयम से सत्व की रक्षा करने पर सब पुरुषार्थ सहज ही साथ आते हैं। नहुष के चरित्र द्वारा तत्कालीन पतित पौरुष को उद्बोधन दिलाने का प्रयास किया गया है।

3.6.4. <u>श्रीकृष्ण</u>

यह "द्वापर" के प्रथम खण्ड का नाम है। यहाँ श्रीकृष्ण, वेणुनाद में अपनी बात सुनाते हैं जिनमें प्राचीन गौरव के भाव स्पष्टतः गूँज रहे हैं। भगवद्गीता से प्रभावित होकर कवि ने लिखा है --

"कोई हो सब धर्म छोड़ तू आ बस मेरा शरण धरे
डर मत कौन पाप वह जिससे मेरे हाथों तू न तरे। [4]

---

1. "नहुष" - पृ. 66
2. "नहुष" - पृ. 65
3. वही - निवेदन-पृ. 4
4. "द्वापर" - पृ. 12, श्रीमद्भागवत- अध्याय-18, श्लोक-66.

फिर भी "द्वापर" का कृष्ण भागवत का लीलामय कृष्ण है , जो "रामभजन कर पांचजन्य तू वेणु बजा लूँ आज हरे " । [1] "द्वापर" के सोलह खण्डों को एक सूत्र में पिरोनेवाला पात्र श्रीकृष्ण है और सभी अन्य पात्रों का विकास इसी चरित्र के आधार पर हुआ है । गुप्तजी का श्रीकृष्ण विश्वकार्य में लगे हुए हैं और विश्व कल्याण केलिए आत्म समर्पण , त्याग आदि पर बल दे रहे हैं । "द्वापर" में उनका अस्तित्व, सर्वप्रमुख , सर्वव्यापी, सर्वाधार एवं सर्वतोन्मुखी कहा जा सकता है । इस प्रकार कृष्ण के चरित्र का आधुनिक ढंग से चित्रण करके कवि ने समय की माँग की पूर्ति करने का प्रयास किया है ।

3. 6. 5. <u>बलराम</u>

बलराम का चरित्र पूर्णतः कल्पित है । इसका वर्णन "द्वापर" के पाँचवें भाग में हुआ है । बलराम , परंपरा का खण्डन करके प्रगति की ओर बढ़ने वाला पात्र हैं । वे रूढ़ीवाद के विरोधी जोशीले नवयुवक हैं । [2] उनके अनुसार, अतीत श्रेष्ठ होने पर भी वर्तमान के महत्व को कम नहीं किया जा सकता , इसलिए धर्म को युगानुसार बदलना चाहिए । [3] यहाँ गुप्तजी के ये उद्बोधनात्मक शब्द बलराम के मुँह से बाहर आए हैं । बलराम देशभक्ति, कर्मण्यता, क्रान्ति आदि का जागृत प्रतिनिधि है । वे तत्कालीन शासन के विरुद्ध जनता में जोश उत्पन्न करके आत्मबलि के महत्व को दिखाते हैं ।

"आज गोप हम" यही गर्व से तुम को कहना होगा ,
और आत्मबलि देने को भी उद्यत रहना होगा । [4]

पराधीनता के दिनों में देश के नवयुवकों में स्वाधीनता की सुषुप्ति भरने केलिए और अन्यायी शासन से भिडने केलिए "अनय राज निर्दय समाज से निर्भय होकर जूझो" अवश्य ही महामंत्र साबित हो जाता है । अवश्य ही बलराम का चरित्र स्वतंत्रता

---

1. "द्वापर"- पृ. 12
2. "द्वापर"- पृ. 48
3. वही पृ. 52
4. वही पृ. 64

संग्राम में भाग लेनेवाले किसी नेता को दिखाता है । इस प्रकार वह शाश्वत और सामयिक बन गया है । कवि ने यहाँ के बलराम के ज़रिए युग की माँग की ओर प्रकाश डाला है ।

इन मूर्ख पात्रों के अलावा कवि अनेक अन्य पात्रों को भी आधुनिकता के साथ प्रस्तुत किया है । उनका "नारद" क्रान्ति और शांति का प्रतीक है । उनका "कंस" भागवत के होते हुए भी आधुनिक है । वह तत्कालीन अंग्रेज़ी शासकों का प्रतीक बना हुआ है । "उद्धव" के चरित्र को उन्होंने मानव-कल्याण की युगीन भावना से भरा दिया है । इस प्रकार कवि ने "द्वापर" के पात्रों को अन्यान्य युगीन समस्याओं और माँगों की प्रतिनिधि और कार्यकर्ता बनाकर काव्य को आधुनिक बना दिया है । तत्कालीन जनता के लिए गुप्तजी के पात्र अवश्य ही प्रेरणास्रोत एवं वचनबद्ध रहे ।

## 3.7. वळ्ळत्तोळ् के पौराणिक पात्रों में आधुनिकीकरण

वळ्ळत्तोळ् के पौराणिक पात्रों में विश्वामित्र, परशुराम, अनिरुद्ध, गणपति, शकुन्तला पार्वती उषा आदि प्रमुख हैं । कवि ने इन पौराणिक पात्रों को नवीन उद्भावनाओं के साथ आधुनिक समाज के सम्मुख, सामयिक समस्याओं की पूर्ति के रूप में उपस्थित किया है । इस अध्याय में केवल पुरुष पात्रों का जिक्र हो रहा है । स्त्री पात्रों का अध्ययन पंचम अध्याय में किया जाएगा ।

### 3.7.1. विश्वामित्र

व्यासजी के विश्वामित्र को कालिदास ने उसी प्रकार प्रस्तुत किया था । लेकिन उस विश्वामित्र को वळ्ळत्तोळ् ने एक पिता का सुन्दर परिवेश दिया । पुराण के कठिन हृदय वाले विश्वामित्र को वळ्ळत्तोळ् ने एक सरल हृदयवाले पिता के रूप में बदल दिया है । अब उन्होंने किसी के बच्चे को देखकर सहसा उसे गले लगा लिया है । यहाँ व्यासजी के विश्वामित्र और वळ्ळत्तोळ् के विश्वामित्र में जो अन्तर है सो युगीन प्रभाव से हुआ है । कण्वाश्रम में आया हुआ विश्वामित्र जब शकुन्तला के मुँह से सुनते हैं कि वे स्वयं उसके पिता हैं, तो उनका हृदय स्पन्दन

विकार निर्भर हो जाता है । भावावेश में विश्वामित्र कहते हैं --

"हा शरि, योर्निच्येन् निन्नम्म मेनक , तीर्ण्ण-
क्लेशनामविडेक्कुम् नीरुरञ्जितो कणि्णक" । [1]

§हाँ , मैं याद करता हूँ , तुम्हारी माताजी मेनका को - अब लौकिक जीवन से उन्मुक्त उनकी आँखें आँसुओं से भीग गयीं । § यहाँ कवि गरम-गरम आँसुओं से विश्वामित्र को पिता का कर्तव्यपालन न करने का प्रायश्चित करवाते हैं । मूल कथा से वळ्ळत्तोळ् की यही कल्पना कोसों दूर है । आगे जब विश्वामित्र जानते हैं कि शकुन्तला भर्तृपरित्यक्ता है, उसका पितृहृदय तडप उठता है - वह दुष्यन्त कौन है ? जो मेरी पुत्री को घोर अपमान में फँसाकर अभी जिन्दा है । [2] आगे विश्वामित्र दुष्यन्त को अपने तपोबल की शक्ति दिखाने जाते हैं तो शकुन्तला पिताजी को शांत करती है । आखिर विश्वामित्र शांत होकर एक पिता के नाते पुत्री को आशीर्वाद देते हैं - तुम शीघ्र ही अपने पुत्र सहित पति से मिल जाओगी । यहाँ कवि विश्वामित्र को एक बार फिर आध्यात्मिक पृष्ठभूमि से इहलोक में उतारते हैं । महर्षिवर्य विश्वामित्र को साधारण मानव और पिता बनाकर कवि उनसे पश्चात्ताप करवाते हैं , जिससे पुराणों में चित्रित उनका क्रोधी चरित्र यहाँ पर दयालु होकर सामने आता है । इससे कवि का उद्देश्य पारिवारिक संबन्धों की स्थापना एवं नारी वर्ग के प्रति की जानेवाली अनीतियों को सुलझाना है । कवि की दृष्टि में सांसारिक संबन्ध एवं सुख-दुःख पूर्ण लौकिक जीवन ही सब से महत्वपूर्ण है ।

### 3.7.2. परशुराम

परशुराम का उल्लेख वळ्ळत्तोळ् के दो काव्यों में हुआ है -" भार्गव स्वामिन्- कै तोषाम्" और "शिष्यनुं मकनुम्" । "भार्गव स्वामिन् कै तोषाम्" में भृगुराम को केरल के जन्मदाता के रूप में चित्रित किया है । वहाँ वे अतीव शक्तिशाली

---

1. "पिता और पुत्री"- पद-34, पृ. 39
2. "पिता और पुत्री"- पद-47, पृ. 46

एवं तपोनिष्ठ हैं। उनसे कवि केरल के विमोचन की विनती करते हैं। "शिष्यनुं-मकनुम्" में परशुराम शिव का प्रिय शिष्य है। यहाँ वे भारतीय परंपरा के प्रतिनिधि धीर पुरुष हैं। कवि कहते हैं ----

"वल्लायूम देवकळ् पेड्डुत्तुवतुम् क्षमिप्पो -
न्नल्लायिरुन्नु हह, भारत पूर्व रक्तम्।[1]

{भारत के पूर्वज देवताओं की नीचता को भी सहनेवाले नहीं थे} फिर मानवों की क्या बात! परशुराम स्वाभिमानी निडर और अपने कर्म-पथ पर स्थिर रहने वाले हैं। शिव-दर्शन केलिए आनेवाले परशुराम को शिवपुत्र ने रोका तो उन्होंने उसका दाँत परशु से तोड डाला। उनकी तप:जन्य शक्ति भी प्रसिद्ध रही है। उन्होंने "कृष्ण प्रेमामृत" स्तोत्र से राधा-माधव को अपने वश में कर लिया था।[2] वे बुद्धि और शक्ति के समन्वय रूप थे। कवि ने तत्कालीन भारत की माँग की पूर्ति के रूप में ही परशुराम जैसे पात्र की सृष्टि की थी। पराधीनता की जंजीरों में पडकर तडपने वाली भारतमाता को परशुराम जैसे कर्मनिष्ठ सुपुत्र को प्रदान कर कवि ने तत्कालीन भारतीय नवयुवकों में चेतना भरने का सफल प्रयास किया है।

### 3.7.3. अनिरुद्ध

परशुराम के जैसे अनिरुद्ध भी कर्म निरत भारत का सुपुत्र है। कवि ने "बन्दी अनिरुद्ध" में अनिरुद्ध को नया जीवन प्रदान किया है। बन्दी होने पर भी वह अचंचल और स्थितप्रज्ञ होकर जेल में बैठता है। उसको देखने केलिए आनेवाली प्रियतमा से वह धीरज रखने को कहता है। उसके साथ जो अन्याय हुआ है वह उसके लिए नगण्य है।[3] ऐसा कहने वाला अनिरुद्ध एक कोरा प्रेमी नहीं अपितु एक परिपक्व तत्वज्ञानी एवं स्वतंत्र भारतीय नागरिक है। उषा से उसका तीव्र प्रेम और उषा के विकार-विचार आदि अनिरुद्ध को अपने निश्चित मार्ग से

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "शिष्य और पुत्र" पद-15, पृ. 31
2. --वही-- पृ. 26
3. "बन्दी अनिरुद्ध" - पद-51- पृ. 44

ज़रा भी व्यतिचलित नहीं करता । उषा जैसे नासमझ प्रेमिका के साथ वह बडे ही समझदारी से पेश आता है । उषा उसे कैद खाने से भाग बचने को कहती है । तब धीरता से अनिरुद्ध पूछता है --

"हा वनभयाल्त्तडविल्निन्नुमोळिच्चुचाडान्
भावल्कान्तनोरु तस्करनो चारुशीले ? " [1]

{हे सुशीले, अतीव भयभीत होकर कैद खाने से भाग जाने केलिए तुम्हारा पति कोई चोर है क्या ? } यह जो हुआ है , अब थोडी ही देर में ठीक हो जाएगा । अनिरुद्ध उषा को धैर्य देता है - मेरी कुलीनता को पहचान कर तुम्हारे पिता ही तुम्हें मेरे बन्धुजनों के साथ भेज देंगे । [2] इस प्रकार बुद्धि और अतीव प्रेम से , स्थित प्रज्ञ अनिरुद्ध अपनी प्रेयसी को बिदा करता है । यहाँ अनिरुद्ध की सच्चरित्रता, बुद्धि, तत्वज्ञान आदि पर कवि ज़ोर देते हैं । सच्चे अर्थ में वळ्ळत्तोळ् के अनिरुद्ध परशुराम और विश्वामित्र के चरित्र उद्बोधनात्मक हैं । इस प्रकार कवि ने पुराने पात्रों में नया जीवन भरके आधुनिक समाज के अनुरूप प्रस्तुत करके युगीन पौरुष को नया परिवेश देने का प्रयास किया है ।

## 3.8. गुप्तजी के पौराणिक काव्यों में युगीन समस्याएँ

गुप्तजी की अधिकांश रचनाएँ भारत के संक्रमण काल में हुई हैं । साहित्य में सामाजिक समस्याओं की झलक होगी ही । गुप्तजी अपनी हरेक रचना में किसी न किसी युगीन समस्या की ओर इशारा करते रहे । गुप्त कालीन समाज समस्याओं से जटिल था सबसे बडी समस्याएँ मानवतादर्श, गाँधीवाद, नारी-उद्धार जाति-व्यवस्था आदि की रही हैं ।

---

1. "बन्दी अनिरुद्ध" -पद-69- पृ. 53
2. --वही-- पद-71-पृ. 54

3.8.1. मानवतादर्श

"जयभारत" में उनका मानवतावादी दृष्टिकोण एक धर्म राष्ट्र की स्थापना का सफल प्रयास करता है। मानव की गौरव-गरिमा से मंडित उनके युधिष्ठिर नर देह में ही रहकर यह साबित करता है कि "नरजन्म से बढ़कर संसार में कुछ काम्य नहीं, मानवतादर्श से बढ़कर कुछ साध्य नहीं मानवता की उपासना से बढ़कर कुछ उपास्य नहीं, सच्ची नर साधना की ऐहिक एवं आमुष्मिक सुख शांति की जननी है। मानवात्मा ही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, मंतव्य और निधिध्यासितव्य है।[1] मानव की अहं की परिधि अगर व्यापक बन जाय तो सारे समाज का समावेश उसमें हो सकता है। यही मानवतावाद की पूर्णता है। कृष्ण ने इसके स्पष्टीकरण के रूप में कौरवों से कहा है --

वह है हमीं हम तो नहीं हम भी उसका अर्थ है
जो सब को लेकर चल सके सच्चा वही समर्थ है।[2]

मानवतावाद के विरोधी तत्वों के व्यंग्य-चित्र द्वारा भी गुप्तजी ने मानवता की प्रतिष्ठा की है।[3] युद्ध वर्णन में करुण, वात्सल्य आदि रसों को प्रमुखता देकर मानव मूल्यों की स्थापना करके, युद्ध की अर्थ-शून्यता एवं अहित को प्रत्यक्ष दिखाया है।

"साकेत" में उनके राम भी मानव रूप में अवतरित हैं। महाभारत का "न मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्" वाला मानवतादर्श अब फिर से जागृत हो उठा है और स्वयं कवि भी मनुष्यत्व को सुरत्व की जननी मान गए। रामावतार स्पष्टतः मानवता की रक्षा केलिए हुआ है। कवि के अनुसार "भव में नर वैभव व्याप्त करने आया नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने आया"। वे आर्य सभ्यता के प्रचार, आर्य धर्म के उत्थान और भारतीय संस्कृति की पुनःप्रतिष्ठा केलिए जन्म लिए हैं। उनके में

---

1. "समीक्षात्मक निबन्ध"-डा. विजयेन्द्र स्नातक- पृ. 123
2. "जयभारत"-पृ. 320
3. पृ. 173

क्षमाशीलता, कर्तव्य परायणता लोक रक्षा तथा मर्यादाभाव के उच्चादर्शों से युक्त राम के मानवीय पक्ष को चित्रित करने में कवि सफल हुए हैं । इस प्रकार मानवतावाद के विविध तत्वों की स्थापना करते हुए मानव में समभाव की दृष्टि पैदा करके कवि एक धर्मराष्ट्र की स्थापना का उद्बोधन देते हैं , जो उनका जीवन लक्ष्य एवं युग की माँग रही है । इसकेलिए कवि अपनी संस्कृति के गुणगान करके जनता को युग की माँगों की पूर्ति केलिए सचेत और कर्म-निष्ठ होने का आह्वान देते हैं ।

## 3.8.2. पौराणिक संदर्भ एवं गाँधीवाद

गाँधीवादी भावना अधिकत: "साकेत" में उभर आयी है , कारण है कि साकेत की रचना गाँधीजी के युग में हुई थी । "मानव स्वभाव पर विश्वास"ही गाँधीवाद का आध्यात्मिक आधार है । लोगों का नाता, आत्मीयता का, प्रेम का तथा सेवा का होना चाहिए । "साकेत" में भी इन्हीं आदर्शों का सूत्रपात हुआ है । राम-वनगमन के समय अयोध्यावासियों का सत्याग्रह और वर्ग भावना को मिटा कर परस्पर सहयोगी, स्वावलंबी, क्षमाशील जीवन का जो चित्रण हुआ है , सब गाँधीवाद का सुफल मात्र है । "साकेत" के पात्रों की सेवावृत्ति, प्राचीन संस्कृति और राजनैतिक आदर्श अवश्य गाँधीवाद से प्रभावित हैं । "साकेत" का रामराज्य गाँधीजी का रामराज्य है । "साकेत" पर गाँधीवाद का प्रभाव डा. नगेन्द्र स्पष्ट करते हैं -" दोनों में राजा की विशेषताएँ एक हैं । "नियतशासक लोक सेवक मात्र " अथवा "राज्य में दायित्व का ही भार जो महात्माजी के शब्दों की ध्वनि है । इसी प्रकार "प्रजा की थाती रहे अखण्ड" में गाँधीजी के "ट्रस्टी" शब्द का ही व्याख्यान है । यहाँ महात्माजी के विगत विद्रोह का प्रयोग कवि ने देशकाल के बन्धन को भी तोडकर कराया है । सामाजिक क्षेत्र में गाँधीजी के दरिद्रदेव की "सेवा और परिवार न्याय" दोनों का "साकेत" में दिव्य आख्यान है और सीता तो उनके चर्खायज्ञ का प्रचार करती मालूम पड़ती है ।[1]

---

1. "साकेत एक अध्ययन"- डा. नगेन्द्र- पृ. 39

"पंचवटी" में भी मानवजीवन का सफल चित्रण हुआ है, जो गाँधी दर्शन की सात्त्विकता से परिपुष्ट हुआ है। "मैं मनुष्यत्व को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ" में गाँधीवाद ही झलकता है। जीवन की सफलता के लिए चाहिए भी तो यही...."मनः प्रसाद चाहिए केवल, क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद"। यहाँ कवि ने महान वैभव को नकारकर स्वप्रयत्न से जीवन व्यतीत करनेवाले युगीन त्यागियों की ओर संकेत किया है। यह दृष्टिकोण ज़रूर गाँधीवाद से प्रतिफलित है। लक्ष्मण के पुरुषार्थ का गान भी इसी का प्रभाव है।[1]

गुप्तजी के युग में जाति-व्यवस्था की जड़ बडी ताकत के साथ जम गयी थी। अछूतों के प्रति घृणा को मिटाने और उनका उद्धार करने की ओर गाँधीजी का प्रयत्न सारे देश में फैल गया। गुप्तजी भी इससे प्रभावित अवश्य हुए।[2] राज्य शासन पर निर्भर रहनेवाले लोगों से कवि पूछते हैं -"पर अपना हित आप नहीं क्या कर सकता है यह नरलोक ? फिर भी उनको सीधे सच्चे पूर्व भाव ही पसन्द है।[3] पूज्य बापूजी के सुधारवादी सिद्धान्तों का प्रयोग कवि ने भी अपने काव्य पर किया है।

कवि का गाँधीवाद यहाँ निस्सन्देह पौराणिक संकल्प एवं पुनरुत्थानवादी धारणाओं से परिपुष्ट है। मानवतावादी कवि यहाँ अपने काव्य के ज़रिए एक रामराज्य की स्थापना का स्वप्न देखते हैं।

3.8.3. नारी जागरण

गुप्तजी ने पौराणिक नारी पात्रों को नवजीवन प्रदान करके समाज के सामने उपस्थित किया है। जाति की उन्नति की भावना से आप्लावित होकर उन्होंने एक ओर विनयशील पवित्र सीता जैसी पतिव्रता को चित्रित किया तो दूसरी ओर, रूप गर्व ईर्ष्या, वासना, उच्छृंखलता और हिंसा से युक्त नारी के

---

1. "पंचवटी"- पृ. 67
2. "पंचवटी"- पृ. 16
3. वही- पृ. 10

विकृत रूप को भी चित्रित किए । उनकी शूर्पणखा इसी के अंतर्गत आती है । वह आज की स्वतंत्र नारी है ।[1] शूर्पणखा के द्वारा स्वतंत्र नारी के भावों को वाणी मिली है --

नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन हैं नारी को लेकर
अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर ।[2]

इन शब्दों पर उछृंखलता एवं कार्यसिद्धि का आग्रह मात्र है । लेकिन उनकी सीता इसके विपरीत क्षमा, न्याय और सहनशीलता की मूर्ति है । गुप्तजी स्वतंत्र नारी का यहाँ तक समर्थन करते हैं कि "अबलाओं को अवकाश कि वे करें निज जडता का नाश " । फिर भी सुधार की आकांक्षा में वे ममता, उदारता, विनय आदि परंपरागत सत् गुणों को स्त्री से अलग करके देखना नहीं चाहते ।

इस प्रकार नारी के विभिन्न रूपों के चित्र उपस्थित करके कवि ने समाज-सुधार की ओर प्रकाश डालने का प्रयास किया है ।

3.8.4. <u>जाति-व्यवस्था</u>

"वन-वैभव" में कवि हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता की ओर प्रकाश डालते हैं । उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या का समाधान राष्ट्रीय स्तर पर रखकर विदेशी शासन से दोनों संयुक्त रूप से मोर्चा लेने को कहा है । यहाँ इस एकता की प्रेरणा युधिष्ठिर से कहलायी है --

जहाँ तक और आप की आँच ,
वहाँ तक वे सौ हैं , हम पाँच ।
किन्तु यदि करे दूसरा जाँच ,
गिने तो हमें एक सौ पाँच ।[3]

---

1. "पंचवटी" - पृ. 49
2. पृ. 32
3. "वन-वैभव" - पृ. 33

इस एकता ने गंधर्वों से मोर्चा लेने में पांडवों की सहायता की । यह तत्कालीन जनता केलिए अवश्य उद्बोधनात्मक रहा है । इस समस्या का समाधान मानवता ही प्रदान कर सकता है । इसलिए युधिष्ठिर के चरित्र में मानवता के तत्वों का समावेश किया गया है ।

"हिडिंबा" में भी कवि ने इसी समस्या की ओर प्रकाश डाला है।वहाँ वे कहते हैं ---

"कोरा कर्मकांड जाल जकड़े हैं जन को
शुक्र पकड़े , हैं शनि धकड़े हैं जन को । [1]

इस प्रकार के अर्थ शून्य , शुभाशुभ का गतिबाधक विचार उन्हें मान्य नहीं है । वे आर्य-अनार्य , मानव-राक्षस आदि मत-भेद में भी विश्वास नहीं करते हैं । वे मानव-जाति की एकता में विश्वास दिलाकर सर्वमत समन्वय की स्थापना करना चाहते हैं । यहाँ मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करके भारतीय जनता को धर्म और कुल-भेद को भूलकर एकता से आगे बढ़ने की ओर सचेत किया गया है ।

3.8.5. पारिवारिक जीवन

"बक संहार" में वे पारिवारिक जीवन के उच्चादर्श , त्याग, अतिथि-आतिथेय-धर्म आदि पर प्रकाश डालते हैं । [2] यहाँ राजा की न्यूनताओं पर प्रकाश डालते हुए राजधर्म का आख्यान भी प्रस्तुत किया गया है , न्याय और नीति का भी ध्यान रखा गया है । [3] अन्तत: कुन्ती के चरित्र में मातृत्व के अन्तर्दर्शन ने परंपरागत कथा को नवीन सूत्र में बाँधने का कार्य किया है । कर्तव्य-पूर्ण और धर्मनिष्ठ नारी जीवन का प्रतीक बनकर कुन्ती गुप्तकालीन पतित भारतीय स्त्रीत्व को उद्बोधन भी देती हैं ।

---

1. "हिडिंबा" - पृ. 32
2. "बकसंहार" - पृ. 19
3. पृ. 22

3. 8. 6. देश-प्रेम की भावना

"नहुष" में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । स्वर्गलोक प्राप्त करने पर भी मर्त्यलोक का - विशेषत: मातृभूमि का नहुष को गौरव है । वह कहता है--

" मेरी भूमि तो है पुण्य भूमि वह भारती
सौ नक्षत्र लोक करें आके आप आरती " । [1]

इन शब्दों में उद्बोधन की शक्ति भी अंतर्निहित है , जो तत्कालीन मानव समाज को अतीव आवश्यकता थी । मानव आज अलग-अलग बनकर टूटे हुए रूप में है । कवि ने देवसभा में शचि के द्वारा यही व्यक्त कराया है कि मानव की एकता विश्व बन्धुत्व आदि के बनाए रखने पर ही राष्ट्र का कल्याण हो सकता है । [2]

3. 9. वळ्ळत्तोळ् के

पौराणिक काव्यों में युगीन समस्याएँ

गुप्तजी के समान वळ्ळत्तोळ् की भी अधिकांश रचनाएँ संक्रमण काल में हुई हैं । कवि ने अपनी हरेक रचना किसी न किसी समस्या की पूर्ति के रूप में लिखी है । वळ्ळत्तोळ् कालीन समाज समस्याओं से जटिल था । उनके काव्य में प्रतिपादित समस्याओं में प्रमुख हैं "नारी जागरण, देश प्रेम की भावना, जाति-व्यवस्था" आदि ।

3. 9. 1. नारी जागरण

"अच्छनुं मकळुम्" में नारी जागरण की ओर वळ्ळत्तोळ् ने प्रकाश डाला है । प्रस्तुत काव्य की शकुन्तला पहले शैशव काल में ही माता-पिता के कर्तव्य विलोप के कारण परित्यक्ता होती है । आगे जब वह पत्नी और गर्भवती होती है तो पति ने भी उसको त्याग दिया । [3] नारी जागरण के समर्थक कवि का

---

1. "नहुष"- पृ. 27   2. नहुष- पृ. 56   3. पिता और पुत्री-पृ. 44

मत है कि शकुन्तला की ऐसी स्थिति में उसकी कोई गलती नहीं है । गलती उसके पिता और पति की है ।[1] उसके साथ ऐसी अनीतियों का व्यवहार होते हुए भी वह समचित्तता से काम लेने में सफल निकली है । उसने अपने पिता को पूर्ण अर्थ में पिता बना दिया है । यहाँ विश्वामित्र को आम पिता के रूप में प्रस्तुत करके कवि नारी जागरण की ओर नई रोशनी डालते हैं ।

"दण्डकारण्य" में वळ्ळत्तोळ् ने राजा दण्ड के, अपनी गुरु पुत्री के साथ अत्याचार का वर्णन किया है । यहाँ पहले ही गुरु पुत्री-अरजा दण्ड से कहती है कि मैं पिता के आदेशों पर चलनेवाली कन्या हूँ । अगर आप मुझे चाहते हैं तो मेरे पिताजी से अनुमति लीजिए । ऐसा न करने से बडा अनिष्ट होगा । फिर भी दण्ड ने उसका बलात्कार किया । यहाँ अनीति का कवि घोर विरोध करते हैं । यहाँ भी नारी की दुःस्थिति का कारण पुरुष है । कवि ने यहाँ भी नारी को समचित्त वाली चित्रित किया है । इससे कवि की नारी के प्रति श्रद्धा हम देख सकते हैं । यहाँ भी भारतीय स्त्रियों के पातिव्रत्य और चारित्र्य की ओर कवि हमारा ध्यान खींचते हैं । "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन" की उषा स्वतंत्र भारतीय नारी का प्रतीक है । वह धीरता से दावा करती है कि इष्ट पति को चुन लेने की स्वतंत्रता हर नारी को है ।[2] वह मंत्रि प्रमुख कुंभाण्ड से अपनी स्वतंत्रता के बारे में वाद-विवाद करती है । यहाँ कवि की उषा उद्‌बोधनात्मक पात्र के रूप में सामने आती है ।

"शिष्यनुं मकनुम्" की पार्वती भी एक प्रौढ़ माता और पत्नी है । वह अपने पुत्र के घायल होने पर पति से क्रुद्ध होकर पूछती है --

"मकन् परिक्करूरु मरिक्किलेन्तु,
महारथन् शिष्यनटुक्किलिल्ले"[3]

---

1. "पिता और पुत्री"- प्राक्कथन- एस. नायर-पृ. 10
2. "बन्दी अनिरुद्ध" -पृ. 31
3. "शिष्य और पुत्र"- पृ. 36

(पुत्र घायल होकर मर जाय भी तो क्या महारथी शिष्य सामने खड़ा है ना ?) यह व्यंग्य देवी पार्वती को एक आम माता बना देता है । यहाँ देवता को मानव बनाकर कवि जातीय-एकता की समस्या को मिटाने का प्रयास करते हैं । मतलब यह निकलता है कि विकार और विचार में मानव या देवता में कोई अंतर नहीं है ।

"गणपति" में भी वळ्ळत्तोल ने पार्वती को एक स्वतंत्र नारी के रूप में चित्रित किया है । वहाँ वह अपने पति को रोकने केलिए एक द्वारपाल को नियुक्त करती है । "गणपति" के आखिरी भाग में पुत्र-हत्या का समाचार सुनकर वह अपने पति की अनीति पर उन्हें शाप देने जाती है । यहाँ कवि ने पार्वती को एक कर्म-निरत, स्वतंत्रता बोध से युक्त नारी के रूप में चित्रित करके नारी उद्धार की ओर एक कदम आगे रखने का प्रयास किया है ।

3. 9. 2. देश-प्रेम

कवि ने देश-प्रेम से युक्त अनेक कविताओं की रचना की है । पौराणिक क्षेत्र में वह भावना सबसे अधिक "भार्गव स्वामिन् कैतोषाम्" में उभर आई है । यहाँ कवि वेदना से केरल के पिता भार्गव स्वामि से कहते हैं ---

"अन्नन्ननाचार वित्तोरोन्नतातिडम्
वन्नुर्वीणातु मुलच्चुतष्क्कयाल्
श्रेयत्तुविलञ्ञ निन् नाडितु वेल्म् काडाय्-
पोयतु कंडीलयो वेन्मषु वेन्तुन्नो ने ?¹

(हे परशुधारी क्या आप ने यह नहीं देखा है आपकी ऐश्वर्यपूर्ण भूमि बिलकुल कानन बन गयी है । यहाँ दिन प्रति दिन अनीति और अत्याचार बढती जा रही है ।) यहाँ देश प्रेमी कवि देश की अवनति से अतीव दुःखी हैं ।

---

1. सा:म छठा भाग- पृ. 7

"शिष्यनुं मकनुम्" में कवि का देश-प्रेम पराधीनता के प्रति विरोध के रूप में प्रतिफलित हुआ है । उनका परशुराम एक स्वतंत्रता संग्राम-सेनानायक की तरह अग्रसर होता है । गणपति के रोकने पर वह रुकता नहीं है । गणपति ने परशुराम को अपने हाथ में उठाकर घुमा फिराया । आगे परशुराम ने गणपति के पिता के दिए हुए परशु से उसके दाँत को काट डाला । यहाँ कवि कहते हैं कि भारत के पूर्वज किसी की दासता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे और वे किसी की धमकी पर रुकने वाले भी नहीं थे । यहाँ ब्रिटीश आधिपत्य के भारत में फैलने को पौरुष के साथ रोकने का आह्वान ही कवि इन पंक्तियों में देते हैं ।[1] यहाँ कवि का देश-प्रेम उद्बोधनात्मक है ।

"कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्" में कवि ने श्रीकृष्ण को अपने देश-प्रेम का प्रतीक बनाया है । भारत के अस्वातंत्र्य का मुकाबला करने केलिए कर्म धीर पौरुष के निर्माण का कार्य ही कवि ने किया है । पराधीनता रूपी कालिय का नाश करने केलिए कवि कृष्ण के रूप में गाँधी का समर्थन करते हैं । इससे कवि का गाँधी के प्रति श्रद्धा और देश भक्ति उभर आती है ।

"किळिक्कोंचल्" में भी कवि की स्वातंत्र्येच्छा उभर आई है । सीता के आज्ञानुसार भृत्य वहाँ आए हुए तोतों को पकडकर लाया । सीता ने उसे घर में लेकर खिलाने की कोशिश की तो उन्होंने कुछ खाए नहीं । तब कवि कहते हैं --

"बन्धुर काञ्चनक्कूट्टिलाणेंकिलुम्
बन्धनं बन्धनं तन्ने पारिल्"[2]

(सोने का सुन्दर पिंजडा होने पर भी पंछी केलिए वह बन्धन ही है ।) अर्थात्, सबको स्वतंत्रता ही सबसे कीमती चीज़ है । पराधीनता सबसे भयानक भी है । यहाँ भी कवि का देश-प्रेम व्यक्त हुआ है ।

### 3.9.3. जाति-व्यवस्था

"इन्द्रनुं मावलियुम्" में कवि ने पुराण के अनुसार महाबलि को नीतियुक्त

---

1. "वल्लत्तोळ् के पात्र" - उरूब - पृ. 75 2. सा:म:स:भा:पृ. 42

पात्र के रूप में चित्रित किया है । महाबलि ने अपनी धर्म नीति के कारण इन्द्र पद तक को प्राप्त किया । देवताओं को वह अच्छा नहीं लगा । उन्होंने बलि को इन्द्र पद से हटाने का कार्य करना शुरू किया । इसका कारण केवल जाति है । बलि असुर राजा है । इन्द्र के सवालों को उचित जवाब देकर कवि जाति-व्यवस्था की ओर तीखा व्यंग्य करते हैं ।

"मुद्टत्ते तुलसी" में भी कवि देवों और असुरों के बीच के झगडे के बारे में चर्चा करते हैं । शंखचूड भी महाबलि की तरह एक प्रबल और नीतिमान असुर राजा थे । उन्होंने भी अपने कर्मयोग से इन्द्र पदवी हासिल की । अब देवगण ने शिव और विष्णु की सहायता से शंखचूड को मार डाला । इस पर कवि कहते हैं --

"तुल्यरामोरच्छन्रे मक्कलेक्कूट्टित्तम्मिल्
तल्लिच्चु नडक्कट्टे "जाति" एन्नसु मन्निल्" । [1]

(एक ही पिता के पुत्रों को आपस में झगडा करवाता है , भूमि पर जाति नामक अनाचार " ) देव और असुर कश्यप के ही पुत्र हैं । मानव को मानवतावादी दृष्टिकोण से मात्र देखनेवाले कवि , जाति-व्यवस्था के कट्टर विरोधी हैं ।

इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् ने अपने पौराणिक आख्यानों में नवीन उद्भावनाएँ जोड़ करके और सामयिक समस्याओं का उद्घाटन करके , जनता को तत्कालीन परिस्थिति से अवगत कराके , उन्हें उद्बोधित करने का महान कार्य किया है । यहाँ भी कवि ने विष्णु , और शिव को मिलाकर जातीय एकता की समस्यापूर्ति करने का प्रयास किया है ।

3.10.

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की पौराणिक रचनाओं के प्रमुख प्रसंगों के विश्लेषण से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि दोनों कवियों ने अपनी विविध परिस्थितियों

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:तृ:भा:पृ. 115

में जीकर भी एक ही समय एक ही कार्य की सफलता केलिए एक ही रास्ते पर काम किया है । पौराणिक प्रसंगों को अपनी काव्य रचना केलिए चुनते समय दोनों कवि बहुत सचेत रहे हैं कि उनकी हरेक रचना किसी न किसी सामयिक समस्या के समाधान के पथ पर सफल निकले । गुप्तजी ने सारी महाभारत-कथा को स्वीकार करके उसे नवीन उद्भावनाओं के साथ "जयभारत" में प्रस्तुत किया है, तो वळ्ळत्तोळ् ने महाभारत के अनेक अप्रधान प्रसंगों को अपनी कल्पना के रंग में रंगाकर आधुनिक युग केलिए योग्य बनाया है । उसी प्रकार रामायण को गुप्तजी ने "साकेत" में समेट लिया तो वळ्ळत्तोळ् ने "दण्डकारण्य" आदि रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समस्याओं की ओर प्रकाश डाला है । अन्य पुराणों की ओर गुप्तजी से ज्यादा वळ्ळत्तोळ् आकृष्ट रहे, फिर भी दोनों का उद्देश्य एक ही रहा है - पराधीन भारत की स्वाधीनता ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् अपनी अपनी रचनाओं में नवीन उद्भावनाओं समावेश करने के साथ-साथ पुराने पात्रों को नया जीवन प्रदान करने में भी सफल निकले हैं । उन्होंने कई तिरस्कृत स्त्री और पुरुष पात्रों को नया जीवन दिया है और अनेक प्रमुख पात्रों को अधिक आदर्श धीर, कर्मनिष्ठ, मानी और मानवतावादी बना दिया है । जहाँ गुप्तजी ने उर्मिला, कैकेयी, सीता, हिडिंबा, राधा आदि स्त्री पात्रों को आधुनिक बनाकर प्रस्तुत किया है वहाँ वळ्ळत्तोळ् ने शकुन्तला, उषा, पार्वती, राधा, तुलसी आदि पौराणिक पात्रों को नये समाज की स्वतंत्र स्त्रियों की तरह चित्रित किया है । जहाँ गुप्तजी ने राम, युधिष्ठिर, कर्ण, नहुष, कृष्ण, बलराम आदि पुरुष पात्रों की सृष्टि करके भारत-माता की तत्कालीन मांग की पूर्ति करने का प्रयास किया है, वहाँ वळ्ळत्तोळ् ने परशुराम, अनिरुद्ध, विश्वामित्र, भगवान श्रीकृष्ण आदि पात्रों को उपस्थित करके नये [illegible] प्रयास किया है । गुप्तजी ने "द्वापर" में कंस को अंग्रेजी शासन का [illegible] कृष्ण को स्वतंत्रता आन्दोलन के नायक के रूप में चित्रित किया है तो वळ्ळत्तोळ् ने "कर्मभूमियुडे पिंचुकाल्" में कालियनाग को अंग्रेजी शासन का प्रतीक एवं कृष्ण को

स्वतंत्रता संग्राम के नायक रूप में चित्रित किया है । ये दोनों काव्य भागवत पुराण के आधार पर रचे गए हैं । दोनों कवियों ने भारतवर्ष को स्वतंत्र कराने केलिए कर्मयोगी श्रीकृष्ण को ही योग्य मान लिया है । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् ने आधुनिक युग में गाँधीजी को श्रीकृष्ण के प्रतिरूप, धर्म-संस्थापक, कर्मयोगी और भारत जनता के उद्धारक का स्थान दिया है । इस प्रकार दोनों कवि अपने समाज की समस्याओं के समाधान की ओर प्रवृत्त रहे । उन्होंने नारी जागरण , मानवता-वाद , जाति व्यवस्था का विरोध , पारिवारिक संबन्धों की पवित्रता विश्व-बन्धुत्व आदि की स्थापना केलिए अपनी रचनाओं को योग्य बनाया है । भारत के दो विभिन्न ध्रुवों में रहते हुए भी गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् तत्कालीन निर्जीव जनता को सजीव बना कर भारत-वर्ष की स्वाधीनता की ओर आद्यंत प्रवृत्त रहे । भारत माता का करुण क्रन्दन उन्होंने एक ही समय सुनकर पराधीनता से उन्हें मुक्त करने की कोशिश की है । अतः गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् को भारतीय संस्कृति के उन्नायक कवि कहना कभी असंगत नहीं होगा ।

++++++++++++++++

# चतुर्थ अध्याय

## मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् के काव्य में मानवतावाद का स्वरूप

# चतुर्थ अध्याय

## 4. मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् के काव्य में मानवतावाद का स्वरूप

### 4.1. मानवतावाद के प्रमुख तत्व

प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुसार समाज में समभावना की अनिवार्यता तथा स्वार्थत्याग, परार्थ सेवन आदि पर बल दिया गया है । जन-जन में फैली हुई ईर्ष्या, द्वेष आदि को दूर करके सभी को सुखी बनाने के कार्य पर भारतीय संस्कृति बल देती है । "सर्वे त्र सुखिनः सन्तु", "परोपकारार्थमिदं शरीरम्" आदि के रूप में इसी भावना को वाणी मिली है । मानवतावाद के प्रमुख तत्वों के रूप में अहिंसा, सत्य और नीति , कर्मण्यता, सर्वधर्म समन्वय, पारिवारिक धर्मों का पालन समाज सुधार , वर्णव्यवस्था का खण्डन, रूढियों एवं कुरीतियों का विरोध , युद्ध विरोध एवं विश्व बन्धुत्व की भावना आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है ।

आधुनिक युग के नवोत्थान ने मानवतावाद की पूजा एवं आराधना का नया मार्ग खोल दिया और विश्वभर में मानवता-प्रेम की धूम मच गई । इसका प्रभाव गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् में करीब एक ही तरीके से पडा है । दोनों कवियों की मानवतावादी विचारधारा प्राचीन भारतीय संस्कृति से अनिवार्य रूप में जुडी हुई है । उनके काव्य के अधिक पात्र मानवता के पक्षपाती हैं । दोनों के पौराणिक पात्र भी मानव के रूप में जन्म लेकर मानवता के पुनरुत्थान और स्थापना केलिए जिए और मरे हैं । दोनों कवि मानवता रूपी प्रगति केलिए प्राचीनता और नवीनता, दोनों का समन्वय करते हैं । पूर्वजों के मार्ग पर हम अवश्य चलें, किन्तु साथ ही हमें यह ध्यान रखना होगा कि कहीं उसपर चलते हुए हमारी गति अवरुद्ध न हो जावे, यही दोनों का मत रहा है । पूर्वजों से भी बढ़कर हमें काम करना है , क्योंकि आधुनिक परिस्थिति बिलकुल बदली हुई है । सामयिक सामाजिक, आर्थिक , धार्मिक आदि परिस्थितियों को अच्छी तरह समझकर पूर्वजों के मार्ग पर बल देते हुए इसमें नवीनता का निर्माण करना होगा - यही गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के मानवतवादी चिन्तन का परम तत्व है ।

## 4.2. मानवतावाद एवं गाँधीजी

गाँधीवाद को सार्वजनिक तौर पर मानवतावाद कहा जा सकता है । मानवतावाद सच्चे अर्थ में नवोत्थान एवं आधुनिक काल की देन है मानवतावाद संसार के समस्त मानव की उन्नति का पर्याय है । यही मानवतावाद भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र भी है । इसी मंत्र से पूर्ण रूप से अवगत होकर , सांस्कृतिक नवोत्थान के सूत्रधार गाँधीजी आधुनिक काल में मानवता की स्थापना की कोशिश करते रहे । उनकी विचारधारा को , आधुनिक काल में गाँधीवाद की संज्ञा दी गयी । गाँधीवाद जनता से समाज की समाज से देश की , देश से राष्ट्र की तथा राष्ट्र से विश्व की उन्नति चाहता है । यह व्यष्टिगत दृष्टि नहीं समष्टिगत दृष्टि है ।

गाँधीजी के पदार्पण के समय संपूर्ण विश्व पाश्चात्य सभ्यता रूपी अंधकूप में डूब गया था , जिसमें भौतिकता, बुद्धिवाद, स्वार्थ आदि तत्व प्रमुख थे । स्वाधीनता के मोह के रहते हुए भी अपनी शक्ति हीनता के कारण स्वयं गुलामी के पाश में आबद्ध कुछ देश-प्रेमी चक्कर काट रहे थे । भारत के सांस्कृतिक नवोत्थान ने पतित भारत की हीन दशा को दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था । लेकिन गाँधीजी ने सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति की हीनावस्था से उसका उद्धार करने का बीडा उठाया । उन्होंने पहले उस अवस्था का मूल कारण खोजा । पाश्चात्य शिक्षा ही उसका कारण मानी गयी । नई अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली ने सांस्कृतिक ग्रन्थों को त्यागकर वैज्ञानिक ग्रन्थों को प्रमुखता दी । अपने राष्ट्र की गरिमा को समझाने का महत्वपूर्ण कार्य गाँधीजी के मन में अधिकाधिक महसूस होने लगा । नई शिक्षा के कारण सजग भारतीय युवकों ने , अंग्रेज़ों की स्वार्थी और शोषण वृत्ति को देखकर उनसे विद्रोह करने केलिए महात्मा गाँधी का साथ दिया ।

गाँधीजी महान समन्वयकर्ता थे । उनका पहला प्रयत्न हिन्दू-मुसलमान एकता का था । समस्त संस्कृतियों में निहित अच्छाई को स्वीकार करने का उपदेश उन्होंने दिया । उनके मन में अंग्रेज़-भारतीय का भेद-भाव भी नहीं था । वे मानवीयता को प्रमुखता देनेवाले महान पुरुष थे । गाँधी का दर्शन वस्तुतः उस

भारत केलिए स्वीकार्य था , जिस भारत की उन्होंने कल्पना की थी । ध्यान देने की बात यह है कि गाँधीजी ने किसी नवीन दर्शन की नींव न डालकर भारतीय संस्कृति के अमर तत्वों को ही नव युग के परिप्रेक्ष्य में विश्व-मानवता के लिए प्रस्तुत किया है । उन्होंने चिरकाल से आच्छादित भारतीय संस्कृति के आवरण को हटाकर उसके स्वच्छ प्रेममय मानवी स्वरूप को फिर से मानव-मात्र के सम्मुख प्रस्तुत कर विश्व-भर को आशा का संदेश दिया है ।[1]

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् मानवतावाद के विभिन्न तत्वों को अपनी रचनाओं में प्रतिबिंबित करते हैं । अहिंसा, सत्य और नीति , मानवप्रेम, पारिवारिक संबन्ध , जातीय एकता , कर्मण्यता आदि तत्वों की अनिवार्यता के बारे में चर्चा करके दोनों कवि विश्वमानवता की ओर बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं ।

### 4.2.1. गुप्तजी के काव्य पर गाँधीजी का प्रभाव

गुप्तजी और उनके काव्यों में गाँधीजी और उनके तत्वों का गहरा प्रभाव पडा है । भारतीय संस्कृति के आधुनिक वाहक के रूप में गाँधीजी को समझकर संस्कृति के पुजारी कवि कहते हैं -" मेरा सूत्रधार गाँधी" । कवि उन्हें भारत के भाग्य गगन में उदित नवीन नक्षत्र समझकर उनकी मंगल कामना करते हैं ।[2] गाँधीजी को कवि स्थितप्रज्ञ, गुणवान एवं सभी के मार्गदर्शक समझते हैं । समस्त संसार के सुख चाहनेवाले गाँधीजी के बारे में गाँधीवादी कवि कहते हैं --

"घोर विषमता ने जगति में , जब जन जन को विद्ध किया
सौम्य समत्व योग तब तूने शुद्धात्मा से सिद्ध किया ।
कठिन परिस्थिति में भी हँसता तेरी सहज तरलता थी
स्थितप्रज्ञ तेरी प्रतिभा से विजड़ित तडित्तरलता थी ।
भावुक समझे थे जो तुमको वे भी भक्त हुए तेरे ,
विज्ञविपक्षी भी विश्वासी हो अनुरक्त हुए तेरे ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. विद्यानाथ गुप्त- "हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना"- पृ. 377
2. "अंजली और अर्घ्य"- पृ. 20
3. " " पृ. 26, 27

गाँधीजी के तत्वों से गुप्तजी खूब प्रभावित हैं । कवि गाँधीजी को सभी धर्मों के गुणों का संचित रूप मानते हैं । वे कृष्ण , बुद्ध, ईसा सबको गाँधीजी में ही पाते हैं --

कृष्ण, बुद्ध किंवा ईसा का मिलता कहाँ दरस हमको
तात, यहाँ तुझमें तीनों का मिला पुनीत परस हमको । [1]

यहाँ कवि गाँधीजी को भारत के "तात" समझते हैं , याने राष्ट्र-पिता । जन्म देनेवाला पिता अवश्य है , लेकिन गाँधीजी ने जन्म नहीं पुनर्जन्म दिया है । इसलिए उनकी महानता साधारण से बढ़कर है । अपने राष्ट्र को पुनः जीवन प्रदान करके , सारे विश्व की प्रगति चाहनेवाले गाँधीजी के जीवन के सम्मुख मानवतावादी कवि नम्र शिरस्क होते हैं । विश्व शान्ति के समर्थक कवि आखिर चाहते हैं --

देश देश में , अधिक नहीं यदि एक एक तुझ-सा जन हो ,
तो निश्चय अपनी अवनी पर न्यौछावर नन्दनवन हो । [2]

गुप्तजी की "भारत-भारती" के बाद की रचनाओं में गाँधीवादी विचार-धारा का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है । इसके प्रभाव से कवि के राष्ट्रवादी चिन्तन को विश्वव्यापी मानवतावादी आयाम मिला है । गाँधीवादी सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को कवि अपनी रचनाओं के बीज मंत्र के रूप में ग्रहण करते हैं । उनके काव्य में जहाँ कहीं भी किसानों की दयनीय स्थिति का चित्रण मिलता है या विषमता का विरोध मिलता है वह कार्लमार्क्स का नहीं , शुद्ध गाँधीवादी प्रभाव है । [3] इसी प्रभाव के कारण गाँधीवादी दर्शन में विषमता का विरोध, दलितों की सेवा, अछूतों का उद्धार जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों का परित्याग , समानता, स्वतंत्रता और निर्भयता का भाव मिलता है । गाँधीवादी तत्वों का आचरण तो कवि के जीवन में हुआ है । उसी प्रकार उन्हीं तत्वों का प्रतिपादन और प्रचार उनके काव्यों द्वारा हुआ है । इसकी चर्चा आगे मानवतावादी तत्वों के साथ-साथ हो रहा है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "अंजली और अर्घ्य"- पृ. 40
2. " " -पृ. 41
3. "गुप्तजी की युग चेतना"-दयाकृष्ण विजय- स्मारिका-1987 -पृ. 52

4.2.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य पर गाँधीजी का प्रभाव

भारत संस्कृति के नवीन वाहक गाँधीजी का प्रभाव गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् पर भी बडी मात्रा में पडा है । कवि गाँधीजी को युगान्तकारी महात्मा मानते हैं । कवि उनको अपना गुरुदेव समझकर कहते हैं - केवल एक बार दर्शन देकर कायरों को धीर, कठोर शब्दवालों को कृपासागर, कंजूसों को उदारहृदय, दुष्टों को सज्जन , अशुद्धों को परिशुद्ध, आलसियों को परिश्रमी बनाने की अपूर्व शक्ति रखनेवाले थे गाँधीजी । [1] गाँधीजी को सब कुछ मानने वाले कवि "मेरे गुरुवर" उनका पौरुष का साकार रूप बनाकर उपस्थित करते हैं --

"क्रिस्तुदेवन्टे परित्याग शीलवुं , साक्षाल्-
कृष्ण-नां भगवान्टे धर्मरक्षोपायवुम् ,
बुद्धन्टेयहिंसयुं शंकराचार्यस्ठे
बुद्धिशक्तियुं, रन्तिदेवन्टे दयावय्प्पुम्,
श्रीहरिश्चन्द्रन्नुळ्ळ सत्यवुं, मुहम्मदिन्
स्थैर्यवुमोराळिल् चेर्नोत्तुकाणणमेंकिल्" [2]

(ईसा की त्यागशीलता, कृष्ण भगवान का धर्मरक्षोपाय, बुद्ध की अहिंसा, शंकराचार्य की बुद्धि-शक्ति, रन्तिदेव की दया, हरिश्चन्द्र का सत्य और मुहम्मद का स्थैर्य का समावेश एक ही व्यक्ति में देखना हो तो ) मेरे गुरुवर गाँधीजी में ही देख सकते हैं । उनका भारतीय संस्कृति के पूर्तिकरण समझने के साथ साथ कवि यहाँ सर्व-धर्म समन्वय का ही प्रयास करते हैं । यही नहीं विश्वामित्र का तपोबल, मिथिलेश का कर्मयोग , भीष्म का धर्मयुद्ध , विदुर का नीति-उपदेश सब मिलकर गाँधीजी के व्यक्तित्व को तेजस्वी बनाया गया है । यहाँ कवि गाँधीजी को ईश्वर के समान समझ कर स्तुति करते हैं । यह प्रायोगिक तल के सुदूर सैद्धान्तिक

---

1. सा:मा:4। "मेरे गुरुवर" - पृ. 107-108
2. पृ. 107

तल तक सीमित है । सामयिक परिस्थिति में प्रायोगिक रहने की आवश्यकता अधिक थी ।

एन्टे गुरुनाथन" के प्रणयन के बाद कवि बराबर गाँधीजी के आदर्शों के प्रचार में प्रवृत्त रहे । "ओम शांति शांति", "चक्र गाथा", "पापमोचनम्", "नूल्पंपरम्", "अहिंसा" आदि में गाँधीजी के आदर्शों का वर्णन हुआ है । सन् 1931 में कवि का गाँधीजी से साक्षात्कार हुआ जब वे हरिजनोद्धार के दौरे केरल के वैक्कम मंदिर में आए थे । इसके आधार पर ही कवि ने "पापमोचनम्" की रचना की है । वळ्ळत्तोळ् के काव्यों में गाँधीजी के तत्वों का प्रतिपादन, आगे मानवतावादी तत्वों के साथ साथ हो रहा है ।

## 4.3. अहिंसा

मानवतावाद के मूल तत्वों में अहिंसा का स्थान सबसे ऊँचा है । भारतीय संस्कृति के अनुसार "अहिंसा परमोधर्मः "अहिंसा लक्षणो धर्मः आदि है । मनु के पाँच नीति धर्मों में अहिंसा को प्रथम स्थान दिया गया है ।[1] वैदिक काल से लेकर आज तक अहिंसा का यह सूत्र अटूट रहा है । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्यों में भी इस सूत्र की प्रतिष्ठा हुई है । इसका एक प्रमुख कारण गाँधीजी का प्रभाव भी है ।

गाँधीजी के भारत की संघर्ष-भूमि में पदार्पण के बाद सांस्कृतिक तत्वों की पुनः प्रतिष्ठा होने लगी । गाँधीजी अपने जीवन के इक्कीस साल आफ्रिका में जिए थे । उनकी अहिंसा का स्पष्ट उदाहरण इक्कीस साल की आफ्रिका की तपश्चर्या है । वहाँ उन्होंने मार खाई, जेल में पडे यंत्रणाएं सहीं फिर भी विपक्षी के प्रति वैर भावना नहीं थी धीरज नहीं खोया, हिम्मत नहीं छोडी ।

---

1. मनुस्मृति- पृ. 56।

क्रोध त्यागकर लडते ही रहे । अहिंसा भारत की सभ्यता का सार है । वह सत्य की बुनियाद है । गाँधीजी के अहिंसा सिद्धान्त का मूलाधार भगवद्गीता ही है । भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के निरुपद्रवी हथियार के रूप में उन्होंने अहिंसा का पहला प्रयोग किया । गाँधीजी के अनुसार सच्ची अहिंसा, प्रेम और सामर्थ्य से उन्नति हो सकती है । बिना अहिंसा के मनुष्य सत्य तक नहीं पहुँच सकता । गाँधीवादी गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् जहाँ तक हो सके इस तत्व का पालन करने का प्रयास करते हैं ।

4.3.1. गुप्तजी के काव्य में अहिंसा

अहिंसा तत्व को गुप्तजी बहुत बढ़िया मानते हैं । वे प्रतिपल हिंसा का विरोध करते हैं । उनका कहना है कि हिंसा पशुता का काम है । "पृथ्वी-पुत्र" में मातृभूमि की उक्ति है कि जो अहिंसा को सर्वथा त्यागकर युद्ध को प्रश्रय देते हैं उनका राज्य न तो स्थायी रहता है और न ही उनकी कहीं धाक होती है-

एक सदुद्देश्य कह के ही सब जूझे हैं,
किन्तु एक इति में जुडा हुआ है अन्त दूसरा ।
शासक का नाम रख त्रासक ही होगा तू
भय से जो बाध्य होंगे साध्य होंगे क्या कभी ।
अनुगत होंगे घात करने के पीछे से ।

पर जनता ने उन्हें नेता कहाँ माना है ।[1]

हिंसा मनुष्य को दानव बननेवाली नीति है । इसके विपरीत अहिंसा सर्वत्र ही मान्य होकर सब कहीं विजय प्राप्त करती है । दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाली हिंसा से अपनी ही सुख-शांति भंग हो जाती है । "राजा-प्रजा" में मानवतावादी गुप्तजी गाँधीवाद से सहमत होकर कहते हैं --

---

1. "पृथ्वी पुत्र" - पृ.62.

हिंसा केवल हिंस्र , घृणा है घृण्य बनाती ,
तुम पर के प्रिय , किन्तु न हो अपने घर घाती ।
देखा तुमने अभी अहिंसा जीत चुकी है । [1]

स्वदेश संगीत में भी गुप्तजी अहिंसा को महत्व देते हैं । कवि चेतावनी देते हैं कि शस्त्रों का प्रयोग किसी को मारने केलिए नहीं प्रयुक्त किया जाय --

हमारी असि न रुधिर रत हो ,
न कोई कभी हताहत हो । [2]

अस्वतंत्र भारत में रहकर मानवतावादी कवि मनुष्य के साथ पशुओं की भी स्वतंत्रता चाहते हैं । गो-वध के जघन्य पाप पर कवि की वाणी गाय के स्वर में मुखर हो उठती है --

हम पशु तथा तुम हो मनुज, पर योग्य का तुमको यहाँ ?
हमने तुम्हें माँ की तरह है दूध पीने को दिया
देकर कसाई को तुमने हमारा वध किया । [3]

अहिंसावादी गुप्तजी "भारत-भारती" को "गोवध" में हिंसा का पूर्ण रूप से विरोध करते हैं । गाँधीवादी कवि "जय-भारत" के "वनमृगी" प्रसंग में भी अहिंसा की स्थापना करने का भरसक प्रयास करते हैं । वहाँ वनमृगी के बच्चे दिन-प्रति-दिन मारे जाते हैं । इस स्थिति से अतीव दुःखी होकर वनमृगी अपने बचे हुए अकेले शिशु को भी युधिष्ठिर के पैरों पर अर्पण करने जाती है । युधिष्ठिर और उनके भाई मांसाहार त्याग देते हैं । [4] यहाँ कवि आमिष भोजन का विरोध

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "राजा-प्रजा-" पृ. 33
2. स्वदेश संगीत- पृ. 84
3. भारत-भारती- अतीत खण्ड- पद-63
4. जयभारत- पृ. 222

करके अहिंसा की स्थापना की ओर प्रवृत्त रहते हैं । यहाँ गाँधीजी के उपासक गुप्तजी के युधिष्ठिर पर सामयिक प्रभाव अवश्य पडा है । गाँधीजी की तरह अहिंसा परमो धर्मः माननेवाले कवि अहिंसा को अपने जीवन का ही धर्म बना देते हैं । "अजित" में कही गयी "स्वयं अहिंसा धर्म मानता हूँ मैं दादा" में कवि की आत्मनिर्भर उक्ति ही मिलती है । हमारी असि रुधिररत हो न कोई कहीं हताहत हो" माननेवाले गाँधीवादी कवि, मानव प्रगति के अवरोधक तत्व हत्या रक्तपात आदि का घोर विरोध करके सांस्कृतिक स्तर पर इनकी आलोचना करते हैं । "अनघ" में गाँधीजी की अहिंसात्मक वृत्ति का अक्षरशः अनुकरण मघ द्वारा कराया है ।[1] "अनघ" में अन्यत्र कहा गया है --

न तन सेवा न मन सेवा , न जीवन और धन सेवा
मुझे हैं इष्ट जन सेवा , सदा सच्ची भुवन सेवा ।[2]

यही भुवन सेवा गाँधीजी के स्वप्न का साक्षात्कार है । गाँधीजी की छत्रछाया में रहकर गुप्तजी अहिंसा तत्व की स्थापना की कोशिश करते हैं । "अंजलि - और अर्ध्य" में कवि दावा करते हैं --

तेरी अटल अहिंसा ने पर शासन का आखेट किया ,
उसे यही कहना पडता है क्या कुत्तों को भेंट किया ।[3]

यहाँ कवि अहिंसा पर बल देकर गाँधीजी की तरह भारतवर्ष की रक्षा की कामना करते हैं । अपनी भलाई केलिए दूसरों की हत्या करना कभी भी उनके अभीष्ट की बात नहीं है । यहाँ आर्षभारतीय आदर्शों पर अटूट विश्वास रखते हुए गुप्तजी एक शांतिपूर्ण राष्ट्र की स्थापना पर बल देते हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "अनघ"- पृ. 63-64
2. "अनघ" - पृ. 95
3. "अंजली और अर्ध्य" - पृ. 15

4.3.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में अहिंसा

वळ्ळत्तोळ् की साहित्य मंजरियों एवं अन्य रचनाओं में इस मानवतावादी एवं गाँधीवादी तत्व का सबल प्रतिपादन हुआ है । साहित्यमंजरी के पहले भाग की पहली कविता "मातृवन्दनम्" में कवि कहते हैं -- हमारे पूर्वज तलवार के स्थान पर अपने अहिंसापरक तत्वों से ही शत्रुओं पर विजय हासिल करते थे । उनका उस लहू का एक भी कण अबके भारत-वासियों के नस में बचा हुआ है तो हमें भी उनके दिखाए हुए रास्ते से चलना होगा ।[1] तभी मानव की उन्नति एवं मानवता की रक्षा संभव है । साहित्य मंजरी के पहले भाग की चौथी कविता "ओररिप्राव" (एक कबूतर) में कहा गया है कि संसार में मानव एक टुकडे भूमि की प्राप्ति केलिए हज़ारों रक्त समुद्रों की सृष्टि करते हैं ।[2] यहाँ कवि हिंसा के प्रति घोर व्यंग्य करते हैं ।

साहित्य मंजरी के दूसरे भाग की दूसरी कविता "कोषि" में कवि भद्रकाली आदि देवियों की प्रीति केलिए किए जानेवाली पशुबलि की ओर व्यंग्य करते हैं । मानव भी अपने भोजन के रूप में अनगिनत मुर्गियों की हत्या करता है । "साहित्य मंजरी" के तीसरे भाग की बारहवीं कविता "वेडिकोण्ड पक्षी" में भी मानवतावादी कवि अहिंसा तत्व पर अतीव ज़ोर देते हैं । एक शिकारी उडते हुए पंछी को गोली मारता है । वह घायल होकर तडप-तडप कर भूमि पर गिर जाता है । यह दृश्य देखकर गाँधीवादी कवि रो पडते हैं --

> सिद्धार्थनेप्पेट्ट धरित्रितन्टे यड्.कत्तिलेयूक्काक्किळि वन्नुवीष्के ,
> शिरस्सु चायुं चिल पुल्लुकळ्क्कड्. डिट्टिट्टु वीणू तुहिनोदडाष्पम्" ।[3]

(सिद्धार्थ को जन्म देनेवाली पृथ्वी की गोदी में उस पक्षी के गिरते समय , कई तृणों तक के सिर झुक गये और उनसे हिमकण रूपी आँसू भी फूट पडे ।) सिद्धार्थ

---

1. सा:मा: पहला भाग-पृ. 6
2. " " पृ. 25
3. तीसरा भागपृ. 91-92

वे जगत्गुरु हैं , जो "अहिंसा परमो धर्मः" को मानते हैं । लेकिन यहाँ के मानव हिंसावृत्ति को भूल नहीं पाते । वे अपने शरीर को मज़बूत बनाने केलिए दूसरों के शरीर को नष्ट करते हैं । उस शिकारी से कवि करुण स्वरों में कहते हैं - "हे क्रूर शिकारी तेरी एक गोली ने एक परिवार को नष्ट कर दिया है । [1] उनके एकमात्र सहारे को तू ने शिकार बना दिया । यहाँ कवि आदिकाव्य "मानिषाद" के बारे में हमें सचेत करते हैं । आगे कवि व्यंग्य करते हैं तू इन छोटे छोटे पक्षियों की हत्या क्यों करता है । अगर तुझ में हिम्मत है तो तेरी बंदूक की गोली व्याघ्रों की ओर चलाया कर । [2] यहाँ कवि भारत वासियों को अपने आपसी झगडे को भूल कर , सब मिल कर विदेशी शासन रूपी व्याघ्र का नाश करने की ओर इशारा करते हैं ।

भारत भूमि में होनेवाली हिंसापूर्वक वृत्तियों को देखकर कवि आत्म-विभोर हो जाते हैं । वे लोकांबा से पूछते हैं --

> "कण्डीलयो देवी जगत्सवित्रि, निन्पारिलेद्दुर्न्नयन्निनपातम् ?
> पादङ्.ङ.ळतन् प्राणमरुत्तुवेपं पापप्रभुक्कळिक्किह पङ्.कवीशान् ।" [3]

§ हे जगदंबे , तुमने देखी नहीं अपने जगत की कुरीतियाँ । अमीरों के सुख केलिये यहाँ गरीबों का सर्वनाश हो रहा है । §

यहाँ कवि दावा करते हैं कि मानवता की स्थापना केलिए अहिंसा पर बल देना अनिवार्य है , यहाँ गाँधी दर्शन का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है । "नां स्वतंत्र्यमडयावू" §हम स्वतन्त्र बनें § में कवि श्रीबुद्ध के तत्वों की महिमा बताते हुए अहिंसा को परमप्रधान स्थान देते हैं । वे कहते हैं "अहिंसापरधर्म्म-मखिलागम मर्म्मम्" [4] §अहिंसा ही उत्कृष्ट धर्म एवं सभी शास्त्रों का मर्म है । §

---

1. सा:म:तीसरा-भाग- पृ. 93
2. पृ. 93
3. पृ. 93
4. पाँचवाँ भाग- पृ. 3

"कर्षक जीवितम्" में कवि गो-रक्षा की ओर प्रकाश डालते हैं । यहाँ कवि भारतोर्वी को अहिंसा धर्म की कर्म भूमि मानते हैं ।[1] उस धर्म की रक्षा केलिए हम-भारतवासियों में हिम्मत की आवश्यकता है । साहित्य मंजरी सातवें भाग की तीसरी कविता "नम्मुडे मस्पडि" में भी हिंसा को भारत का धर्म माना गया है । "पैशाचयज्ञम्" {पैशाचयज्ञ} में कवि केरल की जन्तुबलि की ओर प्रश्न चिह्न लगाते हैं । देवी-देवताओं के नाम पर यहाँ मानव अपनी इच्छा के अनुसार जीवियों की हत्या करते हैं । ऐसा करके मानव देवियों को राक्षसी बनाते हैं । यहाँ कवि मारनेवालों को पौराणिक मत -" उपदेष्टा वधं हन्ता कर्त्ता धर्त्ता च विक्रयी उत्सर्ग कर्ता जीवानां , सर्वेषां नरकं भवेत्"- के अनुसार चेतावनी देते हैं कि अपने पापों का कर्म आप को भोगना पडेगा ।[2] आगे कवि याद दिलाते हैं कि हमारे पूर्वज , मन से शरीर से वचन से और कर्म से अहिंसा के सेवक थे । उनकी इस भूमि में अब हिंसा ही हिंसा तांडवनृत्य कर रही है । इससे अस्वस्थ होकर कवि देवी भद्रकाली से प्रार्थना करते हैं --

> "भद्रकाली भयापहे, कैतोषां | पुत्रवत्सले , लोकैक मातावे
> इन्नुतन्ने निन्मक्कळी मौढ्यत्तिल्निन्नुकेरान् कनिवल्लेणमे ।[3]

{भद्रकाली, भयापहे, पुत्रवत्सले, जगदंबे तुमको प्रणाम् । तुम आज ही अपने पुत्रों को इस मूर्खता से बचाने की कृपा करो } यहाँ कवि मांस भोजन को भी नीच कार्य मानते हैं । कवि का तात्पर्य है कि यहाँ के मानव की रक्षा ईश्वर ही कर सकता है । यानी स्थिति उतनी गंभीर हो गयी है । "नित्यकन्यका" में कवि गो-वध के खिलाफ आवाज़ उठाते हुए अहिंसा की रक्षा करते हैं । यहाँ कोई कृषक अपनी बेटी की शादी के एक दिन पहले पैसे की कमी के कारण अपनी प्यारी गाय को बेचता है । बाद में जब उसे याद आयी कि कल वह गाय मारी जाएगी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:मा: छठा भाग- पृ. 7।
2. ! सातवाँ भाग- पृ. 72
3. -पृ. 73

तो वह शीघ्र ही उस कसाई के पास जाकर अपनी गाय को वापस माँगता है । उसको ज़्यादा पैसा देना पडा फिर भी वह इसलिए संतुष्ट हुआ कि अपनी गाय की अकाल मृत्यु नहीं हुई है । आगे वह कहता है --

कल्याणं नडत्तान् काशिल्लेंकिल् वेण्डा , नित्य
कन्यकयायिरुन्नुकोळ्ळट्टे, तन् पोन्नुमकळ् । [1]

§शादी केलिए पैसा नहीं है तो नहीं चाहिए । मेरी प्यारी बेटी को कन्यका बनकर ही रहने दो । § यहाँ वह गरीब किसान अपनी इकलौती बेटी के जीवन से ही ज़्यादा एक गाय की जान को कीमती समझता है । यहाँ कवि सभी प्राणियों को एक ही नज़र से देखने और प्यार करने के पक्ष में हैं । कवि का यह गाँधीवादी विचार अवश्य ही उद्बोधनात्मक है ।

"मणल्काट्टु" §रेतीली हवा§ में कवि नर बलि को हमेशा केलिए अंत करने का प्रयास करके अहिंसा की स्थापना की ओर बल देते हैं । एक बार चीनी यात्री हुएनसाङ् गंगा के तटवर्ती इलाके में आया । वहाँ के रहनेवाले , नए आदमी को अपनी देवी के बलिपीठ का शिकार बनाना चाहते हैं । वह बेचारा बुद्ध-भिक्षु ईश्वर से प्रार्थना करने के अलावा कुछ भी नहीं कर सका । बलि का समय हुआ । वे सिर काटने पर उतारू हुए । सहसा एक आंधी आयी । उन दुष्टों की आँखें धूलि से भर गई । [2] हुएनसाङ् का प्राणी भी बच गया । अब वे लोग नवागत की शक्ति और आत्म विश्वास से प्रभावित होकर अहिंसाव्रती बन गए । यहाँ कवि अहिंसा की स्थापना के साथ-साथ सामाजिक रूढ़ियों का भी घोर विरोध करते हैं ।

"मिथ्याभिमान" में कवि मांस केलिए ले जानेवाले बकरों को देखकर अतीव दुःखी हो जाते हैं । यहाँ भी कवि बुद्ध-भगवान के अहिंसा तत्व पर बल देते हैं । इस स्थिति को अत्यंत दयनीय समझनेवाले कवि उन जन्तुओं को ले जाने वाले मूर्ख मानव से पूछते हैं ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:मा:छठा भाग- पृ. 52
2. " आठवाँ भाग- पृ. 63

मिथ्य निन्नभिमानं मृगत्तेक्काळ् -
बुद्धियेरियोनाणो , मनुष्या नी ! [1]

{हे मानव ! तुम्हारा अभिमान मिथ्या है, क्या तुम पशुओं से बुद्धिमान हो !}
"वीरश्रृंखला" नामक कविता संग्रह की चौथी कविता "अहिंसा" में कवि हिंसा के विरुद्ध शोर मचाते हैं । एक उग्रवादी युवती एक उन्नत अफ़सर को गोली मारती है । इसके आधार पर ही इस कविता की रचना हुई है । यहाँ कवि कहते हैं कि मानव को हत्या करने का कोई अधिकार नहीं है । हमारे पूर्वज अहिंसा के पुजारी रहे हैं । उसी प्रकार महात्मा गाँधी भी अहिंसा की स्थापना के पक्ष में थे । लेकिन आज उस धर्माधिष्ठित भूमि के लोग आपस में लड मरते हैं । [2]
स्वतंत्रता संग्राम में गाँधीजी ने सबसे शक्तिशाली शस्त्र के रूप में अहिंसा का प्रयोग किया था । वळ्ळत्तोळ् इससे प्रभावित होकर "अहिंसा" की रचना करके गाँधी-दर्शन का प्रचार का प्रयास करते रहे । यहाँ हिंसा का विरोध करते हुए कवि लिखते हैं -" निरायुधप्पोराणिह धीरधर्मम् " {यहाँ निरायुध युद्ध ही धीर धर्म है}
यहाँ कवि अहिंसा को सर्वसमन्वयकारी एवं सर्व कल्याणकारी मानवतावादी तत्व के तौर पर स्वीकार करते हैं । जहाँ-तहाँ कवि अहिंसा की स्थापना की चर्चा करते हैं , वहाँ वे बुद्ध देव का भी स्मरण करते हैं , साथ ही साथ भारत के पूर्वजों के अहिंसा-प्रेम का भी प्रतिपादन करते हैं । इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् जहाँ तक हो सके , गाँधीवाद के मूल मंत्र रूपी अहिंसा की स्थापना का प्रयास करते हैं ।

वळ्ळत्तोल अहिंसातत्व की व्यापक चर्चा करते हैं ।

## 4.4. सत्य और नीति

सत्य एवं नीति का भारतीय संस्कृति में महनीय स्थान है । "सत्यमेव - जयते", "सत्यं वद धर्मं चर " आदि तत्व प्राचीन काल से चलते आ रहे हैं । सत्य ही संसार के अस्तित्व का आधार तत्व है ।

---

1. सा:म: नौवाँ भाग- पृ. 89
2. वीरश्रृंखला- पृ. 26-27

गाँधीजी सत्यान्वेषी थे । उनके लिए अहिंसा साधन और सत्य साध्य था । गाँधीजी ने कहा है - "सत्य मेरा सर्वोत्तम धर्म है , जिसमें सारे धर्म समा जाते हैं । सत्य माने केवल वाणी का सत्य नहीं बल्कि विचार में भी सत्य । मिश्रित सत्य नहीं पर वह नित्य शुद्ध, सनातन और अपरिवर्तनशील सत्य , जो ईश्वर है ।[1] गाँधीजी ने संपूर्ण विश्व-यंत्र को अपनी उंगली के संकेत के अनुसार चलाने केलिए सत्य का प्रयोग किया । उस सत्य के विनम्र सेवक[2] के पंथी गुप्तजी और वळ्ळत्तोल भी सत्य की चिर प्रतिष्ठा करने का नीतियुक्त प्रयास करते हैं । गाँधीजी नीति को धर्म का आवश्यक अंग मानते थे । उनके अनुसार नीति रूपी नींव ढूँढ जाय तो धर्म की इमारत भी ढ़ह जाएगी । यश या वैयक्तिक स्वार्थ केलिए नैतिक तत्वों का आचरण करनेवाला धार्मिक नहीं हैं ।

4.4.1. गुप्तजी के काव्य में सत्य और नीति

सत्य और नीति की स्थापना केलिए शिष्टाचार एवं लोक-मर्यादा का पालन करना सर्वथा अपेक्षित है । "स्वदेश संगीत" में गुप्तजी इस विचारधारा का प्रतिपादन करते हुए , शुद्ध आचार-विचार को लोक मंगल का आधार मानते हैं --

"शुद्धाचार विचार चाहिए और सत्य व्यवहार,
धारण करो साधुता लेगा पद रज तक संसार ।

"साकेत" में भी कवि सत्य एवं नीति की स्थापना करने का प्रयास करते हैं । साकेत एक मंगल काव्य होने के नाते अन्य मानवतावादी आदर्शों के समान सत्य और नीति परक आदर्शों की भी प्रतिष्ठा करता है । काव्यांत में उर्मिला सेना को लेकर रणभूमि की ओर जाती है । तब वह शत्रुघ्न और अपने साथियों को उद्बोधन देती है --

गरज उठी वह -" नहीं, नहीं, पापी का सोना,
यहाँ न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना ।

---

1. "सर्वोदय दर्शन"- दादाधर्माधिकारी- पृ. 193
2. "संस्कृति के चार अध्याय"- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 532

धीरो, धन को आज ध्यान में भी मत लाओ ,
जाते हो तो मान हेतु ही तुम सब जाओ ।
सावधान ! वह अधम-धान्य-सा धन मत छूना ,
तुम्हें तुम्हारी मातृभूमि ही देगी दूना । [1]

"साकेत" में मंगलाचरण के तुरन्त बाद कवि नीतिपरक बातों का उल्लेख करते हैं । "नीतियों के साथ रहती रीतियाँ , पूर्ण हैं राजा-प्रजा की प्रीतियाँ "- । "साकेत" के द्वितीय सर्ग में कवि सत्य के विश्वव्यापी गुण के बारे में उल्लेख करते है । कैकेयी के , दो वरदान पूछने पर राजा दशरथ , उसे वरदान देने की ओर संकेत करते हुए कहते हैं --

"सत्य से ही स्थिर है संसार ,
सत्य ही सब धर्मों का सार ,
राज्य ही नहीं, प्राण-परिवार,
सत्य पर सकता हूँ सब वार । [2]

भारतवर्ष के पूर्वजों के आदर्शों की चर्चा करते हुए गाँधीवादी कवि सत्य-रक्षण की ओर प्रकाश डालते हैं --

"आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन-भक्षण केलिए
जो बिक गए चाण्डाल के घर सत्य-रक्षण केलिए । [3]

"अंजलि और अर्ध्य" में कवि गाँधीजी को संबोधित करते हुए कहते हैं , "सत्य उठा जाता था , तू ही आग्रह कर लौटा लाया" तू ने विचारों और आचारों में सत्य को अपनाया था । गाँधीवादी कवि गाँधीजी के सत्य एवं अहिंसा धर्मों से प्रभावित थे । गाँधीजी के इस दर्शन के समर्थक कवि कहते हैं ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत"- 12-सर्ग- पृ. 474
2. "साकेत"- द्वितीय सर्ग- पृ. 64
3. "भारत-भारती"- अतीत खण्ड-पृ. 34

"संशय से शंकित हम सब ने पाया तुझ से शुभ संदेश -
सत्य-अहिंसा को अपनाओ , निर्भय हो जाओ सब देश " [1]

इस प्रकार मानवतावादी कवि यहाँ गाँधीजी के समान सत्य और नीति की प्रतिष्ठा से विश्व-कल्याण की आशा करते हैं ।

4.4.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में सत्य और नीति

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी सत्य, धर्म, नीति आदि की स्थापना का स्तुत्य प्रयास करते हैं । "साहित्य-मंजरियों में इसका प्रतिपादन स्पष्ट रूप में हुआ है । साहित्यमंजरी के पहले भाग की "मातृभूमियोड्" में कवि हमारे पूर्वजों की आदर्शवादिता के बारे में बताते हैं --

"सत्यधर्मत्तेस्संरक्षियक्कुवान् सर्वस्ववुम्
निस्तर्कं वेडिकेन्नतायवर्क्के शीलम्" । [2]

(सत्य रूपी धर्म की रक्षा केलिए अपना सर्वस्व ही निस्तर्क त्यागना उनकी रीति थी । ) यहाँ कवि समकालीन भारतीय जनता को भी उसी तरह सत्य एवं नीति का पालन करने का उद्बोधन देते हैं । "ओरु युवाविन्टे आत्मसंयमनम्" नामक कविता में भी सत्य एवं नीति की ओर कवि ज़ोर देते हैं । इस कविता में एक विवाहित युवक अपने घर का रास्ता खोकर कहीं पहुँच जाता है । वहाँ वरुथिनी नामक एक अप्सरा से उसका मिलन होता है । वरुथिनी उस पुरुष के सौन्दर्य पर आकृष्ट होकर उसको चाहती है और उसको आलिंगन करने जाती है । तब व धर्मात्मा पुरुष कहता है --

"दुष्टे, तोडायकेन्ने , - यन्य स्त्री स्पर्शनमिष्टप्पेडुन्नवरल्ल ञ्ङ्ङळ्"

(दुष्टे, मुझे छुओ मत , "हम" परस्त्री स्पर्श सहनेवाले नहीं हैं )

यहाँ "हम" भारत के नीतिमान पुरुषों का प्रतिनिधित्व करता है ।

---

1. "अंजली और अर्घ्य"- पृ. 42
2. सा:म:पहला भाग-पृ. 44

"सत्यगाथा" में कवि सत्य को संसार की प्रगति का दिया मानते हैं । यहाँ कवि "सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्" के पौराणिक आदर्श के आधार पर ही सत्य की प्रतिष्ठा करते हैं । यहाँ कवि सभी प्राकृतिक तथ्यों को सत्य का प्रतिनिधि मानते हैं ।[1] यही सत्य-प्रकाश संसार के अंधकार को दूर करने में सफल साबित हो जाता है । कवि सत्यदेवी से प्रार्थना करते हैं कि हम मानवों को सन्मार्ग का दर्शन दिलाओ । तुम्हारे सत्य प्रकाश से ही संसार चमक सकता है ।[2] गाँधीजी भी इसी सत्य का अन्वेषण करते रहे । गाँधीजी को अपना सर्वस्व माननेवाले कवि घोषणा करते हैं कि सत्य ही सच्चा धर्म और वही नीति है । "साहित्य-मंजरी" के दूसरे भाग की पहली कविता -" विजयिप्पताका" में भी कवि सत्य को लोक मंगलकारी तत्व मानते हैं । आगे "ओरु कृष्णप्परुन्तिनोडु" में कवि , सत्यवादी एवं नीति-मान की पोशाक पहननेवालों की ओर तीखा व्यंग्य करते हैं :-

"पालुक्कद्टिक्ककत्तिवर काकोलमउरूक्कुन्नू
तेयुक्कुन्नू तमस्सिन्मेल् सात्विकच्चायमिवर"[3]

(दूध में ये विष घोलते हैं । बुरी बातों को ये सत्व गुण के रंग में रंगाते हैं ) अर्थात् देखने में ये सज्जन लगते हैं , लेकिन प्रवृत्ति में पूर्ण रूप से ये असन्मार्गी हैं । ये लोग अपने आपको पूर्वजों की तरह आचरण करनेवाले भी समझते हैं । यहाँ कवि का व्यंग्य सामयिक समाज पर है । "पिन्मारुविन्" में कवि अंग्रेज़ी शासन की अनीतियों की ओर विलाप करते हैं । कवि पूछते हैं -" क्या दूसरों पर बिना किसी कारण के विरोध करना ही यूरोप का धर्म है ? इससे भी अतृप्त सत्यवादी कवि कहते हैं --

अन्यायं न्यायमायत्तीरिल्लार चेय्तालुम्
वेण्णिलावाकुमो वेनल्वेयिल् ?[4]

(चाहे कोई भी करे, अन्याय न्याय नहीं हो सकता । क्या गर्मियों की धूप सुन्दर चांदनी बन सकती है ? )
यहाँ कवि अनीति की ओर व्यंग्य करते हैं । यह सामयिक प्रभाव के कारण ही हुआ है ।

---

1. सा:मा:द्वितीय भाग- पृ. 2
2. " पृ. 6
3. साम: चतुर्थ भाग- पृ. 28
4. नवाँ भाग- पृ. 21

"विषुक्कणी" में कवि आत्माभिमान से कहते हैं कि हम शंकराचार्य की जन्मभूमि की जनता हैं और हम सत्य रूपी शाश्वत ब्रह्मश्री से प्रबुद्ध हैं । [1] यहाँ कवि सत्य की महिमा पर चार-चाँद लगाते हैं । गाँधीजी की सत्यवादिता से प्रभावित होकर कवि उनकी तुलना हरिश्चन्द्र से करते हैं । गुप्तजी ने भी उनकी तुलना हरिश्चन्द्र से किया है । "ओणम" में कवि अपने गुरु की सत्यवान महाबलि से तुलना करते हैं । [2] गाँधी दर्शन के अनुवर्ती कवि , उसे मानवता की आधार शिला के रूप में समाज के सम्मुख उपस्थित करने का प्रयास करते हैं ।

4.5. कर्मण्यता

कर्मण्यता त्याग का साधन है । इसलिए भारतीय संस्कृति में इसका बडा महत्व है । आर्ष संस्कृति के अनुसार मनुष्य का सच्चा आनन्द फलेच्छा में नहीं है, निष्काम कर्म करने में है । गीता में इसकी अभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर मिलती है । [3] भारतीय संस्कृति में चित्रित अवतारवाद में भी कर्मण्यता की भावना निहित दिखाई पडती है । पौराणिक संस्कृति के उपासक गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ्, कर्मक्षेत्र को सब कुछ मानते हैं ।

गाँधीजी का जीवन ही कर्मण्यता का उत्तम उदाहरण है । संपूर्ण गाँधी-विचारधारा कर्म और व्यवहार प्रधान है । यही कारण है कि गाँधीजी ने देश में रचनात्मक संस्थाओं की समुचित सृष्टि की । उनके कर्मयोग का द्योतक, उनका जीवन ही है । उपवास, सत्याग्रह आदि उनके निष्काम कर्म के कुछ अंश मात्र हैं । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् गाँधीजी के कर्मयोग से उत्तेजित हो कर अपने काव्यों के ज़रिए मानव कल्याण केलिए कर्मण्यता की अनिवार्यता को साबित करने का प्रयास करते हैं ।

---

1. "विषुक्कणी- पृ. 9
2. सा:म: 7 सर्ग- पृ. 3
3. अनाश्रित: कर्मफलं कार्य कर्म करोति य: । स सन्यासी च योगी च न निर-ग्निर्नचाक्रिय: -
   कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते - संङ्. गोस्त्व कर्मणि । - गीता, अ. 6. श्लो. 1, वही, अ. 2. श्लो4

## 4.5.1. गुप्तजी के काव्य में निष्काम कर्म

गुप्तजी के काव्य मूलत: जीवन की कर्मण्यता पर अधिष्ठित है । वे ध्येय की पराकाष्ठा को महत्वपूर्ण मानते हैं, जिसमें कर्म की महत्ता का प्रतिपादन ही मुख्य रहता है । गाँधीजी के कर्म-पथ के अटल विश्वासी कवि भारतवासियों को कर्मक्षेत्र की ओर आमंत्रित करते हैं । उनके महाकाव्य कर्म धीरों की कथा है । कर्मयोग, कर्मफल आदि का "गीता" के अनुसार "साकेत" में वर्णन हुआ है । "साकेत" के द्वादश सर्ग की रण सज्जा के सिलसिले में सभी साकेत वासी रण क्षेत्र में जाने केलिए तैयार होते हैं । पत्नियाँ अपने पतियों को, माताएँ अपने पुत्रों को रण क्षेत्र में जाने केलिए प्रोत्साहन देती हैं । ऐसा कहके मार्ग दर्शन दिलानेवाले गाँधीवादी कर्मनिष्ठ कवि सब को उद्बोधन देते हैं --"जाओ, अपने राम-राज्य की आन बढ़ाओ, वीर-वंश की बान, देश का मान बढ़ाओ ।[1] "कामना को छोडकर ही कर्म है "- इससे कर्मफल त्याग स्पष्ट हुआ है । कर्मयोग के प्रति गाँधीजी का भी यही विचार रहा है । गीता के अनुसार ईश्वर के अवतार का मुख्य लक्ष्य कर्मक्षेत्र में प्रवेश करके सज्जनों का परित्राण करना है ।[1a] गुप्तजी के राम भी इसीलिए भू पर अवतरित हुए हैं ।[2] यहाँ कवि उद्बोधन का कार्य करते हैं । "हिन्दू" में कवि संकेत करते हैं "पालें हम सब निज कर्तव्य भरा इसी में भव का भव्य । बिना कर्तव्य किए भाग्य भी साथ नहीं देता - "कर्म-तेल बिना विधि दीप जल सकता नहीं" । दु:ख हो या सुख, सभी परिस्थितियों में कर्म करना चाहिए --

> कर्तव्य करना चाहिए, होगी न क्या प्रभु की दया
> सुख दु:ख कुछ हो एक सा ही सब समय किसका गया ।[3]

---

1a. "गीता"-अ. 4. श्लोक-8

1. "साकेत" -द्वादश सर्ग- पृ. 465

2. "साकेत"-पृ. 234

3. 'भारत-भारती'- पृ. 185

"पत्रावली" में प्रतापसिंह की उक्ति है कि कर्तव्य से किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होना । [1] "अनघ" में मघ कहता है ----

> कायर हो कर्तव्य कठिन यदि
> किसी युक्ति से टाली । [2]

यहाँ कवि कायर को कर्मोन्मुख बनाने का प्रयास करते हैं । "मंगलघट" में मानवतावादी कवि का संदेश है कि मनसा वाचा कर्मणा कर्तव्य पालन ही सर्वश्रेष्ठ है, जो गाँधीवादी चिंतन का महत्वपूर्ण तत्व है

> जियो कर्म केलिए जगत में और धर्म केलिए मरो ।
> मन सेवाणी से कर्मों से, आधि व्याधि उपाधि हरो । [3]

"हिन्दू" में कवि कहते हैं कि भाग्य की चिंता छोड निष्काम कर्म करना चाहिए । गुरुकुल में गुरुगोविन्द सिंह भी यही कहते हैं -- विधि चाहे अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल किन्तु कर्तव्य पथ पर अडिग रहना चाहिए । [5] चन्द्रहास की उक्ति है कि हर दिन "कर्मक्षेत्र" की ओर बढ़ते ही रहना और धर्म का पालन करते ही रहना उचित है "---

> "कर्म क्षेत्र कभी संकुचित न हो विस्तीर्ण होता रहे,
> कर्मी कर्षक धर्म बीज उसमें सोत्साह बोता रहे । [6]

स्वार्थों को छोड़कर निष्काम कर्म करना ही मानवता की स्थापना के लिए उचित है । "साकेत" में लक्ष्मण कहते हैं -" कामना को छोडकर ही कर्म है " । "गुरुकुल" में गुरु हरराय से कहलाया गया है -"मुक्ति पाने में होंगे केवल अपने कर्म सहाय" । कर्तव्य का पथ अतीव कठिन होता है । इसकेलिए प्रेम तक की बलि दे देनी पडती है । यह बात "तिलोत्तमा" में स्पष्ट हुई है --

---

1. "पत्रावली"- प्रताप सिंह का पत्र-पृ. 13
2. "अनघ" - पृ. 100
3. "मंगलघट- कर्तव्य- पृ. 49
4. "हिन्दू" - पृ. 50
5. "गुरुकुल" - गुरुगोविन्द सिंह- पृ. 158
6. "चन्द्रहास- पंचमांक- पृ. 154

त्रैलोक्य में कर्तव्य की वह प्रेरणा ही धन्य है ,
कर दे विवश जो प्रेम को भी कौन ऐसा अन्य है । [1]

कर्मक्षेत्र में रत होते समय कभी-कभी समष्टि की रक्षा के लिए व्यष्टि का आत्मोत्सर्ग वांछनीय और अनिवार्य हो जाता है । "बक-संहार" में कवि द्विज द्वारा कुन्ती से इसी विचार को प्रस्तुत कराते हुए लिखते हैं कि जब एक व्यक्ति समष्टि केलिए अपना प्राण देता है तो उससे सभी की रक्षा होती है और सब केलिए अपना नाश करना भी भला है । "साकेत" में राम से यही कहलाया गया है --

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी
हम हों समष्टि केलिए व्यष्टि बलिदानी । [2]

व्यक्ति का मोक्ष भी समष्टि केलिए काम करने में निर्भर रहता है , यही कवि का मत है । भारतीय संस्कृति के पुजारी कवि ने "अनघ" के मघ द्वारा कहलाया है "जाऊँ, उसे संभालूँ मैं , जन-सेवा व्रत पालूँ मैं ।" यहाँ गाँधीजी और गुप्तजी एक ही बात का समर्थन करते हुए दिखाई पडते हैं । कर्मक्षेत्र की ओर भारतीय जनता को अग्रसर करते हुए गाँधीवादी कवि कहते हैं --

पापों से घृणा करो प्रयत्न करो पापी का
व्यंग्य छोड सद्‌ग दो सदैव अनुतापी का । [3]

गाँधीजी की कर्म परिपाटियों से कवि सदैव अवगत रहे हैं । गाँधीजी के निधन पर उनके निष्काम कर्मों का स्मरण करके महान कवि कहते हैं कि उन्होंने अपनी जनता को दीन समझकर उनका सब कुछ जनता को दे दिया । लेकिन अकर्मण्य जनता ने निर्दय होकर उनके प्राणों को भी लूट लिया । यहाँ कवि गाँधीजी की कर्म-धीरता के आगे श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं । आत्मविभोर होकर कवि

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. तिलोत्तमा- पृ. 55
2. "साकेत-" -अष्ठम सर्ग-पृ. 166
3. अनघ- पृ. 60

गाँधीजी से कहते हैं - अपने कर्मों का फल हमको - सबको ही पाना होगा, तो बापू तुमको यहाँ एक बार फिर आना पडेगा । अर्थात् भारतवर्ष की जनता उतना अकर्मण्य एवं स्वार्थ बन गई है । इन सब के बावजूद भी गाँधीवादी कवि जनता को उद्बोधन देते हुए गाँधीजी के शब्दों को दोहराते हैं ---

करो नहीं तो मरो, डरो मत, रक्षित है फल हरि के हाथ
माँग न थी आज्ञा की तेरी -" जियो और जीने दो तुम । " [1]

ऐसा कहने वाले कवि प्रसंगानुसार पूर्वजों का भी स्मरण करते हैं । "वे धर्म पर करते निछावर तृण-समान शरीर थे" । भारतीय संस्कृति के पुजारी कवि आगे कहते हैं, वे " पर दुःख देख दयालुता से द्रवित होते थे सदा " । [2] ऐसा अनुस्मरण करके कवि गाँधीवाद का समर्थन करते हैं । इस प्रकार यहाँ साबित होता है कि कर्म ही धर्म है । कर्म को धर्माधिष्ठित होना चाहिए । वहाँ ईश्वर से मिलन होता है ।

4.5.2. <u>वळ्ळत्तोळ् के काव्य में निष्काम कर्म</u>

वळ्ळत्तोळ् भी अपने काव्यों में, कर्मक्षेत्र में अटल रहकर निष्काम कर्म करने की सलाह देते हैं । भारत के कर्म-कुशल वीरों को कवि भारतमाता से परिचित कराते हैं --

अडविल्द्धर्म्मार्थिमायुप्पोरत्तुं निन्पुत्रर्क्कु
वेडियुण्डकलुं पूमषयुमोरुपोले । [3]

{धर्मयुद्ध करने वाले तुम्हारे पुत्रों को गोलियों की वर्षा और पुष्पवृष्टि समान हैं} यहाँ कवि राष्ट्रपिता गाँधीजी की तरह भारतवासियों को निष्काम कर्म की ओर बढाने का आह्वान करते हुए दिखाई पडते हैं । "एक वीर पत्नी" में भी इस दृश्य का चित्रण हुआ है । यहाँ सिपाही पति-पत्नी को समझाता है कि

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "अंजली और अर्ध्य"- पृ. 36
2. "भारत-भारती"- अ:ख:प. 28.
3. सा:म:पहला भाग-पृ. 45

पुरुष को अपनी मातृभूमि की रक्षा केलिए रणभूमि में जाना ज़रूरी है । [1] यहाँ पति को पत्नी और बच्चों को भी छोड़कर कर्मरत होना अनिवार्य है । धर्म रक्षा केलिए मरना ही वीर अपना कर्म समझते हैं । मातृभूमि की रक्षा केलिए कवि "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन", के अनुसार निष्काम कर्म करने की ओर भारतवासियों को प्रेरित करते हैं, " अत्याहित" में । [2] एन्टे जोलि-नोक्कट्टे " में कवि कर्म करना ही निज धर्म मानते हैं । यही पौरुष का लक्षण है । [3] यहाँ कवि तत्कालीन अकर्मण्य युव चेतना में नई स्फूर्ति भरने का प्रशंसनीय कार्य करते हैं, जो उनकी भी कर्मण्यता का परिचायक है । "आ-मोतिरम्" {वह अंगूठी} में भी कवि यही कहते हैं कि कर्म करना ही धर्म है और उसकेलिए प्रतिफल भी स्वीकार नहीं करना चाहिए । [4] यही गाँधीजी के भी कर्मयोग का मुख्य आदर्श है ।

"शिप्पायिलहळा" में कवि कमण्यता की महिमा बताते हुए मातृभूमि की रक्षा केलिए आत्म समर्पण करनेवालों को बधाई देते हैं --

> कर्म्मयोगत्तिन्निल्ल कालदैर्ध्यत्तालब्भंगम्
> अम्मयुक्कु मानं वाड्.ङानुयिरविट्टोरे वेल्विन् [5]

{काल के बीतने से कर्म फल की गरिमा नहीं टलती । मातृभूमि के अभिमान की रक्षा केलिए अपनी जान को न्योछावर करनेवालो तुम्हें बधाई है । } यहाँ भी सामयिक प्रेरणा की झलक उभर आती है । यह कवि की अदम्य स्वातंत्र्येच्छा का परिणाम है । "स्वागत" नामक कविता में कहा गया है कि भारतीय अपनी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:पहला भाग-पृ. 84
2. सा:म: तीसरा भाग- पृ. 52-53
3. सा:म: पाँचवाँ भाग- पृ. 87
4. सा:म: छठा भाग- पृ. 55
5. सा:म: नवाँ भाग - पृ. 44

जान देकर भी दूसरों की सहायता करनेवाले निष्काम कर्म योगी हैं । [1] यही गाँधीजी के कर्मयोग का मूल मंत्र है । "मलयाळत्तिन्टे तला" में कवि शंकराचार्य के आत्मत्याग का जीता-जागता चित्रण करते हैं । शरीर के साथ कैलास में जाने की इच्छा से एक बूढ़ा कापालिक शंकराचार्य के पास आकर होम करने केलिए उनका सिर माँगता है । यह सुनते ही निस्वार्थ और त्यागी आचार्य अपना सिर काट लेने की अनुमति देते हैं । [2] हमारे पूर्वजों ने भी ऐसे अनेक त्याग किए हैं । दधीचि महर्षि ने वृत्तासुर वध केलिए इन्द्र को अपनी रीढ़ की हड्डी निस्संकोच दी थी । कर्ण ने भी ऐसा त्याग किया था । [3] ऐसे त्यागों के वे पुण्य समझते थे । आगे कवि कहते हैं :--

> अर्थिप्राणन् कोण्डुमाराधियक्कुकयोरु
> पुत्तनामेडल्लल्लो , भारत चरित्रत्तिल् [4]

{प्राण देकर भी अर्थियों की रक्षा करना , भारतीय इतिहास में कोई नयी बात नहीं है । } यहाँ कवि पौराणिक संदर्भों को सामयिक स्थिति से जोडने का प्रयास करते हैं । यह तत्कालीन जनता को कर्मक्षेत्र में उतारने केलिए सक्षम भी रहा होगा । इस प्रकार के त्याग का उल्लेख "श्रीनारायण भट्ट पादर" नामक कविता में भी हुआ है । [5] आर्य समाज के आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन का कवि "ओन्नामत्ते मतम्" में चित्रण करते हैं । कवि उनको त्याग का मूर्तिमान रूप समझते हैं । मानवता की रक्षा केलिए निष्काम कर्म करनेवाले श्रद्धानन्द - स्वामी को एक मुसलमान भाई के गोली खाकर मरना पडा । इसपर कवि कहते हैं -" स्वामी का जन्म, जीवन और इस प्रकार मरण भी दूसरों की भलाई मात्र

---

1. सा:म: नवाँ भाग-पृ. 77
2. सा:म: 6: पृ. 90
3. सा:म:6: पृ. 91
4. --वही-- पृ. 97
5. सा:म: 10. पृ. 21

केलिए था । [1] यहाँ ऐतिहासिक तथ्यों को कवि सामयिक रूप में प्रस्तुत करके अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने की कोशिश करते हैं । बापूजी " नामक कविता में इस प्रकार कवि गाँधीजी के मारे जाने का कारुणिक वर्णन करते हैं । गाँधीजी भारतीय जनता केलिए अपना सब कुछ न्योछावर करनेवाले थे । फिर भी धर्मांध होकर एक भारतवासी ने ही उनके मानवतावादी हृदय पर गोली चलायी । गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी यहाँ भारतीय जनता की निर्दयता एवं मूर्खता पर घोर व्यंग्य करते हैं ।

"बधिर विलाप" खण्ड काव्य कवि की अपनी बधिरता को विषय बनाकर लिखी गयी रचना है । यहाँ कवि विश्वास करते हैं कि उनकी बधिरता अपने दुष्कर्मों केलिए ईश्वर का दिया हुआ दंड है । [2] तात्पर्य यह है कि सत्कर्म से दूसरों की सेवा करना ही मनुष्य के जीवन की विजय है । असल में कवि ने कोई दुष्कर्म नहीं किया फिर भी वे कहते हैं कि उनकी रचनाएँ दूसरों केलिए अरोचक रही होंगी । इस प्रकार कवि प्राकृतिक , पौराणिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों एवं संदर्भों को प्रस्तुत करके निष्काम कर्म द्वारा मानवता की स्थापना करने केलिए समाज और संसार को उद्बोधन देते हैं ।

## 4.6. वर्ण व्यवस्था

भारतीय संस्कृति के अनुसार मानतावाद की स्थापना में वर्ण-व्यवस्था का बडा महत्व रहा है । समाज को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित बनाने केलिए प्राचीन भारत में ऋषियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय , वैश्य, शूद्र आदि चार वर्णों की स्थापना की थी । भारत साहित्य में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति भी हुई है । ऋग्वेद में वर्णव्यवस्था का उल्लेख मिलता है । [3] प्रस्तुत विभाजन होते हुए भी सभी वर्ण एक ही समाज के विभिन्न अंग माने जाते थे । परन्तु बाद के युग में घोर अव्यवस्था फैल गई । अनपढ़, अशिक्षित एवं पापी भी जन्म से ब्राह्मण होने लगे और इसके विपरीत भी होने लगे । इस अव्यवस्था को दूर करने केलिए गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ्

---

1. सा:म: दसवाँ भाग-पृ. 64 2. बधिर विलाप- पृ. 15
3. ऋग्वेद- 10/90/12

स्तुत्य प्रयत्न करते रहे । वळ्ळत्तोळ् की इस ओर अधिक झुकाव नहीं था यह शायद इसलिए होगा कि केरल में वर्ण-व्यवस्था अधिक प्रबल नहीं रही थी ।

गाँधीजी के विचार में वर्णाश्रम व्यवस्था नवीन रूप और अर्थवाला तत्व है । वे वर्णाश्रम व्यवस्था को माननेवाले थे । लेकिन जाति के अनुसार कर्म विभाजन को अनुचित समझते थे । वर्ण-व्यवस्था को नवीन अर्थ देकर उन्होंने बताया कि वर्ण व्यवस्था का अर्थ है - कर्तव्य या धर्म । [1] इसके आधार पर गुप्तजी ने भी वर्ण व्यवस्था को कर्तव्य या धर्म का पर्याय समझकर रचना करने का प्रयास किया है, जो मानवता की स्थापना केलिए अत्यंत आवश्यक है ।

## 4.6.1. गुप्तजी के काव्य में वर्ण व्यवस्था

सनातन धर्मी गुप्तजी ने उच्चासन से पतित ब्राह्मणों, वीरता धैर्य और शौर्य-रहित क्षत्रियों, व्यापार एवं कला-कौशल रहित वैश्यों तथा सेवा एवं श्रम से जी चुरानेवाले शूद्रों की कटु आलोचना की है । [2] गाँधीवादी कवि "भारत-भारती" के "उद्बोधन" में सभी वर्णों के लोगों को अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करने की प्रेरणा देते हैं --

"ब्राह्मण बढ़ावें बोध को, क्षत्रिय बढ़ावें शक्ति को,
सब वैश्य निज वाणिज्य को त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को ।
यों एक मन होकर सभी कर्तव्य के पालक बनें -
तो क्या न कीर्ति-वितान चारों ओर भारत के तनें ।। [3]

यहाँ गाँधीवादी विचारधारा की अच्छी झलक उभर आती है । कवि नाममात्र से आर्य को आर्य नहीं मानते, कार्य भी वैसा होना चाहिए । वे चारों वर्णों की उत्पत्ति उस विराट पुरुष से मानते हैं और उनमें भेद-भावना को छोड़कर एकता की भावना को निर्धारित करते हैं । [4] गुप्तजी "हिन्दू" में अतीत वैभव के वर्णन में वर्णों की एकता एवं विश्व-कल्याण की भावना को व्यक्त करते हैं । [5]

---

1. "गाँधी विचार रत्न "-पृ. 155
2. "द्विवेदी-युगीन काव्य पर आर्य समाज का प्रभाव"- भक्तराम शर्मा-पृ. 83
3. "भारत-भारती"- पृ. 173 4. भारत-भारती-पृ. 91; 5. हिन्दू- पृ. 32-33

कवि का मत है कि चारों वर्णों के लोग जब स्वतंत्र रूप से अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करेंगे, तभी सांसारिक जीवन सुखी हो सकेगा -" पालें हम सब निज कर्तव्य, भरा इसी में भव का भव्य। [1] गाँधीजी भी निज कर्तव्य के पालन के ही समर्थक रहे हैं। भारतीय ब्राह्मण वर्ण का पहला कर्तव्य गुप्तजी ज्ञान-ध्यान मानते हैं। द्रोणाचार्य अपनी अकिंचनता में भी संतुष्ट रहना ब्राह्मण केलिए आवश्यक मानते हैं। [2] ब्राह्मण केलिए हत्या और पाप करना भारतीय संस्कृति के अनुसार उचित नहीं है। "जयभारत" में कृपाचार्य, अश्वत्थामा से कहते हैं --

ब्राह्मण होकर इस घोर राक्षसी हिंसा पर तुम आए,
क्या पाप करोगे यदि न पुण्य से तुम स्वकार्य कर पाए। [3]

लेकिन यहाँ कवि ब्राह्मण को श्रेष्ठ जाति मानकर, अन्य वर्णों का उद्धारक मानते हैं। [4] इससे ज्ञात होता है कि वे स्वयं वर्ण व्यवस्था से मुक्त नहीं थे। वे अपने को श्रेष्ठ ही माननेवाले थे। कवि के अनुसार अपने देश, समाज की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है। [5] "मंगलघट" में बताया गया है कि अपना अधिकार प्राप्त करने केलिए क्षत्रियों को यदि मृत्यु का वरण करना पडे तो भी वे विमुख नहीं होते --

"अधिकार रक्षा हेतु हम संघर्ष से डरते नहीं
क्षत्रिय समर में काल से भी भय कभी करते नहीं। [6]

इस प्रकार कवि क्षत्रियों को भी अपने धर्म पालन के बारे में अवगत कराते हैं।

---

1. 'हिन्दू'- पृ. 113
2. 'जयभारत'- पृ. 49
3. --वही-- पृ. 106-107
4. "पद्य-प्रबन्ध"- "ब्राह्मणों से विनय"- पृ. 47
5. 'साकेत' - दशम सर्ग - पृ. 363
6. "मंगलघट"- पृ. 114

वैश्यों को कवि धन-वृद्धि करने का उद्बोधन देते हैं । वैश्य यदि कर्तव्य पालन से विमुख रहें तो सम्पूर्ण समाज भूख से तड़प-तड़प कर मर जाएगा ।[1] इसलिए उन्हें देश के व्यापार, कृषि एवं पशुपालन की ओर विशेष ध्यान देने का उपदेश देते हैं । शूद्र वर्ण अन्य वर्णों से हीन माना जाता है । परन्तु गुप्तजी मानवता की स्थापना केलिए उन्हें भी अन्य वर्णों की भाँति समान स्थान दिलाने के पक्ष में हैं । उन्हें उदबोधन देते हुए कवि कहते हैं - "शूद्रों ! उठो तुम भी कि भारत-भूमि डूबी जा रही , तुम भी अपने आप को नीच न समझकर कुछ श्रेष्ठ काम करो ।[2] कवि शूद्र और विप्र को एक ही शरीर वाले मानते हैं --

"जिन्हें शूद्र कहते हैं वे ही हैं समाज के सच्चे अंग
प्रथम पैर ही पुजते हैं जो ले चलते हैं सब कुछ संग ।
पाप पुण्य निज कर्मों पर है शूद्र विप्र का एक शरीर
नाली में अस्पृश्य नदी में पावन होता है घन-नीर ।[3]

इस प्रकार गाँधीवादी कवि यहाँ सभी वर्णों को समान भाव से देखने का प्रयास करते हैं । जहाँ तक वर्ण-साम्य का प्रश्न है, गुप्तजी की मान्यता है कि " ऊँचों " में "नीच" मिल जाएं और इसमें ऊँचों का कोई यश मंद नहीं होता ।[4] ऐसे होते हुए भी कवि को "मंगलघट" की "चंडाल" कविता में वर्ण-व्यवस्था की गुण-कर्म-स्वभाव प्रधान स्थिति प्रकट करनी ही पड़ी । डा. कमलाकान्त पाठक के शब्दों में -" इसमें ब्राह्मण का शूद्रवत और शूद्र का ब्राह्मणवत् आचरण वर्णित हुआ है । शूद्र के पुय-प्रताप से चमत्कार संपन्न हुआ है अतएव उसको "श्वपच नहीं वह विप्र " कहा गया है । वर्ण-व्यवस्था संबन्धी नवीन मान्यता को

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भारत-भारती"- पृ. 174
2. -वही- पृ. 174-175
3. "गुरुकुल" -गुरु गोविन्द सिंह- पृ. 123
4. " -पृ. 190

प्रकट करने केलिए है इस रचना में घटना-वैचित्र्य के द्वारा चमत्कार-साधन का विधान किया गया है । [1]

यहाँ कवि गाँधीजी के विचारों से अपने विचार मिलाकर वर्ण भेदों को भूलकर सभी वर्णों के लोगों को अपने कर्तव्य के पालन करके समभावना एवं मानवता की स्थापना की ओर उद्बोधित करते हैं ।

## 4.6.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में वर्ण-व्यवस्था

वळ्ळत्तोळ् के काव्यों में वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन बहुत कम ही हुआ है । जाति-प्रथा के बारे में बहुमुखी चर्चा करते हैं । इसकी चर्चा आगे हो रही है । वे वर्ण-व्यवस्था के घोर विरोधी थे । इसका कारण वर्ण-नियम का यथार्थ भारतीय संस्कृति के विपरीत होना है । वर्ण-व्यवस्था स्वार्थी मनुष्यों द्वारा बनी बनाई व्यवस्था थी । अतः उनकी रचनाओं में उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई गयी है । "ऐक्य ही सेव्यात सेव्य है" में कवि भारतवासियों से पूछते हैं कि {हमारी आर्य संस्कृति के मानसिक संस्कार, सम-भावना, त्याग , आध्यात्मिक चिंतन - ये सब कहाँ चले गए हैं ? जब तक छुआछूत और जाति-पाँति के नाम पर मनुष्य मनुष्य को ही भगा देता है, तब तक हम आर्य संस्कृति के मधुर संगीत न सुन सकते और स्वराज्य-भ्रष्ट हम स्वराज भी नहीं पा सकते } [2]

## 4.7. पारिवारिक धर्म एवं उसका पालन

मानव परिवार का एक घटक है । परिवार समाज का और समाज राष्ट्र का । इनमें आपसी संबन्ध भी गहरा है । मानव असल में परिवार में ही पलता है । अतः परिवार का स्थान सबसे आगे है । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् इस मर्म से पूर्णतः अवगत थे । उन्होंने अपनी रचनाओं में पारिवारिक जीवन का सुन्दर चित्रण करके लौकिक जीवन की महिमा एवं श्रेष्ठता का वर्णन किया है । सारे

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. डा. कमलाकांत पाठक - "मैथिलीशरण गुप्त"-व्यक्तित्व और काव्य-पृ. 257-58
2. सा:म: पाँचवाँ भाग- पृ. 90-91

राष्ट्र केलिए दोनों कवि स्वतंत्रतापूर्ण पारिवारिक जीवन परम आवश्यक मानते हैं । गाँधीजी , ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य , वानप्रस्थ और सन्यास में गृहस्थाश्रम को ही सबसे मान्य और श्रेष्ठ समझते थे । गृहस्थाश्रमी ही समाज के सभी स्पन्दन सही समय पर समझ सकते हैं । इसके आधार पर गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भी गृहस्थाश्रम का समर्थन करने का प्रयास करते हैं ।

## 4.7.1. गुप्तजी के काव्य में पारिवारिक धर्म एवं उसका पालन

गुप्तजी के विचार से इस पृथ्वी पर जो भी ईश्वरीय सृष्टि है उसमें मनुष्य और मनुष्यत्व से श्रेष्ठ कुछ नहीं हैं । ब्रह्मा भी इस बात को स्वीकार करते हैं -" मेरी कृति में मनुष्यत्व से श्रेष्ठ कुछ नहीं ।[1] कवि मानव को ईश्वर की श्रेष्ठतम सृष्टि ही नहीं उसे सृष्टा भी मानते हैं - सृष्टा जिसने इस पृथ्वी पर एक नया संसार रचा है --

"रचा हमी ने बाहर भीतर यह इतना संसार
कितना चित्र विचित्र हमारा एक पृथुल परिवार ।[2]

गुप्तजी के मत में मानव निःसन्देह महान है पर उसकी यह महानता उसके मानवत्व के कारण ही है अतः यदि मानव- मानव बना रह सके तो उसे त्रिभुवन में कोई अभाव नहीं होगा । उसका पद सर्वथा सर्वोच्च है ।[3] "नहुष" में कवि कहते हैं कि मनुष्य जीवन में भय, व्याधि जरा और मृत्यु है अवश्य पर मृत्यु के साथ मनुष्य को जो नव-जन्म का वरदान प्राप्त है वह देवों को कहाँ ?[4] यहाँ कवि मानव को देवों से श्रेष्ठ मानते हैं । "पृथ्वी पुत्र" में भी कवि का यही मत द्रष्टव्य है । वहाँ कहा गया है कि ईश्वर का अस्तित्व भी मनुष्य के हेतु ही है ।[5] यदि मनुष्य देवत्व को मनुष्यत्व के माध्यम से समझता तो कवि का विचार है कि मनुष्य अपने को कभी देवों से हीन न समझता । मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने सत्कर्मों द्वारा देव और असत् कर्मों द्वारा दानव बन सकता है ।[6] लेकिन साथ ही साथ कवि का विचार यह भी है कि यदि मनुष्य मनुष्य बना रहे तो देव-दानव का समस्त कलह कालुष्य ही मिट जाए ।[7]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "दिवोदास"-पृथ्वी पुत्र- पृ. 9   2. "दिवोदास-पृथ्वीपुत्र"- पृ. 26
3. "जयभारत"- पृ. 53   4. "नहुष"- पृ. 13
5. "पृथ्वी पुत्र"- पृ. 28   6. "नहुष"- पृ. 11 ,   7. "द्वापर"- पृ. 103

एक गहन तात्त्विक दृष्टि अपनाते हुए गुप्तजी कहते हैं कि इस भूमि से वह लंका और अयोध्या दोनों नष्ट हो चुकी हैं , रह गया है रावणत्व एवं रामत्व - जिसका समन्वय करना अभी शेष है । वही मानव का कार्य है । [1] आज मानव जैसा है , यदि हममें मानवता है,, और उसमें विश्वास है तो हम मानव और इस विश्व के विकास के प्रति आश्वस्त हो सकते हैं । कवि "हिडिंबा" में कुन्ती का हिडिंबा के प्रति कथन में इसी विश्वास को व्यक्त करते हैं --

होगा इस विश्व का विकास जो भी जब , भी
नर से होगा वह जैसा हुआ अब भी ।
आते हैं चढ़ाव से उतार तथा आवेंगे ,
तो भी हम लोग सदा बढ़ते ही जावेंगे ।
यात्रा पूर्ण होगी कहाँ कब , किस वेला में ,
खोया स्वयं सत्य उस कल्पना की खेला में । [2]

इस प्रकार कवि मानव को समस्त संसार में सबसे श्रेष्ठ प्राणी मानकर मनुष्यत्व की महानता पर प्रकाश डालते हैं । यह मानव के सामाजिक जीवन से संबन्धित है । पर उसका व्यक्तित्व अथवा मनुष्यत्व अपने परविार से ही उत्पन्न होता है , जो उसके वैयक्तिक जीवन से संबन्धित है । मतलब है कि आदर्श समाज की सृष्टि आदर्श परिवार से होती है और आदर्श परिवार की सृष्टि आदर्श मानव से भी । भारत की अवनति का कारण कवि की दृष्टि में गृह-कलह भी है । पारिवारिक कलह की वजह से संयुक्त परिवार की प्रथा को हेय समझना भी कवि को इष्ट नहीं ---

इस गृह-कलह से ही, कि जिसकी नींव है अविचार की -
निन्दित कदाचित् है प्रथा अब सम्मिलित परिवार की ।......

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "हिडिंबा"- पृ. 41,42,43.
2. "हिडिंबा"- पृ. 40

पारस्परिक सौहार्द अपना अन्यथा अश्रान्त था ,
हाँ "वसुधैव कुटुम्बकम्" सिद्धान्त यह एकान्त था । [1]

यहाँ स्पष्ट है कि संयुक्त परिवार ही सार्वलौकिक मैत्री की आधार शिला बनता है । पारिवारिक संबन्धों की ओर कवि पूर्ण रूप से झुके हुए हैं । पारिवारिक जीवन मानव मन के सहज विकारों से निभाने की युक्ति है । गृहस्थाश्रम की मुक्ति अन्ततोगत्वा मुक्ति की ओर ले जाती है , इस विचार को कवि पृथा के प्रति हिडिंबा के कथन द्वारा व्यक्त करते हैं । [2]

पारिवारिक धर्म का पालन करने केलिए परिवार के मानव में कुछ गुणों की अनिवार्यता है , जिनमें विनय, विनम्रता, भिक्षा-दान आदि प्रमुख हैं । "यशोधरा" में गुप्तजी यशोधरा के " हमी गृहस्थजनों की भिक्षा पालेगी सन्यासी " [3] कथन से इसका स्पष्टीकरण करते हैं । "विष्णुप्रिया" में स्वयं गौरांग प्रभु द्वारा एक गृहस्थ से कहलाया गया है --

गृह त्याग में ही साधुता समाई हो
वनचर मात्र तब साधु हुए समझो ।
करके सुकर्म गृह धर्म पालो अपना । [4]

यहाँ भी कवि "यशोधरा" के समान परिवार-त्याग पर व्यंग्य करते हुए परिवार-धर्म-पालन की प्रेरणा देते हैं । किसी गृहस्थ के असमय ही सन्यास ले लेने पर उसकी पत्नी की जो दशा होती है वह अकथनीय है । यशोधरा, रत्नावली विष्णुप्रिया आदि इसके ज्वलंत प्रमाण हैं । "जयभारत" के परिव्राजक की पत्नी की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है । [5] अब कवि पूछते हैं कि "क्या गृह में

---

1. "भारत-भारती"- पृ. 146
2. "हिडिंबा"- पृ. 37
3. "यशोधरा"- पृ. 118
4. "विष्णुप्रिया"- पृ. 98
5. "जयभारत"- पृ. 425

रहते हुए लोक को मार्ग-दर्शन नहीं दिया जा सकता ? यहाँ कवि का विचार है कि लोक के मार्ग-दर्शन गृहमार्ग को न भूलें । उनकी यशोधरा कहती है -- "भले ही मार्ग दिखाओं लोक को , गृह मार्ग न भूलो हाय । [1] यह चिंतन, गाँधीवादी दर्शन की ही प्रेरणा से हुआ है । इससे कवि का मतलब है , उत्कृष्ट परिवार-व्यवस्था , तथा उसके उच्चादर्शों की प्रतिष्ठा द्वारा विश्व कल्याण में योग देना है । आदर्श परिवार में , पति-पत्नी का धर्म, पितृ धर्म, पुत्र धर्म, पत्नी धर्म आदि का प्रेमपूर्वक एवं व्यवस्थित पालन होगा । इसको कवि "भारत-भारती" में व्यक्त करते हैं ।[2] अन्यत्र भी कवि इसका उल्लेख करते हैं । पारिवारिक जीवन की पूर्ण फलप्राप्ति केलिए कवि परिवार के सभी सदस्यों को गुणवान , कर्मनिरत , आदर्शधीर होने के लिए उद्बोधन देते हैं । इस प्रकार गाँधीवाद के समर्थक मानवतावादी कवि वैराग्य पर गार्हस्थ की विजय गाथा करके पारिवारिक जीवन के उच्चादर्शों की स्थापना करते हैं ।

## 4.7.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पारिवारिक धर्म एवं उसका पालन

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी गाँधीवादी तत्व को मानते हुए मानव को ही श्रेष्ठतम सृष्टि मानते हैं । पारिवारिक एवं सांसारिक जीवन को वे सबसे महनीय एवं पूजनीय मानते हैं । मानव की महिमा बताते हुए कवि बुद्ध देव को सामयिक समाज में प्रस्तुत करते हैं । [3] बुद्ध देव ने अपने सहजीवियों की कष्टताओं को देखकर राजमहल के सुखों को हमेशा-हमेशा केलिए छोड दिया था । असल में वे महामानव ही हैं , जिन्होंने एक मानवतावादी संसार का पावन विचार प्रस्तुत किया था ।

मानव तभी मानव बन जाता है जब वह मानवीय गुणों का प्रदर्शन और पालन करे । ऐसी अवस्था में कोई उच्च या नीच , धनी या दरिद्र नहीं रह सकता । तब भेदभावों को भूलकर मानव एक हो जाते हैं । इसका स्पष्टीकरण

---

1. "यशोधरा- पृ. 133
2. 'भारत-भारती- अतीत खण्ड-पद, 35, 36 159-196
3. सा:म:पाँचवाँ -भाग- पृ. 6

करते हैं कवि "अद्वैतं शिवं शान्तम्" में । [1] केरल के लोगों के आपसी प्रेम और ऐक्य दिखाते हैं कवि "ओणम्" नामक कविता में । केरल के समस्त मानव ओणम के दिन में सभी बातों में सच्चे अर्थों में एक हो जाते हैं । [2] वह समता और एकता का दिन है । कवि ऐसे एक संसार की कल्पना करते हैं जहाँ हर दिन ओणम हो । इस प्रकार एकता के साथ जीने केलिए कवि केरल , भारत और समस्त संसार की जनता को उद्‌बोधन देते हैं "चोर तिळयुक्कणम्" में -

"नाना विचाररराय , नानाविहाररराय , नानाप्रकारराय नाव्कषिप्पान्
एतु विदेशत्तु पोन्नु वसिच्चालुं एकांब पुत्रर्नां केरलीयर्" [3]

(विभिन्न विचार वाले , विभिन्न विहार वाले और विभिन्न प्रकार वाले होकर विदेशों में जाकर जीना पडे , तो भी हम सब केरल के ही हैं । ) लेकिन कवि का विचार करल तक सीमित नहीं रहता । यहाँ भी कवि मानव को आपस में प्रेम करने की प्रेरणा देते हैं । इस प्रकार प्रत्येक आदर्श मानव के गठन से आदर्श परिवार की कल्पना करनेवाले कवि गृहनायक पुरुष को संसार के रखवाले मानते हैं । [4] सांसारिक जीवन के प्रति आस्था रखने वाले कवि , एक गृहस्थ होने के नाते मृत्यु से डरते हैं । [5] यहाँ पारिवारिक जीवन की गरिमा एवं सांसारिक जीवन के प्रति कवि का झुकाव स्पष्ट होता है । "नरकण्डिद्दु" में आगे वे कहते हैं -- मुझे कृशगात्र होने दो बूढा भी होने दो लेकिन मुझे जीने केलिए यही कुटुंब चाहिए । यहाँ के सभी ऐश्वर्य चाहिए । इन सबको छोडकर मैं इस संसार से जा नहीं सकता । [6] कोई भी नहीं जा सकता ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:पा छठा भाग-पृ. 78
2. सातवाँ भाग- पृ. 31
3. "दिवास्वप्न-" पृ. 72
4. सा:म: पहला भाग- पृ. 63
5. सा:म: तीसरा भाग- पृ. 97
6. --वही-- पृ. 99

पारिवारिक जीवन से अतीव सुख पानेवालों से कवि कहते हैं ---

> हे गृहस्थ , तरवाडोट्टुपेक्षियुक्क नीयेन्नार् चोल्लि ?
> निनक्केषुं पुतुवुडुप्पा मृत्युविन्पक्कलाम् [1]

{हे गृहस्थ तुमसे किसने कहा कि परिवार छोडना होगा ? तुम्हारे लिए नए वस्त्र हैं मृत्यु के पास } मृत्यु से जीवन का अंत नहीं होता । हम अपने शरीर छोडकर दूसरे शरीर ले लेते हैं । यहाँ कवि "गीता" के पुनर्जन्म की ओर इशारा करते हैं । [2] भौतिक शरीर बदलते रहते हैं लेकिन आत्मा वही रहती है ।
"नागिला " में कवि पारिवारिक जीवन की गरिमा की ओर संकेत करते हैं । भवदेव अपनी नवोढा को छोडकर भाई भवदत्त के साथ , सन्यास लेने जाता है । थोडे ही दिनों भवदेव को लगा मैं सन्यास नहीं कर सकता , मुझे वापस नागिला के पास जाना ही होगा । इतने में भाई का देहांत भी हो जाता है । वह सब कुछ छोडकर गृहस्थ बनने का निश्चय कर लेता है --

> "एन नागिले, भवतियेत्तुकाते , मुक्ति
> वन्नालुमिल्ल भवदेवनु बन्ध मोक्षम्
> अन्नारितोर्तु ? - यतिधर्म मरुप्परप्पिल्-
> निन्नाणुपोल चिदमृताप्ति , चतिच्चु शास्त्रम्" [3]

{मेरी नागिले, तेरे सहारे के बिना मुझे कोई मोक्ष नहीं चाहिए । उस दिन किसने यह सोचा ? सन्यास धर्म के मरुस्थल से ब्रह्मानंद थोडे ही मिलता है , शास्त्र ने छल किया । } इससे व्यक्त होता है कि कवि कहाँ तक गार्हस्थ्य में विश्वास रखते हैं । पारिवारिक बन्धन में बांधे हुए कवि दावा करते हैं ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:तीसरा भाग- पृ. 102
2. भगवतगीता- 2/22
3. सा:म: पंचम भाग- पृ. 47

"नमुक्कु गार्हस्थ्य वष्प्रियुक्कु नेडिडाम् ,
विमुक्तियेक्काळमखण्डमां सुखम्" ¹

{हम गार्हस्थ्य जीवन के मार्ग से , मुक्ति से ही ज़्यादा सुख और आनन्द पा सकते हैं । } इस प्रकार पारिवारिक जीवन के सागर में डुबकी लेनेवाले कवि , उस जीवन के सभी पहलुओं से अवगत हैं । सुख-दुःख से संपूर्ण जीवन बिताने वाले कवि जब देखते हैं कि महर्षि विश्वामित्र आश्रम में आकर अपने दौहित्र को छाती से लगाते हैं , तो वे सहसा पूछ उठते हैं --

"हे महामुने, मैं आदरपूर्वक आपसे एक प्रश्न करूँ क्या ? ध्यानावस्था में जिस सच्चिदानन्द की अनुभूति आपको होती है, और प्रेमवश होकर इस फूल से नन्हे शरीर को छाती से लगाते समय जो आनन्द होता है , इनमें कौन-सा आपको अधिक आस्वाद्य लगता है " ? यहाँ गाँधीवादी कवि साबित करते हैं कि पारिवारिक जीवन एवं लौकिक सुख का कोई जवाब नहीं है । "पकल" {दिन} में भी कवि यही साबित करते हैं । [2] इस प्रकार गार्हस्थ जीवन के सभी पहलुओं का भोग, चिन्तन एवं चर्चा करके कवि पारिवारिक संबन्धों को श्रेष्ठतम प्रमाणित करते हैं । यहाँ गाँधीवादी वळ्ळत्तोळ् मानवता की स्थापना केलिए आदर्श परिवारों की अनिवार्यता पर ज़ोर देते हैं ।

## 4.8. समाज सुधार

आधुनिक काल में आते-आते भारतीय समाज की स्थिति जटिलतर होती आई । आर्थिक , सांस्कृतिक और राष्ट्रीय परिस्थितियों की अवनति , अतीव शोचनीय बन गई । ऐसी स्थिति में समाज सुधारक संस्थाओं का आविर्भाव हुआ । अवस्था बदलने लगी । सुधारकों में राजाराम मोहनराय का महत्वपूर्ण स्थान है । इससे प्रभावित होकर तत्कालीन साहित्यकारों ने भी , इस नवोत्थान को काव्य-विषय बनाना शुरू किया । एक सुधारवादी वातावरण का उदय हुआ ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: पंचम भाग- पृ. 52
2. "वीरशृंखला"- पृ. 31-32 {"पकल" नामक कविता}

इस सुधारवादी आंदोलन से गाँधीजी दूर नहीं रह सके । भारत के उद्धार महत्वपूर्ण कार्य गाँधीजी ने भी किया । आदर्श भारत की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा -" मैं एक ऐसे विधान के निमित्त चेष्टा करूँगा , जो भारत को हर तरह की गुलामी व प्रभुता से मुक्त करेगी और ज़रूरत पड़ने पर उसे अपराध करने का अधिकार रहेगा , जहाँ पर सब जातियों के लोग मिल-जुलकर रह सकेंगे । [1] गाँधीजी शिक्षा, कला, विज्ञान, संस्कृति , व्यापार और उद्योग तथा सामाजिक आन्दोलन का आध्यात्मीकरण चाहते थे । [2] इससे व्यक्त होता है कि कहाँ तक गाँधीजी भारतीय संस्कृति के पुजारी थे ।

गाँधीजी के समाज में पदार्पण करते समय , भारतवर्ष समस्याओं का एक संचय मात्र था । जाति-भेद, वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत , उच्च-नीचता, अशिक्षा, नारी-शोषण आदि अनेक समस्याएँ एक साथ भारतमाता को पीड़ित करती रहीं । गाँधीजी इन समस्याओं का समाधान , मानवतावादी सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से ढूँढने का प्रयास करते रहे । तत्कालीन भारत की सभी भाषाओं के साहित्यकारों पर गाँधीजी का प्रभाव पड़ा है । हिन्दी क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त एवं सुदूर दक्षिण में वळ्ळत्तोळ् भी इससे अनवगत नहीं रहे । जहाँ वळ्ळत्तोळ् का सवाल है , वे ऐसे एकमात्र कवि हैं , जो गाँधीजी और उनके तत्वों का अपनी रचनाओं में प्रतिपादन करते हैं । मलयालम के तत्कालीन कोई भी अन्य साहित्यकार गाँधीजी और गाँधीवाद का प्रतिपादन नहीं करते ।

मैथिली शरण गुप्त एवं वळ्ळत्तोळ् गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर एक मानवतावादी समाज की सृष्टि करने के प्रयास के सिलसिले में अनेक श्रेष्ठ काव्यों को जन्म देते हैं । इन काव्यों में जाति-व्यवस्था छुआछूत , हरिजनोद्धार

---

1. 'गाँधी विचार धारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव'- डा. अरविन्द जोशी- पृ. 75
2. दिनकर - 'संस्कृति के चार अध्याय' - पृ. 532

मद्य निषेध और अन्य अनेक समस्याओं का जीता-जागता चित्रण मिलता है । जहाँ तक हो सके वे उन समस्याओं का समाधान भी ढूँढते हैं ।

4.8.1. सर्व-धर्म समन्वय

भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, सिख हैं, ब्राह्मण हैं, चंडाल हैं, धनी एवं दरिद्र हैं । विरुद्ध संस्कारों और विरोधी स्वार्थों की विराट वाहिनी है भारतीयता । ऐसे भारत की रक्षा भारतीय जनता की एकता से ही संभव है । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् यह भली-भाँति जानते थे । साम्प्रदायिक एकता और सद्भावना की महत्ता का प्रतिपादन करने केलिए आलोच्य दोनों कवि अन्य धर्मों के धार्मिक महापुरुषों को भी काव्य का विषय बनाते हैं । यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है कि अन्य धर्मों को माननेवाले लोगों पर, अपने ही धर्माधिकारी की कही बातों का, अधिक प्रभाव पडता है ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता केलिए, मृत्यु को भी सन्तोष के साथ गाँधीजी ने स्वीकार किया । स्वतंत्रता रूपी स्वप्न के साक्षात्कार केलिए सर्वधर्म समन्वय की अनिवार्यता पर उन्होंने बल दिया । सभी धर्म ईश्वर के साक्षात्कार के विविध मार्ग हैं । इसलिए प्रत्येक धर्म में निहित सत्य का ग्रहण ही प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है ।[1] गाँधीजी ने समस्त धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करके उनमें निहित तत्वों को अपनाया । वे सभी धर्मों का आदर और सम्मान करते थे । ईश्वर ने किसी को मुसलमान, हिन्दू, ईसाई नहीं बनाया है । मानव ने ही वर्णों और धर्मों की स्थापना की है । इसलिए मानव को धर्मों के नाम पर लडना कभी भी अच्छा नहीं है । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भी इस तथ्य से अभिज्ञ थे ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. 'गाँधी जीवन और दर्शन' - केरल संस्थान गाँधी शताब्दी कम्मिटी - पृ. 9

से भी गाँधीजी के तत्वों का सहारा लेकर सर्वधर्म समन्वय की ओर प्रवृत्त रहे ।

4.8.1.1. गुप्तजी के काव्य में सर्व-धर्म-समन्वय

गुप्तजी भारत की जाति-प्रथा से पूर्ण रूप से अवगत थे । इसलिए वे जाति-गत भेद-भावों को भूलकर सभी समुदायों को मानवता पर बल देकर एकता से जीने का आह्वान देते रहे । "काबा और कर्बला" में गुप्तजी जाति-गत वैमनस्य को मानवता का सबसे बड़ा शत्रु मानते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करते हैं । वे हज़रत साहब से कहलवाते हैं --

भारत का सद्भाव सुन चुका हूँ मैं पहले ,
वह है ऐसी भूमि विभिन्न मतों को सह ले ।
चाहा था इसलिए वहीं जाकर रह जाऊँ ,
किन्तु विरोधी नहीं चाहते मैं जी पाऊँ ।। [1]

"हिन्दू" में भी वे हिन्दू-मुस्लिम एकता पर विशेष बल देकर अत्यधिक नम्रता से कहते हैं --

मुसलमान भाई , हो शांत, सोचो तुम्हीं तनिक एकांत ।
रहे तुम्हारा कुछ भी बोध , हमको तुमसे नहीं विरोध ।
मातृभूमि का नाता मान , हैं दोनों के स्वार्थ समान । [2]

"वन-वैभव" में कवि भारतवर्ष में व्याप्त तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या का पौराणिक आधार पर समाधान प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास करते हैं । "सिद्धराज" नामक ऐतिहासिक काव्य का नायक मुसलमानों को संबोधित करते हुए कहता है -- ईश्वर के नाम पर कलह ठीक नहीं । सभी धर्म के लोग

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "काबा और कर्बला- पृ. 94
2. "हिन्दू"- पृ. 346-347

अलग-अलग मार्गों से ईश्वर के पास पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं । [1] कहीं कवि एकता के महत्त्व के बारे में बात करते हैं तो कहीं एकता के लिए लोगों को उद्बोधित करते हैं । इस प्रश्न का एकमात्र परिहार वे इस प्रकार करते हैं --

"पर मत हों कितने ही अंध अक्षय है शोणित संबन्ध । [2]

गुप्तजी की "गुरुकुल", "काबा और कर्बला", "अर्जन और विसर्जन" आदि रचनाएँ सर्वधर्म समन्वय को ही लक्ष्य करके लिखी गई हैं । यहाँ पर जाति-भेद को तुच्छ मानते हुए मानवता की श्रेष्ठता की ओर संकेत किया गया है । [3] यह गुप्तजी पर गाँधीजी के प्रभाव का द्योतक है ।

मानवतावाद की स्थापना सामाजिक एकता से ही संभव है, जातिगत विरोध में नहीं । इसलिए कवि कहते हैं ---

जैन बौद्ध फारसी यहूदी मुसलमान सिख ईसाई
कोटि कंठ से मिलकर कह दें हम सब हैं भाई-भाई । [4]

अनादि काल से भारत में नाना जातियाँ अपने नाना भाँति के संस्कारों को लेकर रहती आई हैं । इन्हीं नाना जातियों, संस्कारों धर्मों और रीतियों का जीवन्त समन्वय है भारतवर्ष । इससे पूर्ण रूप से अवगत होकर गाँधीजी के सुर में सुर मिलाकर कवि जाति-भेद का घोर विरोध करते हैं ---

लिखी नहीं माथे पर जाति गुण कर्मों से उसकी ज्ञाति
सबके दो पद हैं दो हस्त सजातीय है मनुज समस्त । [5]

---

1. "सिद्धराज"- पृ.
2. "भारत-भारती"- पृ. 57
3. "गुरुकुल"- पृ. 37
4. मातृमंगल- "मंगलघट
5. "भारत-भारती" - पृ. 104

जाति-भेद को छोड़कर गुप्तजी सब धर्मों को जानने और सब देवों की पूजा करने पर बल देते हैं । ऐसा करने से ही एकता की स्थापना संभव है । हिन्दू और सिखों की फूट से दुःखी होकर कवि कहते हैं --"बने आज सिख हमसे भिन्न , होंगे क्यों न आप उच्छिन्न" । इसी लिए कवि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सबको परमपिता की सन्तान मानकर सभी को बन्धु मानते हैं ।[1] कवि जाति एवं धर्म की महिमा कुल से नहीं शील से मानते हैं । धार्मिक समन्वय से मानवता की स्थापना केलिए कवि राम और कृष्ण को समान रूप में देखकर , कबीर, नानक, दादू आदि विभिन्न संप्रदायों के प्रवर्तकों में भी वे रामत्व के दर्शन करते हैं ।[2] सर्वधर्म समन्वय के बाद मानवतावादी कवि विश्वमानवता की ओर लक्ष्य करते हैं , जहाँ एक ही धर्म , एक ही ईश्वर और एक ही संप्रदाय हो --

"किन्तु हमारा लक्ष्य , एक अंबर भू सागर
एक नगर सा बने विश्व , हम उसके नागर ।[3]

इस प्रकार गुप्तजी व्यक्तिगत, जातिगत, धर्मगत धरातल से ऊपर आकर राष्ट्रपिता की तरह एक धर्मनिरपेक्ष , मानवतावादी विश्व समाज का स्वप्न देखते हैं ।

4.8.1.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में सर्व-धर्म-समन्वय

वळ्ळत्तोळ् के समकालीन समाज में जाति एवं वर्ण के कारण से ही मानव आपस में वैर करते रहे । जाति-प्रथा इतनी कलुषित थी कि निम्न जाति के लोगों की पढ़ाई, वेदादि ग्रन्थों का छूना भी पाप समझा जाता था ।

---

1. "हिन्दू" - पृ. 193-194
2. "साकेत" - अष्टम सर्ग - पृ. 161
3. "गुरुकुल" - पृ. 13

"ओरु तोणियात्रा" में कवि एक निम्न जाति के युवक से रामायण का पारायण कराके इस स्थिति को सुधारने का प्रयास करते हैं । [1] कवि आगे पौराणिक संदर्भ प्रस्तुत करते हैं -" ऋषिश्रेष्ठ व्यास का जन्म , मछेरिन से हुआ था । उसी पुण्यभूमि में आज मानव, मानव से संपर्क नहीं करते हैं बस - जाति के कारण [2] कवि सब को एक ही ईश्वर के अंश समझते हैं । गाँधीजी को अपने गुरुवर मानने-वाले कवि किसी को दूसरे के स्वामी या सेवक समझ नहीं पाते । "कुम्भ्यत्तेषुत्तच्छन्" में भी कवि व्यासदेव के जन्म के बारे में यही बात कहके भारतीय भिन्नता का विरोध करते हैं । [3] "मुद्टत्ते तुलसी" में देवों और असुरों की लडाई के बारे में कहते हैं कि एक ही पिता के पुत्र आपस में जाति के नाम पर लड मरते हैं । [4] यहाँ कवि जाति व्यवस्था को जड़ से नष्ट करने का प्रयास करते हैं । "परस्परं-सहायिप्पिन्" नामक कविता में कवि सबको भिन्नता को भूलकर आपस में एकता के साथ जीकर मुक्ति अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्त करने का आह्वान करते हैं । [5] वे अच्छी तरह जानते थे कि हमारी मुक्ति की बाधा जाति प्रथा ही है । "जाति-प्रभावम्" में एक उन्नत जाति की युवती, गौरी  एक नीच जाति के पुरुष भैरव के साथ शादी करना चाहती है । लेकिन गौरी के दुरभिमानी माता-पिता ऐसे होने नहीं देते । आखिर वह इष्ट पुरुष के साथ भाग-बैठी । लेकिन थोडे ही दिनों में भैरव रोगग्रस्थ हो जाता है । घर में पूर्णतः गरीबी हो जाती है । ऐसी कारुणिक स्थिति में कवि कहते हैं ---

> "उच्चमामवस्थयिल्पुलर्न गौरियेयुम्
> पिच्चेतेण्डिच्चु जातिप्रभावमेन्ने वेण्डू [6]

---

1. सा:म: तीसरा भाग- पृ. 11
2. -पृ. 12
3. -पृ. 19
4. -पृ. 115
5. सा:म:पंचम भाग- पृ. 109
6. सातवाँ- -पृ. 80

(जाति प्रभुत्व ने गौरी जो अच्छी अवस्था में जी रही थी , को भी भिखारिन बना दिया ।) एक दिन गौरी भिक्षा माँग माँग कर अपने ही घर के सामने आ जाती है । जाति प्रथा से अंध बन गए उसके भाई क्रूरता-पूर्वक उसे भगा देते हैं क्योंकि वे उसे घर के अभिमान को क्षति पहुँचाने वाली मानते हैं । आज भी समाज में यही अवस्था जिन्दा है । फिर भी कवि समकालीन समाज की दुःस्थिति को सुधारने का भरसक प्रयास करते रहे ।

"अच्छन्टे चात्तम्" (पिता का श्राद्ध) में , एक अमीर आदमी के घर में भीख माँगने को एक गरीब आदमी आता है । उसे निम्न जाति का समझकर वह द्वार पाल को उसे मारने की आज्ञा देता है और वह भिखारी मारा भी जाता है ।[1] मनुष्य मनुष्यत्व को भूलकर यहाँ जानवरों से भी गए बीते बन जाते हैं । प्रस्तुत कविता को समाज का दर्पण ही कहा जा सकता है । यहाँ भी कवि बुद्ध देव के बारे में याद दिलाते हैं , जो सारी जनता को एक ही नज़र से देखकर , उनके ही कल्याण केलिए जिए और मरे थे ।

भारत की सबसे बडी समस्या जातीय अनैक्य ही है । इससे अवगत होकर कवि जातीय एकता की स्थापना केलिए भारतवासियों को उद्‌बोधन देते रहे । जहाँ तक केरल का सवाल है , ऐसा देशीयबोध केवल , महाकवि वळ्ळत्तोळ् को ही हुआ है ।[2] जातीय एकता के सिलसिले में वळ्ळत्तोळ् भारत के मुसलमान , हिन्दू तथा ईसाई भाईयों को एक ही धागे में पिरोने का प्रयास करते हैं । इस्लाम धर्म के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए गाँधीजी का धर्मावलंबी कवि मुस्लिम इतिवृत्तों को काव्य का विषय बनाते हैं । "जातकं तिरुत्ति" में धर्म सिद्धान्तों के प्रचार के समय , खुरैषी वीर उमर मुहम्मद नबि के गले काटने में उतारू हो जाता है । वह ऐसा न करके आखिर मुहम्मद का ही शिष्य बन जाता है ।

---

1. "दिवास्वप्न"- पृ. 5
2. उबैद. टी - "वळ्ळत्तोळ् कवितयिले मुस्लिन् इतिवृत्तङ्ङळ्"- पृ. 137

यहाँ कवि मुहम्मद को महान बताते हुए उमर से पूछते हैं कि नबि ने क्या गलती की है ? वे सबको सुधारने का प्रयास करते थे । सब की भलाई केलिए मरने केलिए भी तैयार थे । यह कोई गलती थोडी है ? [1]

यहाँ कवि मुसलमानों को उनकी ही अवनति के बारे में अवगत कराते हैं । कवि संसार के सम्मुख कहते हैं -- इस तरह के महान लोग कई शताब्दियों में एक बार ही जन्म लेते हैं । ऐसी एक कविता है "अल्लाह" । वहाँ कवि कहते हैं -- वे , संसार के अंधकार को मिटाने केलिए , ईश्वर का भेजा हुआ सूरज हैं । [2]

इन सबके बावजूद भी भारत में हिन्दू-मुस्लिम की भिन्नता जीवित रहती है । सर्वधर्म समन्वय एवं स्वतंत्रता चाहनेवाले कवि "नम्मुडे मत्पडि" में सबको संबोधित करते हुए कहते हैं --

जातिमतादि वष्क्कोरु नाडिने स्वातंत्र्यसिद्धियुक्कनर्हमाक्कीडुमो ?
सोदररत्तम्मिले पोरोरु पोरल्ला सौहृदत्तिन्टे कलङ्ङि॰ मरियलाम् [3]

{जाति-धर्मादि का झगडा एक देश को स्वातंत्र्य प्रति के अनर्ह बना देगा क्या ? भाईयों के बीच का झगडा कोई झगडा नहीं वह तो दोस्ती की उथल-पुथल है }

यहाँ गाँधीवादी कवि यह नहीं भूलते हैं कि कुरुक्षेत्र-युद्ध ऐसा ही भाइयों के झगडे का ही दुष्परिणाम था । फिर भी कवि, उसके ऊपर विजय पाने का संदेश देते हैं । सर्वधर्म समन्वय की स्थापना चाहनेवाले मानवतावादी कवि "पारवश्यम्" में कहते हैं कि सभी धर्मों का संदेश एक ही है , मानव की उन्नति । लेकिन हम धर्म के नाम पर मतभेद रखते हैं । [4] कवि भारत की समस्त जनता को सचेत करते हैं कि हम एकता के साथ एक परिवार के सदस्यों की तरह एक ही स्वर में आवाज़ बुलन्द करें तो हमारी यह चिर पराधीनता का अंत अवश्य ही होगा ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: चतुर्थ भाग- पृ. 95
2. --वही-- पृ. 96
3. सा:म: पाँचवाँ भाग- पृ. 24
4. सातवाँ भाग -पृ. 7

यहाँ गाँधीजी के शब्दों की प्रतिध्वनि सुनाई पडती है । "इरट्टिप्पडि" में कहा गया है कि गीता और कुरान में एक ही बात का उल्लेख हुआ है । हमारे समझदार पूर्वज यह जानते थे और एकता से जीते थे ।[1] लेकिन आज वह एक कहावत मात्र है । अपने को गाँधीजी के शिष्य माननेवाले कवि "ओन्नामत्ते मतम्" में ईसा, ईश्वर, अल्लाह आदि एक ही परम-पिता के नाम है - कहकर सर्वधर्म समन्वय का स्तुत्य प्रयास करते हैं । एक "धर्मराष्ट्र" की कल्पना करनेवाले कवि जनता से कहते हैं --

"भेदमोक्कयुं मिथ्याबोधत्तिन् पणित्तरम्
सोदरमरि वृथा तड्.ङ.ळिल् कलयाखिन्
आदियिलिन्त्याक्कार् नां, मुसलमान् , हिन्दु-क्रैस्त
वादिकळाकुन्नतु रण्डामतायक्कोळ्ळट्टे ,
द्वैतवर्जितर्नम्मळोरोट्ट समुदायम् ,
मातृसेवनं नमुक्कोन्नामत्तेतां मतम्[2]

(भेदभाव मिथ्याबोध से उत्पन्न होता है । हे भाइयों झगडा मत करो । पहले हम सब भारतीय हैं । मुसलमान हिन्दू और ईसाई बाद मे । हम में द्वैत भावना नहीं होनी चाहिए । हम सब का परिवार एक हैं । हमारा प्रथम धर्म मातृभूमि की सेवा है । )

ऐसा आह्वान कवि "इन्द्दयुडे करच्चिल्",[3] "पुतुवर्षम्"[4] आदि कविताओं में भी देते हैं । इस प्रकार सर्व-धर्म-समन्वय चाहनेवाले कवि "पारीतिले क्रिस्तुमत्" में ईसा के आदर्शों को प्रस्तुत करके ईसाईयों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: 9-पृ. 28-29
2. सा: म: 10 - पृ. 65
3. "इन्द्दयुडे करच्चिल्"- पृ. 11
4. "दिवास्वप्न" -पृ. 17, 18

काव्यांत में कवि आशा करते हैं -- इस भूमि में भी उसी स्वर्ग राज्य की स्थापना हो जाएगी, जिसका ईसा विभावन करते थे । [1] "मगदलन मरियम्" में भी कवि ईसा को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं । यहाँ ईसा को , श्रीकृष्ण के समान धर्मोपदेश देकर मानव की भलाई की स्थापना करनेवाला माना गया है । [2]
गाँधीजी द्वारा इच्छित हिन्दु-मुस्लिम एकता केलिए वळ्ळत्तोळ् भरसक कोशिश करते रहे । वे जाति-भेद के प्रति घोर विरोध करते हुए "सब खादी वस्त्र पहनें" में भारत के मुसलमानों एवं हिन्दुओं को खादी के धागों में पिरोकर एकता लाने का प्रयास करते हैं ।
मतैक्य के वक्ता कवि आगे कहते हैं :----

> भिन्नभिन्न समुदायपुष्पङ्ङली मन्निन्नोरोमनमालयायृतीस्वान्,
> चर्क्कनूल् विट्टु मट्टेन्तिलान कोर्तिडुं ? सद्गुरु चोदिच्यस्लुन्नु-
> गाँधीजी [3]

(भूमि के भिन्न-भिन्न धर्मों से एक माला गूँथना है तो चर्खे के धागों के अलावा क्या है ? सद्गुरु गाँधीजी पूछते हैं । ) "गाँधीजीयुडे तेजस्स" में भी कवि हिन्दु-मुस्लिम एकता की ओर प्रकाश डालते हैं । [4]

गाँधीजी के सर्व-धर्म-समन्वय से प्रभावित कवि ने उसकी स्थापना केलिए "अल्लाह" मग्दलन मरियम, बुद्धनुं मुहम्मदु नबियुं"आदि कृतियों की रचना की । "मिकच्च मुळ्क्किरीडम्" में कवि गाँधी की तुलना ईसा मसीह से करके धार्मिक एकता की स्थापना करना चाहते हैं । [5] "नम्मुडे अम्मा" में आपसी विद्वेष को भूलकर एकता से जीने का उपदेश दिया गया है । हम सब भाई-बहन हैं ,

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: - 11- पृ. 25
2. "वळ्ळत्तोळिन्टे पद्य कृतिकळ्"- पृ. 264
3. सा:म: 7/ पृ. 43
4. सा:म: 11/पृ. 2
5. 10/पृ. 102

संसार ही हमारा परिवार है । गाँधी जयन्ती के दिन में लिखी गई इस कविता में गाँधीजी के मृत्यु-दिन को सर्वोदयदिन समझते हुए कवि कहते हैं -- "भविक्क परिनेल्लां भावुक मोस्मोले ᳲलोका समस्ता सुखिनो भवन्तुᳲ यही गाँधीजी का चिरकाल-स्वप्न रहा है । वळ्ळत्तोळ् भी यहाँ इसी की स्थापना का स्तुत्य प्रयास करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक मानव जाति और धर्म को स्वयं सुधारने के मार्ग बताकर गाँधीवादी कवि सर्व-धर्म-समन्वय का महान कार्य करके मानवता की स्थापना का प्रयास करते हैं ।

4.8.2. रूढियों एवं कुरीतियों का विरोध

जाति प्रथा, वर्ण-व्यवस्था , आर्थिक दुस्थिति आदि असमानताओं के अलावा आलोच्य काल में कई अन्य दारूण समस्याएँ प्रचलित थीं । उनमें प्रमुख हैं , छुआछूत , हरिजनोद्धार आदि । धर्म के नाम पर पाखण्ड, कर्म काण्ड, आदि का बोलबाला था । नशीली चीज़ों का उपयोग , वेश्या समस्या आदि भी तत्कालीन समाज की कुरीतियाँ थीं । समाज की एकता के मार्ग में रूकावट पैदा करने वाली इस नीच स्थिति के खिलाफ काव्य रचना करना तत्कालीन साहित्यकारों के आत्माभिमान की बात थी ।

अस्पृश्यता निवारण और हरिजनोद्धार गाँधीजी की कर्मपरिपाटी का प्रधान अंश था । उनके अनुसार छुआछूत की भावना मानव समाज का भयानक शत्रु है । उन्होंने अछूतों को हृदय से लगाया उनके प्रति समाज में श्रद्धा, सहानुभूति और विश्वास का भाव उत्पन्न किया । उन्होंने अछूतों को हरि की संतान माना । उनकी राय में -"छुआछूत दूर करना एक ऐसा प्रायश्चित्त है जो सवर्ण हिन्दुओं को हिन्दू धर्म केलिए करना चाहिए । पवित्रता अछूतों में नहीं बल्कि ऊँची कहलानेवाली जातियों में होनी चाहिए ।[1] गाँधीजी समस्त भारत-वासियों की हार्दिक एकता चाहनेवाले थे । उसी से समाज कल्याण संभव है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. अरविन्द जोशी - "गाँधीविचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव-पृ. 77

नारी सुधार के क्षेत्र में गाँधीजी पर्दा-प्रथा का विरोध , वेश्यावृत्ति का हनन, बाल विवाह के प्रति असंतोष, विधवा विवाह समर्थन , सती प्रथा की भर्त्सना , अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन आदि बातों का व्यावहारिक समर्थन करते थे । गाँधीजी के अनुसार मादक द्रव्यों का उपयोग करनेवाले नैतिक दृष्टि से मर जाते हैं और उनकी आत्मा भी मर जाती है । आलोच्य कवि भी यही मानते थे । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् समाज की इन समस्याओं का गाँधीवादी दृष्टि से सूक्ष्म अध्ययन करके , उनके समाधान ढूँढने का अविचल कार्य करते हैं ।

8.2.1. गुप्तजी के काव्य में रूढ़ियों एवं कुरीतियों का विरोध

समस्त जाति , धर्म और स्तर के लोगों को गाँधीजी के चश्मे से देखने वाले गुप्तजी सामाजिक रूढ़ियों को सह नहीं सकते । मानव को ईश्वर की संतान माननेवाले कवि छुआछूत को समाज का शाप मानते हैं । मानवता की स्थापना केलिए कवि कहते हैं कि अछूत भी दूसरों के समान आदरणीय है । यहाँ गाँधीजी की विचार-धारा की स्पष्ट छाप दिखाई पडती है ---

रखे सब निज गौरव, मानव ही है मानव सर्व ।
देकर सब को आदर दान , दो निज मनुष्यत्व को माना ।
आखिर प्राणि मात्र हैं एक , विश्रुत है यह आर्य-विवेक ।[1]

"साकेत" में भी कवि यह भावना व्यक्त करते हैं उर्मिला कोल, किरात आदि भील बालिकाओं के साथ नाता जोडकर उनके उद्धार की कोशिश करती है ।[2] यहाँ भी गुप्तजी पर गाँधीवाद का प्रभाव द्रष्टव्य है । भारत के अछूतों की दशा पर व्यथित गुप्तजी के विचार, "अनघ" के "वाचक" द्वारा व्यक्त कराया गया है --

---

1. "हिन्दू"- पृ. 144
2. "साकेत"- अष्ठम सर्ग- प-16।

"इसका भी निर्णय हो जाय ,
नहीं अछूत मनुज क्या हाय ?
अपमानित अवनत वे दीन
क्या पशुओं से भी है हीन ?
मरे भले ही वे बेहाल ,
तो भी उनकी न हो संभाल ? [1]

इसके उत्तर में सुव्रत कहता है ---

जिनके बल पर खड़ा समाज , रहती है शुचिता की लाज ,
उनका त्राण न करना खेद है अपना ही मूलाच्छेद । [2]

कवि पूँजीवादियों को निम्नवर्गों के अधःपतन का कारण मानते हैं । अछूतों की रक्षा की प्रार्थना कवि यहाँ ईश्वर से भी करते हैं । गाँधीजी के मत में वे हरी के ही जन है , यहाँ गुप्तजी केलिए वे हरी के जन हो गए हैं ।

गुप्तजी धार्मिक विषमताओं की भीषणताओं का अनुभव करके उनके दूर होने की कामना करते हैं । "मंदिर और महन्त" में इनमें व्याप्त दोषों की चर्चा वे करते हैं । वे देखते हैं कि जो मंदिर के पुण्य का भंडार था आज वही पाप की राशि बन गया है । वहाँ के देवता आज महन्तगण ही हो रहे हैं और देवियाँ दासी । ऐसी जगह जाकर भक्त जन तन-मन तथा धन अर्पण किया करते हैं । [3] धार्मिक विकृतियों का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं --

"अब मंदिरों में राम जनियों के बिना चलता नहीं
अश्लील गीतों के बिना वह भक्ति फल फलता नहीं । [4]

---

1. "अनघ"- पृ. 45
2. पृ. 46
3. "भारत-भारती"- पृ. 128
4. पृ.

"नायरे , भवानतन्ने शुद्धरिल शुद्धन , वीडु
पोयाले , न्तनर्धमां जातिए रक्षिच्चल्ले " [1]

(हे नायर, आप ही विशुद्धों का विशुद्ध मानव हैं , घर जल गया तो क्या हुआ, अपनी कीमती जाति की रक्षा तो की है ना ? )

"ओरु तोण्णियात्रा" में भारत के हिन्दुओं को मानसिक एवं धार्मिक अधःपतन से मुक्ति दिलाने का कार्य किया गया है । [2] यहाँ व्यंग्य किया गया है कि उनके शरीर की धूलि से स्वयं धूलिधूसरित हो जाने के भय के कारण अपने आप को श्रेष्ठ समझने वाले उन्हें "अछूत" की संज्ञा देते हैं । अछूतों की स्वतंत्रता की चारों तरफ रूढ़ियों एवं कुरीतियों की ऊँची दीवार खड़ी कर दी गयी थी । "मषयत्तोरु - नडत्तम्" में कवि सबके समाधान की खोज करते हैं । [3] उन्नत कुल जातों की उन्नति के पीछे इन अछूतों के पसीने की कीमत की कथा है , फिर भी वे अशुद्ध है । कवि पूछते हैं कि उन्होंने अपराध किया क्या है ? वे स्कूल में नहीं जा सकते थे , उनके लिए सभी तरह की शिक्षा निषिद्ध थी । तब यहाँ की शिक्षा केवल व्यवसाय रही थी । "ऐक्यमे सेव्याल् सेव्यम्" में कवि पूर्वजों को स्मरण करते हुए कहते हैं कि उनके संस्कार में ऐसी कोई अनाचार दिखाई नहीं देता है । [4] जब तक हम अपनी मूर्खता से मुक्त नहीं हो पायेंगे तब तक हमें आर्षधर्म का मंगल गान सुनाई नहीं देगा । हम अपने राष्ट्र में पराधीन ही रहेंगे । कवि आशा करते हैं-

गंगयुं कालिन्दियुमोत्तिण्ड़. डि.यालत्ते-
द्मंगियच्चेर्चयुक्कुण्डाय ऐक्य मे सेव्याल सेव्यम् । [5]

---

1. सा:म: 5- पृ. 72
2. सा:म: -3- पृ. 15
3. सा:म: -5- पृ. 17
4. सा:म: पाँचवाँ भाग- पृ. 92-93
5. पृ. 94

§गंगा और कालिन्दी के संगम से जिस शोभा की संभावना है वह उस संगम को भी होगा , ऐक्य ही सेव्यात सेव्य है । § यहाँ कवि सवर्णों और अवर्णों के संगम की ही विभावना करते हैं । सवर्ण गंगा और कलिन्दी का संगम कवि का स्वप्न मात्र है । आज यही समस्या विश्वभर प्रश्न चिह्न लगाती है । "पांसुस्नान" में कवि अछूत्तोद्धारों का प्रशंसनीय प्रयास करते हैं । [1] इससे भी बड़ा अनाचार था मंदिर प्रवेश । अछूतों और निम्न जाति के लोगों को मंदिर में जाने की अनुमति नहीं थी । आर्य समाज के आचार्य स्वामि श्रद्धानन्द ने केरल में आकर यहाँ के निम्न वर्गों को मंदिर प्रवेश की आवश्यकता के बारे में समझाया । यही समस्या को देखकर विवेकानन्द ने केरल को "पागलखाना" कहा था । गाँधी के भी केरल में आने का मुख्य कारण मंदिर प्रवेश ही था । मानव को आपस में प्रेम करने का ये सब संदेश देनेवाले थे । वळ्ळत्तोळ् भी यही कार्य करते हैं । [2] "वीरशृंखला" की "शापमोक्ष" नामक कविता में कवि मंदिर-प्रवेश-समस्या के समाधान ढूँढते हुए एक निम्नजाति की औरत को अपनी स्वामिनी के साथ मंदिर के अंदर भेजते हैं । उसकी संतृप्ति से कवि कहते हैं -

"कात्तुकात्तिरुन्नेरे नाळिनाळप्पुण्याद्वैत-
क्षेत्रत्तिन्नयित्तमां शापमिन्नोषिञ्ञतिल
आश्वासमार्न्नी क्षेत्रं विट्टोरु निश्वासं पोल
आकाशत्तता पोङ्ङी सुगन्धाहुति धूमम्" [3]

§कई दिनों की प्रतीक्षा के बाद आज इस अद्वैत भूमि §केरल § के मंदिर का शाप दूर हो गया है । मंदिर से आनेवाला खुशबूदार धूम, उस मंदिर के आश्वासन के निश्वास की तरह आकाश की ओर उठा । § असल में मंदिर-प्रवेश-निषेध से

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: आठवाँ भाग - पृ. 16
2. दसवाँ भाग- पृ. 62-63
3. "वीरशृंखला" - पृ. 57

मंदिर भी पराधीनता का अनुभव करता था यही कवि का मतलब है ।
"एक कुडुंबं भुवनम्" में भी कवि सबकी धार्मिक एकता की कामना करते हैं । [1]
रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों को भूल कर एकता से आगे बढ़ने और विश्व बन्धुत्व की स्थापना करने का कवि निमंत्रण देते हैं ।

इनके अलावा समाज में प्रचलित , जन्तु बलि, नर बलि आदि अतिक्रूर अनाचारों का भी कवि अंत करना चाहते हैं । "मणलकार्र." "पांसुस्नान", कोष्ठी, "मलयालत्तिन्टे तलॉ," आदि "साहित्यमंजरी" की कविताओं में इसका प्रतिपादन हुआ है । इसकी विशद चर्चा "अहिंसा" में हुई है । इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् अपने समाज में प्रचलित रूढियों एवं अनाचारों के समाधान ढूँढने का स्तुत्य प्रयास करते हैं ।

## 4. 9. युद्ध विरोध एवं विश्व बन्धुत्व

प्राचीन भारतीय संस्कृति में , समन्वयात्मकता पर अधिक ज़ोर दिया जाता था । भारतवर्ष के पूर्वज, अहिंसा, कर्मण्यता, धार्मिक एकता आदि महान आदर्शों के रखवाले थे । आर्ष-संस्कृति पर अटूट विश्वास रखनेवाले गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भी उन महान आदर्शों को प्रायोगिक स्तर पर स्थापित करने का प्रयास करते रहे । अहिंसा पर बल देकर दोनों कवि युद्ध का विरोध करते हैं । शांति की स्थापना केलिए युद्ध को रोकना अनिवार्य है । जहाँ शांति नहीं है वहाँ मानवता भी नहीं होगी । इस प्रकार मानवता की स्थापना करके दोनों कवि विश्व बन्धुत्व की ओर बढ़ने का सफल प्रयास करते हैं । गाँधीजी अहिंसा एवं सत्य के रखवाले होने के नाते युद्ध का घोर विरोध करते थे । युद्ध से मानव एवं मानवता की हानि होती है । गाँधीजी किसी भी हालत में हिंसा को क्षमा नहीं कर सकते थे । अहिंसात्मक एवं आयुधविहीन युद्ध के वे समर्थन करते थे । अहिंसात्मक युद्ध करके भारतमाता को स्वतंत्रता दिलाने में गाँधीजी सशक्त रहे हैं । हिंसात्मक युद्ध के विरोधी राष्ट्र-पिता, वसुधैव कुटुंबकम्" के विश्वासी थे ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "वीरश्रृंखला"- पृ. 64-65

गाँधीजी विश्वमानवता की स्थापना केलिए ही अहिंसा और सत्य की स्थापना चाहते थे । गाँधीजी के इस विचार से गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् सदैव सहमत हैं । वे भी युद्ध का विरोध करके विश्व शांति की स्थापना की ओर अपनी लेखनी चलाते हैं ।

## 4.9.1. गुप्तजी के काव्य में युद्ध विरोध एवं विश्व-बन्धुत्व

विश्वबन्धुत्व की महान भावना से सजग गुप्तजी युद्ध का घोर विरोध करते हैं । अहिंसा भाव से प्रेरित होकर वे कहते हैं --

"हमारी असि रुधिररत हो न कोई कहीं हताहत हों
वे वैर की यथार्थ शुद्धि वैर से नहीं प्रेम से करना चाहते हैं । [1]

कवि के अनुसार स्वार्थ और मोह के बदले यदि निस्वार्थता और ममता हो तो युद्ध-भीति को दूर किया जा सकता है । कवि मानव प्रगति के अवरोध तथा हत्या, रक्तपात आदि अमानवीय कृत्यों की सांस्कृतिक स्तर पर आलोचना करते हैं । युद्ध की भयानकता की ओर संकेत करते हुए मानवतावादी कवि उस अनर्थ से बचने का उपदेश देते हैं ।[2] गुप्तजी युद्ध को परत्व के विकास की परिसीमा मानते हैं । इससे व्यक्ति-व्यक्ति के बीच द्वन्द्व एवं प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है । "विश्ववेदना" में विश्वमहायुद्ध जन्य भीतियों से पीडित कवि का मन एकता केलिए रो उठता है --[3]

मानवतावादी कवि ऐसे ही एक रामराज्य की कामना करते हैं, जहाँ पर भावात्मक ऐक्य हो और भूतल ही स्वर्ग बन जाए । इस ऐश्वर्यपूर्ण रामराज्य में व्यक्ति आपस में कहेगा --

आ भाई वह बैर भूलकर हम दोनों समदुःखी मित्र
आ जा क्षण भर भेंट परस्पर कर लें अपने नेत्र पवित्र ।[4]

---

1. "हिडिंबा"- पृ. 34
2. "युद्ध"- पृ. 55
3. "विश्व-वेदना"- पृ. 5
4. "साकेत"- पृ. 446

और इस प्रकार एकता की भावना सफल हो सकेगी । इसी एकता के विचार रखनेवाले कवि को चीन द्वारा किए गए आक्रमण ने अतीव झकझोरा था । इसका स्पष्टीकरण "विजय पर्व" नामक रचना में होता है ।

गुप्तजी की समन्वयात्मकता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना "हिन्दू" में उभर आती है । हमारे पूर्वज सत्यवादी , कर्मयुक्त, त्यागनिष्ठ और देवतुल्य थे । कवि आधुनिक भारत में एक बार फिर ऐसे ही एक स्वर्गतुल्य भूतल की आशा करते हैं , जहाँ सभी स्तरों में एकता और समभावना हो । जिन भारतीयों की संस्कृति ने अहिंसा परमोधर्म बताया है , जहाँ "परोपकार: पुण्याय पापाय-परपीडनम्" माना जाता है , जो सर्वे सुखिन: सन्तु सर्वे सन्तु निरामया:" मानते हैं , जिनका लक्ष्य " वसुधैव कुटुंबकम्" रहा है उनके बीच विश्व बन्धुत्व की भावना क्यों न जगे ? [1] यहाँ कवि आर्ष संस्कृति की ओर पूर्ण रूप से झुके हुए मालूम होते हैं । मानवतावादी कवि का एक मात्र विश्वास मानव धर्म की रक्षा पर है । इसी मानवधर्म की भावना ने उन्हें विश्वबन्धुत्व की ओर आकृष्ट किया है । अपने पूर्वजों के सुर में सुर मिलाकर गुप्तजी कहते हैं --

सब सुख भोगें , सब रोग से रहित हों ।
सब शुभ पावें , न हो दु:खी कहीं कोई भी । [2]

ऐसी भावना उनकी "भारत-भारती" में भी है । [3] सर्वभूत हितरत निजधर्म माननेवाले कवि का सिद्धान्त "बहुधर्मी फिर एक कुटुंब" वाला है । उनके मत में भिन्न-भिन्न धर्म के होते हुए भी मानव आपस में बन्धु बन सकते हैं । [4] "कुणालगीत" में यह तत्व सर्वाधिक प्रत्यक्ष में आया है । करुणा एवं अहिंसा की

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीय और विश्वबन्धुत्व"-डा. सुनीता-पृ. 42 (गुप्तजी स्मारिका)
2. "युद्ध" - पृ. 53
3. "भारत-भारती- पृ. 145
4. "भारत-भारती"- पृ. 179

पृष्ठभूमि में कुणाल के सामाजिक कर्तव्यों तथा विश्वबन्धुत्व की भावना ने उनके चरित्र को उज्ज्वलता प्रदान की है । कुणाल से कहलाया गया है --

चाहता हूँ मैं सबका त्राण
देखूँ निर्मल निखिल सृष्टि में
आऊँ सबकी प्रेमदृष्टि में दूँ सबको विश्वास ।[1]

एकता का मूल यही आपसी विश्वास है । "हिन्दू" की भूमिका में कवि कहते हैं -" कवित्व ही यह सोचेगा । संसार के सम्मिलित स्वर्ग की कल्पना का भार भी उसी पर छोड देना चाहिए । वही में विश्व के सौन्दर्य-स्वर्ग का अनुभव करा सकता है " ।[2] ऐसे विश्वास रखनेवाले कवि वेद के उपदेश को परम शांतिप्रद समझते हुए उसके द्वारा विश्वकल्याण की शुभकामना करते हैं ।[3] इस प्रकार कवि पूर्वजों के महान गुणों का प्रतिपादन आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके , उन्हीं भावों के औचित्यपूर्ण अनुकरण एवं आचरण से एक विश्व-परिवार की स्थापना की कल्पना करते हैं ।

4. 9. 2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में युद्ध विरोध एवं विश्व बन्धुत्व

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी मानव विनाशकारी युद्ध के घोर विरोधी हैं । अहिंसा की स्थापना चाहनेवाले गाँधीवादी कवि लोक राष्ट्रों की युद्ध-नीति और आयुध निर्माण पर विरोध प्रकट करते हुए कहते हैं -- भारतीय जनता अणु-आयुधों से युद्ध करने केलिए तैयार नहीं है । भारत दूसरों की रीढ से अपना बन्दनवार रचना नहीं चाहता और दूसरों की लाशों से अपने स्वर्ग की सीढ़ियों का निर्माण करना नहीं चाहता ।[4] "एक विवाहोत्सव" में कवि,

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "कुणाल गीत"- पृ. 33
2. "हिन्दू"- भूमिका- पृ. 2
3. "भारत-भारती"- पृ. 182
4. सा:मा:7- "किसानों का गीत"- पृ. 92

संसार के सभी चीजों का विनाश कर , प्रकृति को जीत लिया है , ऐसा सोचनेवालों से अपनी शक्ति लोक कल्याण केलिए उपयोगी बनाने को कहते हैं । पडोसी राष्ट्रों के विनाश से खुद का ही नाश होता है । यह कवि की मानवता का द्योतक है । किसी भी प्रकार से दूसरों पर जीत चाहनेवालों से कवि कहते हैं-

"पद्टु मेलाप्पिता, वानमडच्चिट्टुमेट्ट पीरंकितन धूमप्पडर्प्पिनाल्,
भूतलं नीले मेषुकियिरियुक्कुन्नु, योधरतन चोरयां कुंकुमच्चारिनाल ।[1]

(सारे आकाश में तोप के घोर धूम ने एक नया कपडा बिछाया है । योद्धाओं के रक्त से सारी भूमि आच्छादित हुई है ।) युद्ध के दुष्परिणाम में अनेक बच्चे , युवक, स्त्रियाँ मर जाते हैं , कई अनाथ बन जाते हैं , कई विधवा बन जाती हैं , बहुत लोग विकलांग और मनोरोगी भी बन जाती हैं । इस प्रकार कवि युद्ध के क्रूर स्वभाव के बारे में जनता को अवगत कराते हैं । "पिन्मारुपिन" "शिप्पायि-लहला" आदि में भी कवि युद्ध विरोध करते हुए अहिंसा की स्थापना चाहते हैं ।[2] "क्षत्रिय प्रभावं" में कवि एक युद्ध के दुष्परिणामों का वर्णन करते हैं । युद्ध भूमि में अनेक लोग मरे पडे हैं ।[3] युद्ध भूमि के कारुणिक दृश्यों का वर्णन करके यहाँ भी कवि युद्ध-विरोध करते हैं । "वेलिच्चम्"[4] में कवि पाकिस्तान, फ्रान्स, ईजिप्त, ब्रिटन, अल्जीरिया आदि देशों के बीच के युद्ध का प्रतिपादन करके युद्ध के स्थान पर शांति की स्थापना करना चाहते हैं । फ्रान्स और अल्जीरिया के बीच के युद्ध में अल्जीरिया की स्वतंत्रता छीन ली गई । इसका वर्णन हुआ है "करुप्पुं वेलुप्पुम्" में । "अभिवाद्यं" नामक कविता संकलन की "कादुट्ट वीशित्तुडङ्ङी" में युद्ध विरोध कवि अणुशक्ति को मानव की भलाई केलिए उपयुक्त बनाने को कहते हैं ।[5] इसी संकलन की "अंधान पिरन्नाट्" में भी कवि युद्धविरोध करते हैं।[6]

---

सा·म·

1. 8/ पृ . 63
2. 9/22, 44
3. 10/ 1
4. 10/66
5. "अभिवाद्यं" पृ. 17
6. " " पृ. 37

इस प्रकार युद्ध के खिलाफ रचना करनेवाले वळ्ळत्तोळ् मानव की भलाई मात्र चाहते हैं । ऐसा करके मानवतावादी कवि विश्वबन्धुत्व को वाणी देते हैं । आर्षभारतीय आदर्शों पर अटल विश्वास रखनेवाले कवि विश्वमानवता की ओर बढ़ते हैं --

> नन्नायिस्सुखिय्क्कुमाराकट्टे लोकं सर्व-
> मेन्नल्लो, भारतोर्वि पंडे पाडिय गानम् । [1]

(सारा संसार अच्छीतरह सुखों का अनुभव करे । यही भारतभूमि का पुराना गीत है ।) "चोदिय्क्कुविन" (पूछो) नामक कविता में भी कवि विश्वबन्धुत्व की कामना करते हैं । लोक-कल्याण की कामना करनेवाले कवि "वास्तवं सन्चयो" में पूछते हैं -- शांति से रहनेवाले देशों में आक्रमण करना धर्म है क्या ? [2] यहाँ गाँधीवादी कवि सभी को अपने सहजीवि मानकर एकता के साथ आगे बढ़ने का उपदेश देते हैं । इस प्रकार यत्र-तत्र-सर्वत्र शांति की स्थापना चाहनेवाले महाकवि विश्व-बन्धुत्व द्वारा सारे भूगोल में शांति की ध्वनि सुनना चाहते हैं ।

## 4. 10. निष्कर्ष

मानवतावाद सच्चे अर्थ में आधुनिक काल की देन है । फिर भी इसका अस्तित्व प्राचीनता से जुडा हुआ है । आधुनिक काल में आते-आते मानव मूल्यों का ह्रास होने लगा और प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थता तक सीमित रह गया । ऐसी स्थिति में समाज में गाँधीजी का पदार्पण हुआ। उन्होंने ही मानव मूल्यों की पुन-प्रतिष्ठा केलिए वास्तविक प्रयास किया है । गाँधीजी ने प्राचीन संस्कृति के मूल्यवान तत्वों से जन-साधारण को परिचित कराया । यही कार्य साहित्य के क्षेत्र में गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् ने भी किया है । दोनों कवि मानवता की प्रतिष्ठा केलिए गाँधीजी को गुरु मानकर प्राचीन संस्कृति को साधन बनाते हैं ।

---

1. सा:म:7/94
2. "इन्दुयुडे करच्चिल"-पृ. 45

अहिंसा तत्व की स्थापना दोनों का ध्येय है फिर भी वळ्ळत्तोळ् अहिंसा की ज़्यादा चर्चा करते हैं । दोनों सत्य के विश्वासी और नीति तत्वों के रखवाले हैं । गाँधीजी की चिंतन धारा से पूर्णतः सहमत होकर दोनों कवि कर्म को ही मानव का धर्म मानते हैं । निस्वार्थ कर्म करके समष्टि की भलाई केलिए आगे बढ़ने के लिए वे उद्बोधन देते हैं । गुप्तजी गाँधीजी की तरह वर्ण-व्यवस्था पर विश्वास रखते हैं, फिर भी उसके मूल में जन्म नहीं कर्म है । लेकिन वळ्ळत्तोळ् वर्ण व्यवस्था की चर्चा मुश्किल से ही करते हैं । उनके लिए एक ही वर्ण है और एक ही धर्म है, वह मानवता पर अधिष्ठित कर्म है । पारिवारिक धर्म और मानव की महिमा का विश्लेषण करते हुए दोनों कवि पुनर्जन्म, अवतारवाद आदि की ओर प्रकाश डालते हैं । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् देवत्व पर मानवता की ओर सन्यास पर गार्हस्थ्य की विजय की स्थापना करते हैं । समाज सुधार के पक्ष में, दोनों कवि सर्व-धर्म-समन्वय करके विश्व-मानवता की संभावना के बारे में सोचते हैं । दोनों कवि भारत के समस्त धर्मों का प्रतिपादन करके सभी धर्मों के महान पुरुषों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं । लेकिन वळ्ळत्तोळ् इस विषय में अधिक व्यावहारिक प्रसंगों की सहायता लेते हैं । यह सामयिक प्रभाव का परिचायक अवश्य है । मानवता की स्थापना केलिए दोनों कवि हिन्दू धर्म की कुरीतियों का स्पष्ट चित्रण करते हैं, जो सामयिक भी हैं । वळ्ळत्तोळ् मुसलमान धर्मों एवं केरल की धार्मिक कुरीतियों का भी उल्लेख करते हैं, जो व्यावहारिक अधिक हैं । विश्व शान्ति के स्वप्न देखनेवाले अपने कवि युद्ध का भी घोर विरोध करते हैं । इस प्रकार मानवता की स्थापना केलिए गाँधीवादी गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् सामयिक समस्याओं का उद्घाटन करके, उसका समाधान ढूँढकर जनता को सांस्कृतिक मार्ग पर लाने का सच्चा प्रयास करते हैं । इससे ही मानवता और विश्व-शान्ति की स्थापना हो सकती है ।

**************

# पंचम अध्याय

## मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् के काव्य में

## नारी का स्वरूप

## पंचम अध्याय

## 5. मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी का स्वरूप

आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी का स्वरूप पिछले सभी कालों की नारी-भावना से भिन्न है । इसके कई कारण भी हैं । बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में बडा परिवर्तन हुआ । इस समय भारतीयों का मानसिक संतुलन वह नहीं रह सका जो पूर्व-युग में था । ऐसी अवस्था में अंग्रेज़ी शिक्षा ने भारतीय मस्तिष्क को नए नए विचारों से उद्बोधित कर दिया । वे अपने प्रश्नों का समाधान करने केलिए बाध्य हुए और अपने जीवन में पहली बार अपनी समस्याओं से जूझने लगे ।

भारत की उन्नति एवं विकास के मार्ग में सबसे बडी बाधा उत्पन्न करने वाली समस्या नारी की थी । यहाँ की नारी शताब्दियों तक पर्दे के पीछे रहकर दलित और उपेक्षित जीवन व्यतीत करती हुई अपने आप को नालायक समझने वाली बन गई । सबसे पहले राजाराम मोहनराय ने उसे इस शोचनीय दशा से उबारने का प्रयास किया । लेकिन वह अधिक सफल न हुआ । आगे शिक्षा प्राप्त कर स्त्रियाँ अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के प्रति सचेत हुईं । वे सार्वजनिक क्षेत्र में उत्साह के साथ उतरीं । आधुनिक नारी की सभी जीवन-परिस्थितियों का प्रभाव कवि मस्तिष्क पर पडा और उसने अपनी संस्कृति और सभ्यता, अपनी प्रवृत्ति एवं देश की राजनीतिक तथा सामाजिक आवश्यकता के अनुसार उनका चित्रण किया ।[1]

वैदिक युग की विदुषि संस्कृत कवियों की कांचन-कमलिनी तन्वंगी, तुलसी की सौम्य किन्तु "सहज अपावनी", रीति काल की हास-विलास-मयी सुकुमारी सभी गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के युग में आकर नई जागृति को अपनानेवा

---

1. हिन्दी साहित्य में नारी" - सरलादेवी- पृ. 77

धीर पत्नियाँ एवं माताएँ बन गईं । इस समय का कवि अबला नारियों की करुण दशा पर दया के कुंकुम चढ़ाने लगा --

"अबला-जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी
अंचल में है दूध और आँखों में पानी ।"[1]

और उन्हें इस दुरवस्था से ऊपर उठाने के निरन्तर प्रयत्न में लग गया । सांस्कृतिक नवोत्थान ने पतन की ओर अग्रसर होते हुए भारत को अतीत के स्वर्णिम पृष्ठ उलट कर देखने केलिए प्रेरित किया । विभिन्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं के ज़रिए उनके संस्थापकों ने जनता में क्रान्ति फैला दी । इसका प्रभाव तत्कालीन कवियों पर भी पडा । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है । उन्होंने नारी-जाति की उन्नति केलिए प्राचीन संस्कृति का उद्घोष अनिवार्य माना । तत्कालीन पीडित स्त्रीत्व के पुनरुत्थान केलिए आलोच्य कवियों ने आर्ष भारत के स्त्रीत्व के बारे में समकालीन जनता को अवगत कराया और अनेक पौराणिक और अन्य स्त्री पात्रों को सामयिक बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया । समकालीन स्त्री समूह की विषमताओं का चित्रण करके गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् नारी की उच्च भावना प्रस्तुत करते हैं ।

## 5. 1. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी के विविध संबन्ध

पारिवारिक संबन्ध ही नारी का सबसे प्रमुख संबन्ध है । पारिवारिक संबन्ध में उसके पुत्री, पत्नी, माता, प्रेमिका, बहिन आदि रूप सशक्त हैं । समाज तथा परिवार में नारी का स्थान, नारी,-मूल्य आदि अपनी पूर्ण व्यापकता के साथ गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की काव्याभिव्यंजना केलिए निधि स्वरूप बन गए हैं । नारी उत्थान तत्कालीन युग की सामयिक प्रतिबद्धता हो

---

1. मैथिलीशरण गुप्त- "यशोधरा"- पृ. 47

सकती थी क्योंकि समाज सुधारकों और राष्ट्रीय आन्दोलन कर्ताओं ने सामाजिक और पारिवारिक परिवेश से निकलकर नारी को पुरुष की सहज सहयोगिनी दिखाकर गरिमामयी बनाया । आलोच्य कवियों की नारी , कहीं भी हीन, अनुदात्त और गरिमाहीन नहीं है । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में "परिवार और नारी" तथा "समाज और नारी" निस्सन्देह विशेष अध्ययन के विषय रहे हैं ।

5. 1. 1. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में परिवार और नारी

प्राचीन युग में तो नारी-जीवन की सफलता ही पुत्रवती होने में मानी जाती थी और पत्नी भी पुत्रवती होकर आदर प्राप्त करती थी ।[1] इसी के अनुसरण पर गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ्, दोनों कवि नारी को परिवार की ज्योति मानते हैं । उन्होंने पारिवारिक पृष्ठभूमि पर नारी के माता, पत्नी, प्रेमिका आदि आदर्श रूपों का चित्रण करने का प्रयास किया है ।

5. 1. 1. 1. गुप्तजी के काव्य में माता का स्वरूप

नारी के प्रेयसी रूप यदि उसके जीवन का आकर्षणयुक्त मधुर पक्ष है तो मातृत्व मंगलकारी पुनीत पक्ष है । मातृत्व का सौन्दर्य ममता, वात्सल्य, स्नेह सेवा आदि भावनाओं से भरा हुआ है । शिशु केलिए पोषक मातृस्तन्य को अभूतपूर्व शक्ति एवं गुणों से युक्त और पापों को नष्ट करनेवाला माना गया है । देशोद्धार से अनुप्राणित गुप्तजी मातृस्तन्य के प्रति पूर्ण निष्ठावान हैं ---

"हम मरते हैं स्तन्यदान कर हमें बचाओं क्षमता दो
देखें कौन घृणा करते हैं , हमको तुम निज ममता दो ।[2]

माता के रूप में नारी ही देश के शील की प्रतीक है । लज्जा और सुशीलता की

---

1. अल्टेकर, "पोजिशन आफ विमन इन हिन्दू सिविलिज़ेशन"- अध्याय-3, पृ. 118
2. "स्वदेश संगीत"- पृ. 82

प्रतिमूर्ति माँ ही पथ-भ्रष्ट पुत्रों का सच्चा पथ-प्रदर्शन कर सकती है । गुप्तजी ने "स्वदेश संगीत" में ऐसी माँ का चित्रण किया है । [1] माता के अपने बच्चों के साथ के वात्सल्यमय-संबन्ध के बारे में कवि सचेत हैं । अपनी संतान केलिए "उर्वी से गुर्वी है माता", [2] "जननी से कौन समद्धि बडी", [3] "माँ के पैरों तले-स्वर्ग है " [4]। माँ बच्चों का अमंगल कभी नहीं चाहती । गुप्तजी की कैकेयी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है -" माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले हो " [5] उसी प्रकार यशोधरा ने अपने पुत्र राहुल को उपदेश दिया है कि आत्मनिर्भरता जीवन को सार्थक बनाती है । मन को दुर्बल बनाना उचित नहीं है । जिसका मन क्षुद्र होता है , उसकी अवनति होती है और जो दृढ़ भाव से कार्य करता है उसकी उन्नति अवंश्यंभावी है । [6] गुप्तजी की कौसल्या भी आदर्श माता है । उन्होंने राम से यही अभिलाषा व्यक्त की है कि धर्म की रक्षा पुत्र को प्रत्येक दशा में करनी चाहिए ---

> जाओ बेटा ! तब वन ही ,
> पाओ नित्य धर्म-धन ही । [7]

"बक-संहार" में माता कुंती ने अपने पुत्रों से कहा कि शत्रु को पराजित कर यश की प्राप्ति पिता की संपत्ति की रक्षा आदि में सभी भाइयों में समानता की भावना होनी चाहिए तथा दुःख-सुख में समभाव रहकर कर्तव्यपालन करके संसार के सामने आदर्श का उदाहरण प्रस्तुत करें । [8]इसी काव्य में ब्राह्मणी अपनी पुत्री

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "स्वदेश संगीत" - 82-83-मातृ मंजल
2. "जयभारत"-पृ. 234
3. --वही--"युयुत्सु-" पृ. 350
4. "काबा और कर्बला-पृ. 29
5. "साकेत"-अष्ठम सर्ग, पृ. 249
6. "यशोधरा"- पृ. 81, 55
7. "साकेत"- चतुर्थ सर्ग- पृ. 107
8. "बक-संहार"- पृ. 39/

की रक्षा केलिए पति से विनय करती है -" दारादि की रक्षा करे धन से सदा" । मातृत्व पर आघात भ्रातृ-प्रेम को भी उखाड फेंकता है और नारी की उस प्रतिहिंसा को जागृत कर देता है जो अर्द्ध-चेतना में चिल्ला उठती है --

"पर अब भी बन्धनम में हूँ मैं विवश, देख लो बेटा,
और कंत उच्छृंखल अब भी सुख-शय्या पर लेटा ।
"जाओ मेरे प्रेत तुम उसे प्रथम लग जाओ ,
सुख से सो न सके वह देखो , "हूँ" कर उसे जगाओ । [2]

इसी प्रकार अनन्य पुत्र स्नेह से पूर्ण मघ की माता मघ की रक्षा करते हुए भी मोह से कर्तव्य च्युत नहीं पाई जाती । वह स्वयं एक विशाल मातृत्व से युक्त होकर न केवल अपने पुत्र की माँ है वरन् ग्राम के बालक-बालिकाओं की माता है । वह स्वार्थहीन है । जन-सेवा-व्रतधारी पुत्र की, वह बाधा नहीं बनती । साधारणतः बिना पुत्र को भोजन कराए , उसे भूख नहीं लगती थी किन्तु आज जब ग्रामवासियों पर कष्ट के बादल छाये हैं वह मघ से कहती है --

जा, जी में कुछ सोच न कर
तू मेरा संकोच न कर । [3]

यहाँ "अनघ" में कवि आदर्श माता का चित्रण करके तत्कालीन नारी जाति को उद्बोधन देते हैं । अपने पुत्र केलिए उसका आशीर्वाद तो यही है --

जाओ बेटा, दंड मिले सो तुम सहो ,
अपने व्रत पर अटल अचल यों ही रहो । [4]

गुप्तजी ने यशोधरा का मातृत्व एवं जननी रूप का उज्ज्वल चित्रण "यशोधरा" में किया है । पति-विमुक्त नारी का एक मात्र सहारा अपना पुत्र हो गया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "बक-संहार"- पृ. 13
2. "द्वापर"- पृ.
3. "अनघ"- पृ.
4. -"अनघ"- पृ.

अब वह केवल पुत्र केलिए जीती है । यदि राहुल के पालन का भार उस पर न होता तो वह आत्महत्या कर लेती । अपनी मानसिक स्थिति को समझाती हुई वह कहती है --

"स्वामि मुझको मरने का भी दे न गया अधिकार,
छोड गए मुझ पर अपने उस राहुल का सब भार । [1]

राहुल जब चन्द्र खिलौना लेने केलिए हठ करता है तब यशोधरा का हृदय आह्लाद से भरा आता है । उसका वात्सल्य चरमसीमा पहुँच जाता है । कवि ने "यशोधरा" में राहुल को आलंबन बनाकर वात्सल्य प्रेम की व्यंजना केलिए खूब ही अवकाश निकाल लिया है । [2] इस प्रकार कवि ने स्त्री के मातृहृदय के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करके उसे समकालीन समाज के योग्य प्रस्तुत किया है ।

### 5.1.1.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में माता का स्वरूप

पुराणों के अनुसार वळ्ळत्तोळ् ने भी नारी के माता-रूप को सबसे पूजनीय माना है । मातृत्व के सभी भावों का भी कवि चिन्मय चित्रण उपस्थित करते हैं । गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी मातृस्तन्य की अभूतपूर्व शक्ति के बारे में लिखते हैं -" माता के वात्सल्य पूरित दूध के पीने पर ही बच्चे संपूर्ण रूप से पल सकते हैं और माता के परिशुद्ध हाथों से खिलाने पर ही अमृत भी अमृत सा लगता है । [3] पुराणों में पार्वती को ही आदर्श माता के रूप में चित्रित किया गया है । वळ्ळत्तोळ् भी पार्वती को अपने दो काव्यों में आदर्श माता के रूप में चित्रित करते हैं । "गणपति" में पार्वती अपने पति को रोकने केलिए अपने शरीर-मालिन्य से एक पुत्र का निर्माण करती है । आगे उसका मातृहृदय उससे कहता है -"मेरा पुत्र, अब यहाँ तुम्हारे सिवा कोई भी नहीं है , मेरी बातों

---

1. यशोधरा- पृ. 48
2. डा. रामेश्वर लाल खण्डेलवाला- "आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य"- पृ. 283
3. साहित्य मंजरी- सातवाँ भाग- मेरी भाषा-पृ. 57

को सुनने केलिए । अब माता पुत्र को शक्ति केलिए एक लाठी भी देती है ।[1] आगे शिव के सैन्यों के साथ युद्ध के समय में उस पुत्र को अपनी माता के कटाक्ष रूपी कवच के पहनने के कारण वज्र भी तृण सा लगा ।[2] यहाँ कवि मातृत्व की शक्ति को ही चित्रित करते हैं । कवि आगे पार्वती को जगदम्बा कहते हैं, जब पार्वती देखती है कि अपना पुत्र युद्ध में सैन्य के बीच में अकेला है, तब पुत्र की रक्षा के लिए माता दो देवियों की भी सृष्टि करती है ।[3] यहाँ माता की ममता पूर्ण रूप से उभर आती है ।

"शिष्यनुं मकनुम्" शिव से मिलने केलिए आनेवाले शिष्य भृगुराम और पुत्र गणपति में संघर्ष होता है । संघर्ष में गणपति का दाँत काटा जाता है । आक्रोश सुनकर शिव-पार्वती वहाँ आते हैं । आते ही पार्वती बेटे को अपनी गोदी में बिठा लेती है । रक्त में सने पुत्र को देखकर पार्वती का मातृहृदय क्षुब्ध हो उठती है और शिव से कहती है :--

"किट्टीलयो दक्षिण वेण्डुवोलं विशिष्टनां शिष्यनिल् निन्निदानीम्,
दिव्यायुधं वल्लतुमुंडु बाक्कियेन्नालतुं नल्कियनुग्रहिक्काम् ।।[4]

(अब तो विशिष्ट शिष्य से आवश्यक दक्षिणा मिल गई हैं ना अब कोई दिव्यायुध बचा है तो वह भी देकर आशीर्वाद दें ।) पार्वती का यह स्त्री सुलभ एवं मातृ सहज व्यंग्य और प्रलाप बडा ही आकर्षक और मार्मिक हुआ है ।

"अच्छनुं मकळुम्" में कवि शकुन्तला के आदर्श मातृत्व को दिखाते हैं । जब पिता विश्वामित्र जानते हैं कि पुत्री शकुन्तला भर्तृपरित्यक्ता है तब वे दुष्यन्त को शाप देने पर उतारू होते हैं । शीघ्र ही शकुन्तला अपने पुत्र के बारे में सोचकर कहती है-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "गणपति"- पृ. 4
2. -पृ. 14
3. -पृ. 19
4. "शिष्यनुं मकनुम्" -पृ. 36

"सुबहिष्कृतमायिक्कोल्लट्टे एन जीवितं
सुतनुं पुरत्तायिप्पोकोला मम दोषाल्" । [1]

§मेरे जीवन को बहिष्कृत होने दो  लेकिन मेरे दोष के कारण मेरा पुत्र बहिष्कृत नहीं हो § शकुन्तला के पुत्र वात्सल्य के सीमातीत चित्रण से कवि मातृत्व के संकल्प में चार-चांद लगा देते हैं । "तोतली बोली" में भी कवि मातृ-हृदय का मार्मिक चित्रण करते हैं । अंगन के उद्यान में खेलती हुई , बालिका सीता जब राजमहल में वापस आती है तो जनक की पत्नी को लगता है कि कई दिनों से बिछुडी हुई पुत्री फिर से मिली है और इसी से माता असुलभ आनन्द का अनुभव करती है । [2] गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी यशोधरा को मातृत्व की उत्तुंग पदवी देते हैं । बुद्ध की विरहिणी होने पर भी यशोधरा राहुल को अपने वात्सल्य के आँसुओं से पालती है । ऐसी यशोधरा को कवि संसार की माता का दिव्य पद देते हैं --

"रमणविश्लेषाश्रु कोंडुतान् यशोधरे
समभिषिक्तयायू, नी लोकांबा पदत्तिंकल्" । [3]

§भर्तृ वियोग के आँसुओं से ही , यशोधरे तुम्हें "लोकांबा" के पद पर अभिषिक्त किया है । §

इस प्रकार गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् आदर्श माता का समग्र एवं मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करके तत्कालीन नारी की पीडित अवस्था की ओर प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं । दोनों कवि "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" के आधार पर ही मातृत्व का चित्रण करते हैं , जो आर्षभारत की नारी की स्थिति थी ।

5.1.1.3. <u>गुप्तजी के काव्य में पत्नी का स्वरूप</u>

गुप्तजी का मत है कि जहाँ पर परिवार के संबन्ध त्याग , सेवा एवं प्रेम से पूर्ण होते हैं वहीं परिवार सुखी रह सकता है । परिवार का यह सुख और ऐश्वर्य , पत्नी पर आधारित है । गुप्तजी की अनेक कविताओं में पत्नी के त्याग, सहिष्णुता, सेवा परायणता आदि का गुणगान हुआ है । उन्होंने प्राचीन

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "अच्छनुं मकळुम्"- पृ. 51    2. "साहित्य मंजरी-4, किळिक्कोंचल-पृ. 45

आदर्शों के रंगों द्वारा नारी जीवन के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं । उसके उत्सर्ग केलिए कवि ने उसे देवी कहकर संबोधित किया है --

> उत्सर्ग आपको तू आप कर चुकी है
> हे देवी, घर हमारे मन्दिर बने तुझी से । [1]

पूर्वजों के कथनों की प्रतिध्वनि कराते हुए कवि कहते हैं कि विवाह मानव की एक प्रमुख आवश्यकता है , क्योंकि पत्नी के बिना पुरुष अधूरा ही है और --

> "माता, भगिनी, पत्नी-कन्या, नारी ही नर कुलधन धन्या
> पत्नी रूप प्रकृत नारी का मूलभूत इस फुलवारी का
> जब मेरे सम्मुख आवेगा सहधर्मिणी उसे पावेगा । [2]

"भारत-भारती" में गुप्तजी ने पत्नी के आदर्श रूप का चित्रण किया है --

> "पति देव में मति, गति तथा दृढ़ हो हमारी रति सदा । [3]

आदर्श पत्नी, पति के सुख-दुःख दोनों ही दशाओं में समान रूप से सहयोग देती है । उसके संयोग से पति संपत्तिवान बनता है और वियोग में वह विपत्ति को सहन करता है । [4] संकट के समय पत्नी को पति का साथ छोड देना अन्याय है । कवि "गुरुकुल" में इसका समर्थन करते हैं । [5] दुःख की स्थिति में पत्नी को चाहे स्वबलि ही क्यों न देनी पडे परन्तु वह पति की सिद्धि की कामना करती है और यदि पति-पत्नी से विलग हो वैराग्य भी धारण कर ले , तो भी पत्नी का अनुराग ज़रा भी कम नहीं होता । कवि ने "विष्णुप्रिया"

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. आर्य भार्या- "स्वदेश संगीत"- पृ. 81
2. "अनघ"- पृ.
3. "भारत-भारती"- अतीत खण्ड-पद-161, पृ. 64
4. "--वही-- पद-165, पृ. 65
5. गुरुगोविन्द सिंह- "गुरुकुल"- पृ. 169

को इसीप्रकार प्रस्तुत किया है । [1] उनकी शकुन्तला भी इसी तथ्य को प्रकट करती है - "सतियाँ पति को नहीं कोसती परित्यक्ता भी होकर "। [2]

पति के कर्तव्य पथ में बाधा न पहुँचाना भारतीय नारी का आदर्श है । "साकेत" की उर्मिला, लक्ष्मण के साथ वन न जाकर घर पर ही तपस्विनी का-सा जीवन बिताती है । और एक लंबी अवधि तक दुःख सहती है । उसने अपने मन से कहा --

"तू विकार से पूर्ण न हो शोक भार से चूर्ण न हो "। [3]

पति यदि किसी महान सिद्धि केलिए अकेला ही प्रयत्नशील होता है तो पत्नी का उसमें बाधा बनाना , गुप्तजी धर्म के विरुद्ध समझते हैं । "जयद्रथ-वध" में कवि यह सिद्ध करते हैं । [4]
भारतीय पत्नी अपने को पति की सेविका समझती है । पति-पत्नी का संबन्ध परस्पर समर्पण का होता है । "साकेत" में वनगमन के समय रामचन्द्र के बार-बार समझने पर भी सीता साथ चलने केलिए तैयार होती है और बतलाती है कि नारी के सहयोग के बिना पुरुष के सभी कार्य अधूरे ही रहते हैं । [5] और एक जगह कवि कहते हैं ---

निश्चिन्त नारियाँ आत्म समर्पण करके
स्वीकृत में ही कृत कृत्य भाव हैं नर के । [6]

आर्ष-भारत के पारिवारिक संबन्धों में अटल विश्वास रखनेवाले कवि पत्नी को पति की अर्द्धांगिनी समझते हैं । "साकेत" में कवि इसको व्यक्त करते हैं । [7]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "विष्णुप्रिया" - पृ. 124
2. शकुन्तला - पृ. 31
3. "साकेत" - पृ. चतुर्थ सर्ग - पृ. 100
4. "जयद्रथ-वध" - प्रथम सर्ग - पृ. 9
5. "साकेत" - चतुर्थ सर्ग - पृ. 116-119
6. -वही- अष्ठम सर्ग - पृ. 228
7. --वही-- चतुर्थ सर्ग - पृ. 117

"द्वापर" में कवि भारतीय पत्नी के एक विभिन्न पहलू का उद्घाटन करते हैं । देवकी को अपने पति पर होनेवाले अत्याचारों के प्रति खेद है अत: वह पति को धैर्य दिलाती है कि भयभीत एवं निराश होने से अब काम नहीं होगा । फिर भी वह पति के क्लेश को सहने में असमर्थ होती है । इस क्लेश की अपेक्षा वह मृत्यु चाहती है, क्योंकि उसकी मृत्यु से कम से कम पति तो क्लेश से बच सकते हैं । वह पति की मंगल कामना करती हुई सोचती है --

"नाथ, कंस के हाथ उसी दिन , यदि मैं मारी जाती,
यह मरने से अधिक आपदा तो तुम पर क्यों आती "? [1]

इस प्रकार एक कर्तव्य-निष्ठ पत्नी का चित्रण करके कवि ने समकालीन नारी-जाति की पीडित अवस्था पर प्रकाश डाला है । "यशोधरा" में भी कवि ने यही चित्र खींचा है । उसके पति उससे कहे बिना चले गए । इस पर उसे दु:ख नहीं पर दु:ख इस बात का है कि वे कहके क्यों नहीं गए । उसका कहना है--

"मुझको बहुत उन्होंने माना, फिर भी क्या पूरा पहचाना ?
मैंने मुख्य उसी को जाना ,जो मन में लाते । [2]

ऐसा होने पर भी वह पति के कार्य की सिद्धि की कामना करती रहती है । वह अपने स्वामी केलिए सर्वस्व त्यागने केलिए तैयार हो उठती है । अत: वह अपने ससुर को समझाते हुए कहती है---

"तात, सोचो, क्या गए वे इसी अर्थ है
खोज हम लावें उन्हें क्या वे असमर्थ हैं ।

इस प्रकार विरह से पीडित अवस्था में भी वह पति की वृद्धि चाहनेवाली आदर्श पत्नी है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "द्वापर"- पृ. 83
2. यशोधरा- पृ. 46

इस प्रकार गुप्तजी ने भारतीय आदर्श पत्नी का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए नारी जागरण की ओर बल दिया है ।

5.1.1.4. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पत्नी का स्वरूप

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी पत्नी को त्याग, सहिष्णुता, प्रेम, सेवाभाव आदि का प्रतीक मानते हैं । पारिवारिक जीवन का सुख और शांति पत्नी पर ही निर्भर है ।

"गणपति" में कवि शिव-पत्नी पार्वती की लज्जा, सौन्दर्य आदि नवोढ़ा के भावों का रंगीन चित्र प्रस्तुत करते हैं । यहाँ नहाती हुई पत्नी का सौन्दर्य देखकर शिव एकदम संतुष्ट हो जाते हैं ।[1]

"शिष्यनुं मकनुम्" में कवि राधा को कृष्ण की अर्द्धांगिनी के रूप में प्रस्तुत करते हैं । गणपति के घायल होने के बाद, शिव-पार्वती के बीच वाद-प्रतिवाद होता है । इस अवसर पर राधाकृष्ण का समागम होता है - उन्हें देखकर कवि कहते हैं ---

"हरन्टे यारत्तु विलङ्ङि सौम्ययाय् निरर्धसौभाग्यगुणाभिपूतियाल्
परस्परच्येर्य तषच्यरंडुपेर: ओरद्भुतात्मावु, मोरद्भुतांगियुम् ।[2]

{कृष्ण के पास बड़ी सौभाग्य शालिनी के रूप में उपस्थित है राधा, परस्पर पूरक के रूप में एक अद्भुतात्मा और एक अद्भुतांगि}
राधा का यह आदर्श पत्नी रूप अतीव आकर्षक हुआ है ।
"अच्छनुं मकळुम्"में कवि की शकुन्तला पति को मृत्यु से बचाकर अपनी पतिपरायणता का परिचय देती है । कश्यपाश्रम में विश्वामित्र अपनी पुत्री शकुन्तला से मिलते हैं।

---

1. "गणपति"- पृ. 2
2. "शिष्य और पुत्र-" पृ. 41

आगे की बातचीत से वे जान लेते हैं कि शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त से परित्यक्त है । अब विश्वामित्र कुपित होकर सहसा दुष्यन्त को शाप देने जाते हैं । तब पतिपरायणा शकुन्तला पिता को रोकती हुई कहती है --

"एन्नेयोर्तडङ्. डे. णमच्छनिङ्. डे. न्नाळ् मकळ्
भर्तृनाशिनियायित्तीरोला भवल् पुत्री । [1]

{मेरी मानकर पिताजी ऐसा मत कीजिए आपकी पुत्री को पति की मृत्यु का कारण मत बनाइए । }

आदर्श पत्नी सर्वदा अपने पति को साथ देती है । उसे कर्मक्षेत्र में जाने का वह प्रोत्साहन देती है । "ओरु वीर पत्नी" में वळ्ळत्तोळ् कर्म निरत आदर्श पत्नी का रूप खींचते हैं । एक साधारण जवान को जब रणक्षेत्र की ओर , अपनी पत्नी और पुत्र को छोडकर जाना पडता है तब उसकी पत्नी रोती है । और वह कहती है मैं दुःखित और चिंतित हूँ कि शायद आप नहीं जाएंगे । [2] आगे वह भर्तृमती कहती है ---

"भर्ताविन् कर्तव्यनिष्ठयक्कु विघ्नमाय् वर्तिक्कुम भार्यतान् भार्ययामो ?
वेलिक्कुशेषमितिवरे नामोरु नालिलुं वेरपेट्टिट्टिट्टल्लोन्नालुम् । [3]

{शादी के बाद आज तक हम वियोग में न रहे हैं फिर भी पति की कर्तव्यनिष्ठा में विघ्न डालनेवाली पत्नी क्या पत्नी है }

यहाँ कवि आधुनिक भारतीय नारी का सबल और कर्तव्य निष्ठ चित्र खींचने में सफल निकले हैं । इसके बारे में अच्युतमेनन कहते हैं -- "कोई भी स्वतंत्रता संग्राम हो , पुरुष को उसमें , धैर्य की संग्राम-भूमि में उतरना होगा । यदि उसे

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "पिता और पुत्री-" पृ. 50
2. साहित्य मंजरी- पहला भाग- पृ. 85
3. --वही-- पृ. 86

वीरमृत्यु विदित है तो उसे सहने केलिए उसकी पत्नी को तैयार होना चाहिए। चाहे संग्राम अहिंसात्मक हो फिर भी इस बात में कोई फ़रक नहीं है।"[1] यहाँ कवि काव्य के दोनों पात्रों को कर्मोन्मुख दिखाते हैं।

"तुलसी के आदर्श पति-प्रेम का कवि सुन्दरता से वर्णन करते हैं। तुलसी अपने पति शंखचूड की मृत्यु का समाचार सुनकर उसी क्षण अपने भौतिक जीवन को त्याग देती है।[2] पति प्रेम के आगे वह अपने जीवन को नगण्य मानती है।

मछ्वार पति के सागर में गिरने की बात कहीं से जानकर उसकी धर्म-पत्नी सागर में ही कूद कर आत्महत्या करने पर उतारू होती है। कूदने से पहले वह सागर से कहती है :--

"मत्प्राणानिलनिन्नु निंकारि्रलुळच्चेन्निल्लो,
क्षिप्रमेन् जडं तव नीरिलुं लयिक्कट्टे![3]

{मेरे प्राणरूपी पति आज तुझ में समा गए हैं, इसलिए मेरे भी शव को तुझमें समा जाने दो।} उसके पति की मृत्यु के बाद उसे लगा कि यह संसार शून्य हो गया है और सब कहीं अँधेरा छा गया है। अर्थात् उसके लिए अपना पति ही सर्वस्व है। अपने बच्चों को वह संसार के हाथों में सौंपकर आत्माहुति करना चाहती है। अपने मातृत्व की भी चिंता न करके वह अपने पति के साथ स्वर्गलोक जाना चाहती है।[4] यहाँ कवि एक आदर्श पत्नी का चित्र खींचने में सफल निकले हैं।

"भारत स्त्रीकळ् तन् भावशुद्धि" नामक कविता में वळ्ळत्तोळ् आर्ष भारत की आदर्श पत्नी का चित्रण करते हैं। सम्राट् हुमायूण एक हिन्दू नारी पर आकृष्ट हो जाते हैं। उसकी इच्छा के अनुसार उनका परिचारक उसमान उस स्त्री को राज महल में ले आता है। सम्राट के सम्मुख आने पर वह कहती है --

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "वळ्ळत्तोळ् की साहित्य साधना"-पृ. 7
2. "साहित्यमंजरी"-तीसरा भाग-पृ. 114
3. "साहित्य मंजरी"- चौथा भाग- पृ. 72
4. चौथा भाग-पृ. 74

"कन्यकयल्लाज्ञान कान्तनेन् प्राणना-
ण-न्यने-यप्रीति तोन्निरुते "। [1]

(मैं कन्या तो नहीं हूँ, मेरे पति मेरे प्राण हैं दूसरे - याने - आप बुरा न मानें।

"हरे कृष्ण" नामक कविता में कवि एक सती का वर्णन करते हैं। अपने पति-वियोग के अगाध दुःख में वह कृशगात्र हो जाती है। और वह अपने बन्धुलोगों से प्रार्थना करती है --

"अर्थनं मर्रोन्निल्ली, दासियिल् प्रसादिच्चु
भर्तृसालोक्यं मम तन्नरुलेणं स्वामिन्" । [2]

(मुझे और कोई प्रार्थना नहीं मुझ दासी पर कृपा करके मुझे भी पति के लोक में जाने की अनुमति दें। )

इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् पत्नीत्व की चरमसीमाओं का चित्रण करके नारी जाति के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं। उनका आदर्श पत्नी चित्रण, तत्कालीन जनता केलिए अवश्य ही उद्बोधनात्मक रहे हैं। पौराणिक तथा सामयिक नारी को प्रासंगिक बनाकर प्रस्तुत करने में कवि सफल हुए हैं।

5.1.2. गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् के काव्य में समाज और नारी - विभिन्न समस्याएँ

स्त्री मूलतः एक इकाई के रूप में समाज का ही एक अंग है। इस दृष्टि से समाज से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं है। पौराणिक भारतीय समाज में नारी का बडा आदर सम्मान होता था। आधुनिक काल में आते आते नारी की स्थिति समाज में सबसे शोचनीय बन गई। ऐसी अवस्था में समाज सुधारकों के साथ आधुनिक काल के कवि भी नारी के पुनरुत्थान की ओर प्रवृत्त होने लगे।

स्त्रियों के विषय में गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् का दृष्टिकोण उदार है।

---

1. साहित्य मंजरी- चौथा भाग -

1. सातवाँ भाग-पृ. 50

उन्होंने नारी के प्रति होनेवाले अत्याचारों और अनीतियों के बारे में लिखकर उनको सम्मान देने का सफल प्रयास किया है । तत्कालीन समाज में नारी की सबसे बडी समस्यायें थीं-विवाह की समस्या और वैधव्य की समस्या । ये सब अंधविश्वास और अशिक्षा के ही कारण होते थे , यही दोनों कवियों का विचार रहा है । गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् उन समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए उनके उचित हल निकालने का प्रयत्न करते हैं ।

5. 1. 2. 1. गुप्तजी के काव्य में विवाह की समस्या

विवाह एक पुनीत बन्धन है , जब वह आदर्श रूप में संपन्न होता है । विवाह जब वर-कन्या-विक्रय बन जाता है तो वह समस्या पैदा करता है । कवि यहाँ वर-कन्या विक्रय के रूप में चलती समाज की वणिग्वृत्ति पर घृणा प्रकट करते हैं और समाज में दूषण फैलानेवाले अर्थ के दीवानों को फटकार सुनाते हैं ।

"बिकता कहीं वर हैं यहाँ बिकती तथा कन्या कहीं<br>
क्या अर्थ के आगे हमें अब इष्ट आत्मा भी नहीं ।<br>
हा ! अर्थ , तेरे अर्थ हम करते अनेक अनर्थ हैं<br>
धिक्कार फिर भी तो नहीं संपन्न और समर्थ हैं । [1]

बाल-विवाह से अनेक हानियाँ होती हैं । इससे मानवीय गुणों का नाश भी होता है । गुप्तजी ने बाल-विवाह को मानवीय गुणों के विकास में बाधक माना है । अतः अनिष्ट से बचने केलिए इस कुप्रथा को त्यागना उचित है । [2]

बेकूल विवाह भी समाज की नारी को हानि पहुँचानेवाली अनीति थी । कन्या का वृद्ध व्यक्ति से विवाह होने से उसे शीघ्र ही वैधव्य झेलना पडता है । इसको ध्यान में रखकर कवि ने इस प्रथा को मिटाने के पक्ष में कहा है ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भारत-भारती" - पृ. 140
2. --वही-- प-244, पृ. 144

"छोड़ो वे बेजोड विवाह , होता है जिससे गृह दाह" । [1]

"भारत-भारती" में कवि बेजोड विवाह पर अत्यंत क्षोभ प्रकट करते हैं । बाल्य वृद्ध विवाह के कारण ही प्रति-वर्ष विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही है । ऐसी अवस्था में भी हम बाल और वृद्ध विवाह को नहीं छोडते --

प्रतिवर्ष विधवावृन्द की संख्या निरंतर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश है, फटती कभी हिलकर मही ।
हो ! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ?
फिर भी नहीं हम छोडते हैं बाल्य-वृद्ध विवाह को । [2]

बहु विवाह का विरोध गुप्तजी ने लक्ष्मणी की उक्ति में किया है । "पंचवटी" में शूर्पणखा लक्ष्मण पर मोहित हो उनसे विवाह का प्रस्ताव रखती है । परन्तु वे उसे बहु विवाह के अनुचित बताकर उससे विवाह करने से इनकार करते हैं । [3] "जयभारत" में शची ने नहुष को यही उपदेश दिया । शची इन्द्र की विवाहिता है । वह अपने पति से संयोगवश अलग होने पर भी परपुरुष की कामना-नहुष के साथ पत्नी रूप में रहना अस्वीकार करती है --

"त्यागो शची संग रहने की पाप वासना,
हर ले नरत्व भी न काम देवोपासना" । [4]

स्त्री-जाति के इस घोर सामाजिक पतन का कारण , कवि अंधविश्वास और अशिक्षा ही समझते हैं । तत्कालीन नारी जाति की दलित अवस्था से कवि सदैव अवगत रहे थे ।

---

1. "हिन्दू" - पृ. 64
2. "भारत-भारती" पृ. 140
3. "पंचवटी" - पृ. 33
4. "जयभारत" - पृ. 16

## 5. 1. 2. 2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में विवाह की समस्या

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी विवाह को पुनीत बन्धन मानते हैं ।[1] जब वह अधार्मिक रूप में होता है , तब वहाँ समस्या पैदा होती है । वळ्ळत्तोळ् कालीन भारतीय समाज में देवदासी-प्रथा प्रचलित थी । इसके अनुसार देव-दासियों को विवाहित होने की अनुमति नहीं थी । इस प्रथा ने आगे चलकर उन्हें वेश्याएँ बनाने पर मजबूर किया । समाज ने इस प्रकार स्त्री की स्वतंत्रता को छीन लिया । "कोच्चुसीता" नामक खण्डकाव्य में कवि देवदासी-प्रथा की समस्या को ही प्रमुखता देते हैं । "कोच्चुसीता" की नायिका चंपकवल्ली , अपनी नानी की देखरेख में पलनेवाली कन्या है। वह एक दिन रामायण पढकर इच्छा करती है कि वह भी सीता की तरह पतिव्रता बन जाएगी और राम जैसे एक आदर्श पुरुष के साथ जीवन बिताएगी ।[2] लेकिन उसकी नानी उसे ऐसा करने से रोकती है । मजबूर होकर उसे वेश्या बनना पडता है और वेश्यावृत्ति को असह्य मानकर चंपकवल्ली आत्मत्याग कर देती है । उसकी आत्माहुति पर कवि आत्मविभोर होते हैं --

> क्षुद्रधीत्वमें , स्वार्थ परत्वमे, निर्दयत्वमे निन्नेरित्तीयिनाल्
> एत्र चंपकवल्लियंडिङ्ङ्ङ्ने दुग्धयाकुन्नु भारतभुविकल् ।[3]

(हे बुद्धिहीन, स्वार्थ , निर्दय , समाज ! तुम्हारी विनाशकारी आग में संपूर्ण भारतवर्ष में ऐसी कितनी चंपकवल्लियाँ जल मरती है ! ) "पेकिट्टत्तडी" नामक कविता में बेमेल विवाह की समस्या प्रस्तुत की गयी है । एक धनवान बूढ़े के साथ एक युवती की शादी होती है । शादी में सम्मिलित युवा लोग

---

1. सा:म: 9- पृ. 68
2. "कोच्चुसीता" - पृ. 4
3. पृ. 32

उस बूढ़े की हँसी उड़ाकर पूछते हैं -" क्या ऐसे स्त्री रत्न को खरीदने केलिए तुम्हारी संपत्ति काफी है । [1] यह असल में कवि का व्यंग्य है । यहाँ कवि इस प्रथा के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हैं । "विवाहमोचनं" {तलाक} में कवि एक असंतुष्ट नारी के वैवाहिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हैं । विवाह के बाद एक मुस्लिम युवती मुहम्मद नबी के पास जाकर कहती है --

"पिताक्कळन्नेङ्कल मुरुक्केक्केदि्टय विवाह पाशत्ते
मुरिच्चुनीक्कियित्तुरंकिल निन्नेन्ने -
प्पुरत्ताक्कान कनिञ्ञस्लुकेन प्रभो ! [2]

{माता-पिता के द्वारा बन्धे गए इस विवाह-बन्धन से कृपया मुझे मुक्त करें । इस कारागृह से बाहर जाने की अनुमति दे दें । } यहाँ भी कवि बेमेल विवाह का चित्रण करके सामाजिक अनाचार पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं । इसी कविता में कवि और एक वैवाहिक समस्या का उद्घाटन करते हैं । स्त्री को पैसा देकर उसे खरीदने की एक प्रथा मुसलमानों के बीच में थी यह अब भी भारत में कहीं-कहीं दिखाई देती है । यहाँ पर नबी विवाहित लड़की से कहते हैं -"तुम्हारी शादी के समय तुमको दिए गए दस हज़ार रुपये उसे वापस करो तब तुम स्वतंत्र हो जाओगी । [3] यहाँ वैवाहिक बन्धन केवल रुपयों पर अधिष्ठित माना गया है । आज की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है ।

"बहिष्कृतयाय अंतर्जनम्" में कवि बहुपत्नीत्व की ओर व्यंग्य करते हैं । यह तत्कालीन ब्राह्मण समाज में प्रचलित एक कुप्रथा थी । ब्राह्मणकुल की कन्याओं को घर की चार-दीवारी के बाहर जाने की अनुमति नहीं थीं । यहाँ एक

---

1. सा:म: 9- पृ. 61
2. --वही-- पृ. 67-68
3. --वही-- पृ. 71

ब्राह्मण अपनी तीस साल की बहिन की शादी करने केलिए दो दो पत्नियों के रहते हुए भी अपने बननेवाले साले की बहिन को स्वयं वर लेता है । [1] इस अत्याचार का कवि घोर विरोध करते हैं । सपत्नियों के साथ जीवन बिताने की कठिनाई से नई व्याहता उसकी तीसरी पत्नी सब कुछ छोडकर वहाँ से चली जाती है । यहाँ बहुपत्नीत्व के दुष्परिणाम का कवि स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करते हैं । इस प्रकार विवाह की विभिन्न समस्याओं का चित्रण करके कवि तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं ।

5. 1. 2. 3. गुप्तजी के काव्य में वैधव्य की समस्या

गुप्तजी कालीन समाज में विधवाओं की दशा अत्यंत दयनीय थी । विधवाओं की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी । नारी का यह ह्रास समाज को अवनति के गर्त से कैसे उठने देगा ? इन सभी बातों पर गुप्तजी भली-भाँति चिंतन करते हैं । उनका विश्वास है कि अल्पावस्था तथा वृद्धावस्था में विवाह करने की कुप्रथाओं के कारण बाल-विधवाओं की समस्या उत्तरोत्तर जटिल हो जाती है । गुप्तजी "विधवा" [2] में विधवाओं के प्रति सामाजिक अत्याचारों और व्यभिचारों का भंडाफोड करते हैं । "वृद्धविवाह" में भारतीयों की कूपमंडूकता एवं उसके कुपरिणामों को दर्शन कराकर कवि इसका घोर विरोध करते हैं । [3] भारतीय विधवाओं विशेषकर बाल-विधवाओं के प्रति गुप्तजी की असीम करुणा है । इस पर कवि समाज मात्र को दोषी ठहराते हैं ---

"वे जो नारी बालिका-मात्र अस्पर्शित है जिनका गात्र,
आप बने विषयों के दास , वे अभागिनी रहें उदास । [4]

---

1. "विष्णुकल्पणी"- पृ. 13
2. "हिन्दू"- पृ. 62
3. "स्वदेश संगीत"- पृ. 49
4. "हिन्दू"- पृ. 118

गुप्तजी विधवाओं के पुनर्विवाह के पक्ष में हैं । वे हिन्दू-विधवा को पवित्रता की करुणा मूर्ति समझते हैं ।[1] ऐसी मूर्ति का शील यदि खल-छल-बल से भंग कर देते हैं, तो इसमें मरने की क्या बात है । फिर इसका दायित्व तो उन्हीं लोगों पर है जो खुद एक के बाद एक, अनेक व्याह कर डालते हैं । इस प्रकार कवि विधवा-विवाह पर बल देकर उनकी स्थिति में सुधार लाने का प्रयास करते हैं ।

यहाँ विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालकर कवि नारी जाति की चिरकालीन समस्या को हल करने की कोशिश करते हैं । नारी जाति की अवनति के विभिन्न कारणों का विश्लेषण करके कवि तत्कालीन नारी को पुनरुत्थान की राह पर खड़ा कर देते हैं । नारी के पतन का पूरा उत्तरदायी पुरुष वर्ग और समाज को ठहराते हुए कवि उनका उद्धार करने पर ज़ोर देते हैं ।

5. 1. 2. 4. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में वैधव्य की समस्या

वळ्ळत्तोळ् कालीन समाज में नारी की यह समस्या अधिक दारुण थी । बाल-विवाह, बेमेल विवाह आदि को वैधव्य के मुख्य कारणों के रूप में कवि प्रस्तुत करते हैं । भारतीय विधवाओं के प्रति कवि की दृष्टि गुप्तजी की तरह, सहानुभूतिपूर्ण है । मद्रास के समुद्रतट पर विधवा गृह को देखकर कवि का हृदय ऐसे क्रन्दन कर उठता है -" स्त्रियों केलिए उस धर्मशास्त्र की क्रूरता अत्यंत उत्कट है जिसमें विवाह के अर्थ तक को न जानने वाली अबोध बालिकाओं के सिर पर भी वैधव्य का भार दे दिया गया है । पुरुष अनेक नारियों का परिणय कर सकता है, लेकिन नारी को आजन्म एक-पतिव्रत को निभाना पडता है । इस प्रकार के धर्मशास्त्र की सृष्टि करनेवाली आर्य-लेखनी तुम्हारी इस प्रकार की दुधारी विचित्रता कौन सह सकता है ।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. 'हिन्दू' - पृ. 117
2. 'स्त्री' - पृ. 48

इन समस्याओं के अलावा कवि स्त्री स्वतंत्रता से संबन्धित अन्य समस्याओं का भी उद्घाटन करते हैं । केरल के ब्राह्मण परिवारों में स्त्रियों को घर के बाहर जाने की अनुमति नहीं दी जाती थी । उनको किसी भी हालत में स्वतंत्रता नहीं मिलती थी । नारियों को स्वतंत्रता से संसार को देखने का कोई अवसर नहीं था । इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए कवि समाज से पूछते हैं --

लोकदृष्टियिलनिन्नु यमळुवानेन्ताणाओ
हीकरमाकिट्टोन्नु पेयूततिक्कुल स्त्रीकळ् [1]

(इस ब्राह्मण कुलललनाओं ने कौन सा पाप किया है कि उन्हें अपने मुख तक संसार को न दिखाते हुए जीना पड रहा है ।)

"ओरु किषुवन पेरालू" में कवि सती प्रथा की ओर तीखा व्यंग्य करते हैं - "पति की चिता में जीवित पत्नी को जलाकर मारनेवाली पैशाचयज्ञ को देखकर लोग संतुष्ट होते हैं । [2] यहाँ इस प्रकार घोर य व्यंग्य करनेवाले समाजसुधारक कवि दूसरे अवसर पर सती-प्रथा को अनुमति देते हैं । लेकिन वहाँ कवि पत्नी के पति-प्रेम की ओर ही प्रकाश डालते हैं । यहाँ गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं का विशद-विश्लेषण करके, उन समस्याओं का उत्तरदायित्व पुरुषों और समाज पर ही लगाते हैं । गुप्तजी की दृष्टि में बाल-विवाह, बेमेल विवाह आदि का मुख्य कारण अशिक्षा है । दोनों कवि बहुपत्नीत का घोर विरोध करते हैं । विधवाओं के संबन्ध में गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् समान विचार वाले हैं । दोनों विधवा विवाह के पक्षपाती भी हैं । प्रस्तुत प्रसंग में वळ्ळत्तोळ् केरल की कुछ खास नारी समस्याओं का भी चित्र प्रस्तुत करते हैं, जैसा

---

1. 'विषुक्कणी'- पृ. 13
2. सा:म:

कि देवदासी-प्रथा, ब्राह्मण परिवार की नारियों की स्थिति आदि । इस प्रकार नारी की परतंत्रता से संबन्धित कई घटनाओं का व्यक्त चित्रण करके दोनों कवि उनकी उन्नति का मार्ग ढूँढते हैं । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् पूर्णतया नारी की स्वतंत्रता एवं भारतीय संस्कृति पर अधिष्ठित उच्च आदर्श के पक्षपाती हैं । भारत की स्वतंत्रता एवं उन्नति में नारी जाति की अनिवार्यता को भी वे मानते हैं

## 5.2. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में प्राचीन भारतीय नारी के प्रति श्रद्धा

नारी जाति का उत्कर्ष, गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य का एक प्रमुख लक्ष्य है । समकालीन नारी की पीड़ित अवस्था का चित्रण करके दोनों कवि उसके पुनरुत्थान की कोशिश करते हैं । गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् भारत के गत-वैभव के बारे में, पौराणिक भारतीय नारी की उन्नत अवस्था के बारे में, उनके कर्मक्षेत्र सामाजिक और पारिवारिक जीवन के आदर्श आदि के बारे में, काव्य रचना करके समकालीन चेतना-हीन, पीड़ित नारी को चेतना संपन्न बनाने का अथक प्रयास करते हैं । दोनों कवि प्राचीन भारतीय नारी के प्रति श्रद्धावान् हैं । इसी कारण वे नारी को हीन दृष्टि से देख नहीं सकते हैं । वे सदैव नारी की उच्च-भावना के चितेरे हैं ।

### 5.2.1. गुप्तजी के काव्य में प्राचीन भारतीय आदर्श नारी की प्रतिष्ठा

राष्ट्रकवि, अपनी महान रचना "भारत-भारती" में आर्य-स्त्रियों की महिमा के बारे में आधुनिक समाज को सचेत करते हैं । प्राचीन भारतीय नारियाँ गार्हस्थ्य जीवन में देवियाँ थीं । वे परिवार को स्वर्गतुल्य बनाती थीं ।[1] उदाहरण के तौर पर गुप्तजी अत्रि, अनसूया आदि आदर्श स्त्रियों का चित्रण करते हैं।

---

1. "भारत-भारती-" अतीत खण्ड-पद-39, पृ. 17

प्राचीन भारतीय नारी पुरुष के सभी कार्यों में सम-भाग लेती थीं । अपने पति को वे सदा स्नेहभरा साथ भी देती थी ---

"निज स्वामियों के कार्य में समभाग जो लेती न वे ,
अनुराग पूर्वक योग जो उसमें सदा देती न वे । [1]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वे सच्चे अर्थ में "अर्धांगिनियाँ" ही रही थीं । आगे कवि कहते हैं कि आर्य ललनाएँ कर्मनिष्ठ नीतियुक्त , एवं कर्तव्य परायण रही हैं । यहाँ माता विदुला, सुमित्रा, कुन्ती आदि आर्य माताओं के चरित्र पेश किये गये हैं । इन्होंने अपने जीवन में धर्म , नीति और कर्तव्य पालन को अधिक स्थान देकर समाज की रक्षा और उन्नति की ओर बल दिया था । [2]

आर्य नारी अपने वचन-पालन, पश्चात्ताप, सेवा-भाव आदि में भी कीर्ति प्राप्त थी । नारी जागरण के प्रति उत्सुक कवि सावित्री का वचन पालन, सुकन्या अंशुमती आदि की सेवा भावना, आदि बातों को स्पष्ट करके प्राचीन भारत की नारी की ओर श्रद्धा प्रकट करते हैं ।

"बदली न जो , अल्पायु वर भी वर लिया सो वर लिया ,
मुनि को सताकर भूल से , जिसने उचित प्रतिफल दिया ।
सेवार्थ जिसने रोगियों के साथ विराम लिया नहीं , [3]
थीं धन्य सावित्री, सुकन्या और अंशुमती यहीं ।

गुप्तजी गाँधारी, दमयन्ती आदि के धर्म पालन के बारे में आधुनिक नारी जाति को सचेत करते हैं । गाँधारी आमरण आँखें मूँदकर अपने पति की तरह अंध बनी रही । दमयन्ती स्वयं पति केलिए वन-वन फिरती रही । इस पर कवि पूछते हैं-

---

1. "भारत-भारती" अतीत खण्ड-पद-40- पृ. 17
2. --वही-- पद-41, पृ. 18
3. --वही-- पद-42, पृ. 19

"आश्चर्य क्या फिर ईश ने जो दिव्य-बल उनको दिया । प्राचीन भारतीय नारी के पातिव्रत्य की तीव्रता के बारे में अवगत होकर कवि कहते हैं कि उनके पातिव्रत्य के कारण सूर्योदय भी स्थगित किया गया था । अपने पतिव्रता के बल से एक साधारण नारी ने एक बार एक क्षुब्ध मुनि के अंहकार और कोप को शांत करके उसे उपदेश भी दिया था ।[1]

इस प्रकार कवि प्राचीन भारत-स्त्री की महिमा के कई उदाहरण प्रस्तुत करके तत्कालीन चेतनाहीन नारी-जाति में नई स्फूर्ति लाने का प्रयास करते रहे । गुप्तजी नारी को कभी भी नीच और निम्न श्रेणी की नहीं मान सकते थे । इसलिए ही वे नारी की उन्नति केलिए , पौराणिक संस्कृति के पन्नों को पलटते रहे । अन्य अनेक काव्यों में भी गुप्तजी ने ऐसी आदर्श नारियों का चित्रण किया है । उनकी उर्मिला, सीता, यशोधरा, विष्णुप्रिया, आदि आदर्श आर्य स्त्रियों के ही उदाहरण हैं । यहाँ कवि प्राचीन भारतीय नारियों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में लाकर अधिक प्रासंगिक बनाने का प्रयास करते हैं । यह तत्कालीन माँग की पूर्ति के रूप में ही हुआ है ।

### 5.2.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में प्राचीन-भारतीय आदर्श नारी की प्रतिष्ठा

वळ्ळत्तोळ् की प्राचीन-भारतीय नारी के प्रति श्रद्धा उनकी अनेक रचनाओं में द्रष्टव्य है । "कोच्चुसीता" में चंपकवल्ली की दुःस्थिति देखकर कवि कहते हैं-- प्राचीन भारतीय नारियों ने आदर्श-वादिता एवं पातिव्रत्य की पवित्रता से बहुत कुछ करके दिखाया है । सावित्री ने अपने तपोबल से मृत्यु तक को पराजित किया था, शीलावती ने जब जान लिया कि उसके पति सूर्योदय के पहले मर जाएंगे तो उसने सूर्योदय को रोक दिया था , दमयन्ती ने अपने साथ अन्याय दिखाने आए निषाद को एक नज़र भस्म कर दिया था ।[2] इस प्रकार सावित्री, शीलावती

---

1. -"भारत भारती"- अतीत खण्ड-पद-44, पृ. 20
2. "कोच्चुसीता"- पृ. 27

दमयन्ती आदि भारतीय आदर्श नारियों को प्रस्तुत करके कवि कहते हैं कि ऐसे भारत में अब पातिव्रत्य की रक्षा केलिए आत्मत्याग करना पडता है । कवि प्रस्तुत काव्य में सीताजी को प्रतीक बनाकर भी भारतीय पौराणिक नारी की ओर अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं ।

"मुट्टत्ते तुलसी" में तुलसी देवी की स्तुति की गई है । गंगा की सपत्नी तुलसी के पतिप्रेम और देव के अब का मानव प्रेम आदि के बारे में कवि विस्तार से वर्णन करते हैं । [1] "परीक्षयिल् जयिच्चु" में कवि सावित्री के पातिव्रत्य के बारे में चर्चा करते हैं । [2] सावित्री पतिप्रेम का पर्याय एवं प्राचीन भारतीय स्त्रीत्व का प्रतीक थी । प्रस्तुत कविता में भी वह मज़दूर की प्रेममयी पत्नी भारतीय स्त्रीत्व का प्रतीक बन गई है । "ओषुक्किल पोय कविता" की नायिका अहल्या को कवि दूसरी अन्नपूर्णेश्वरी कहते हैं । अहल्या भी लक्ष्मी की तरह आश्रित वत्सला एवं दरिद्रों की अन्नदाता माता थी । [3] यहाँ भारतीय स्त्रीत्व के प्रति श्रद्धा प्रकट करके सामयिक नारी समाज को वही उच्च स्थान दिया गया है ।

वळ्ळत्तोळ् प्राचीन भारतीय स्त्रीत्व का समकालीन नारी में आरोप करते हैं । "भारत स्त्रीकळ् तन् भावशुद्धि" में नायिका को एक आदर्श पत्नी जानकर सम्राट हुमायूँ के सम्मान का पात्र बन गया है । साथ ही साथ उसमान को, जो उस युवती को साथ लेकर आया था , मृत्यु दण्ड भी दिया जाता है । ऐसी वेला में वह आदर्श युवती करुणा की मूर्ति बनकर कहती है --

"एन्निल् तिरुवुळ्ळमुण्डेन्नाकिल्
भृत्यन्टे कुट्टम् पोरुक्कुमाराकणम्
मर्त्यन्नु कैप्पिषु जन्मसिद्धम् " [4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: 3-पृ. 111-112
2. 4- पृ. 75
3. 6- पृ. 84
4. 4- पृ, 91

§मुझपर आपकी कृपा है तो उस भृत्य की गलती को भुला दीजिएगा । गलतियाँ मानव केलिए सहज ही है । §

यहाँ भी कवि प्राचीन स्त्रीत्व के गुणों का सामयिक नारी में आरोप करके तत्कालीन नारी-जाति के पुनरुत्थान की प्रवृत्ति दिखा रहे हैं ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भारतीय संस्कृति के महान गायक हैं । वे संस्कृति के पुनरुत्थान और उन्नति केलिए नारी की उन्नति को अनिवार्य माननेवाले भी हैं । इसकी पूर्ति केलिए ही दोनों कवि प्राचीन भारतीय आदर्श नारी के, पुत्री, पत्नी, माता आदि रूपों का महत्वपूर्ण चित्र, सामयिक समाज के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् दो विभिन्न ध्रुवों में रहते हुए बिलकुल विभिन्न भाषाओं में रचना करते हुए भी एक ही जैसे उदाहरणों को प्रस्तुत कर समकालीन जनता को उद्बोधन देते रहे । दोनों कवि दमयन्ती, सावित्री, शीलावति आदि नारियों का ही चित्रण करते हैं । वळ्ळत्तोळ् इस सिलसिले में अधिक सामयिक प्रसंगों का उद्घाटन करते हुए दिखाई पडते हैं । इस प्रकार दोनों कवि प्राचीन भारतीय नारी की धीरता कर्तव्य परायणता वचन पालन, पातिव्रत्य आदि के अनेक चित्र उपस्थित करके तत्कालीन सोई हुई नारी चेतना को जगाने का खूब प्रयास करते हैं ।

## 5.3. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में तत्कालीन नारी की पीडित अवस्था

वैदिक काल में नारी की सामाजिक स्थिति बहुत आदरणीय थी । उस समय नारियों को पूर्ण स्वतंत्रता थी और उन्हें पुरुषों की तरह उच्च शिक्षा का अवसर भी प्राप्त था । इसीलिए गार्गी, मैत्रेयी सुलभा आदि विदुषी महिलाओं को पुरुष विद्वानों के साथ श्रद्धा से स्मरण किया गया है ।[1]

---

1. ए.एस. अल्टैकर -"पोज़ीशन आफ हिन्दू विमेन इन हिन्दु सिविलाइज़ेशन"- पृ. 12

स्त्री सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान स्वतंत्र थी । विधवा विवाह केलिए भी पर्याप्त अवकाश था ।[1] वैदिक समाज में पुरुष की भाँति स्त्री को भी चार विवाह करने की अनुमति थी ।[2] इतना सब होते हुए भी उत्तर वैदिक काल से नारी की स्वतंत्रता कम होने लगी । आधुनिक काल में आते आते नारी, पराधीनता और विषमताओं का पर्याय बन गई । ऐसी अवस्था में नारी का उद्धार अनुपेक्षणीय रह गया । सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों में नारी को आगे बढ़ाने की आवश्यकता बढ़ने लगी । ऐसी स्थिति में समाज सुधारकों का आविर्भाव हुआ । साहित्यकारों ने उनका साथ दिया । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् इन्हीं में थे । उन्होंने नारी की पीडित अवस्था के बारे में समाज और नारी जाति को अवगत करने का प्रयास किया । दोनों कवियों की राय में अशिक्षा, आर्थिक समस्या पुरुषों का नारी के प्रति अत्याचार आदि ही नारी की अवनति के कारण रहे हैं ।

### 5.3.1. अशिक्षा

मैथिलीशरण जी यह अच्छी तरह जानते थे कि समाज का आधा भाग जब तक गँवार अशिक्षित नारी रहेगी तब तक समाज सुचारू रूप से आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए उन्होंने स्त्री शिक्षा पर बल देते हुए उन्हें प्राचीन शिक्षित महिलाओं की गौरव गाथाएँ सुना-सुनाकर अपने गौरवमय स्थान को फिर से प्राप्त करने केलिए प्रेरित किया । कवि शिक्षित महिलाओं के प्रभाव की ओर प्रकाश डालते हैं ।

"क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता हो नारियाँ ?
रण-रंग, राज्य सु-धर्म-रक्षा कर चुकी सुकुमारियाँ ।
सोचो नरों से नारियाँ किस बात में हैं कम हुईं ?
मध्यस्थ में शास्त्रार्थ में हैं भारती के सम हुईं ।[3]

---

1. ऋग्वेद, 10/40/2
2. -वही- 10/85/40
3. "भारत-भारती"- प-237, 238, पृ. 124, 125

कवि यहाँ तक प्रकट करते हैं कि --

"विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आएगी
अर्द्धांगियों को भी सुशिक्षा दी न जब तक जाएगी ।[1]

गुप्तजी ने सामाजिक वृत्तियों की निम्न झाँकी दर्शाने का प्रयास किया है । अविद्या और अज्ञान के कारण निन्दनीय रूढ़ियों और अंधविश्वासों में ग्रस्त समाज की वे कटु आलोचना करते हैं ।[2]

पश्चिमी विचार-धारा के प्रभाव एवं शिक्षा के प्रसार ने संसार और जीवन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण में प्रचुर परिवर्तन कर दिया और वैज्ञानिक आविष्कारों ने धार्मिक-अंधविश्वासों पर गहरी चोट की । फलस्वरूप आधुनिक युग उन्नति की ओर बढ़ने लगा । गुप्तजी के शब्दों में--

"आओ प्रिय ! भव में भाव , विभाव भरें हम
डूबेंगे नहीं कदापि तरें न तरें हम ।
कैवल्य काम भी काम , स्वधर्म धरें हम ।
संसारहेतु शत बार सहर्ष मरें हम ।
तुम सुनो क्षेम से प्रेम-गीत मैं गाऊँ ।
कह मुक्ति ! भला किस लिए तुझे मैं पाऊँ।

5.3.2. <u>आर्थिक समस्या</u>

नारी के समस्त शोषणों का कारण है , उसकी आर्थिक समस्या । इससे सहमत होकर गुप्तजी कहते हैं कि नारी की आत्म-रक्षा का प्रश्न उसकी आर्थिक परतंत्रता पर निर्भर रहता है । क्षुधा-पूर्ति मानव की शाश्वत समस्या है । नारी प्रमुखतः इसीलिए पुरुष के अधीन है । यदि वह अपनी इस समस्या

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भारत भारती"- पृ. 176
2. --वही-- पृ. 140

का समाधान कर लेती है तो उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व बन जाता है ।

भारतीय नारी का जीवन उसके पति में ही केन्द्रित रहता है , उसकी मृत्यु के पश्चात् वह शून्य के समान निराश्रित हो जाती है , यह केवल उसकी आर्थिक परतंत्रता के कारण होता है । गुप्तजी नारी की आर्थिक परतंत्रता के बारे में विस्तृत चर्चा नहीं करते हैं । उनकी रचनाओं में आर्थिक समस्या का चित्रण अवश्य हुआ है , लेकिन वहाँ पूरी भारतीय जनता की आर्थिक स्थित का वर्णन हुआ है । इसके विपरीत वळ्ळत्तोळ् नारी की आर्थिक समस्या का वर्णन कई स्थानों पर करते हैं --

5.3.2.1. वळ्ळत्तोळ् की नारी में आर्थिक समस्या

नारी की परतंत्रता के कारणों में कवि आर्थिक परतंत्रता को प्रमुख स्थान देते हैं । उनके काव्य की अनेक नारियों को आर्थिक परतंत्रता के कारण दुःखपूर्ण जीवन बिताना पडा है, यहाँ तक कि किसी-किसी को आत्माहूति तक करनी पडी है । "मगदलन मरियम्" नामक खण्डकाव्य में कवि मरियम् नामक वेश्या के पश्चात्ताप की कथा प्रस्तुत करते हैं । उसके पूर्वकाल के वर्णन करते समय कवि कहते हैं -" दारिद्र्य शुष्कमां पाष्कुडिलोन्निलाणीरुचिरांगि जनिच्चतेे" [1] (दरिद्रता से ग्रस्त एक कुटी में ही इस सुन्दरी का जन्म हुआ था । ) उस सुन्दरी युवती को कामपीडित पुरुष सताने लगे । तब उसकी दरिद्रता ने उसे वेश्या बना दिया । [2] अपने जीवन की रक्षा केलिए रोजी रोटी केलिए वह अपना शरीर बेचने को तैयार हो गयी । [3] इस प्रकार दरिद्रता ने उसे वेश्या बना दिया ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1, 2, 3, वळ्ळत्तोळिन्टे पद्य कृतिकळ्-भाग-1- पृ-261, 262

"उणानिल्ल उडुप्पानिल्ल" नामक कविता में कवि एक दरिद्रमाता की आत्माहुति की कथा प्रस्तुत करते हैं । उस घर की माँ एक संपन्न परिवार की युवती थी । परिवार एकाएक दरिद्र हुआ । पति काम की खोज में कहीं चले गए । दरिद्रता के कारण घर भी तहस नहस हो गया ।[1] एक दिन उस घर में उस माता का जामाता आता है । घर की हालत देखकर वह दंग रह गया । घर के अंदर उसे अपनी सास नज़र आई ।
जब सास को मालूम हुआ कि जामाता ने उसे देखा है तो वह तुरंत अंदर चली गई । सास की हालत को पहचान कर जामाता कुछ कपडे आदि लेने गया । थोडे ही समय में सब कुछ खरीदकर वह वापस आया ।[2] लेकिन इतने में जामाता से फिर मिलने की विषमता के कारण वह आदर्श आत्माहुति कर देती है । यहाँ उसकी मृत्यु का कारण आर्थिक समस्या मात्र है । अब कवि कहते हैं दरिद्रता से पीडित लोगों के उच्छ्वासों से भारत का आकाश अंधकारमय हो गया है ।[3]

"जब मैं ने नीचे देखा तो वहाँ अधिकांश दरिद्र थे "- इस नबि-वचन के आधार पर वळ्ळत्तोळ् ने "एक संध्या प्रणाम" नामक रचना में एक दरिद्र मुसलमान युवती का चित्रण करते हैं । वह अपनी दरिद्रता को दूर करने केलिए अल्लाह से प्रार्थना करती है ।[4]

"जाति प्रभाव" में भी नारी की आर्थिक अवनति के बारे में कहा गया है । कोई युवती अपने इष्ट पति के साथ भाग जाती है । थोडे ही दिनों में उसका दरिद्र पति रोग-ग्रस्त हो जाता है । घर की आर्थिक स्थिति पति पर ही निर्भर रहती है । इस दुःखावस्था के कारण गौरी को भीख माँगनी पडती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: 2- पृ. 57
2. साहित्य मंजरी- 2- पृ. 63
3. --वही-- पृ. 65
4. --वही-- पृ. 65

उसकी अवनति देखकर कवि अतीव दुःखी होते हैं ---

"पट्टिटणिक्कुषियिड्. कल् पतिच्चकण्णुं , विल-
र्तोट्टिय कविळुमेल्लुन्नित निल्पोरु नेऽश्रुम् । [1]

(दरिद्रता के गर्त में गिरी हुई आँखें , पीला चेहरा और अतीव क्षीण शरीर से युक्त नारी) वह दारिद्र्य की प्रतिनिधि बनी हुई थी ।

इस प्रकार आर्थिक समस्या से पीडित नारियों का चित्रण करके वळ्ळत्तोळ् तत्कालीन समाज को भारतीय नारी की असली स्थिति का परिचय देते हैं । नारी की आर्थिक अवनति के बारे में गुप्तजी वळ्ळत्तोळ् के समान अधिक उल्लेख नहीं करते हैं । फिर भी नारी की दरिद्रता के बारे में गुप्तजी बिलकुल अवगत रहे हैं । दोनों कवि इस प्रकार नारी की आर्थिक सुधार के पक्ष में भी अपनी लेखनी चलाते हैं ।

5.3.3. गुप्तजी के काव्य में नारी के प्रति पुरुषों का अत्याचार

गुप्तजी की रचनाओं में नारी-सुधार की भावना प्रमुख रूप से प्रस्फुटित हुई है । समकालीन समाज में स्त्रियों की दुर्दशा देखकर वे क्षुब्ध हुए है । स्त्रियों को सामाजिक बन्धनों में जकडा हुआ पाकर कवि ने पुरुष के प्रति खीझ प्रकट की है ---

"नर कृत शास्त्रों के सब बन्धन् हैं , नारी ही को लेकर,
अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर । [2]

नारी के प्रति नर का अविश्वास भी कवि को असह्य है । अविश्वास के मूल में स्त्री के प्रति पुरुष की दोष देखने की वृत्ति काम करती रहती है । "कवि, जो

---

1. "साहित्य मंजरी"- 7- पृ. 79
2. "पंचवटी-" पृ. 33

गृहस्थ को पृथ्वी-तल का सबसे ऊँचा स्तूप समझते हैं नारी पर गृहस्थ की सारी मान-मर्यादा का भार लाद देते हैं । इसलिए नारी सब कुछ सहकर भी अपने अश्रुसलिल से कुल के समस्त कलंक को धो डालती है और उसके मन में केवल यही बात आती है कि चलो कोई बात नहीं वह अपने भी तो हैं, "वे सर्वस्व हमारे भी हैं यही ध्यान में लाती है । [1]

गुप्तजी नारी की विभिन्न बुराइयों का कारण, स्त्री-शिक्षा की कमी मानते हैं । उन्हें "कुल नारियाँ अविद्या की मूर्ति-सी" दृष्टिगोचर होती है । किन्तु इन सबका दायित्व कवि पुरुष पर ही डालते हैं ।

"क्या दोष उनका जो उनमें गुणों की है कमी ।
हा ! क्या करें वे जब कि उनको मूर्ख रखते हैं हमी ।।" [2]

मनुस्मृति के "यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" के अनुसार गुप्तजी ने भी कहा है कि हमसे हमारी सिद्धियाँ आज इसलिए दूर होती जा रही हैं क्योंकि हम नारियों का यथोचित सम्मान नहीं करते हैं । कवि समकालीन काव्य में नारी के श्रृंगार वर्णन पर आक्षेप करते हुए कवियों को कुरुचि छोड़ने का परामर्श देते हैं । [3] आगे कवि भारतीय नारी को आद्याशक्ति और सद्धर्म की मूर्ति बतलाते हुए नारी की तत्कालीन पीड़ित अवस्था पर दुःख प्रकट करते हैं ।

"नर जाति की जननी तथा शुभ शांति की स्त्रोतस्विनी
हा देव ! नारी जाति की कैसी यहाँ है ! दुर्गति । [4]

इससे कवि की नारी के प्रति श्रद्धा एवं उसकी अवनति पर आकुलता आदि स्पष्ट

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. वल्लभदास तिवारी- "हिन्दी काव्य में नारी"- अ. 547
2. "भारत-भारती"- वर्तमान खण्ड- पृ. 136
3. "भारत-भारती"- भविष्यत खंड- पृ. 92
4. --वही-- वर्तमान खण्ड- प. 228. पृ. 123

हो जाती हैं । मानवतावादी कवि स्त्रियों के प्रति होनेवाले पुरुषों के अत्याचार को देश के नाश का मार्ग मानते हैं ---

"ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे ,
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे ।
भागे न क्यों हम से भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ
पाति स्त्रियाँ आदर जहाँ रहती वहीं सब ऋद्धियाँ ।। [1]

पति के रूप में भी पुरुष स्त्री को यातनाएँ देनेवाला है । कवि ने अपनी अनेक नायिकाओं को ऐसा चित्रित किया है । उनकी यशोधरा, रत्नावली आदि इसके दृष्टान्त हैं । यशोधरा अपने पति की सफलता की कामना करती है , फिर भी वेदना के क्षणों में उसका नारी-रूप निखर उठता है । गौतम के विरह से उद्विग्न यशोधरा प्रतिपल मरणोन्मुख हो रही है । वह "जिये जल जल कर काया री "- उन्मादिनी यशोधरा मृत्यु का आह्वान ही श्रेयस्कर मानने लगी- "मरण सुन्दर बन आया री । उसकी ऐसी स्थिति का कारण केवल उसका पति है । पतिपरायणा होते हुए भी नारी की स्थिति नरों के कारण ऐसी हो जाती है । गुप्तजी की रत्नावली भी ऐसी एक नारी है । तुलसीदास रत्नावली के कठोर वचन सुनकर वैराग्य ग्रहण करते हैं । अपने पति का परिवर्तन देखकर वह स्वयं को दोष देती है । [2] परिणाम यह हुआ कि जो स्त्रियाँ उसके पति को अनुराग से ईर्ष्या करती थी , वे ही समस्त स्त्रियाँ अब उसे दोष देने लगती है । उसको यह अपमान असह्य बन जाता है । अतः वह कहती है कि आज तक नर के द्वारा नारी के त्यागने के ही कई उदाहरण मिलते हैं , परन्तु नारी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भारत-भारती"-
2. "रत्नावली"- पृ. 9

के द्वारा नर के त्यागने के उदाहरण कहीं नहीं मिल सकते । यहाँ भी वह स्वयं दोषी बन जाती है । वह क्षमा माँगकर अपने पति से मिलने केलिए तैयार है । उसे डर है कि उसके पति यदि लौट न आये तो अपने जीवन का क्या होगा ? इसकी कल्पना मात्र से वह काँपती रहती है । इसी ग्लानि में वह पति से पूछती है कि अंत में उन्होंने उसको त्यागकर क्या पाया ? यहाँ नारी ने जो किया वह असल में क्षम्य था । लेकिन पुरुष एकायक उसे छोडकर गार्हस्थ से दूर चला । ऐसे अवसरों पर नारी अबला होती है और उसकी स्थिति समाज में दुर्बल हो जाती है ।

इस प्रकार गुप्तजी तत्कालीन नारी की अवनति के कारणों का विश्लेषण करके नारी की उन्नति की ओर प्रवृत्त हुए हैं । गुप्तजी कभी भी नारी को नीच नहीं समझ सकते थे । इसीलिए वे उसके पुनरुत्थान के मार्ग में कार्य करते रहे ।

5. 3. 4. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी के प्रति पुरुषों का अत्याचार

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी नारी के स्वतंत्र-गायक थे । समसामयिक समाज में स्त्री पुरुषों के अत्याचारों से अतीव पीडित थी । ऐसी पीडाओं से नारी को मुक्त करने केलिए वळ्ळत्तोळ् अपनी रचनाओं के ज़रिये युद्ध करते रहे । पुरुष कई तरह स्त्री की स्वतंत्रता छीन लेता है । महामुनि विश्वामित्र ने अपनी पुत्री शकुन्तला को क्षणिक काम वासना के फल समझ कर निर्दय त्याग देते हैं ।[1] कवि इसे घोर अपराध समझकर उनसे पश्चात्ताप भी करवाते हैं । आगे विवाहित और गर्भवती होने के बाद पति भी उसे त्याग देता है ।[2] इस प्रकार वह पुरुष की अनीति का पात्र बन जाती है । प्रजा के धर्म और नीति का मार्गदर्शक रहनेवाला राजा ही अबला प्रजा से अधर्म और अनीति के कार्य करता है । कामांध राजा दण्ड अपनी गुरुपुत्री पर बलात्कार करता है । उसे समझाने

---

1. "अच्छनुं मकळुम्" - पृ. 38
2. --वही-- पृ. 44

केलिए वह कन्या लाख प्रयत्न करती है, फिर भी वह क्रूर राजा उसका पवित्रता को छीन लेता है।[1] इस क्रूर दृश्य कवि के शब्दों में ---

इरुंपुलक्कयुक्के तिर्वडिवार्न भुजड्.ड.ळ कोण्डु भूपन्
अतिभय विवशान्तरंगयाकुं यतिसुतयेप्पिडिकूडि मन्मथान्धन्।[2]

(लोहे की शक्ति से युक्त हाथों से उस कामान्ध राजा ने, अतीव भयाक्रान्त ऋषि-कन्या को पकड लिया।)

"राधयुडे कृतार्थता" नामक कविता में कवि एक दु:खांत प्रेम की कथा प्रस्तुत करते हैं। राधा अपने प्रेमी से अतीव प्यार करती है। उसका प्रेमी शहर के रहनेवाला है और वह गाँव की लडकी। जब वह प्रेमी गाँव से शहर वापस जाता है तो वह गाँव की प्रेमिका के स्वर्गीय प्रणय को एक-दम ठुकरा कर एक शहर वाली से शादी करता है। ऐसा करके उसने अपनी प्रेमिका से बडी अनीति की है, उसके जीवन को अस्तव्यस्त करा दिया है। प्राणेश्वर की शादी का समाचार सुनकर वह आत्मविभोर होकर कहती है ---

"आर्यपुत्र- क्षमिच्चालुमेन्नविवेकं, हा हा
सूर्यनित्तोडुवान कैनीट्टिप्पोय निशीथिनी![3]

(आर्यपुत्र, मेरे अविवेक को क्षमा कीजिए, हा, हा, मुझ निशीथिनी ने सूर्य को छूने केलिए हाथ फैलाया था।) यहाँ कवि शहर के जवानों की कृतघ्नता एवं गाँव की युवतियों की सुशीलता की ओर प्रकाश डालते हैं।

"नागिला" नामक कविता में एक नवोढ़ा के प्रति होनेवाले अत्याचार की कवि

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "दण्डकारण्यम्"- पृ. 21
2. --वही-- पृ. 21
3. "साहित्य मंजरी"- प-4, पृ. 4

चर्चा करते हैं । भवदेव एक बुद्ध भिक्षु है । जब वह जानता है कि उसका छोटा भाई शादी करने जा रहा है , तो वह जल्दी से आकर भाई भवदत्त को भिक्षु होने केलिए प्रेरित करता है । विवाह के संपन्न होने के बाद भी भवदेव की जबर्दस्ती में फँसकर भवदत्त नवोढ़ा को विरह की ज्वाला में फेंककर, कर्तव्यपालन से विमुख होकर चला जाता है । [1] यहाँ कवि दोनों भाइयों को दोषी ठहराते हैं ।

"ओडुक्कत्ते कुरिप्प्" (आखिरी चिट्ठी) में भी कवि एक प्रेम कथा की करुण कहानी प्रस्तुत करते हैं । भामा नामक नागरिक युवती एक पुरुष से गांधर्व विवाह कर लेती है । लेकिन वह एक दूसरी लडकी से शादी करता है । यह समाचार सुनकर दुःखातिरेक से वह अपने प्रेम को नगण्य माननेवाले पुरुष को एक चिट्ठी लिखकर आत्महत्या करती है । [2] यहाँ उस आदर्श युवती की आत्माहुति का कारण केवल उस पुरुष का अत्याचार है । इस पर कवि कहते हैं --

"भामये - प्रणभिरामये-च्चतिच्चोने,
कामियाँ निन्नालत्यक्तयाद्वराँ सुभद्रयुम्
इन्नु नी वेट्ट वधू भ्रूणहत्यकळो, ए-
न्नेन्नुमे त्यजियुक्कावतल्लात्त पत्निकलत्रे । [3]

(प्रेमवती सुन्दरी भामा को धोखा देनेवाले ! कामांध तुझसे सुभद्रा भी परित्यक्ता हो सकती है । आज तुमने जिस वधू और शिशू की हत्या की, उसका पाप कभी भी तुझसे दूर नहीं होगा । ) इससे ज्ञात होता है कि भामा गर्भवती थी । यहाँ कवि पुरुष के अत्याचार की तीव्रता को दिखाने केलिए ही ऐसा चित्रण करते हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साहित्य मंजरी"- 5- पृ. 42
2. --वही-- -6- पृ. 15
3. --वही-- -पृ. 20

"कीर्तिमुद्रा" में कवि एक कामांध जवान के अत्याचार को प्रस्तुत करते हैं । नदी में नहाकर जानेवाली एक मज़दूर युवती पर मोहित होकर वह उससे प्रेम जताता है । युवती उसका विरोध करती है तो वह क्षुब्ध हो कर कहता है --

"एन्तेडी, तीर्त्तेयक्कां निन् नाक्कूट्टमोट्टुक्किन्ने"
न्नन्तरा चीरिक्कोण्डप्पट्टाळवेताळत्तान्
कत्तियोन्नरप्पट्टक्केट्टिल निन्नेडुत्ताञ्ञु
कुत्तिना न,-तेर,रःतो, मून्नामतोराळक्कायुप्पोयु" । [1]

(क्यों री ! तेरी वाग्पटुता आज समाप्त कर दूँगा ऐसा कहते हुए वह क्रूर जवान अपने कमर से एक बडा चाकू निकालकर उस युवती को मारने पर उतारू हुआ तो वह किसी दूसरे को लगा ) जवान लोग राष्ट्र की रक्षा करने केलिए नियुक्त है फिर भी वे ही ऐसे कुकर्म कर बैठते हैं । यहाँ कवि का व्यंग्य , स्त्री-के प्रति श्रद्धा का द्योतक है ।

इस प्रकार पुरुषों के अत्याचारों से पीडित और उनकी अनीति के विरुद्ध आत्मत्याग करनेवाली अबला नारी को चित्रित करके, कवि नारी की उन्नति एवं स्वतंत्रता की ओर कर्म रत हो जाते हैं ।

प्रस्तुत प्रसंग में गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् नारी जाति के प्रति होने वाली अनीतियाँ एवं अत्याचारों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करके, उनकी निस्सहायता पर बल देते हैं । पुरुष वर्ग ही नारी जाति की अवनति का मुख्य कारण है । इसलिए नारी जाति के उत्थान केलिए सबसे पहले पुरुषों को स्वयं आदर्शवान होना चाहिए - यही दोनों कवियों का मत है । इस प्रकार समाज सुधारक दोनों कवि नारी जागरण की ओर अपनी आस्था व्यक्त करते हैं ।

---

1. "साहित्य मंजरी"- प-9, पृ॰ 55-56

## 5.4. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पौराणिक नारी आधुनिक संदर्भ में

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के सृजनकाल में भारतीय नारी की स्थिति निश्चय ही शोचनीय थी । दोनों कवियों ने समसामयिक परिस्थितियों के बीच नारी के संघर्षपूर्ण एवं दयनीय जीवन की अभिव्यक्ति की है । नारी की उन्नति की महत्वाकांक्षा रखनेवाले गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् ने नारी जाति के पुनरुत्थान केलिए पौराणिक आदर्श-नारी-पात्रों को आधुनिक समाज के सम्मुख नयी उद्भावनाओं के साथ प्रासंगिक रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया है । पौराणिक पात्रों के आदर्शों को बनाए रखते हुए दोनों कवियों ने उनको नवीन समाज के उद्बोधन केलिए प्रस्तुत किया है । जहाँ गुप्तजी ने सीता, उर्मिला, कैकेयी, द्रौपदी हिडिंबा, विधृता, यशोधरा शकुन्तला, शूर्पणखा आदि को नये समाज के दायरे में चित्रित किया है वहाँ वळ्ळत्तोळ् ने शकुन्तला पार्वती, उषा, तुलसी, मग्दलन की मरियम (क्रिस्तीय पुराण-पात्र) सीता, राधा को आधुनिकता के रंग में रंगाकर चित्रित किया है ।

### 5.4.1. सीता

सीता मर्यादा पुरुषोत्तम राम की आदर्श पत्नी है । रामायण में सीता का महत्त्वपूर्ण चरित्र चित्रित है । कवि ने सीता के आदर्श चरित्र को युगानुकूल बनाकर प्रस्तुत किया है । "साकेत" और "पंचवटी" में कवि ने उसके परंपरागत पातिव्रत्य का चित्रण तो किया है । फिर भी "साकेत" में गुप्तजी ने सम्मिलित परिवार का सुन्दर चित्र उपस्थित करके सीताजी की विनयशीलता को दिखाया है । सरलता एवं उदारता भी उनके चारित्रिक गुण हैं । शूर्पणखा जैसी राक्षसी

का भी वे पक्ष लेती है । शूर्पणखा को अपनी सौत जानते हुए भी सीताजी का उससे नम्रता विनय आदि उनके चरित्रोत्कर्ष के चिह्न हैं । पारिवारिक जीवन में उनका हास-परिहास भी उनके भावुक हृदय का द्योतक है ।[1] "साकेत" में यही रूप उभर आया है । रामायण में सीता की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं । वे राम की छाया मात्र हैं । उनमें आधुनिक तरुणियों के साहस एवं शौर्य से कठिनाइयों का सामना करने की ताकत नहीं । गुप्तजी की सीता स्वावलंबी हैं । खुरपी लेकर खेत जोतने में भी उन्हें आनन्द एवं गौरव का अनुभव होता है ।[2] वे पतिव्रता हैं, फिर भी स्वतंत्र । उनका प्रेम राम मात्र से होते हुए भी समस्त सृष्टि के प्रति है । प्रकृति के साथ सहानुभूति उनके विशाल हृदय का परिचायक है । इस प्रकार सीताजी को प्रासंगिक रूप में प्रस्तुत करके कवि नारी जागरण की प्रवृत्ति को दिखाते हैं ।

5.4.2. "उर्मिला"

उर्मिला, गुप्तजी के नारी पात्रों में, प्रथम गणनीय है । उर्मिला का चरित्र पूर्णतः कल्पित है । वह "साकेत" का केन्द्रवर्ती पात्र है । उर्मिला के द्वारा कवि तत्कालीन नारी की पीडित अवस्था, आदर्श नारी की उच्च भावना एवं कर्मनिरत नारी की कर्तव्य-परायणता का चित्रण करते हैं । उर्मिला का चरित्र सद्गुणों से संपन्न है ।

उर्मिला के गौरवपूर्ण चरित्र में त्याग है । अतीव शोकपूर्ण परिस्थितियों में भी वह कर्तव्य निरत, एवं निस्वार्थ रहती है । राम के वनवास से उत्पन्न

---

1. "पंचवटी" - पृ. 68
2. -वही- पृ. 17

शोचनीय परिस्थिति में कर्तव्य-भावना से अवगत उर्मिला कहती है -" हे मन! तू प्रियपथ का विघ्न न बन " । त्याग का प्रतिरूप उर्मिला यहाँ अग्निपरीक्षा में भी सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होती है । अपने अनुराग को प्रमुखता देती हुई वह बाधा का कारण बनना नहीं चाहती । वह चाहती है -" भ्रातृस्नेह सुधा बरसे भू पर स्वर्गभाव सरसे "। [1] उसके कर्तव्यबोध एवं त्याग ने ही उसे विरहिणी बना दिया । उर्मिला विरह को , काम , मोह, आशंका, आलंबहीनता , एकाकीपन आदि भावों से ग्रस्त होते हुए, भी स्वेच्छापूर्वक अपनाती है । उसके चरमत्याग को लक्ष्य करती हुई सीताजी कहती है ---

सास ससुर की स्नेहलता बहन उर्मिला महाव्रता
सिद्ध करेगी वही यहाँ जो मैं भी कर सकी कहाँ । [2]

सीताजी तर्क करके पति के साथ चली जाती है फिर भी उर्मिला को ईर्ष्या छू तक नहीं सकती । वह अपने को संभालती है ।

प्रस्तुत पक्ष उर्मिला के वियोगिनी रूप में उदारता एवं कोमलता अधिक उभर आयी है । उसकी परदुःख-कातरता , समस्त संसार में उसका प्रकाश फैलाता है । असल में वह दूरदेशगामी पुरुषों को प्रकाश प्रदान करने की कामना की प्रतीक है । [3] दुःखभार से दबी रहने पर भी वह अपनी पारिवारिक परिस्थितियों से पूर्णतः अवगत है । [4] उसकेलिए वेदना, वेदना नहीं रहती "वेदने तू भी भली बनी", "तुम व्रती रहो मैं सती रहूँ"कह कर उर्मिला अपना आत्मनियंत्रण करती है , काम वासना को विश्व प्रेम में बदलती है । तभी तो वह काम को ललकार कर कह सकी ---

---

1. "साकेत"- पृ. 110
2. -पृ. 118
3. डा. सत्येन्द्र -"गुप्तजी की कला"- पृ. 109
4. "साकेत"- पृ. 270

मुझे फूल मत मारो ।
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो ।
नहीं भोगिनी यह मैं कोई , जो तुम जाल पसारो ।
बल हो तो सिन्दूर-बिन्दु यह , यह हर नेत्र निहारो ।। [1]

इन्हीं भावों से उसके विरह की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है ।

उर्मिला के प्रेम के दोनों पक्ष, संयोगात्मक और वियोगात्मक बिलकुल पुष्ट है । संयोग पक्ष प्रेम और हास-परिहास से संपुष्ट है । उर्मिला के चरित्र की पृष्ठभूमि का निर्माण करते हुए कवि कहते हैं :--

शील सौरभ की तरंगें आ रही,
दिव्यभाव भावाब्धि में ला रहीं । [2]

"साकेत" के प्रथम सर्ग में चित्रित लक्ष्मण-उर्मिला-प्रेम संवाद में उसके प्रेम की अपरिपक्वता उभर आई है । यहाँ उसकी वाक्पटुता, कलाप्रवीणता आदि का भी चित्रण हुआ है । फिर भी वह अपने आदर्श पत्नीत्व को सुरक्षित रखती है उसके चरित्रोत्कर्ष का चित्रण कवि ही करते हैं । [3]

"खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम चाहती हैं एक तुम्सा पात्र हम
आन्तरिक सुख दुःख हम जिसमें धरें और निजभवभार यों हल्का करें । [4]

यहाँ पौराणिकता एवं आधुनिकता का सुन्दर संगम दिखाई पडता है । यहाँ उर्मिला आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत"-
2. -पृ. 28
3. -पृ. 32
4. - पृ. 164

उर्मिला के अनन्य प्रेम को कवि चरन-सीमा पर चित्रित करते हैं । लक्ष्मण के ध्यान में तन्मयी बैठनेवाली विरहिणी, प्रेम की अनन्यता का पर्याय बन जाती है ।[1] पति-वियोग के ताप से उर्मिला कृशागात्रा हो जाती है । सीता राम के साथ वन में राजभवन का निर्माण करते समय विरहिणी उर्मिला राजमहल को तपोवन बनाती है । गुप्तजी की यह कल्पना आधुनिक युग बोध की देन के सिवा कुछ नहीं है ।

उर्मिला वियोग में भी अपने व्यक्तित्व खोती नहीं । समय आने पर उसमें क्षत्रियत्व जाग उठता है और वह वीर क्षत्राणी बन जाती है । "साकेत" के 12 वें सर्ग में लक्ष्मण के मूर्च्छित होने की सूचना पाकर जब अयोध्यावासी लंका पर आक्रमण करने को तैयार होते हैं तो उर्मिला उनका नेतृत्व करने की इच्छा प्रकट करते हुए कहती है ---

> "ठहरो, यह मैं चलूँ कीर्ति-सी आगे-आगे,
> भोगें अपने विषम-कर्म फल अधम अभागे ।[2]

यह तत्कालीन नारी के जागृत रूप का प्रतीक है । उर्मिला का यह चित्र पूर्ण रूप से प्रासंगिक हुआ है ।

> तू ने तो सहधर्मचारिणी से भी ऊपर
> धर्मस्थापन किया भाग्य शालिनी इस भू पर ।[3]

कहकर कवि ने उर्मिला को प्रमाण पत्र दिया है । यहाँ कवि ने उर्मिला के चरित्र परंपरा से बहुत ऊपर उठाकर जो परिवर्तन किया है वह युगीन

---

1. "साकेत - पृ. 164
2. --वही--
3. --वही -पृ. 495

प्रेरणा और कविकर्म का द्योतक है । उर्मिला का यह चरित्र अवश्य ही उद्बोधनात्मक है ।

5.4.3. कैकेयी

रामायण में कैकेई का चरित्र कलंकित है । इसका मूल कारण उसकी अहंचेतना ही कहा जा सकता है । अपने आग्रह के आगे वह पति की मृत्यु भी नगण्य मानती है । लेकिन गुप्तजी ने उसके इस रूप को सफलतापूर्वक अंकित किया है । अपनी इच्छापूर्ति के सामने वैधव्य का दुःख भी उसकेलिए तुच्छ है ।

वत्स, स्वामी तो गये उस ठौर
लौटना होगा न जिससे और । [1]

कैकेई की यही भावना भरत के राज्य ठुकराने पर उसे क्रुद्ध बनाती है । वह ग्लानि से अभिभूत नहीं होती ।

गुप्तजी कैकेई के इस परंपरागत मुख को सुधारने का प्रयास किया है । यहाँ मंथरा एक सेविका मात्र है । क्रोध में आकर कैकेई मंथरा को फटकारती है । [2] यह कवि के आधुनिक दृष्टिकोण का परिचायक है । गुप्तजी की कैकेई अपनी दासी के आगे दीनता स्वीकार नहीं करती । सर्वथा विषम वातावरण में भी मानसिक संतुलन की रक्षा करने में जिस शक्ति एवं आत्मबल की आवश्यकता होती है वह शक्ति "साकेत" की कैकेई की अपनी ही वस्तु है । परंपरा से प्राप्त नहीं । [3]

गुप्तजी ने कैकेई को सरलता का पात्र बनाकर उसे सहानुभूति के योग्य चित्रित किया है । "साकेत" में आद्यंत इसके स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं । वह मंथरा की बातों पर अविश्वास प्रकट करती है । बेचैन होकर वह इसकी सच्चाई की

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत"- पृ. 193- वा. रा. अ:का: स. 72- श्लो-15
2. पृ. 45
3. श्री नगीनचन्द्र सहगल- "साकेत सौरभ"- पृ. 57

खोज करती है ।[1] गुप्तजी की कैकेयी सरल, सद्भावों से युक्त, सुसंस्कृत और बुद्धिमती है । रामायण के विपरीत, दशरथ की मृत्यु उसे अत्यंत सताती है । अपने विधवा रूप को लिए वह पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगती है । चित्रकूट में आकर वह चरमसीमा पर पहूँचती है । वह अपने पाप को पहाड के समान एवं अपने अनुताप को खाई के समान मानती है और यह सार्वजनिक रूप से घोषित करती है कि उसके मन में उठे हुए स्वार्थ भाव ने ही, यह सब संकट खड़ा कर दिया है ----

"बस मैं ने इसका बाह्य मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा ।
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय ! आज यह बाधा ।
युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी, एक अभागिन रानी ।[2]

स्वार्थ के वशीभूत होकर आज भी शक्तियाँ कैकेयी बनी हुई है । फलतः जीवन से सुख-शान्ति का राम निर्वासित है । जब तक वे कैकेयी की तरह पश्चात्ताप नहीं करती, समाज शुद्ध नहीं बन सकता ।

वात्सल्य की दुहाई देती हुई वह अपने कृत्य का मनोवैज्ञानिक कारण उपस्थित करके राम से लौट आने की प्रार्थना करती है ।[3] यहाँ वह अतीव सरल होकर राम के प्रति ममता व्यक्त करती है । कैकेई की ऐसी प्रस्तुति रामकथा का आधुनिकीकरण मात्र है । यहाँ अपने क्रूरकर्म से डरती हुई कैकेयी अपने को छिपाती नहीं----

---

1. "साकेत"- पृ. 49
2. -वही- 249- पृ.
3. -वही- पृ. 248

निज जन्म जन्म में सुने जीवन यह मेरा-
"धिक्कार उसे था महास्वार्थ ने घेरा । [1]

गुप्तजी के कैकेयी चरित्र का विश्लेषण, पतनोत्थान और पश्चात्ताप-जन्य स्वरूप की प्रस्तुति आदि निस्संदेह श्लाघनीय है । कवि के द्वारा कैकेयी का कलंकित चरित्र उज्ज्वल हुआ । उसके चरित्र की भावुकता देखते हुए, अब राम के साथ चित्रकूट सभा के समान हम भी यह कहने को मजबूर होते हैं -" सौ बार धन्य वह एक लाल की माई " ।

5.4.4. हिडिंबा

महाभारत की राक्षसी हिडिंबा को गुप्तजी ने युगानुकूल परिवर्तन करके आधुनिक समाज में प्रस्तुत किया है । कवि ने उसके राक्षसी रूप को पूर्ण रूप में बदल दिया और उसे आर्यत्व की उच्चभूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया । गुप्तजी की हिडिंबा सुन्दर मानवी के रूप में ही भीम के सामने उपस्थित होती है । रूप के साथ कवि ने उसको आवश्यक मानव गुणों का भी दान दिया है । वह अपने को आर्य युवती की भाँति भीम के हाथों समर्पित कर देती है जब भीम के द्वारा अपने एकमात्र भाई हिडिंब मारा जाता है । [2] स्वयं भीम उसके रूप एवं चारित्रिक गुणों को देखकर उसकी प्रशंसा करते हैं । [3] कवि ने हिडिंबा की परंपरागत दुष्टताजन्य कुटिलता के स्थान पर सरलता और ऋजुता की स्थापना की है । यहाँ तक युधिष्ठिर भी उसकी चारित्रिक उज्ज्वलता को मान लेते हैं --

आई यातुवंश में हिडिंबा किसी भूल से,
वैसे सुसंस्कार वह रखती है मूल से । [4]

---

1. "साकेत"- पृ. 249
2. "हिडिंबा"- पृ. 33
3. -वही- पृ. 13
4. -वही- पृ. 28

इस प्रकार हिडिंबा के प्रासंगिक चित्रण से कवि नारी जागरण के साथ जातीय एकता की ओर भी प्रकाश डालते हैं । कवि राक्षसी, मानव और देवता के बीच में कोई फ़रक नहीं देखते हैं । यह उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का द्योतक है ।

5.4.5. विधृता

विधृता का चरित्र पूर्णतः कल्पित है । कवि ने भागवत के "विधृता" शब्द के आधार पर प्रासंगिक रूप में ही इस पात्र का निर्माण किया है ।[1] भागवत की विधृता एक यज्ञपत्नी है जिसके पति ने श्रीकृष्ण को भोजन प्रदान करने से उसे रोक दिया था । इसी कारण उसको आत्मत्याग करना पडा । उसके धीरतापूर्ण आत्मबलिदान को देखकर ही कवि ने उसे "द्वापर" का सबसे सशक्त पात्र बना दिया । आधुनिक युग में नारी के प्रति की जानेवाली अनीति के विरुद्ध झंडा फहराने का सुन्दर अवसर विधृता ने उत्पन्न किया है । अपने नीच पति के विरुद्ध , वह कटुवचन कहती है ।[2] पुरुषों के अत्याचारों के विरुद्ध वह वाणी उठाती है ----

"हाय वधू ने क्या वरविषयक एक वासना पाई ?
नहीं और क्या कोई उसका पिता पुत्र या भाई ?
नर के बाँटे क्या नारी का नग्न मूर्ति ही आई ?
माँ बेटी या बहन हाय क्या, संग नहीं वह लाई ?[3]

यहाँ कवि ने उसका क्रान्तिकारी चरित्र उतारा है । यह समकालीन भारतीय नारी की दयनीय अवस्था का प्रतीक है , अबला है लेकिन समय आने पर सबला

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भागवत"- 10/23/34
2. "द्वापर"- पृ. 36
3. पृ. 35

भी बन सकती है , और अपने अधिकारों की माँग करने में समर्थ रह सकती है । भारतीय स्त्री तो सदा अविश्वास और अनादर की पात्र रही है । अपने अपमान के प्रतिकार के रूप में उसे अपनी जान देनी पडी । ऐसा करके उसने अपने चरित्र को अमर, उज्ज्वल एवं तेजस्वी बना दिया । उसने "इस अन्याय समक्ष मरूँ मैं कभी नहीं झुक सकती " कहकर नारी जाति केलिए साहस और प्रेरणा का महामंत्र दिया है ।

गुप्तजी की विधृता नारी स्वतंत्रता का जयघोष करती है । क्रान्तिकारिणी होते हुए भी वह आत्मोकर्ष करनेवाली देवी है । भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठावान होते हुए भी उसमें नारी के आदर्शों की ओर संकेत करते हुए भी गुप्तजी ने उसके विद्रोही चरित्र का उद्घाटन किया है । उनकी उर्मिला, कैकेई, यशोधरा , सीता, द्रौपदी आदि जो कार्य नहीं कर सकीं हैं वह विधृता ने किया है । पौराणिक आदर्शों को सुरक्षित रखते हुए भी विधृता के चरित्र का यह विद्रोही भाव युगीन प्रभाव का ही परिचायक है । यहाँ कवि अपनी उद्देश्य पूर्ति में अतीव सफल हुए हैं । उनकी विधृता उद्बोधनात्मक नारी पात्र अवश्य है ।

5.4.6,. यशोधरा

यशोधरा भी गुप्तजी का एक प्रमुख नारी पात्र है । इस चरित्र का भी गठन कल्पित है । बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में प्राय: यशोधरा संबन्धी बातों का अभाव है । फिर भी बुद्ध-चरित में चार जगह यशोधरा का चित्रण हुआ है । बुद्ध चरित के 19 वें सर्ग में जब सिद्धार्थ बुद्ध बनकर कपिलवस्तु लौटते हैं उस सम पुरवासिनी स्त्रियाँ यशोधरा की ओर संकेत करती हुई कहती है ---

> कियच्छोकाकुला नूनं राजपुत्री यशोधरा
> तथापि खलु सा धीरा ह्यधुना ध्रियते यत: ।[1]

---

1. बुद्धचरित- स. 19. श्लोक-54

गुप्तजी ने यशोधरा के चरित्र में उपर्युक्त "धीरा" शब्द का विस्तृत अध्ययन करने का प्रयास किया है । यशोधरा का नवीन रूप अपनी आदर्श परंपरा में एक नया अध्याय जोडता है ।

"यशोधरा" यशोधरा की करुण कहानी होने के नाते उसमें यशोधरा के विविध पक्षों पर बल देने का प्रयास हुआ है । वह उच्च लक्ष्य की प्राप्ति केलिए प्रयत्नशील प्रिय का स्मरण करके आत्म गौरव का अनुभव करती है । फिर भी चोरी चोरी चले जाने के कृत्य से अपमान का अनुभव करती है । क्योंकि इससे उसके आत्मगौरव की क्षति होती है ।[1] जब महाराज शुद्धोदन सिद्धार्थ को खोज लाने को कहते हैं तो वह उसका विरोध करती है । वह अपने जातीय गौरव और स्वाभिमान को खो नहीं सकती है ।[2] अपने वियोग के बढ़ने पर भी वह स्वाभिमान रखती है । वह कहती है ---

भक्त नहीं जाते कहीं  आते हैं भगवान
यशोधरा के अर्थ है उसका यह अभिमान ।[3]

यशोधरा का यह अभिमान विनय एवं क्षमाशीलता से युक्त है । जब बुद्ध उसके द्वार पर आकर क्षमा की याचना करते हैं तो वह क्षमा की मूर्ति बनकर उनका स्वागत कर लेती है और राहुल का  दान देकर स्वयं सद्धर्म स्वीकार कर लेती है । उसके स्वाभिमानी निरपराध जीवन के सम्मुख कवि ने उसके पति को अपराधी ठहराया है । यहाँ यशोधरा आत्मबल का प्रतीक होते हुए भी  उसमें व्याकुलता या विरहवेदना की कमी नहीं है । वह काषाय धारण कर सब मन ही मन सह लेती है । फलस्वरूप उसकी संवेदना समाज पर दुगुना प्रभाव डालती है । कवि की यशो रा में दुर्बलता नहीं है । पत्नीत्व के दर्प तथा मातृत्व के अधिकार के

---

1. "यशोधरा"- पृ. 3।
2. -वही- पृ. 42
3. -वही- पृ. 56

कारण वह दीन होकर भी आत्मविश्वास से युक्त एवं कर्तव्यपरायण है । इन्हीं गुणों ने ही सिद्धार्थ को बुद्धदेव की पदवी पर प्रतिष्ठित किया । उसके आत्म समर्पण और त्याग के आगे बुद्धदेव को भी अपना सिर झुकना पडता है । वे कहते हैं ---

> आया जब मार मुझे मारने को बार बार
> अप्सरा अनाकिनी सजाए हेमहीर से ।
> तुम तो यहाँ थीं धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ
> जूझा मुझे पीछे कर पंचशरवीर से । [1]

यशोधरा का आत्मसमर्पण और निस्वार्थ प्रेम का यह मकुटोदाहरण है । उसकी सच्ची प्रेमिका वनवासी प्रियतम को हृदय में दर्शन कर एकत्व का सुन्दर परिचय देती है -" सखि प्रियतम है वन में किन्तु कौन इस मन में ? [2]

यशोधरा के चरित्र का सर्वाधिक निखरा हुआ और सर्व सम्मानित रूप उसके जननीत्व का है । वह अपने विकारों को सहकर शरीर को जलाकर भी जी रही है -" गोपा गलती है पर उसका राहुल तो खलता है । [3] जाया उर्मिला के विरह का पारावार जननी यशोधरा के राहुल के वात्सल्य में सिमट गया है । उसकी जाया विसूरती है पर ऐसे में राहुल के आ जाने पर उसकी जननी को चुपचाप आँसू पोंछ लेना पडता है । क्योंकि आँसू के खारेपन से आँचल का दूध फट जाएगा - विकासमान बालक का व्यक्तित्व कुंठित हो जाएगा । इस प्रकार वह एक पूर्ण साधिका बनाकर जननी, पत्नी, गृहिणी तथा सामान्यत: नारी के सभी रूपों का उदाहरण बनती है । पुत्रवात्सल्य से प्रेरित होकर उसे पति

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "यशोधरा" - पृ. 206
2. -वही- पृ. 55
3. -वही- पृ. 74

की उपेक्षा करनी पडती है ।[1] राहुल के सामने वह अपने रानीपन को भी तुच्छ समझती है ---

राहुल रानीपन देकर तेरी चिर परिचर्या पाऊँ
तेरी जननी कहलाऊँ तो इस परवश मन को बहलाऊँ ।[2]

यहाँ वह हृदय के तूफान को दबा कर पुत्र केलिए लोरी गाने को विवश होती है । राहुल इसे भाँपते हुए कहता है --

गाती मेरे अर्थ है , रोती उनके अर्थ ।
हम दोनों के बीच तू , पागल-सी असमर्थ ।।[3]

बालक पुत्र एवं युवपती के बीच के दो विरोधी बिन्दुओं के बीच उसका जीवन ठोस खाता रहता है । निरंकुश पुरुष-संसार पर नारी की विह्वलता का यह बडा व्यंग्य और आक्षेप है । अंत में कर्मनिरत यशोधरा राहुल को पति के चरणों में अर्पित करके प्रेम और वात्सल्य की चरम परिणति को दिखाती है ।

तुम भिक्षुक बनकर आए थे गोपा क्या देती स्वामी
था अनुरूप एक राहुल ही रहे सदा यह अनुगामी ।[4]

ऐसा करके गुप्तजी वैराग्य पर गार्हस्थ्य की विजय गाथा-वैष्णवी नैवेद्य रूप में -प्रस्तुत करते हैं । यहाँ गौतम के निर्वाण से गोपा का गार्हस्थ्य-रस अधिक उज्ज्वल प्रतीत होता है । यह पूर्णतः आधुनिक युग की प्रेरणा से किया गया है । यहाँ गुप्तजी दावा करते हैं कि नारी की पूर्णता उसके मातृत्व में है । स्वयं बुद्ध देव ने इसे स्वीकारा है ---

---

1. 'यशोधरा'- पृ. 69
2. -वही- पृ. 106
3. - वही- पृ.
4. -वही- पृ. 203

दीन हो गोपे सुनो हीन नहीं नारी कभी
भूत दया मूर्ति वह मन से शरीर से । [1]

इस पर श्री वाजपेयी जी का कथन है -"गुप्तजी की यशोधरा तो मुझे सर्वत्र भारतीय गृहिणीत्व में अविचल देख पड़ी । अन्यत्र वे कहते हैं -- "वह तो स्त्रीत्व की महिमा प्रकट करनेवाली सब ओर से अखलित गीता की "स्थितधी प्रतिष्ठित प्रज्ञा" नारी है । [2]

इस प्रकार गुप्तजी , यशोधरा के द्वारा नारी के नानामुखों के विभिन्न भावों का उद्घाटन करके , तत्कालीन पौरुष को चेतावनी देते हैं , साथ ही साथ नारी की युगीन पीड़ित अवस्था का चित्रोपम चित्रण करके नारी जाति के पुनरुत्थान का आह्वान भी देते हैं ।

इन सब पौराणिक पात्रों को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करने के बाद कवि शकुन्तला का भी पौराणिक रूप को चित्रित करते हैं । यहाँ कवि ने "शकुन्तलोपाख्यान" और "अभिज्ञान शाकुन्तल" की नायिका को उसी प्रकार अपनाया है । गुप्तजी भी "शकुन्तला" में उसके सौन्दर्य , प्रेम की पतिव्रता सरलता विनय आदि परंपरागत रूपों को चित्रित करके संतृप्त होते हैं ।

इस प्रकार गुप्तजी की रचनाओं का नारी जीवन, व्यवहार और दायित्व के विविध स्तरों पर जिस रूप में प्रासंगिकता ग्रहण करती है , वह सांस्कृतिक , सामाजिक , पारिवारिक तथा संस्कारित जीवन के विविध रूप हैं । यह नारी-अस्मिता की प्रासंगिकता का नैरन्तर्य बनाए हुए हैं । नारी जीवन का ऐसा विस्तृत चित्रण कवि की, नारी के प्रति उच्च भावना एवं , उसकी अवनति के प्रति दुःखातिरेक का भी द्योतक है । नारी पात्रों का इतना सबल चित्र

---

1. "यशोधरा"- पृ. 206 2. "मैथिलीशरण गुप्त- व्यक्ति और काव्य"-पृ. 316

समकालीन साहित्य में अन्यत्र मुश्किल से ही प्राप्य है ।

5.5. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पौराणिक नारी आधुनिक संदर्भ में

5.5.1. शकुन्तला

सामाजिक समस्याओं के सजीव चित्रण केलिए ही कवि पुरानी शकुन्तला को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं । "अभिज्ञान शाकुन्तल" और "शाकुन्तलोपाख्यान" की तरह "अच्छनुं मकळुम्" में भी शकुन्तला नायिका है । लेकिन कवि उसे सामयिक रूप में उपस्थित करते हैं । उनकी शकुन्तला मैले कपडे पहनी हुई , विवश और दुःखी नारी है ।[1] यह समकालीन नारी का चित्र कहा जा सकता है । जन्म से शकुन्तला अनाथ थी फिर भी वह अपने माता-पिता से कोई वैर नहीं रखती । कश्यपाश्रम में जब वह अपने पिता को , अकस्मात् देखती है तो आनन्दमग्न होकर कहती है -"आननुगृहीतयाय् तातदर्शनत्ताले[2] {तात दर्शन से मैं अनुगृहीत हो गयी हूँ } और आनन्दाश्रुओं से वह पिताजी का प्रणाम करती है । कवि यहाँ एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि नारी हृदय मृदुलविकारों के कोमल स्पर्श से विकाराधीन हो जाता है ।

भर्तृपरित्यक्ता होने पर भी शकुन्तला अपने पति को दोषी नहीं ठहरती । वह उसे विधिविधान समझकर शांत हो जाती है । जब विश्वामित्र जानते हैं कि शकुन्तला भर्तृपरित्यक्ता है तो वे अत्यधिक कुपित होकर दुष्यन्त को शाप देने पर उतारू होते हैं । ऐसी स्थिति में पतिपरायणा पुत्रवत्सला और पितृभक्ता होकर शकुन्तला उन्हें रोकती है । यहाँ शकुन्तला क्षमा, प्रेम आदि का पर्याय

---

1. "अच्छनुं मकळुम्" - पृ. 35
2. -वही- पृ. 33-34

बन जाती है । अपने दुःख को अन्दर ही अन्दर दबाती हुई वह पिताजी से कहती है ---

अच्छनम्ममार काले वेडिञ्ञ निर्भाग्य ए
स्वच्छन्दमुपेक्षिच्चान भर्तावुमेन्ने वेण्डू । 1

(माता-पिता ने इस अभागिन को पहले ही छोड दिया था अब, बस पति ने भी छोड़ दिया है ।) शकुन्तला के इस कथन का प्रभाव विश्वामित्र पर अच्छी तरह पड़ता है । उनका सर्व संहारक क्रोध, तप का प्रभाव, सब कुछ पुत्री की स्नेहपूरित सौम्यता के सामने सिर नवाता है । इस प्रकार शकुन्तला विश्वामित्र को पूर्ण रूप में एक मानव बना देती है । अगर शकुन्तला ऐसा नहीं करती तो एक साथ उसके पति, पुत्र, पिता और उसकी हानि हो जाती ।

इस प्रकार कवि शकुन्तला के पुत्री, पत्नी और माता रूप प्रस्तुत करते हैं । पुत्री के रूप में प्रेम, पत्नी के रूप में त्याग और सहिष्णुता माता के रूप में कर्तव्य निष्ठा और वात्सल्य आदि से वह नारी जीवन को सफल बनाती है । ऐसी आदर्श नारी का चित्रण सामयिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करके कवि नारी जागरण पर ज़ोर देते हैं । कवि ने शकुन्तला को पौराणिक भारतीय स्त्री के आदर्शों के साथ आधुनिक समाज केलिए योग्य स्त्रियोचित गुणों से युक्त चित्रित किया है ।

5.5.2. उषा

भारत के पारिवारिक जीवन में जिस स्वातंत्र्य और आत्मनिर्भरता की भावना का उदय हो रहा था वह आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नया रूप ग्रहण करनेवाली थी । ऐसे ही अवसर पर कवि ने "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन" का निर्माण किया है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 "अच्छनुं मकळुम्" - पृ. 50

उनकी उषा प्राचीन नारी की तरह एक वीर युवती है । वह पुराणों में वर्णित आज्ञाकारिणी और भयभीत, बाणासुर की पुत्री नहीं , वह तो मंत्रिवर कुंभाण्ड से वाद-विवाद करती है कि निरपराध अनिरुद्ध को आपने क्यों कैद में रखा, अपराध मेरा है , कि मैंने ही उनको बुलवाया था । स्त्री स्वतंत्रता की आधुनिक प्रवृत्ति की वर्तमान भावना यहाँ प्रतिध्वनित हो रही है ।[1] बन्दी गृह में रहने वाले अपने प्राणेश्वर के बारे में सोचकर उषा अतीव विवश हो जाती है । वह अपने आपको अपराधी समझाती हुई , कुंभांड से कहती है---

"काराधिवाससमविडेयुक्कु विधिच्चतोर्ताल
घोरापराधपदमुडयोरिवळ वध्यतन्ने ,
वीरावरोध पद संश्रय धनययां भ्रान्
तीराक्कृतार्थतयोडोळु मरिच्चुकोल्लाम्" ?[2]

{यह बात जब मन में आती है कि आपको कारावास का दण्ड दिया गया तो लगता है कि घोरापराधी मैं मृत्यु दण्ड केलिए योग्य ही हूँ । मैं आप जैसे अनन्य वीर के चरणों का आश्रय पा चुकी हूँ , और स्वयं को धन्य बना चुकी हूँ । अब मैं एक अनश्वर कृतज्ञता का अनुभव मन में धारण किए हुए मरने को तैयार हूँ । } उषा की चारित्र शुद्धि यहीं व्यक्त होती है । आगे कुंभाण्ड उसे सान्त्वना देते हैं कि अनुराग नदी में विघ्न आ जाना स्वाभाविक ही है , लेकिन सब ठीक हो जाएगा ।[3] उषा प्रेम केलिए अपने बन्धुजनों गुरुजनों और अपने जीवन को भी त्यागने केलिए तैयार होती है । वह कुंभाण्ड से कहती है - "यदि आप

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. डा0एन. ई. विश्वनाथ अय्यर- "आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य- पृ. 212

2. "बन्दी अनिरुद्ध"- पृ. 29

3. -वही- पृ. 32

लोगों को इस उषा के शोकाकुल जीवन के बारे में कोई आकांक्षा है तो मुझे अकेले वहाँ जाने की अनुमति दीजिए, जहाँ मेरा प्राणनाथ अकेले बैठे हैं । [1] यहाँ उषा पति-प्रेम और स्त्री स्वातंत्र्य की प्रतिच्छाया बन गई है ।

वह अकेली प्रिय-दर्शन केलिए कारावास में पहुँचती है । अब अनिरुद्ध उसके अकेले आने के अनौचित्य के बारे में पूछते हैं , तो वह स्वतंत्रता से कहती है कि पिताजी के नाराज़ होने की बात छोडिए, स्त्री अपने पति का साथ कैसी छोड सकती है वही उसके लिए आत्माभिमान की बात है । [2] यहाँ हम देख सकते हैं कि उनकी उषा अपने कर्म , धर्म और स्वतंत्रता से बिलकुल अवगत है । बातचीत करने के बाद अनिरुद्ध उषा को वहाँ से तुरंत ही वापस जाने को कहते हैं । लेकिन वह पतिपरायणाउससे सहमत नहीं है । पति प्रेम की चरम सीमा में पहुँचकर वह कहती है ---

> एन्नात्मनाथ, दयवुचेय्तधुना भवान्टे
> पिन्नालेयाकुक मम प्रतिसंप्रयाणम् । [3]

§मेरे प्राणनाथ , आप अभी जाइए , मैं आपके पीछे पीछे यहाँ से जाऊँगी । § वह अपने प्रिय के बारे में अतीव चिंतित है । इसलिए उनको येन केन प्रकारेण वहाँ से बचने को कहती है । यहाँ ध्यान देने की बात है कि मूल कथा में उषा के कैदखाने में जाकर अपने प्रिय से मिलने के प्रसंग का सर्वथा अभाव है । यहाँ कवि उषा को एक आदर्श और स्वतंत्र नारी के रूप में चित्रित करके अपनी उद्देश्य की ओर बढ़ते हैं ।

---

1. "बन्दी अनिरुद्ध" पृ. 34
2. -वही- पृ. 48
3. -वही- पृ. 52

5.5.3. पार्वती

मातृत्व का सबसे उज्ज्वल और उदात्त रूप हमारी पौराणिक परंपरा में पार्वती के चरित्र में मिलता है । दाम्पत्य प्रेम और पुत्र के प्रति वात्सल्य भरा मातृत्व उनके दो महत्वपूर्ण भाव हैं ।[1] कवि पार्वती के इससे भी उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करते हैं । "गणपति" पुरुषत्व और अधिकार के अप्रासंगिक आधिपत्य के खिलाफ नारी और शक्ति का स्वतंत्रता संग्राम है । यहाँ पार्वती अपनी स्वतंत्रता केलिए संघर्षकरनेवाली भारत माता है । शिव, आधिपत्य अथवा संचालक शक्ति है , और गणपति भारतीय कर्मोन्मुख जनता का भी प्रतीक है । आखिर जीत पार्वती की होती है । इस कारण से "गणपति" अत्यंत प्रासंगिक रचना रही है ।

"शिष्यनुं मकनुम्" में कवि पार्वती को एक आम माता के रूप में चित्रित करते हैं । पार्वती के पुत्र का दांत शिव-शिष्य द्वारा काटा जाता है । पार्वती गणपति को ऐसी स्थिति में देखकर सहसा विकाराधीन होती है । वह जलती हुई आँखों से पति को देखती है ।[2] वात्सल्यातिरेक से पार्वती एक साधारण माता की तरह अपने पति की चुटकियाँ लेती हुई कहती है ---

"मकन् परिक्केट्टु मरिक्किलेन्तु
महारथन शिष्यनटुक्कलिल्ले ?
रामन् जगत्स्तत्तनाणु पोलुम्
विद्यार्पणं पात्र मरिञ्ञु वेणम् ।[3]

(पुत्र घायल होकर मर जाये भी तो क्या महारथी शिष्य पास ही तो है ना ?

---

1. डॉ. सरला देवी -" हिन्दी साहित्य में नारी"- पृ. 125
2. "शिष्यनुं मकनुम्"- पृ. 36
3. -वही- पृ. 36-37

हाय, "राम तो संसार के सबसे उत्कृष्ट" व्यक्ति है । पात्र को जानकर ही विद्या दान करना है । § यहाँ पार्वती का मातृत्व उभर आया है । यहाँ वळ्ळत्तोळ् की पार्वती कोई देवी नहीं । वह तो सामयिक नारी का प्रतीक मात्र है , नारी के वत्सलता भाव की चरम परिणति है । इस प्रकार कवि पौराणिक गुणों से युक्त पार्वती को प्रासंगिक बनाकर आधुनिक समाज में प्रस्तुत करते हैं ।

## 5.5.4. राधा

पार्वती के कोप को शांत करने केलिए कृष्ण के साथ कैलास में पहुँचने वाली राधा एक शांत स्वरूपिणी नारी है । पारिवारिक कलह के संदर्भों में , सौम्य भाव से परिवार में संतुष्टि की पुनःस्थापना करनेवाली भारतीय आदर्श नारी के प्रतीक के रूप में राधा प्रत्यक्ष होती है । [1] कैलास में आते ही राधा एक माता की तरह गणपति को हाथ फेरकर सान्त्वना देती है । [2] यह पार्वती को अतीव आश्वासजनक लगता है । राधा के छूते ही गणपति का घाव भर जाता है । [3] ऐसा करके राधा पार्वती से पूछती है -- बच्चों के आपस में ऐसा करने पर क्या माता का इस प्रकार भावविभोर होना ठीक है ? जब से भृगुराम शिवजी का शिष्य है तब से तुम्हारे तीन पुत्र हो गए हैं । [4] आगे वह सरल भाव से कहती है ---

निनयुक्कणं पुत्ररिल मीतेयायियुम्<br>
कनत्तवात्सल्य मोडीक्कुलीनने ,<br>
निनक्कु गर्भ प्रसवादि पीडयाल्<br>
मनं कलङ्ङाते लभिच्च कुञ्ञिवन् [5]

---

1. शूरनाट्टु कुञ्ञन पिल्ला- "वळ्ळत्तोळ् काव्य की स्त्री"- पृ. 328
2. "शिष्यनुं मकनुम्" -पृ. 43-44
3. पृ. 44
4. पृ. 45
5. "शिष्यनुं मकनुम्"- पृ. 45

{पुत्रों में इस उन्नत जात को सबसे बडा समझकर अतीव वात्सल्य से संभालना है, यह तुम्हें गर्भ एवं प्रसव पीडा के बिना मिला हुआ पुत्र है। } यहाँ कवि राधा को नारी के निर्मल एवं उदात्त भावों के प्रतीक के रूप में, आधुनिक समाज के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

### 5.5.5. मरियम्

यह "मग्दलन मरियम्" की नायिका है। क्रिस्तीय पुराण- बाइबिल में मग्दल की मरियम् को एक परिशुद्ध नारी के रूप चित्रित किया है। वह ईसामसीह के सम्मुख पश्चात्ताप यज्ञ करके पापविमुक्ता हो जाती है, यही मरियम् की कहानी है। लेकिन वळ्ळत्तोळ् ने उसमें बहुत परिवर्तन करके उसे प्रासंगिक और युगानुकूल बना दिया है। मूल कथा में मरियम वेश्या है। कवि उसे वेश्या नहीं कहते।[1] उनके मत में समाज ने ही उस तरुणी को वेश्या बना दी है। समाज ने उसकी दरिद्रता और सौन्दर्य का लाभ उठाया।[2] इसमें उसकी कोई गलती नहीं है। वेश्या वृत्ति करके वह दरिद्र नारी अमीरी की रानी बन गई। यह कवि की कल्पना-शक्ति की चतुराई है। इस प्रकार मरियम एक पापिनी की जीवन बिता रही थी। आगे किसी प्रकार वह ईसा के संदेशों के बारे में अवगत होती है और अपने पापों के प्रायश्चित्त करने का० निश्चय कर लेती है।[3] इसके फलस्वरूप वह सब कुछ भूलकर ईसा के उपदेशों के अनुसार जीने लगी, और वह समझती है कि पापियों का एकमात्र सहारा ईसा है।[4] इस प्रकार वह मानसिक रूप में परिवर्तित होती है और पाप कर्मों से मुक्त हो कर जीवन बिताती है। वह अपनी सारी संपत्ति दरिद्र जनता को देती है।[5] यह भी मूल कथा केलिए एक नवीनता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "वळ्ळत्तोलिन्टे पद्यकृतिकळ्"- "मग्दलन मरियम्"- पृ. 260
2. --वही--- पृ. 262
3. --वही-- पृ. 264
4. --वही-- पृ. 267
--वही-- पृ. 268

अब कवि कहते हैं ---

"इन्नले नां कण्ड तेविडिप्पेण्णल्ली-
ति, न्निवळ चारित्र चारुमूर्ति । [1]

§यह वह वेश्या लडकी नहीं है , जिसको कल हमने देखा था आज वह चारित्र्य की पवित्र मूर्ति बन गई है § इस प्रकार उसे , कवि पहले माफी देकर पाप विमुक्त करते हैं ।

एक दिन ईसा शीमोन नामक धनी परिशन के घर में अतिथि बनकर आते हैं । यह जानकर मरियम भी वहाँ जाती है । समस्त प्राणियों को समान रूप से प्रेम करने वाले को देखते ही वह उनके चरण कमलों में गिरती है । उनके दिव्य रूप को पाकर वह सब कुछ भूल जाती है , उसके सम्मुख केवल ईसा ही ईसा है । [2] आनन्दाश्रुओं से वह मसीह के चरणों को धोकर उसे अपने केशों से पोंछकर उसमें सुगन्ध तेल लगा देती है । [3] ऐसा करके वह ईसा से प्रार्थना करती है --

"चेय्यरुतात्तु चेय्तवळेंकिलुं इय्येन्नेत्तल्लल्लेतंपुराने ,.
तिय्यिनेप्पोलुं तणुप्पिक्कुन्निप्पोनट्क्कय्यिनाल्त्तीर्तवलल्लो-
आनुम् । [4]

§जो नहीं करना है वह मैं ने किया है फिर भी हे प्रभो मुझे नहीं त्याग दीजिए आपके हाथों से अग्नि भी शांत हो जाती है , मेरा भी जन्म आपके उन हाथों से ही हुआ है । इस प्रकार वह प्रायश्चित्त करने केलिए मजबूर की जाती है । अब उसे प्रेम और पश्चात्ताप देखकर ईसामसीह उसको देखते हुए कहते हैं :--

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "वल्लत्तोलिन्टे पद्यकृतिकळ्"- "मग्दलन मरियम्"- पृ. 268
2. --वही--- पृ. 269
3. --वही-- पृ. 269-270
4. " "

"पोयृक्कोळक पेण्कुञ्ञे, दु:खं वेडिञ्ञु नी ,
युळक्कोण्ड विश्वासं कात्तुनिन्ने ;
अप्पप्पोळ पातकं चेयृततिन्नोक्केयुम् -
इप्पश्चात्तापमें प्रायश्चित्तम् " ।

{दु:खों को त्यागकर तुम जाओ बालिके , तुम्हारे विश्वास ने तुम्हारी रक्षा की समय-समय पर तुमने जो पाप किया है उसकेलिए यह पश्चात्ताप ही प्रायश्चित्त है । } यहाँ कवि मरिया को नया जीवन प्रदान करते हैं । इस प्रकार कवि पापिनी मरिया को सामयिक रूप में प्रस्तुत करके सामाजिक बुराइयों की ओर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करके , आखिर पश्चात्ताप करवाके उसको चारित्र्यवती बना देते हैं । इससे कवि की नारी जागरण की भावना उभर आती है ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् नारी की स्वतंत्रता को राष्ट्र की उन्नति माननेवाले कवि हैं । जहाँ नारी को पूजनीय स्थान दिया जाता है वहाँ ईश्वर का वास होता है । यही दोनों कवियों का विश्वास है । लेकिन आलोच्य कवियों के काल में नारी की स्थिति बिलकुल कारुणिक थी । इस स्थिति से समकालीन नारी को प्राचीन भारतीय नारी के उन्नत पीठ पर बिठाने का स्तुत्य प्रयास दोनों कवि करते हैं । इस साध्य के साधन के रूप में गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ पौराणिक आदर्श पात्रों को आधुनिकता के रंग में रंगाकर, नए समाज के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं । गुप्तजी, सीता उर्मिला, कैकेयी हिडिंबा विधृता , यशोधरा आदि नारी पात्रों को उपस्थित करते समय वळ्ळत्तोळ् , शकुन्तला उषा पार्वती राधा मरियम आदि को प्रस्तुत करते हैं । यहाँ गुप्तजी के पात्र आधुनिक होते हुए भी पौराणिक आवरण पहने हुए दिखाई पड़ते हैं , जब कि वळ्ळत्तोळ् के नारी-पात्र पूर्णत: आधुनिक समाज के योग्य बन गए हैं । वळ्ळत्तोळ् की उषा और शकुन्तला पुराण की और गुप्तजी की शकुन्तला से एकदम भिन्न है । वळ्ळत्तोळ् की शकुन्तला की तरह गुप्तजी की विधृता बिलकुल आधुनिक है ।

---

1. 'वळ्ळत्तोळिन्टे पद्यकृतिकळ्- 'मग्दलनमरियम्- पृ. 273

दोनों कवियों के नारी पात्र आधुनिक युग के योग्य गुणों से युक्त हैं । वे वीर, कर्म-निरत, वात्सल्य मय, नीतियुक्त , धार्मिक और आदर्श नारियाँ हैं । आवश्यकता आने पर विद्रोह करने केलिए भी वे तैयार हैं । गुप्तजी की उर्मिला, विधृता और वळ्ळत्तोळ् की शकुन्तला उषा आदि इस कोटि के पात्र हैं । इस प्रकार दोनों कवियों ने पौराणिक पात्रों को आधुनिक युग के योग्य बनाकर नारी जागरण का महत्वपूर्ण कार्य किया है । दोनों कवियों के नारी पात्रों में युगानुकूल नारी की स्वतंत्रता , आत्म निर्भरता आदि गुणों का भी समावेश हुआ है । इस प्रकार गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् ने पौराणिक पात्रों को आधुनिक युग के योग्य बनाकर नारी जागरण का महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

## 5.6. गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में नारी की उच्च भावना

वैदिक काल में नारी सर्व सम्मानित थी । भारतीय संस्कृति में नारी को सम्मान के सर्वोच्च शिखर पर इतना ऊँचा बैठाया गया कि अर्द्धनारीश्वर ने पार्वती को अपने मस्तक पर धारण किया । पौराणिक संस्कृति में उसे , अन्नपूर्णा लक्ष्मी आदि संज्ञाओं से विभूषित करके पूज्य बनाया । लेकिन, सबसे ऊँचे स्थान पर जाकर नीचे आना तो स्वाभाविक है । उसी प्रकार नारी की अवनति होने लगी । आधुनिक युग में आते-आते नारी की अवस्था अतीव दुःखपूर्ण हुई ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् नारी की निंदा कभी नहीं सह सकते थे । वे अब भी नारी को वैदिक कालीन मर्यादा देकर सम्मानित करते हैं । इसलिए उन्होंने अपने काव्य में नारी की उच्च-भावना की कामना की है । दोनों कवियों की नारियाँ आदर्श धीर, पतिव्रता, स्वावलंबी और पुरुष के साथ समभावना एवं समानाधिकार रखनेवाली हैं ।

## 5. 6. 1. गुप्तजी के काव्य में "पातिव्रत्य का वर्णन

नारी की पति के प्रति निष्ठा वैदिक साहित्य से ही प्राप्त है । इन्द्राणी सर्वप्रथम आदर्श पत्नीत्व का उदाहरण प्रस्तुत करती है । रामायण में सीता का चरित्र एवं महाभारत में गाँधारी का चरित्र पति-परायणा का ही है इस प्रकार भारतीय नारी ने पति को सदैव अपना आराध्य देव माना है । पत्नी पति की सेवा में मनसा वाचा कर्मणा संलग्न रही है । आधुनिक काल में आकर गुप्तजी में भी नारी के पति-परायणा रूप की झाँकी प्राचीन साहित्य की ही भाँति मिलती है । कवि ने पति-पत्नी विषयक मान्यताओं का विश्लेषण करते हुए कहा है कि पत्नी का धर्म है कि वह पति परायणा हो । उनकी सीता पतिव्रता है , वह रावण से इसलिए बात नहीं करतीं कि पर-पुरूष से बात करना पतिव्रता केलिए धर्म विरूद्ध बात है --

"विमुख हुई मौन व्रत लेकर उस खल के प्रति मौनव्रता" ।[1]

गुप्तजी की यशोधरा विश्वास करती है कि यदि नारी पतिव्रता है तो उसके लिए संसार के सभी भार ढ़ो लेना सहज है और कोई भय उसको पातिव्रत्य धर्म से नहीं डिगा सकता -" यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार भय भारी" । गुप्तजी की सैरन्ध्री भी इसी पातिव्रत्य का पालन करती है । कीचक के प्रलोभन में न आकर उसे फटकारती हुई बताती है कि पतिव्रता नारी "अबला" होने पर भी "कुलटा" नहीं हो सकती ।[3]

---

1. "साकेत"- एक दश सर्ग - पृ. 433
2. "यशोधरा"- पृ. 38
3. "सैरन्ध्री" - पृ. 7

भारतीय नारी एक बार स्वप्न में भी जिसे अपना पति मान लेती है उसके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का ध्यान नहीं करती ---

"आर्य कन्या मान लेती स्वप्न में भी पति जिसे
भिन्न उससे फिर जगत में और भज सकती किसे । [1]

सीता की दृष्टि में "पति ही पत्नी की गति है " । [2] गुप्तजी की विष्णु-प्रिया " अपने पति के बारे में दावा करती है -" मेरी मति और गति केवल तुम्हीं - तुम्हीं " । [3]

गुप्तजी की एक पत्नी व्रत और पातिव्रत धर्म में अचल निष्ठा है । उन्होंने अपनी रचनाओं में इस भाव को व्यक्त किया है । कवि की शकुन्तला कहती है -" सतियाँ पति को नहीं कोसतीं परित्यक्त भी होकर" । "जयभारत" में भी कवि ने कहा है "सतियाँ पति केलिए सभी कुछ कर सकती है " । गुप्तजी की रानकदे जयसिंह की पापमय दृष्टि से बचकर अपने सतीत्व की रक्षा करने की कोशिश करती है । [4]

"जयद्रथ-वध" खण्ड काव्य में पतिव्रत धर्म के संबन्ध में कुररी-सदृश सकरुण गिरा द्वारा गुप्तजी ने उत्तरा के मुख से बडे सुन्दर वाक्य कहलाए हैं । -- [5]

"कुछ राजपट न चाहिए पाऊँ न क्यों मैं त्रास ही,
हे उत्तरा के धन ! रहो तुम उत्तरा के पास ही । [6]

---

1. "रंग में भंग"- पद-77- पृ. 22
2. "साकेत"- चतुर्थ सर्ग- पृ. 120
3. "विष्णु प्रिया"- पृ. 43
4. "सिद्ध राज"- पृ. 79
5. "जयद्रथ-वध-" सर्ग-1, सर्ग-2
6. "सैरन्ध्री" - चतुर्थ सर्ग- पृ. 120

पतिव्रता पत्नी को पाकर पति को जैसे सभी प्रकार के सांसारिक संकटों को झेलने की शक्ति मिल जाती है । आदर्श पति पत्नी को माता, भगिनी आदि रूप में भी देखते हैं । ऐसी पत्नी में ही , कुणाल के शब्दों में पति का सारा जग समा जाता है । मार्ग में वह सहारा बन जाती है और जीवन की अँधेरी रातों को अपनी मुख चंद्रिमा से जगमगाती है ।[1]

पतिव्रता नारी विरहिणी होने पर प्रियागम पाने की आकांक्षिणी होती है । देश और राष्ट्र पर बलिदान होनेवाली नारी, व्रणाहत हो समर-प्रांगण में पडी पति के चरणरज की ही अभीप्सा करती है । इतने घनीभूत ताप से अभिभूत होने के कारण ये प्राण चले जाने पर भी प्रिय के प्रत्यावर्तन पर पुनः वापस आ जायेंगे--

"कहाँ जाएंगे प्राण ये लेकर इतना ताप ?
प्रिय के फिरने पर इन्हें फिरना होगा आप ।[2]

प्रिय को प्राप्त कर लेने पर तो मानों विरहिणी को त्रैलोक्य-संपदा से भी अधिक सुख मिलता है । गुप्तजी की यशोधरा बुद्ध देव को फिर से पाकर --

पुलक पक्ष्म परिगीत हुए थे ,
पद रज पोंछ पुनीत हुए थे ।
रोम रोम शुचि शीत हुए थे ये ,
पधारे भव भव के भगवान ।।
..-. पा कर पर्व स्नान ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "कुणाल गीत"- पद-25, पृ. 43.
2. "साकेत"-
3. "यशोधरा-"

विरहिणी क्षमा तथा सहनशीलता का वरण कर वियोग को सह लेती है पर पति को सम्मुख देख कर भी उससे संभाषण करने का साहस नहीं करती ।

इस प्रकार आदर्श, पतिव्रता नारी के विविध स्तरों के पौराणिक, सामयिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करके कवि नारी की उच्च भावना पर प्रकाश डालते हैं । गुप्तजी की सती पत्नी, क्षमाशीलता, विनम्रता, सहनशीलता, सहिष्णुता त्याग आदि के द्वारा ही अपने व्यक्तित्व की सबलता का परिचय देती है । ऐसा करके कवि ने समकालीन नारी जाति को परतंत्रता की बेडियों से विमुक्त करवाने का प्रयास किया है । नारी की इस उच्च भावना का प्रतिपादन तत्कालीन समाज के लिए उद्बोधनात्मक अवश्य रहा होगा ।

## 5. 6. 2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पातिव्रत्य का वर्णन

पति-पत्नी के संबन्ध में वळ्ळत्तोळ् का विचार पौराणिक आदर्शों पर आधारित है । नारी का पातिव्रत्य ही परिवार और समाज की आधारशिला है । कवि पत्नी को पवित्र और पतिपरायणा के रूप में देखते हैं । पत्नी को सदैव पति का साथ देना अनिवार्य है , तभी वह पतिव्रता और आदर्श नारी बन जाती है । भारतीय आदर्श नारी ने एक बार एक पुरुष को मन में वर लिया तो फिर वह किसी दूसरे पुरुष के बारे में सोच भी नहीं सकती । कवि की उषा-अनिरुद्ध को स्वप्न में देखकर अपना प्राणेश्वर समझ लेती है । अपने पिता द्वारा बन्दी बनाये गये अनिरुद्ध से वह कैद-खाने में अकेले जाकर मिलती है । अनिरुद्ध उसे वापस जाने को कहते हैं । तब पतिव्रता उषा कहती है --

"पोकट्टेयच्छनरिशप्पेट्टुमेन्न कार्यम् ,
स्त्रीकळ्कु भर्तृसहचर्य वेडिञ्ञिडामो । [1]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन्" - पृ. 48

"राधयुडे कृतार्थता" की राधा और "ओडुक्कलत्ते कुरिप्प्" की भामा भी पातिव्रत्य के निदर्शन हैं । दोनों नारियाँ अपने प्रेमी पुरुष का विवाह-समाचार सुनकर आत्मविभोर हो जाती हैं । दुःख भार से भामा आत्माहुति करती है । [1] दूसरी अविवाहिता रहकर नवदंपतियों को बधाई देती है । [2] यहाँ पातिव्रत्य के साथ उसकी भावशुद्धि भी दर्शनीय है ।

पातिव्रत्य की उच्च भावना दिखानेवाली है वळ्ळत्तोळ् की "चंपकवल्ली" । वह एक देवदासी की पुत्री है । रामायण पढ़कर वह चाहती है कि वह भी सीता के समान पतिव्रता बन कर जिए । [3] उसके इस विचार पर कवि आश्चर्य चकित हो उठते हैं । ----

> "अंपो माहितावितार्ष भूवे: तव वन पोर्कलत्तिलुं निष्काम काहळम्,
> वेडक्कुडिलिलुं ब्राह्मण्य संपत्ति , वेशत्तेरुविलुं चारित्र सौरभम् । [4]

§ हे आर्षभूमि ! तेरी युद्ध भूमि में निष्काम काहल है , निम्न जातवालों की कुटिया में ब्रह्म तेज अथवा समृद्धि है , और वेश्याओं के नुक्कड में पातिव्रत्य । §

यहाँ युद्धभूमि का निष्काम, दरिद्रों की समृद्धि और कुलटाओं की पवित्रता को देखकर कवि भारत की संपन्न परंपरा पर गर्व करते हैं । स्त्रीत्व की उच्च भावना पर गौरव करते हैं ।

"ओरु नायर स्त्रीयुं मुहम्मदीयनुम्" नामक कविता में नायर स्त्री को अपने पातिव्रत्य की रक्षा केलिए मुसलमान का गला काटना पड़ा । [5] वह क्रूर मुसलमान उस

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साहित्य मंजरी"- 6-पृ. 15
2. "साहित्य मंजरी"- 4- पृ. 6
3. "कोच्चुसीता" - पृ. 5
4. -वही- पृ. 5
5. -वही- पृ. 34

अबला पतिव्रता को अपने घर में ले जाकर भोगना चाहता है । [1] ऐसी अवस्था में वह उस क्रूर के कटार को उपाय से उससे ग्रहण करके उसे मार डालकर अपने पातिव्रत्य की रक्षा करती है ।

"पद्दिटल पोतिञ्ञ् तीक्कोल्ली" में कवि की पातिव्रत्य संबन्धी उच्च भावना उभर आती है । वे पूछते हैं -- पातिव्रत्य कितनी कीमती चीज़ है । [2]

"मुट्टत्ते तुलसी" में कवि पातिव्रत्य की शक्ति के बारे में हमें अवगत कराते हैं । तुलसी देवी के पातिव्रत्य के ही कारण शिवजी उसके पति शंखचूड को कुछ भी नहीं कर सकता । परमेश्वर का त्रिशूल शंखचूड के शरीर पर एक पत्थर पर लगे हुए काँटे की तरह रह नाकाम सिद्ध हुआ ।

"परीक्षयिल् जयिच्चु" नामक कविता में भी कवि पातिव्रत्य की शक्ति का प्रतिपादन करते हैं । एक साध्वी के मछवार पति सागर में फंस गये । इस पर वह भी उसी समुद्र में कूद कर आत्महत्या करने जाती है । "तब एक दुर्बल हाथ उसकी रक्षा करती है तो वह सोचती है -- परपुरुष ने मुझे छुआ है । जब वह देखती है तो वह उसका ही बचकर आया हुआ पति है "। [3]
अब कवि कहते हैं ---

"प्रेमत्तेप्परीक्षिप्पानायुवरामीशन चेयुत-
ती मरिमाय-मतिल्-ज्जयमे सति नेडि। [4]

---

1. "साहित्यमंजरी"- 1- पृ. 34
2. -वही- 2- पृ. 85
3. -वही- 4- पृ. 77
4. -वही- 4- पृ. 77

§प्रेम की परीक्षा केलिए शायद ईश्वर ने ही ऐसा अद्भुत किया है ? - उसमें वह सती जीत गई । § परिशुद्ध प्रेम के आगे मृत्यु भी हाथ जोडती है । पातिव्रत्य की उच्चता का वर्णन करके कवि नारी जाति की यहाँ स्तुति करते हैं ।

भारत स्त्री की भावशुद्धि के आगे महान सम्राट हुमायूँ भी नतमस्तक हुए हैं । सम्राट केलिए भृत्य एक युवती को ले आते हैं । महल में आकर वह पतिव्रता कहती है --

"धीरनां राजावे , साधुवां स्त्रीयुडे चारित्र्यं पोक्कोल्ले" [1]

§हे धीर राजा मुझ विनीत स्त्री के पातिव्रत्य को नष्ट न कीजिए । § उस अबला के रुदन पर वे समझते हैं कि वह एक पतिपरायणा नारी है । भारतीय स्त्री का पातिव्रत्य देखकर सम्राट कहते हैं ---

"माप्पिलमार् चेयुत तेट्टु मरन्नु नी, माप्पी हुमयूणिनेकियालुम्" [2]

§मुसलमानों द्वारा की गई गलती को भूलकर मुझे माफ कीजिए । § ऐसा कहकर वह सम्राट उस युवती को मान सम्मान के साथ अपने पति के पास पहुँचा देते हैं ।

हरे, कृष्ण" नामक कविता में एक पतिव्रता अपने पति के शव के साथ जल मरने की इच्छा करती है । उसके पति श्मशान में लाये गए । आग लगाने के पहले वह , प्राणप्रिय के सिर को अपनी गोदी में रखकर बन्धुजनों से कहती है ---

"नष्टजीवित आनुं नाथन्टे निर्वाणत्ताल ,
ओट्टुमे शंकिक्केंडा शवदाहत्तिन्नेन्नाळ्"

---

1. "साहित्य मंजरी"- 4- पृ. 84
2. -वही- 4- पृ. 91

§उसने कहा आत्मनाथ की मृत्यु के कारण मेरा भी जीवन नष्ट हो गया है , अब थोडा भी विलंब न करो , चिता जलाने में । §

यहाँ कवि पति प्रेम केलिए स्वयं को भी त्यागने वाली पतिव्रताओं का चित्रण करके नारी की उच्चता को प्रमाणित करते हैं ।

5. 6. 3. गुप्तजी की नारी में समता का अधिकार

प्राचीन भारतीय संस्कृति पर अभिमान करनेवाले कवि स्त्री की भी पुरुषों की तरह उन्नति चाहनेवाले हैं । प्रजातंत्र राष्ट्र में पुरुषों के समान नारियों को भी प्रत्येक क्षेत्र में समानाधिकार मिलना चाहिए । इसका समर्थन कवि "राजा-प्रजा" में करते हैं ।[1] समानाधिकार में मत-स्वातंत्र्य का भी अधिकार है । "साकेत" में सीता के कथन में मत-स्वातंत्र्य पर बल दिया गया है --

"मत की स्वतंत्रता विशेषता आर्यों की
निज मत के ही अनुसार क्रिया कार्यों की ।[2]

कवि ने कुलीन तंत्र के मूलोच्छेद पर बल दिया है । "साकेत" में यह बताया गया है कि कुलतंत्र दोषयुक्त होता है । --"चलती है दुर्नीति राज्य से ही अरे ।[3] "राजा-प्रजा" में राजा की उक्ति एवं गुप्तजी की अभिमति में कुलीनतंत्र अथवा राजतंत्र को मिटाकर राजा और प्रजा के साम्य पर बल दिया गया है ।[4] नारी समानाधिकार केलिए कवि राजतंत्र को मिटाने की घोषणा शत्रुघ्न से करवाते हैं ।[5] "पृथ्वीपुत्र" में दिवोदास ने राजा और प्रजा को सहभोगी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "राजा-प्रजा" -प्रजा - पृ. 34
2. "साकेत"- अष्टम सर्ग- पृ. 259
3. --वही-- पंचम सर्ग- पृ. 141
4. "राजा-प्रजा- "राजा"- पृ. 6
5. "साकेत"- सप्तम सर्ग- पृ. 202

बनाया है और दोनों के साम्य पर बल दिया है -" राजवंश भी रहे प्रजा के साथ सदा सन भक्त ।"[1]

भारतीय संस्कृति में अडिग आस्था रखने के कारण उन्होंने पुरुष-स्त्री में अधिकारी-अधिकृत संबन्ध स्वीकार नहीं किया है । वे तो पुरुष और नारी दोनों को समान अधिकार देने के पक्षपाती हैं ।

"आधे का अधिकार उचित ही उन्हें मिला है,

छोटों की माँ और बड़ों की वे बेटी हैं,
सम-वयस्कों की बहिन, कहाँ किसकी चोटी हैं ।[2]

इस प्रकार कवि नारी को पुरुषों के समान अधिकार देकर उसे सम्मानित करते हैं ।

## 5.6.4. वळ्ळत्तोळ् की नारी में समता का अधिकार

वळ्ळत्तोळ् भी नारी को पुरुष के समान, अधिकार और स्वतंत्रता देने के पक्ष में है । उनके अनेक नारी पात्र, अपनी समता की स्थापना केलिए समाज और पुरुष वर्ग से संघर्ष करती, दिखाई पडती है । वे पुरुष के आधिपत्य को स्वीकारने केलिए तैयार भी नहीं है । अनीति के खिलाफ उनकी नारी युद्ध करती है, वह अपने पति के मुकाबले भी क्यों न हो । "गणपति" में "शक्ति" शिव के खिलाफ युद्ध केलिए तैयार हो जाती है, अपने समताधिकार की स्थापना

---

1. "पृथ्वी पुत्र" - पृ. 27
2. "राजा-प्रजा" - पृ. 34

केलिए । "स्त्रीतत्व और "पुरुषतत्व" समान प्राधान्य रखनेवाले हैं "- इसकी घोषणा करने वाला है पौराणिक अर्द्धनारीश्वर संकल्प । भूले हुए उस तत्व की पुनःस्थापना है पार्वती का "शक्ति" प्रदर्शन ।[1] शिवजी की सारी सेना पार्वती के पुत्र के सम्मुख निष्प्रभ हो जाती है । आखिर शिव ही आकर उसका गला काटता है ।[2] यह समाचार सुनकर पार्वती के शरीर से उसी क्षण विश्व को ही नष्ट-भ्रष्ट करने की शक्ति उत्पन्न हुई ।[3] देवर्षियों ने पार्वती को समझाने की कोशिश की तो वह माता कह उठी --

"एन्नालेन्नुण्णि , जीविच्चि, वनखिल गणाध्यक्षनायुप्पूज्यनायुम्
वन्नालल्लाते पारिन्नषलिदिकयिल्ला , यतिन्नायु श्रमिप्पिन ।[4]

(ऐसा हो तो मेरा पुत्र पुनः जीवित होकर अखिल गणनायक और पूजनीय बन जाय , ऐसा नहीं हो तो संसार की यह दशा मिटने वाली नहीं है , उसके लिए तुम लोग कोशिश करो ।) आखिर ऐसा ही हुआ । गणपति फिर से जीवित हो गया । यहाँ वळ्ळत्तोळ् की नारी-पार्वती अपनी समता की स्थापना करके अपनी बहनों को उद्बोधित करती है । कवि की यह उच्च भावना सच्चे अर्थों में श्लाघनीय है ।

स्त्री के धार्मिक विकास केलिए उसे भी पुरुषों की तरह स्वतंत्र अधिकार की अनिवार्यता है । वळ्ळत्तोळ् की उषा, नारी की अपने इष्ट पुरुष को चुनने की स्वतंत्रता केलिए लडती है । बाणासुर अनिरुद्ध को कपट युद्ध में कैदी बनाता है । इस अनीति की ओर उषा शोर मचाती हुई पूछती है---

---

1. डा. एम. लीलावती- "वळ्ळत्तोळ् प्रतिभा अधीशत्वत्तिन्नेतिरे"- पृ. 63
2. गणपति- पृ. 21
3. पृ. 21-22
4. पृ. 22

"तातन्नु, ज्ञानिह वधूजनवर्ज्यमाकुं, स्वातंत्र्यमार्नतिलुमेन्तभिमान भंगम् ?
हा, तन्मकळ्कनघवीर वधूपदाप्तियेतच्छनेड्. किलमतम्मतमावतुन्डो ? [1]

(पिता को , मैं वर्जनीय हूँगी, लेकिन स्वातंत्र्यप्राप्ति में क्या अभिमान भंग है ? हा, अपनी बेटी को एक परिचित और वीर के पत्नी पद मिलने में कौन पिता असहमत रहेंगे ? ) यहाँ भी नारी अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ही बैठती है ।

विवाहमोचनं (तलाक) में एक मुस्लिम युवती विवाह बन्धन में पडकर परतंत्र बन जाती है और वह तलाक चाहती है । यहाँ कवि यह नहीं कहते कि वह क्यों और कैसी परतंत्र है । आखिर कवि कहते हैं - बहुत प्यार मिलने पर भी पंछी को हवा में उडना ही अच्छा लगता है । [2]

"स्त्रीकळ्" में कवि कहते हैं कि असल में पुरुष नारी के अधीन है , फिर भी पुरुष शास्त्रोक्तियों के द्वारा उसे अपनी अधीनता में लाता है । [3] स्त्री को समताधिकार देते हुए कवि कहते हैं ---

एड्.डि.ने शरिक्केन्तुं जीवितभारं नरन्
इड्.ड.रु ससमां तोळ तुणप्पानिल्लेन्नाकिल् ? [4]

(नारी की सहायता के बिना पुरुष जीवन के भार को कैसा संभालेगा ? )
कवि के अनुसार नारी के बिना घर भी सूना हो जाता है । आखिर नारी के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कवि कहते हैं , जीवन के अनिवार्य एवं नित्य प्रयुक्त क्रान्ति, कला, पुष्टि, संतुष्टि, शांति आदि शब्द देवभाषा में स्त्रीवाची है । [5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "बन्दी अनिरुद्ध"- पृ. 31
2. "साहित्य मंजरी"- 9- पृ. 69
3. "विषुक्कणी"- पृ. 49
4. -वही- पृ. 50
5. -वही- पृ. 51

## 5.6.5. गुप्तजी की स्वावलंबन नारी

गुप्तजी नारी की पराधीनता से अतीव दु:खी दिखाई पडते हैं । उन्होंने अपनी काव्य में नारी को उच्च पदवी देकर उसे स्वावलंबी चित्रित किया है । स्वावलंबिनी के हाथ और पैर इतने समर्थ हैं कि वह अपना कार्य स्वयं कर सकती है । अपने शारीरिक श्रम से किए गए कार्य की फलप्राप्ति में ही उसे सच्चा सुख मिलता है और इसीलिए वह स्वावलंबी बनने में विशेष आनंदित होती है ---

"औरों के हाथ यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खडी आप चलती हूँ ।
श्रम वारि बिन्दु फल का स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ
अपने अचल से व्यंजन आप झलती हूँ,
तनुलता सफलता स्वादु आज ही पाया" ।[1]

गुप्तजी की नारी स्वयं अपना स्वत्व रखती है, वह लड़कर अथवा किसी का कुछ लेकर जीना नहीं चाहती और तब उसके सहज समर्पण को उसके अतुलित अनुराग को उसका दायित्व क्यों कहा जाय ---

"अधिकारों के दुरुपयोग का कौन कहाँ अधिकारी
कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या अर्धांगिनी तुम्हारी ।[2]

"साकेत" की सीता हरेक व्यवहार में रामचन्द्र के अनुसार स्वावलंबी जीवन में विश्वास रखती है । फलत: राम के चरित्र की महानता उसमें भी स्पष्ट होने लगते हैं । यही स्वावलंबन, सीता को वनवास के समय में सहयोग दिया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत"- पृ. 223
2. "द्वापर"- पृ. 23

गुप्तजी के नारी पात्रों में विष्णुप्रिया ही सबसे स्वावलंबिनी दिखाई पडती है । वह अपना जीवन पूर्णतः स्वावलंबी बनाने केलिए प्रयत्नशील है । वह स्वयं अपनी सासजी के साथ सूत कातकर जीवन व्यतीत करने लगती है । अहर्निह कर्मरत रहना ही वह अपना कर्तव्य समझ लेती है । दुःख की अधिकता के कारण उसके मन का दुःख परिपक्व होकर, गंभीर हो जाता है । एक दिन तपस्वी गौरांग के पास प्रताप रुद्र राजा के यहाँ वस्त्रादि वस्तुएं भेंट में आती हैं । वे उसको विष्णुप्रिया के पास भेज देते हैं । परन्तु विष्णुप्रिया कहती है ---

"-अम्ब, उपहास भाग होगा यह अपना,
वस्त्र और आभूषण दोनों यह एक ही । [1]

इस तरह कवि ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर शनैः शनैः विष्णुप्रिया के चरित्र को निर्लिप्त त्याग की मूर्ति बनाकर उच्चता के आसन पर उसको दृढ़ करने का प्रयास किया है । विष्णुप्रिया का स्पष्ट मत है कि अकेले पुरुष की भक्ति एवं तपस्या कभी पूर्ण होती नहीं । वह आत्मविश्वास से प्रभु की आश्रम - व्यवस्था की अपूर्णता से अपने को अधिक प्रबल मानती है । वह प्रभु गौरांग से किसी प्रकार कम नहीं है । कारण है ---

"नाथ साधु हो तुम तो मैं भी
हूँ साध्वी कुल बाला,
तप्त करेगी तुम्हें एक दिन
इस अनाथ की ज्वाला । [2]

नारी के प्रति उच्च भावना रखनेवाले गुप्तजी ने विष्णुप्रिया के स्वभाव में क्रमशः परिवर्तन करते हुए उसको स्थित प्रज्ञा स्थिति में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "विष्णुप्रिया" - पृ. 78
2. -वही- पृ. 81
3. -वही- पृ, 86

अंत में उसके प्रभु अपने ग्राम की ओर आते हैं । यह शुभ समाचार सुनकर विष्णुप्रिया उलाहना देती है और माँ से अपने अश्रु थामने को कहती है । उसे संदेह है कि कहीं प्रभु उनका रोना देखकर लौट न जाएँ । वह पति भक्त में लीन रहती है । परन्तु प्रभु जब लौट आते हैं , उसी समय क्षणभर वे विष्णुप्रिया को पहचान नहीं सकते । तब विष्णुप्रिया उनके उत्तर में कहती है --

"जानती नहीं मैं अब कौन किन्तु पहले ,
एक दूसरे को जानते थे हम दोनों ही ।
भूले , तुम हाय । मैं ही भूल नहीं पाई क्यों ? " [1]

इस प्रकार उसका स्पष्ट उत्तर सुनकर स्वयं प्रभु अपनी गलती स्वीकार करते हुए उससे क्षमा माँगते हैं । एक बार दर्शन दे उसे छोड़कर चले जाते हैं । विष्णुप्रिया फिर से विरहिणी बन जाती है । आगे माता शची के आदेशानुसार वह स्वयं स्वावलंबिनी बन जाती है ।

इस प्रकार नारी की उच्च भावना दिखाकर कवि तत्कालीन नारी में नई स्फूर्ति दिखाते हुए नारी जाति के पुनरुत्थान का समर्थन करते हैं ।

### 5. 6. 6. वळ्ळत्तोळ् की स्वावलंबन नारी

नारी को समानाधिकार देने वाले कवि, उसकी पूर्ण स्वाधीनता के भी पक्ष में हैं । परतंत्र नारी किसी के शरण में रहना चाहती है । कवि "गणपति में पार्वती को स्वावलंबिनी चित्रित करते हैं । वह अपने पति के आधिपत्य का मुकाबला करने केलिए एक पुत्र को जन्म देकर कहती है ---

---

1. "विष्णुप्रिया"- पृ. 117

"अन्तकारियुडे भृत्यरोक्केयुं हन्त नम्मुडेतन्नेयेंकिलुम्
स्वन्तमायोरुत्वनिड्.डुवेण, मत्यन्तनिष्ठयोडु वातिल् काक्कुवान्" ।

(शिवजी के सभी भृत्य हमारे हैं फिर भी मेरा द्वारपाल बनने केलिए अपने ही एक पुत्र की ज़रूरत है । ) यहाँ वह पराश्रय बिलकुल नहीं चाहती । वह स्वतंत्र भारतीय नारी का प्रतीक बन गयी है । "नाग्गिला" में पति नवोढ़ा को त्यागकर सन्यास ग्रहण करता है । कुछ दिनों के बाद वह वापस आता है । तब तक उसकी पत्नी भी स्वतंत्र रहकर सन्यास ग्रहण करती है । पति उससे पुनः दांपत्य की याचना करता है तो वह स्वावलंबिनी होकर स्नेह से कहती है -" मुझे छुओ मत, काम से मुझे छुओ मत । त्याग दी गई वस्तु पर हाथ मत लगाओ " ।[2]

"बहिष्कृतयाय अन्तर्जनम्" में कवि एक ब्राह्मण परिवार का चित्र प्रस्तुत करते हैं । घरवाला तीसरी शादी करता है । ब्राह्मण युवतियाँ घर के बाहर जा भी नहीं सकती थीं । पत्नियों के बीच झगडा होने लगा । ऐसी स्थिति में नववधू सब त्यागकर चली जाती है । वह पराधीनता से मुक्त हो जाती है । एक स्वतंत्र मज़दूरिन बनकर साधारण जीवन बिताती है । वह अब स्वतंत्रता कहती है --

"पर्याप्त विभव मान त्वप्रयत्नत्ताल, पोरा
पत्नीत्वमाणिप्पेड्.ड.ळक्कोरु संपत्तेंकिल ।
भर्तावुमियुल्लोळक्कुंडिड्.डु.- नूलयक्र मितु
भद्रशब्दत्तालेंकलत्तूकुन्नू प्रियवाक्यम् । "[3]

(मेरे पास जीने केलिए पर्याप्त संपत्ति है । अगर पत्नीत्व ही स्त्री की संपत्ति है तो मेरा पति भी है - यहाँ - चक्र का मीठा स्वर मुझ से प्रिय वचन कहता है )

---

1. "गणपति"- पृ. 3
2. "साहित्यमंजरी"- 5 - पृ. 5।
3. "विषुक्कणि"- पृ. 19-20

स्वावलंबी होकर वह स्वतंत्रता का सुखानुभव करती हुई कहती है -- मेरा सौभाग्य सबको आनन्द देने योग्य है मेरा छोटा-सा घर शांति का स्थल भी है ।[1] यहाँ कवि नारी को, स्वावलंबिनी बनाकर स्वतंत्रता की अनिवार्यता के बारे में उन्हें सचेत करते हैं ।

5.6.7. गुप्तजी के काव्य में संघर्षशील नारी

समसामयिक परिस्थितियों के बीच नारी के संघर्षपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति, गुप्तजी के काव्य में जहाँ कभी भी उपलब्ध है, वह कवि की नारी के प्रति उच्च भावना का परिचायक और पूर्णतः प्रासंगिक है । आधुनिक समाज की नारी को सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक स्तर पर निरंतर संघर्ष करना पडता है । "सिद्धराज" में कवि की संघर्षशील नायिका रानकदे अतीव प्रासंगिक प्रतीत होता है । वह सिद्ध राज को निडर होकर धिक्कारती है ---

"तुम हो कृपाणपंथी प्रणय पंथी नहीं
प्रेम तो पराजय भी भोगता है जय-सी
सच्चा योग उसका वियोग में ही होता है ।[2]

सिद्धराज के व्यवहार पर रानकदे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है --

तो क्या तुम चाहते हो प्रभु से मनाऊँ मैं
यौवन बिगाडेगा तुम्हारी किसी रानी का
आवे नहीं कोई शिशु-पुत्र कभी कोख में ?[3]

---

1. "विषकन्यणी" - पृ. 20
2. "सिद्धराज" - पृ.
3. -वही-

आज नारी को चरित्रापकर्ष के प्रति भी संघर्ष करना पडता है । गुप्तजी की सैरन्ध्री, कुन्ती (बकसंहार), यशोधरा आदि यही सघन संघर्षशीलता को प्रासंगिक बनाने वाली हैं ।

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।

यहाँ "आँचल में दूध" नारी के वत्सला स्वरूप का और "आँखों में पानी" उसके "सम्मान और स्वाभिमान" का प्रतीक है , न कि नारी के रुदन का । [2]

यही कारण है कि गुप्तजी के नारी पात्र भीषण यातना सहकर भी आत्म-गौरव से मंडित रहते हैं ।

आधुनिक युगीन नारी अपनी महत्ता और अस्मिता केलिए संघर्ष-रत हैं । वह मात्र पुरुष की अंकशायिनी ही नहीं सहयोगिनी हो सकती है । इसलिए गुप्तजी की यशोधरा की प्रतिक्रिया अपनी अस्मिता का प्रश्न उठाती है और वह प्रश्न करती है -" अपि मेरे अद्धांगि-भाव क्या विषय मात्र थे तेरे । [3] नारी के स्वाभिमान की प्रासंगिकता "यशोधरा" में चरितार्थ होती है । गौतम के लौटने पर उसके मिलने न आने पर गौतम उसके द्वार पर आकर क्षमा माँगते हैं ।

"जयद्रथ-वध" में भी कवि व्यक्त करते हैं कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करना उचित है "- अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है । [4]

---

1. "यशोधरा"-
2. लेखकीय व्याख्या: मैथिलीशरण गुप्त शताब्दी समारोह संगोष्ठी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, 29-30 मार्च, 1987, प्रारंभिक पत्र वाचन में उल्लिखित ।
3. "यशोधरा"
4. "जयद्रथ-वध-प्रथम सर्ग- पृ. 5

यही बात सुमित्रा भी कहती है :-

स्वत्वों की भिक्षा कैसी, दूर रहे इच्छा ऐसी ।
प्राप्य याचना वर्जित है , आप युद्धों से अर्जित है । [1]

गुप्तजी के स्त्री-पात्र दो एक प्रसंगों में पुरुष के अत्याचार को रोककर उसे सत्पथ दिखानेवाली प्रेरक शक्ति के साथ प्रकट होते हैं । "अनघ" में ग्राम भोजक की पत्नी, पति के अत्याचारों के विरुद्ध संघर्षशील है और उसे बदलने का प्रयत्न करती है । राजा जो मघ को दण्ड देता है , एक दुष्ट व्यक्ति है , और रानी उसे सुधारने की कोशिश करती है ।

इस प्रकार गुप्तजी ने अपने नारी पात्रों को यथासंभव नवीन आशाओं एवं आदर्शों के साथ सामयिक रूप में प्रस्तुत करके नारी का सम्मान किया है । ऐसा करके कवि ने नारी स्वतंत्रता की ओर एक कदम आगे बढ़ाने का प्रयास किया है ।

### 5.6.8. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में संघर्षशील नारी

नारी स्वतंत्रता के समर्थक वळ्ळत्तोळ् अपने नारी पात्रों को कभी-कभी उनकी स्वतंत्रता की स्थापना केलिए संघर्ष करने को प्रेरित करते हैं । समसामयिक परिस्थिति , संघर्षशील नारी की प्रस्तुति केलिए बहुत प्रासंगिक भी रही है । "कोच्चुसीता" की चंपकवल्ली समाज में नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों की ओर संघर्ष करती हुई आत्महत्या करती है । इसके पहले वह जो खत लिखती है उसमें व्यक्त करती है -" मैं देवदासी अवश्य हूँ लेकिन मनुष्यदासी नहीं । एक देवदासी के युवती होने पर वह समाचार शहर में नगाड़ा बजाकर फैलाने की

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "साकेत"- तृतीय सर्ग- पृ0101

प्रथा भी यहाँ थी । इसके खिलाफ वह पूछती है क्या मानव की बहिन की ऐसी स्थिति हो गई है ? [1] मंदिर में नाचने के अतिरिक्त वेश्यावृत्ति करने केलिए मैं तैयार नहीं हूँ । वह अपनी चारित्र्य-रक्षा केलिए संघर्ष करती हुई कहती है ---

"एन निधियितु कूरिरुळ् पोतिञ्ञीन्नाशि कोंडुपोकातिरिक्किलो,
वन्न चोरन् कडन्नु कवर्नेने, वन्द्य वैदेहि तक्कतु तोन्निच्चु ! [2]

(मेरी इस निधि को उस दिन की अंधेरी में ओढ़कर नहीं लायी गयी तो , उस दिन आए चोर ने उसे छीन लिया होता आदरणीय वैदेही ने सही याद दिलायी।)
भारतीय नारी की इस दुःस्थिति पर वह रो पड़ती है -" मेरी चारित्र्य-रक्षा का अब एक ही मार्ग बचा है - आत्महत्या । [3] मरने के बाद मैं स्वर्ग में जाकर प्राचीन भारतीय पतिव्रताओं से अपनी बहनों की दुःर्विधि के बारे में कहूँगी । [4] आखिर वह भारतधात्री से यात्रानुमति माँगती हुई कहती है -- "भारत में तब कहीं स्त्री परतंत्र है । उसके परिश्रम से ही वह दुःस्थिति दूर हो सकती है । हे ऋषियों की माते , तुम्हारी जय हो । [5] इस प्रकार संघर्ष करती हुई वह दस दिन तक गली-गली में अपनी चारित्र्य-रक्षा केलिए भटकती फिरती रही । आखिर कोई चारा नहीं पाकर वह आत्महत्या करती है । यह मद्रास में घटी हुई एक घटना के आधार पर रची हुई कविता है । काव्यांत में कवि आत्म-विभोर होकर कहते हैं --

"स्वादुवाल्मीकि सूक्त सेवनात् जातबोधयामक्कोच्चु मैथिलि,
मानरक्षार्थ , मांडु मरञ्ञुपोयू मातृभूविन् पिळर्न हृदयत्तिल्" [6]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. 2. 3. 4. -"कोच्चुसीता"- पृ. 23, 25, 29, 30-
5. 6. पृ. 31, 32

(वाल्मीकि के आस्वाद्य काव्य पढ़कर बोधवती होने के कारण वह छोटी मैथिली पातिव्रत्य की रक्षा केलिए मातृभूमि के हृदय में अंतर्धान हो जाती है ।) यहाँ कवि सीताजी की आखिरी क्षणों की याद दिलाकर, नारी जाति के प्रति उच्च-भावना प्रकट करते हैं । "बहिष्कृतयाय अंतर्जनम्" की नवोढ़ा, घर में शान्ति से जी नहीं सकती है । सपत्नियों के बीच झगडा होता रहता था । ऐसी स्थिति से बचाने केलिए नवोढ़ा को संघर्ष करना पडता है । वह झूठ कहती है कि उसे वहाँ के भृत्य के साथ रहस्य संबन्ध है । यह सुनते ही उसे घर से निकाला दिया जाता है । इस प्रकार बहिष्कृत होकर वह स्वतंत्रता से कहती है ---

> "आरेयुं काणामेनिक्केन्नेयुं काणामार्कुम्
> पारिले योराळाय् आन् स्वगृह बहिष्कारात्" [1]

(मैं सब को देख सकती हूँ, सब मुझको भी देख सकते हैं । अब मैं इस संसार की एक नारी बन गयी हूँ, घर से बहिष्कृत होने के कारण ।) इस प्रकार सामाजिक अनीतियों से संघर्ष करके वह नारी अपने आप स्वतंत्र हो गयी । नारी का यह उद्बोधनात्मक चित्र अवश्य स्मरणीय है ।

"कीर्तिमुद्रा" की मज़दूरिन भी अपने साथ अन्याय और रहस्य संबन्ध चाहनेवाले जवान के साथ संघर्ष करती हुई अपने पातिव्रत्य और स्वतंत्रता की स्थापना करती है जब वह जवान उसे पकडने आता है तो वह धैर्य के साथ कहती है --

> "पेण्णिनुं भावं मारि मारि निल्केडा, नाडि-
> प्पिण्णाक्कु माडन्मार्कु पेक्कूत्तिन्नुळ्ळोन्नायो । [2]

---

1. "विषुक्कणी" - पृ. 10
2. सा:म: 9- पृ. 55

§युवती का भाव बदल गया , हट जा अरे , क्या यह देश इन मूर्खों के अत्याचारों केलिए रह गया है ? § इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् की नारी अनीति और अधर्मों के प्रति संघर्षशील रहकर अपनी स्वतंत्रता केलिए लड़ती है ।

प्राचीन भारतीय आदर्श नारी के प्रति श्रद्धावान दोनों कवि सामयिक नारी की भी उत्कर्ष की कामना करनेवाले हैं । पौराणिक नारियों के गुण, शील, मर्यादा आदि आदर्शों का उद्घाटन गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् आधुनिक नारी में करते हैं । यहाँ दोनों कवि नारी की उच्च भावना का वर्णन करते हुए नारी की पातिव्रत्य की प्रतिष्ठा करते हैं । उनको दोनों कवि पुरुषों के समान अधिकार भी देते हैं । समय आने पर अपनी स्वतंत्रता एवं आवश्यकताओं केलिए संघर्ष करने की अनुमति भी दोनों कवि उन्हें देते हैं । आदर्श नारी को कवि स्वावलंबिनी भी चित्रित करते हैं । इस प्रकार दोनों कवि नारी की उच्च भावना का वर्णन करके सामयिक सुषुप्त स्त्रीत्व को जगाने का पूरा प्रयास करते हैं ।

5.6.9. समकालीन समाज की नारी जाति की असली स्थिति का अध्ययन करनेवाले गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् उनकी सामयिक जीवन की सभी पहलुओं का विशद विश्लेषण करते हैं । नारी के विविध संबन्धों की चर्चा करते हुए दोनों कवि उसकी पारिवारिक और सामाजिक बन्धन में आनेवाली समस्याओं और मनोवैज्ञानिक प्रश्नों की चर्चा करते हैं । दोनों कवि स्त्री की सबसे बड़ी समस्या के रूप में, अशिक्षा को ठहरते हैं । अशिक्षा से ही वैवाहिक समस्या, वैधव्य की समस्या, आर्थिक और अन्य समस्याओं का उद्भव होता है । दोनों कवि प्राचीन स्त्रीत्व को नमूना मानते हैं । प्राचीन आदर्श नारियों के चरित्रों की महिमा का आधुनिक समाज में चित्रण करके वे समकालीन नारी को उद्बोधन देते हैं । इस प्रकार प्राचीन स्थिति का चित्रण करके दोनों कवि समकालीन नारी को अपनी वर्तमान दुःस्थिति के बारे में भी सचेत करते हैं । यहाँ दोनों कवि पीडित नारी

की मनोवैज्ञानिक स्थिति को जानकर ही ऐसा कार्य करते हैं । यहाँ वे विजयी भी हुए हैं । नारी की पीडित अवस्था का मुख्य कारण पुरुष है । पुरुषों को अपने आप सुधरने की अनिवार्यता है । तभी नारी की उन्नति भी हो सकती है नारी की स्वतंत्रता चाहनेवाले दोनों कवि मानते हैं कि उसकी समकालीन स्थिति में उसका कोई दायित्व नहीं है । आधुनिक नारी का पुनरुत्थान केलिए दोनों कवि एक ही मार्ग का आधार लेते हैं । वे पौराणिक आदर्श नारी पात्रों को आधुनिक संदर्भ के अनुकूल गुणों से युक्त करके सामयिक समाज में प्रस्तुत करते हैं । गुप्तजी की सीता "रामायण" की सीता न होकर स्वतंत्र सत्ता रखनेवाली आधुनिक नारी बन गई है । उनकी "उर्मिला" रामायण की उर्मिला से बिलकुल भिन्न चरित्रवाली है । वह कर्मनिरत, त्याग एवं कर्तव्य की मूर्ति बन गई है । उसमें नारी की उदारता एवं कोमलता है । इन सबके बावजूद वह एक आदर्श प्रेमिका और वीर क्षत्राणी है । अवसर आने पर युद्ध भूमि की ओर जाने केलिए भी वह तैयार हो जाती है । यहाँ उर्मिला आधुनिक युग केलिए पूर्णत: योग्य पात्र साबित हो जाती है । गुप्तजी की "कैकेयी" भी पुराण से ऊपर आकर आधुनिक युग के योग्य बन गई है । वह अपने पाप केलिए पश्चात्ताप करने केलिए तैयार हो जाती है और वह समष्टि के सुख केलिए सभी कार्य करने केलिए तैयार हो जाती है । "हिडिंबा" का चित्रण करके कवि तिरस्कृत वर्ग की नारियों के उत्थान का प्रयास करते हैं । उनकी "हिडिंबा" भी आधुनिक गुणों से युक्त एवं कोमल भावों का प्रतीक है । यहाँ कवि की मानवता का भाव स्पष्ट दर्शनीय है । "विधृता" का चरित्र आधुनिक नारी का प्रतिनिधि चरित्र है । वह क्षमा का पर्याय एवं कर्मण्यता का साकार रूप है । अपने अधिकारों केलिए वह लड़-लडकर मरती है । यहाँ विधृता का आदर्श चरित्र पूर्णत: उद्बोधनात्मक बन गया है । गुप्तजी की "यशोधरा" आदर्श नारी पात्र है । वह नारी जीवन के सभी पहलुओं

का संकलित रूप है । माता, पत्नी, पुत्री और स्वतंत्र नारी के रूप में यशोधरा का चरित्र अत्यंत आकर्षक बन गया है । वळ्ळत्तोळ् की "शकुन्तला" गुप्तजी की शकुन्तला से एकदम भिन्न है । वह गुप्तजी की उर्मिला की तरह विरहिणी है, सीता की तरह पतिव्रता है विधृता की तरह कर्मोन्मुख, समता केलिए लडनेवाली और यशोधरा की तरह वात्सल्यमयी माता एवं स्नेहभरी पुत्री है और आदर्श पत्नी है । उनकी "उषा" सच्चे अर्थ में आधुनिक नारी की प्रतिनिधि है । वह स्त्री की स्वतंत्रता और समताधिकार केलिए सब कुछ त्यागकर लडती है और विजयी होती है । "पार्वती" को वळ्ळत्तोळ् पुरुषों के अत्याचारों के आगे प्रश्नचिह्न के रूप में खडा करते हैं । वह अपनी स्वतंत्रता की स्थापना केलिए पुरुषों से युद्ध करने केलिए भी तैयार होती है । प्रकृति और पुरुष के बीच के युद्ध में प्रकृति की जीत होती है । जैसा पुराणों में उल्लिखित है वैसा पार्वती एक आदर्श माता और पतिपरायणा नारी भी है । लेकिन उसकी माता, पत्नी आदि अवस्था में वह पूर्णत: स्वतंत्र रहना चाहती है । यही वळ्ळत्तोळ् की पार्वती की महानता है । वळ्ळत्तोळ् की "राधा" शान्ति का साकार रूप बनी हुई, आधुनिक समाज में उपस्थित है । इस प्रकार गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् के पौराणिक नारी-पात्र आधुनिक नारियों को पुनरुत्थान करने में और उनको संग्राम क्षेत्र की ओर अग्रसर कराने में सक्षम साबित होते हैं । इस प्रकार नारियों को सक्षम बनाकर दोनों कवि उनकी उन्नति की कामना करते हैं । नारियों की उच्च-भावना की स्थापना करनेवाले गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् उनकी चारित्रिक विशेषताओं का गुणगान करते हैं । दोनों कवि स्त्रियों के पातिव्रत्य पर विश्वास करते हुए उन्हें समान अधिकार दिलाने का प्रयास करते हैं । जहाँ तक हो सके वे उन्हें स्वावलंबिनी बनाकर अपनी स्वतंत्रता केलिए आवाज़ उठानेवाली आधुनिक नारियों के रूप में

चित्रण करते हैं । इस प्रकार नारी के स्वरूप का विस्तृत विश्लेषण करके नारी सुधारक गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ्, आधुनिक नारी का प्राचीन नारी की तरह सम्मान करते हुए उनको अपनी माँगों की पूर्ति केलिए आंदोलन मचाने की प्रेरणा देते हैं । दोनों कवि विश्वास करते हैं कि नारी की उन्नति से ही समाज राष्ट्र और विश्व की उन्नति हो सकती है ।

इस प्रकार गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् समकालीन भारतीय नारी की सभी समस्याओं का अध्ययन करके , स्त्रियों को उनकी असली स्थिति के बारे में समझाकर, उनकी उन्नति की महान कोशिश करते रहे । पौराणिक नारी पात्रों को आधुनिक युगीन समस्याओं का मुकाबला करने केलिए अनिवार्य गुणों से सजाकर समाज में प्रस्तुत करके तत्कालीन पतित नारी जाति को उद्बोधन देने का महान कार्य भी किया गया है । इस प्रकार हम कहते हैं कि गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् नारी जागरण से राष्ट्रोन्नति की ओर प्रकाश डालते हैं ।

# षष्ठ अध्याय

## मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में

## राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप

# षष्ठ अध्याय

## 6. मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप

### 6. 1. आधुनिक भारतीय काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास :-

आज राष्ट्रीय चेतना जिस अर्थ में व्यवहृत होती है , उस रूप में उसका जन्म भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ही हुआ है । भारत में इसका सक्रिय प्रभाव बीसवीं शती के हमारे स्वतंत्रता संग्राम से संबद्ध होकर प्रकट हुआ है । आगे यह सशक्त रूप धारण करके जन सामान्य के बीच में फैला गया

हिन्दी काव्य साहित्य में भारतेन्दु युग में ही राष्ट्रीय नवजागरण देखा जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देश भक्ति का था । [1] राष्ट्रीय चेतना के साथ साथ सांस्कृतिक , धार्मिक एवं आर्थिक क्षेत्र में भी नई चेतना आने लगी । फलस्वरूप साहित्यिक क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ । आधुनिक युग की परिस्थितियों में वैयक्तिक वीरता के बखान का अवसर समाप्त हो गया परन्तु उसके स्थान पर नवीन जागरण का संदेश ध्वनित करता हुआ , जो देश-प्रेम का घोष गूँजा उससे वैयक्तिक वीरता बखान का स्थान राष्ट्रीय भावना ने ग्रहण कर लिया । [2]

राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप साम्यवाद के प्रति आवाज़ उठने लगी । अँग्रेज़ी शासन के शोषण के प्रति सामान्य जनता अवगत हुई । विदेशी सत्ता

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. रामचन्द्र शुक्ल- "हिन्दी साहित्य का इतिहास"- पृ. 542
2. भगीरथ मिश्र - "हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास" द्वितीय-खंड- डॉ0 राम भगवी शुक्ल-पृ. 74

के प्रति विरोध करने के लिए जनता तैयार हो गयी । आर्थिक क्षेत्र में भी ऐसा एक नया मोड आ गया । भारतीय लोगों की आय के तीन साधन थे , वाणिज्य, शिल्प और कृषि । विदेशी शासन के कारण इन तीनों का ह्रास हुआ । इसके विरुद्ध भी आन्दोलन का उदय हुआ । इन सबके फलस्वरूप देश-भक्ति भी बढ़ने लगी । सामाजिक क्षेत्र में भी नव जागरण हुआ । सामाजिक उत्थान से ही राष्ट्रोत्कर्ष की संभावना, इस युग की राष्ट्रीय चेतना का ध्येय था ।

द्विवेदी युग में राष्ट्रीय चेतना का पूर्ण रूप से विकास हुआ । बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में हिन्दी कविता राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुई । देशी कांग्रेस, जो प्रारंभ में स्वतंत्रता की मांग न कर, ब्रिटिश सरकार की सहायता करती थी अब जनता के अधिकारों पर ज़ोर देने लगी और समर सन्नद्ध हुई । तिलक , गोखले, गाँधीजी आदि के राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण करने पर देश-भर में एक राष्ट्रीय ध्येय का विकास हुआ । तत्कालीन कवियों में यह विशेष रूप में ध्वनित हुआ । "सरस्वती", "प्रताप", "महारथी" "स्वदेश", "बान्धव" आदि पत्रिकाएँ देश की स्वतंत्रता एवं उन्नति को लक्ष्य करके देश प्रेम और देश-भक्ति केलिए आत्मोत्सर्ग करने की भावना को प्रेरित करनेवाली सभी रचनाएँ प्रकाशित करने लगी, तो लेखकों और कवियों को पढ़ी लिखी जनता तक पहुँचने केलिए उचित माध्यम प्राप्त हुआ । [1]

भारतीयों में राष्ट्रीयता के प्रति आकर्षण गाँधीजी के भारत के राजनैतिक क्षेत्र में उतरने के बाद ही हुआ । उन्होंने सारे देश में घूम फिर कर लोगों

---

1. डा० गणेशन. एस. एन. - "हिन्दी और तमिल काव्य की राष्ट्रीय धारा" "एनल्स आफ ओरियन्टल रिसर्च"- पृ. 6

आधुनिक काल में आते-आते राष्ट्रीय चेतना परमोन्नति पर पहुँचने लगी । जनता को अब भली-भाँति विदित था कि यज्ञ बहुत श्रेष्ठ है । अतएव बलि की मात्रा भी उतनी ही अधिक होनी चाहिए ,फलस्वरूप स्वतंत्रता का मूल्य "प्राण", यह अमर घोष प्रत्येक भारतीय के कानों में गूँजने लगा । ज्यों-ज्यों शासन की क्रूरता बढ़ती रही त्यों-त्यों भारतीयों में स्वाधीनता की उमंग सशक्त होती गयी । नवीन युग के कवि भी राजनैतिक संघर्ष से दूर नहीं रह सके । कविगण केवल वाग्वीर न बनकर क्रियात्मक रूप में जनता के आगे अपने राष्ट्रीय जीवन का आदर्श प्रस्तुत करने में सफल हुए । वे देशभक्ति से आप्लावित होकर पराधीनता पर विक्षोभ करते रहे और जनता को निरंतर संघर्ष करने केलिए प्रेरित करते रहे । जनता में आत्माहुति की भावना प्रबल हो गई । फिर भी गाँधीजी के अहिंसा सिद्धान्त से भी लोग अवगत थे । कवियों ने तत्कालीन सभी दृश्य अपनी रचनाओं में चित्रित करके जनता में राष्ट्रीय जोश उत्पन्न कर स्वराज्य आन्दोलन को सफल बनाने में भारी योग दिया । उपेक्षित वर्गों को सहज तथा सचेत करके देश की राजनैतिक एकता को सुदृढ़ करने का स्तुत्य काम गाँधीजी द्वारा संपन्न हुआ । इस प्रकार जनता में एकता लाकर भारतवर्ष की पराधीनता का बंधन तोड डाला गया 15 अगस्त 1947 को भारत माता के बन्धन तो टूट गए, परन्तु वह जातीय विभेद के आघात से रो पडीं । उसके अंग विक्षत तथा स्वरूप खंडित हो गया । भारत वासियों ने इसी में संतोष किया गुलामी के नारकीय जीवन की अपेक्षा उन्होंने देश का विभाजन ही श्रेयस्कर समझा ।

आगे भारत की स्वतंत्रता विश्व को बन्धनमुक्त करने का संदेश लेकर आई । स्वतंत्रता दिवस पर ही प्रधान मंत्री ने समाचार पत्रों को संदेश देते हुए कहा - "संसार के राष्ट्रों तथा लोगों का हम अभिवादन करते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं कि शांति स्वतंत्रता और प्रजातंत्र को अग्रसर करने में हम

उनके साथ सहयोग करेंगे ।[1] इस प्रकार भारतवर्ष की स्वाधीनता के पश्चात् राष्ट्रीयता के स्वरूप में अंतर्राष्ट्रीयता का व्यापक सम्मिश्रण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

मैथिलीशरण गुप्त तथा वळ्ळत्तोळ् देश के राष्ट्रीय नवजागरण से लेकर स्वतंत्रता तक के सुदीर्घ अवधि तक राष्ट्र में घटी हुई सभी घटनाओं का साक्षात्कार करते रहे । यही उनका राष्ट्रीयता बोध की महानता का कारण है । इसलिए उनकी रचनाओं में सामान्यतः देश-भक्ति प्रधान होते हुए भी उनके प्रतिपाद्य में सहयोग भावना, मातृभाषा प्रेम, समाज सुधार बन्धन मुक्ति की अभिलाषा अतीत का गौरव गान आदि विषयों की प्रमुखता है ।

## गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् पर राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव :-

राष्ट्रीय नव जागरण के फलस्वरूप सारे भारत में मनुष्य व्यापार के सभी स्तरों में कई तरह के परिवर्तन आने लगे । इसी काल को साहित्य में गाँधी युग, टागूर युग और इकबाल युग कहा गया है । इसके अनुसार हिन्दी में यह प्रसाद, पन्त, निराला के नाम पर और मलयालम में आशान, उळ्ळूर, वळ्ळत्तोळ् के नाम पर भी जाना जाता है ।[2] 1905 में बंग-भंग के बाद राजनैतिक चेतना बढ़ती गयी और हमारे साहित्य का एक मुख्य विषय बन गया । गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् का रचना-काल भारत के राष्ट्रीय काव्य में अत्यंत महत्व का है । भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को सबसे अधिक

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. जवहरलाल नेहरू-" स्वाधीनता और उसके बाद"- पृ. 6
2. डा. के. एम. जोर्ज (अध्यक्ष)- "भारतीय साहित्य चरित्रम्-
   पी. के. गोपाल-"आधुनिक कविता

और तीव्र रूप में ग्रहण करनेवाले कवि हैं गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् । स्वातंत्र्य लब्धि के बाद भी इनकी अधिकांश रचनाएँ राष्ट्र प्रेम, संस्कृति के प्रति आस्था और राष्ट्र के नव-निर्माण के आकांक्षा आदि से पूर्ण रही हैं ।

बीसवीं शताब्दी के हिन्दी काव्य, विभिन्न प्रवृत्तियों का एक सम्मिलित रूप है । द्विवेदी युग में राष्ट्रीय चेतना एवं सुधारवादी प्रवृत्तियाँ प्रबल हो उठीं । आगे छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी एवं नई कविता अपने स्वतंत्र रूप प्रस्तुत करती हुई चल रही थी । इस सुदीर्घ काल में पूर्ण लगन से राष्ट्रीय चेतना के बारे में लिखनेवाले एक मात्र कवि गुप्तजी थे ।

केरल में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही सामाजिक अनीतियों का एक संगठित आन्दोलन की शुरूआत हुई है । लेकिन मलयालम काव्य में देशीय-बोध का मार्गदर्शन करनेवाला व्यक्ति वळ्ळत्तोळ् ही है । उनके समकालीन किसी भी साहित्यकार ने कविता या गद्य साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की कोई प्रमुख रचना नहीं की है । सन् 1922 जनवरी में वळ्ळत्तोळ् ने "वेयिल्स राज-कुमार" द्वारा दिये गये पारितोषिक का तिरस्कार किया । यह उनके देश-प्रेम का द्योतक है । सन् 1928 में गाँधीजी से उनका साक्षात्कार हुआ । सन् 1927 के मद्रास, और सन् 1928 के कलकत्ता, कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने भाग लिया । इन सब घटनाओं का प्रतिफलन वळ्ळत्तोळ् की तत्कालीन कृतियों में राष्ट्रीय चेतना के रूप में हुआ है ।

गुप्तजी की सर्वप्रथम लंबी-रचना "रंग में भंग" है । उसमें परोक्ष रूप में राष्ट्रीयता है । "रंग में भंग" के आशीर्वचन में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है -" इस देश के विशेषकर राजपुताने के इतिहास में ऐसी अनन्त वीरोचित, गाढ़ देश-भक्ति दर्शक और गंभीर गौरवास्पद घटनाएँ हुईं , जो

चिरस्मरण योग्य हैं । इसके बाद प्रकाशित "जयद्रथवध" में भी परोक्ष रूप में राष्ट्रीय चेतना मिलती है । लेकिन उनकी "भारत-भारती" उन्हें राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात बनानेवाली सशक्त रचना सिद्ध हुई । यह हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य की सर्वप्रथम सशक्त रचना है और राष्ट्रीय काव्य धारा के विकास पथ में एक उज्ज्वल प्रकाश स्तंभ है । इस काव्य की समकालीन जन-प्रियता ही इसका प्रमाण है । [1] सन् 1912 के "पद्य-प्रबन्ध" में संकलित कई कविताओं में राष्ट्रीय चेतना मिलती है । कवि की सामाजिक बोध की अभिव्यक्ति सबसे पहले "किसान" में हुई । कृषकों के इस देश में, कृषक जीवन की यातनाओं के बारे में हमें बोध कराने वाली रचना है "किसान" । "अनघ" में कवि एक अन्य राष्ट्रीय समस्या-जाति-पांति की ओर प्रकाश डालते हैं । गाँधीजी ने जब हरिजन सुधार का आन्दोलन शुरू किया था , तब लिखी गई इस रचना में राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति कवि की चेतना का प्रमाण है । "स्वदेश संगीत", देश प्रेम की भावना जगानेवाली और एक रचना है । 1925 के बाद की उनकी अधिकांश रचनाएँ पौराणिक एवं इतिवृत्तात्मक रही है । राष्ट्रीय काव्य के रूप में इनका कम महत्व है ।

वळ्ळत्तोळ् की राष्ट्रीयता-प्रधान रचनाओं का अलग संग्रह नहीं हुआ है । उनकी "गणपति", "बन्दी अनिरुद्ध", "शिष्य और पुत्र", पिता और पुत्री" आदि रचनाओं में उनकी स्वातंत्र्य वांछा पूरी तरह झलकती है । फिर भी उनकी सर्वप्रथम राष्ट्रीय रचना दादाभाय नवरोजी की मृत्यु से संबन्धित है । "दादा-भाय नवरोजी" की रचना सन् 1917 में हुई । उसके बाद, सन् 1917 से सन् 1927

---

1. "अभिनन्दन ग्रन्थ"- "बहुमुखी विभूति"- इलाचन्द्रजोशी- पृ. 57

तक की रचनाएँ, मलयालम साहित्य के इतिहास के राष्ट्रीय चेतना से युक्त रचनाओं का काल है । "साहित्य मंजरी" के नौ भाग , विषुक्कणी, दिवास्वप्न, वीरशृंखला, अभिवादयम", "भारत-स्तन" आदि काव्य-संग्रहों की सौ से अधिक कविताओं में राष्ट्रीय आन्दोलन की अच्छी झलक है । वळ्ळत्तोळ् की कुछ कविताएं पूर्ण रूप से राष्ट्रीय हैं । जैसे कि "मातृभूमियोड्", "ओरु-वीरपत्नी", "पुराणङ्ङळ्", "ओरु तोणियात्रा", "एन्टे कृतघ्नता", "वेडिकोण्ड पक्षी", "निङ्ङळ्ळतन् पोक्कु विपरीतमाकोला", "एन्टे गुरुनाथन्" "पोरा पोरा", "चक्रगाथा", "अमान्तं अमान्तं", "परस्परं" सहायिप्पिन्", "पापमोचनम्", "नम्मुडे मरुपडि", "आदि वसनङ्ङळ् जैक्कोळ्ळुविनेवरम्", "कृषिक्कारुडे पाट्टु" आदि । इन में कई रचनाओं में उनकी राष्ट्रीय-भावना की पराकाष्ठा विद्यमान है । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की राष्ट्रीय-भावना , भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से पूर्णतः ओतप्रोत है । आर्य-संस्कृति की महिमा पर विश्वास रखनेवाले दोनों कवि , एक संस्कृति पर अधिष्ठित राष्ट्रीयता का ही उद्घाटन करने का प्रयास करते रहे । इसीलिए हम कह सकते हैं - उनकी राष्ट्रीय रचनाओं की पृष्ठभूमि भारतीय संस्कृति है । दोनों कवि महात्मा-गाँधी से पूर्ण रूप से प्रभावित थे । इसका भी यही कारण है कि गाँधीजी भारतीय संस्कृति के नवनिर्माण के सूत्रधार रहे हैं । देश-प्रेम से अभिषिक्त दोनों कवि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर इकबाल , बंकिम चन्द्र आदि के प्रभाव से भी दूर न रह सके हैं । उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में इन महान देश-प्रेमियों के आदर्शों का स्पष्ट प्रतिफलन द्रष्टव्य है ।

इस प्रकार गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् , गाँधीजी एवं तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं के संदेशों से अवगत रहते हुए, भारतवर्ष की जनता को स्वतंत्रता केलिए लडने की सलाह देते रहे । दोनों की रचनाएं संस्कृति पर अधिष्ठित होने के कारण अहिंसा

युद्ध के ही पक्षपाती हैं । सत्य की स्थापना केलिए , अहिंसा को आयुध बनाकर युद्ध करके, भारतमाता को स्वतंत्रता दिलाने का आह्वान गुप्तजी और वल्लत्तोल् देते रहे । इस अध्याय में दोनों कवियों की राष्ट्रीय रचनाओं का विशद विश्लेषण हो रहा है । उनकी राष्ट्रीयता को दिखानेवाली रचनाओं में , अतीत का गौरव गान , मातृभूमि के प्रति प्रेम, वर्तमान दुर्दशा, राजनैतिक स्वतंत्रता, विघटक शक्तियों का विरोध राष्ट्र का नव निर्माण, प्राचीनता के नींव पर नवीनता की प्रतिष्ठा आदि मिलते हैं ।

## 6.3. उद्बोधन :-

नवोत्थान से प्रभावित नूतन राष्ट्रीयता के फलस्वरूप राष्ट्र प्रेमियों ने सामाजिक दुर्दशा के प्रति जनता का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया । भारतीय जनता रूढ़िग्रस्त होकर आधुनिक परिस्थितियों से दूर रह गयी । भारत-वासियों में नवीन बोध भरने केलिए उन्हें राष्ट्र के संपर्क में लाने की अनिवार्यता थी । "मानव समाज-शास्त्र के नियम से जब तक प्रगतिशील शक्तियाँ किसी परतंत्र देश को अभिभूत नहीं करतीं तब तक उसमें उद्बोधन और चेतना का स्फुरण नहीं होता ।[1] अंग्रेज़ों के आने से जो नई सुविधाएँ राष्ट्र में आयी, उनसे देशवासी विस्मित हो गए । इस प्रासंगिक युग में जनता ने अपनी संस्कृति और सभ्यता की हीनता का अनुभव किया । अंग्रेज़ी पढे लिखे भारतीय अपने धर्म और संस्कृति की निन्दा करने लगे । अब नवोत्थान की परम आवश्यकता पडी । नवोत्थान, नव शिक्षित हिन्दुओं के नेतृत्व में नहीं, उनके विरुद्ध आया था और उसका उद्देश्य उन लोगों को भारतीय वृत्त में सुरक्षित रखना था , जो नयी लहर में बहते हुए सीमा के बाहर जा रहे थे ।[2]

---

1. डा. सुधीन्द्र-" हिन्दी कविता में युगान्तर"- पृ. ।
2. दिनकर -" संस्कृति के चार अध्याय"- पृ. 538

समकालीन साहित्यकारों ने इस नवोत्थान को अपना कर्तव्य समझा । हमारे आलोच्य दोनों कवि भी इसके अपवाद नहीं थे । वे अपनी रचनाओं में जनता का आलस्य, तंद्रा, कलाहीनता , अज्ञान, पराक्रम हीनता, कायरता आदि की निन्दा और आशावाद, स्वत्व , स्वाभिमान का प्रचार तथा समाज, विद्यार्थियों , नारियों, युवकों को देश-सेवा एवं राष्ट्रोन्नति केलिए प्रेरित करना आदि बातों की विस्तृत चर्चा करते हैं ।

## 6.3.1. गुप्तजी के काव्य में उद्बोधन :-

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अमर गायक मैथिलीशरण जी की -"भारत-भारती" उद्बोधन और नवजागरण की अग्रदूत है । राष्ट्रोत्थान के समय में "भारत-भारती भारत की गीता थी । उसका मूल स्वर जागरण की प्रेरणा है । जागरण का संदेश इसमें अनेक स्थानों पर हुआ है । "उद्बोधन" शीर्षक की शुरूआत में ही कवि कहते हैं --अनेक शताब्दियों के बीतने पर भी हम उस कुंभकर्ण की निद्रा को त्यागने केलिए तैयार नहीं हैं । हमारे पूर्वज इस दशा को देखकर शोक से आँसू बहाते हैं । [81] कवि उद्बोधन देते हैं कि श्रम के बिना संसार में जीना कठिन है । पशु-पक्षी भी अपना हिताहित समझते हैं । कमर कसकर देश के उत्थान में लग जाना चाहिए । अब कर्म करने का समय है , सोने का नहीं --

> हे भाइयों ! सोये बहुत , अब उठो, जागो, अहो !
> देखो ज़रा अपनी दशा, आलस्य को त्यागो अहो !
> कुछ पार है , क्या क्या समय के उलट-फेर न हो चुके !
> अब भी सजग होगे न क्या ? सर्वस्व तो हो ओ चुके । [82]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

81. "भारत-भारती"- भविष्य खण्ड- प-2, पृ. 141

2. प-14, पृ. 143

आगे कवि लिखते हैं कि अलग-अलग विचारों को छोडकर, कुसंग और कुरीति को त्यागकर, निर्भीकता से आगे बढ़ो, विघ्नों की चिंता न करके देशोद्धार केलिए काम करो । [1] सोई हुई भारतीय जनता को जगाने केलिए कवि उन्हें पूर्वजों का स्मरण दिलाते हैं । उनकी कर्मनिष्ठा एवं दृढ चित्ता की ओर गुप्तजी प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि जो लोग हमारे पीछे थे वे आज आगे बढ रहे हैं, इसलिए हमें भी कर्मण्य होने की आवश्यकता है । [2] हमें मिलकर, एकता से, प्यार से और धीरता से काम करना चाहिए । इस पर कवि उद्बोधन देते हुए पूछते हैं -" है कार्य्य ऐसा कौन सा साधे न जिसको एकता ? देती नहीं अद्भुत-अलौकिक शक्ति किसको एकता ? [3] भारत की स्वाधीनता के सिलसिले में कवि सभी क्षेत्र में नवीनता लाने का प्रयास करते हैं । भारत की आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्र में काम करनेवालों को वे उद्बोधन देते हैं । [4] समय की गति के अनुसार काम करके सफलता प्राप्त करने केलिए कवि आह्वान देते हैं । संसार को एक बार फिर भारतीयों की महिमा दिखाने को कवि आशा करते हैं और जनता को इस ओर प्रेरणा भी देते हैं —

> है आर्य्य सन्तानो ! उठो, अवसर निकल जावे नहीं
> देखो, बड़ों की बात जग में बिगड़ने पावे नहीं । 5

अपने ज्ञान के बारे में अवगत होकर काम करने को कवि सभी को सलाह देते हैं । कवि ब्राह्मणों का पूर्वजों के तुल्य ज्ञानी, क्षत्रियों को कुयश की कालिमा मिटाने, वैश्यों को कल-कारखाने खोलने तथा शूद्रों को अपने काम ऊँचा बनाने का संदेश

---

भारत-भारती- भ:भा: प-16, पृ. 144
2. " " " प-4-19-20, पृ. 144
3. प-24, पृ. 145
4. पृ. 147-148
5. " प-56, पृ. 150

देते हैं । साधु सन्त, शिक्षित नेता, कवि, नवयुवक, धनी सबको गुप्तजी राष्ट्रोन्नति केलिए काम करने का उद्बोधन देते हैं ।[1] यदि हम नए युग के साथ कदम उठाकर न चलेंगे तो विनाश अटल है, ऐसी चेतावनी भी कवि देते हैं ।

"नहुष" में कवि भारतवासियों को कर्मोन्मुख होने की प्रेरणा देते हैं ।[2] "सिद्धराज" में वे शत्रु का नाश करने का,[3] और "हिन्दू" में देश गौरव केलिए बलिदान देने का तथा संगठन का संदेश देते हैं ।[4] अपने महाकाव्य "साकेत" में राष्ट्रकवि राक्षसों के बन्धनों से भारत लक्ष्मी को मुक्त करने केलिए शूरों की सेना तैयार करने का संदेश देते हैं ।[5] इस प्रकार राष्ट्र की स्वतंत्रता चाहनेवाले कवि भारत-माता की मुक्ति के पथ पर शीश चढ़ाने केलिए जनता को आह्वान देते हैं । "साकेत" के द्वादश सर्ग में इसका उल्लेख हुआ है । "अनघ" में समाज कल्याण के हेतु बलिदान करने केलिए प्रेरणा दी गयी है ।[6] "वैतालिक" में भी कवि भारतवासियों को स्वतंत्रता की भूमि की ओर अग्रसर कराने का प्रयास करते हैं --

"बने कूप-मण्डूक निरे, रहो घरों में ही न घिरे ।
आओ, अब बाहर आओ, ममता में समता लाओ ।[7]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भारत भारती"- पृ. 153, 154, 155
2. "नहुष" - पृ. 34
3. "सिद्धराज"- पृ. 40-61
4. "हिन्दू"- पृ. 91
5. "साकेत"- पृ. 297
6. "अनघ"- पृ. 62
7. "वैतालिक"- पृ. 6

इस प्रकार भारत के गौरव का स्मरण कराके कवि समकालीन जनता में नई स्फूर्ति लाने केलिए उद्बोधन का मंत्र दोहराते रहे । "स्वदेश संगीत" गुप्तजी की एक और उद्बोधनात्मक रचना है । उसमें कवि का स्वर देश के क्रान्तिकारियों की तरह क्रान्ति की ओर अग्रसर कराने वायक है । उनकी प्रभावोत्पादक हुंकार कोटि-कोटि हृदयों को स्पर्श करती हुई इन शब्दों में गूँज उठती है --

"धरती, हिलकर नींद भगा दे,
वज्रनाद से व्योम जगा दे।
दैव और कुछ लाग लगा दे,
निश्चय करूँ कि भारत हूँ मैं,
हूँ या था, चिन्तारत हूँ मैं। [1]

इस प्रकार गुप्तजी तत्कालीन अवनति से जनता को ऊपर उठाने का सच्चा प्रयास करते रहे । यह उनकी स्वतंत्रता की अदम्य पिपासा का द्योतक है ।

6.3.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में उद्बोधन :-

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी तत्कालीन भारत की पतित अवस्था को देखकर, जनता को जागृत करने का प्रयास करते हैं । प्राचीन गरिमा का अर्वाचीन परिस्थिति में प्रयोग करके कवि उद्बोधन का कार्य करते हैं । वळ्ळत्तोळ् की कीर्ति का परिचायक साहित्य मंजरियों में उनकी उद्बोधनात्मक रचनाएँ निहित हैं । "साहित्य मंजरी" प्रथम भाग के "दादाभाय नवरोजी" में कवि नवरोजी के आदर्श जीवन का चित्रण करके जनता को उद्बोधन देते हैं । [2]

---

1. "स्वदेश संगीत" - पृ. 59
2. सा:मं: 1, पृ. 92-93

"पुराण" के कवि कहते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए निष्काम और सच्चा कर्म करने की अनिवार्यता है । कवि यहाँ जनता को उद्बोधित करते हैं -" हे भाइयों , तुम आदर से प्रयत्न करके, मूल्यवान नरजन्म को सफल बनाओ "।[1] कवि का तात्पर्य है कि नर जन्म की सफलता मनसा, वाचा, कर्मणा, परिपूर्ण प्रयत्न करने में ही है । कवि अच्छी तरह जानते हैं कि उनके सहजात भारतवासी सोये पड़े हैं । "मेरी कृतघ्नता" में कवि मातृभूमि की रक्षा केलिए उनको जगाने का प्रयास करते हैं ---

> "पुत्रनिल्निन्निच्छिप्पीलम्मायातोन्नुं , पक्षे,
> पुत्रनुतळ्ळावतो मातृशुश्रूषा धर्मम् ?
> एत्रयुमकृतार्थन् वेण्डतु चेय्यात्त आन्
> एत्रयुं कृतघ्ननेन्नम्मये मरन्न आन् " [2]

(अपने पुत्रों से माता कुछ भी नहीं चाहती, फिर भी माता की देखभाल का धर्म , क्या पुत्र का नहीं है ? मैं बहुत अकृतार्थ हूँ, क्योंकि मैंने वह कार्य नहीं किया, जो मुझे करना था । मैं कितना कृतघ्न हूँ जो अपनी माताजी की रक्षा करना भूल ही गया । ) यहाँ "मैं" भारत के प्रत्येक नागरिक की प्रतिनिधि है । शायद यहाँ कवि अपने ही बारे में कहते होंगे । "पोरा पोरा" वळ्ळत्तोळ् की सबसे प्रसिद्ध उद्बोधनात्मक कृतियों में एक है । यहाँ कवि भारत के तिरंगी झंडे के ऊँचे होकर उड़ने की आशा करते हैं । याने भारत की गरिमा को सर्वोच्च बनाने की कामना करते हैं । इसकेलिए कवि भारतीयों को एकता से हाथ से हाथ मिलाकर कंधे से कंधा मिलाकर काम करने केलिए प्रेरणा देते हैं । अगर हम

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म-2, पृ. 42
2. -3, पृ. 68

एकता से लड़ें तो हमारी हथकड़ियाँ, कंकण बन जाएगी। [1] इसी प्रकार "निङ्ङळ् तन् पोक्कु विपरीतमाकोला" में कवि भारत के महान लोगों से पूछते हैं "क्या पश्चिम दिशा की स्वर्ण प्रभा ने आप लोगों को मोह में डाल दिया है! वह वर्ण, अस्तोन्मुख प्रभा विशेष की अंतिम लौ है। हमें उस ओर जाना है, जहाँ नित्य सूर्योदय होता है। अस्ताचल के प्रति आशा तमोगुण के प्रति रति होना है। तात्पर्य है, पश्चिमीय लोग भारत से जाना उनका अनुकरण किए बिना ही हमें अपने देश की गरिमा को सुरक्षित रखना है। [2] "कादटेलिप्पुडे-कत्तु" में कवि पूर्वजों की महिमा की प्रतिपादन करके उद्बोधन देते हैं।

"पंडा प्राज्ञपिताक्कळ् चेय्तपडि नाम् तोळोडुतोळाय् निल्-क्कोण्डालो, मतिलु वेरेवेण्डा भारतदेशत्ते रक्षिक्कुवान्" [3]

{अगर हम कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हो जाएँ, जैसे हमारे बुद्धिमान पूर्वजों ने किया था, भारत माता की रक्षा केलिए, दूसरी सशक्त दीवार की कोई ज़रूरत नहीं है। } यहाँ भी कवि व्यक्त करते हैं कि एकता ही शक्ति है। "अमान्तं-अनन्तम्" में कहा गया है कि निर्मम प्यार और भाईचारे की नींव पर ही स्वतंत्रता की स्थापना संभव है। [4] इसलिए स्वार्थ के दायरे से निकलकर ही हम स्वतंत्रता की प्राप्ति केलिए कर्मोन्मुख रह सकते हैं। "परस्परं सहायिप्पिन्" में भी कवि यही बात कहकर उद्बोधन देते हैं। [5] "वैशसं पोरुं पोरुम्" में कहा गया है कि अब दुःखी होने की ज़रूरत नहीं, इस समय हमें दुःख से रो-रोकर आशा रूपी पौधे को गरम पानी से सींचना नहीं चाहिए। [6] यहाँ तात्पर्य

---

1. स:म: -5, पृ. 58-59
2. स:म: -4, पृ. 71
3. स:म: -5, पृ. 70
4. स:म: -5, पृ. 81
5. स:म: -5, पृ. 107
6. स:म: -6, पृ. 34

है कि हमें कर्मोन्मुख होने की ज़रूरत अवश्य है । "नम्मुडे मरुपडि" {हमारा जवाब} में कवि भारतीय जनता को निर्भय होकर अग्रसर होने का उद्बोधन देते हैं ।[1] विश्व केलिए मुक्तिमार्ग दिखानेवाले भारतीयों को कभी भी भयभीत होना शोभा नहीं देता ।

राष्ट्र के तत्कालीन आर्थिक असमत्व की ओर लडने केलिए कवि कृषक वर्ग को उद्बोधन देते हैं । "कृषिक्कारुडे पाट्टु" में कहा गया है कि शास्त्रों के बल पर खडे रहनेवाले साम्राज्य वादियों की चाटुकारिता नहीं करके अपने हल से उसके विरुद्ध युद्ध करो और अपने धर्म का पालन करो ।[2] "एन्टे प्रयाग-स्नानम्" {मेरा प्रयाग स्नान} में कवि इंडियन नेशनल कांग्रेस को उद्बोधित करते हुए कहते हैं कि वह कृषक एवं मज़दूरों को भी कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने का अवसर देकर उन्हें भी यथोचित सम्मानित करे ।[3] समाज के निम्न वर्गों की जागृति से ही राष्ट्र का सभी ओर से उत्कर्ष संभव हो सकता है । यहाँ कवि गाँधी-दर्शन से प्रभावित हुए हैं । "निलनिल्पु" {अस्तित्व} में कवि विमुक्त जवानों को उपदेश देते हैं कि वे राष्ट्र की आर्थिक उन्नति केलिए कृषि या कुछ व्यवसाय में रुचि रखें ।[4] "इतिले इतिले" {इस ओर} नामक नौकागीत में भी कवि जनता को निर्भय होकर दृढ चित्ता से फलप्राप्ति की ओर बढ़ने को आह्वान देते हैं ।[5] "विषुक्कणि" नामक पद्य संग्रह के "पोट्टात्त पोन् कंपि" {सोने की अटूट तार} में कवि हमारे कर्तव्य के बारे में हमें बोधवान बनाते हैं ---

"अम्मयक्कु दास्यं विडर्त्तुवानल्लयो
नम्मळन्नन्तरीक्षत्तिलेप्पद्मिक्कुम्" [6]

---

1. सा:म:-7, पृ. 10
2. सा:म:-7, पृ. 91
3. सा:म:-3, पृ. 36-37
4. सा:म:-3, पृ. 88
5. सा:म:-9, पृ. 11
6. विषुक्कणि-पृ. 73

(माता की रक्षा केलिए आसमान का पंछी भी बहुत कोशिश करता है तो उससे शक्तिमान मानव अपनी माता की रक्षा केलिए क्या नहीं सह सकता ? )
यही कवि का व्यंग्य है ।

इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् समकालीन चिंता में नई स्फूर्ति लाने का सच्चा प्रयास करते हैं । उनकी लिखी गई "पोरा पोरा" नामक कविता का गायन आज भी आकाशवाणी (केरल) में होता रहता है । उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना "चोरतिळयक्कणम्" कवि के उद्बोधन की चरम परिणति है । देखिए---

"भारतमेन्न पेरु केट्टालभिमान पूरितमाकणं अन्तरंगम्
केरळमेन्नु केट्टालो तिळयक्कणं चोर नमुक्कु ञरंपुकळिल् ।[1]

(भारत का नाम सुनते ही हमारा अंतरंग अभिमान से भर जाना चाहिए और केरल का नाम सुनते ही नसों में खून उबलना चाहिए । )

.८. गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय चेतना :-

मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी साहित्य नभ के प्रतिष्ठित कवि हैं । उसी प्रकार वळ्ळत्तोळ् भी मलयालम साहित्य क्षेत्र में उज्ज्वल हैं । दोनों कवियों की अधिकांश रचनाओं में पौराणिक प्रसंगों के आधार पर देशभक्ति, आत्मसुधार, स्वावलंबन , विश्वबन्धुत्व आदि उदात्त भाव व्यक्त हुए हैं । ऐसा होते हुए भी उनकी कृतियों का मूल स्वर राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता रहीं । इसी कारण से ही

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "दिवास्वप्न"- पृ. 75

दोनों कवि "राष्ट्र कवि" के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं । राष्ट्रीय चेतना के सिलसिले में गुप्तजी और वल्लत्तोळ् मातृभूमि प्रेम, अतीत का गौरव गान, मातृभाषा प्रेम , तत्कालीन पतन, राजनैतिक स्वतंत्रता एवं स्वराज्य, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्र का नव-निर्माण, राष्ट्रीय चेतना के विकास में गाँधीजी का योगदान , भारतीय राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में आदि बातों की विस्तृत चर्चा करते हैं । इसका जिक्र आगे हो रहा है ।

6.4.1. मातृभूमि-प्रेम :-

गुप्तजी एवं वल्लत्तोळ् मातृभूमि के अनन्य भक्त हैं । वे मातृभूमि को निर्जीव वस्तु के रूप में नहीं , तेजस्वी चेतनायुक्त, कर्मनिरत माता के रूप में प्रस्तुत करते हैं । वस्तुतः मातृभूमि की यह परिकल्पना पुनरुत्थानवाद का ही एक अंग था । बंगाल में जो सन्यासी आन्दोलन हुआ था उसमें भारत को "देवी" और माता के रूप में देखकर उसके प्रति श्रद्धा अर्पित की गई । इसी के आधार पर बंकिमचन्द्र ने "आनन्दमठ" उपन्यास में "वन्देमातरम्" का जो गीत प्रस्तुत किया वह देश-भर में व्यापक रूप में प्रसिद्ध हो गया । गुप्तजी और वल्लत्तोळ् भी इससे प्रभावित हुए । दोनों की अनेक कविताओं में मातृभूमि की महिमा का वर्णन हुआ है । "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" के अनुसार दोनों कवि भारत माता को श्रेष्ठ समझते हैं ।

6.4.1.1. गुप्तजी के काव्य में मातृभूमि-प्रेम :-

गुप्तजी केलिए मातृभूमि विश्व के अन्य सभी देशों से महान हैं ---

"संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि भूमि है , वह कौन ? भारत वर्ष है । 1

---

1. "भारत-भारती"- पृ. 4

उनके लिए भारत स्वर्ग या नक्षत्र-लोक से भी आदर प्राप्त करने योग्य है । [1] प्राचीन भारतीय संस्कृति में इह लोक-जीवन को सुखमय बनाने वाली लौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करने के साथ, सतत चिन्तन द्वारा स्वर्गीय भावों का भी विकास करने को महत्त्व-पूर्ण माना गया था । गुप्तजी कहते हैं---

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी आर्य हैं ।
विद्या कला कौशल्य सबके जो प्रथम आचार्य हैं । [2]

कवि को भारत माता, सुधामयी, वात्सल्यमयी, शान्तिकारिणी, शरणदायिनी क्षमामयी, प्रेममयी, विश्वशालिनी, विश्वपालिनी, भयनिवारिणी और सुकर्मा लगती है । [3] ऐसी मातृभूमि को भवानी का स्वरूप देते हुए राष्ट्र कवि गाते हैं ----

"जय जय भारत-भूमि भवानी
अमरों ने भी तेरी महिमा बारंबार बखानी ,
तेरा चन्द्र वदन वह विकसित शान्ति-सुधा बरसता है
मलयानिल-निश्वास निराला नवजीवन सर सासा है
हृदय हारा कर देता है यह अंचल तेरा धानी ,
जय जय भारत-भूमि भवानी । [4]

"मंगलघर" में इस प्रकार अनेक स्थानों पर मातृभूमि की महिमा गायी गयी है ।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. नहुष- पृ. 26
2. भारत-भारती- पृ. 5
3. स्वदेश संगीत- पृ. 13
4. मंगलघर (प्रथम संस्करण)- पृ. 33
5. पृ. 9, 26, 262

मेरा देश नामक कविता में भी कवि भारत माता का जयघोष करते हैं । मातृभूमि की रक्षा करना गुप्तजी महान कर्तव्य मानते हैं । उनकी रक्षा प्राण देकर भी करनी चाहिए ---

"स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्मभूमि कही गई,
सेवनीय है सभी को वह महा महिमा मयी ।
फिर अनादर क्या उसी का मैं खड़ा देखा करूँ ?
भीरु हूँ क्या मैं अहो ? जो मृत्यु से मन में डरूँ ? [1]

"साकेत" में कवि मातृभूमि को सर्वोपरि बताकर उसकी धूलि को मस्तक का शृंगार मानते हैं । [2] स्वदेश संगीत में कहा गया है "रज भी है इस पुण्य भूमि की सबके माथे का शृंगार । (पृ. 52)

"सिद्धराज" में जगद्देव जीते जी अपनी मातृभूमि को परतंत्र नहीं होने देता और अपना जीवन अर्पण कर उसकी रक्षा का व्रत लेता है । जगद्देव उन नारी पुरुषों को धन्य मानता है जिनके परिवार का कोई भी व्यक्ति मातृभूमि की रक्षा में अपने प्राण देता है । [3] यहाँ कवि की उक्ति पूर्णतः युगानुकूल हुई है और वह उद्बोधनात्मक भी अवश्य है । मातृभूमि के प्रति श्रद्धावान कवि उसकी रक्षा केलिए सब कुछ त्यागकर भी युद्ध करने का आह्वान देते हैं । "साकेत" में शत्रुघ्न मातृभूमि पर पैर रखनेवाले शत्रुओं के संहार करनेवाले सैनिकों को उत्साहित करते हैं । [4] उर्मिला भी मातृभूमि की रक्षा सब कुछ त्यागकर करने की प्रेरणा देती है ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "रंग में भंग"- पृ. 32, प-114
2. साकेत- पंचम सर्ग- पृ. 153
3. "सिद्धराज"- द्वितीय सर्ग- पृ. 40, 41, 47
4. "साकेत"- द्वादश सर्ग- पृ. 471, 472, 474

मातृभूमि का मान ध्यान में रहे तुम्हारे
लक्ष लक्ष भी एक लक्ष रक्खो तुम सारे । [1]

"काबा और कर्बला" का कथन है "जन्मभूमि के लिए मरण भी मंगल जन का" । "द्वापर" में बलराम की उक्ति में गुप्तजी का मत है कि मातृभूमि पर सर्वस्व न्योछावर कर देना चाहिए । [2] इन सब उक्तियों में कवि मातृभूमि को अपना सर्वस्व मानते हैं ।

6.4.1.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में मातृभूमि प्रेम :-

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी मातृभूमि को अपनी जननी की तरह प्यार करते हैं । "साहित्य मंजरी" की शुरूआत में ही कवि "मातृवन्दनम्" की रचना करके मातृभूमि के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय देते हैं ।

"वन्दिप्पिन् माताविने, वन्दिप्पिन् माताविने
वन्दिप्पिन् वरेण्यये, वन्दिप्पिन् वदरये " [3]

(माता की वन्दना करो, माता की वन्दना करो उस श्रेष्ठ माता की वन्दना करो जो वरदान देती रहती है ।)

यहाँ मातृभूमि का स्तुति गान गाकर कवि मातृभूमि की प्रकृति, संस्कृति, इतिहास आदि की ओर संकेत करते हैं । मातृभूमि को देवी समझकर कवि कहते हैं कि वह अपने परतंत्र पुत्रों के बारे में सोचकर व्याकुल हो गयी है ।

1. "साकेत"- द्वादश सर्ग - पृ. 471, 472, 474
2. "द्वापर"- पृ. 55
3. सा:मं-1- पृ. 1

वळ्ळत्तोळ् यहाँ निराश नहीं हैं । अपने पूर्वजों का स्मरण करके कवि आह्वान देते हैं कि हमें तन-मन-धन से माता की सेवा करनी चाहिए ---

मातृवाक्कोन्नाकणं नमुक्कु साक्षात् वेदम् ,
मातृशुश्रूषायत्नमाकणं महायज्ञम् ,
माताविन्नुषिञ्ञीडुकात्म जीवितं प्रिय
भ्राताक्कन्मारे पारिल् दैवमेतुळ्ळू वेरे । [1]

(माता का वचन ही हमारे लिए वेद हो माता की सेवा ही हमारा यज्ञ हो, माता केलिए हम अपने जीवन न्योच्छावर करें , माता के सिवा हमें कौन ईश्वर है भाइयो ! )

"मातृभूमियोडु" नामक कविता में वळ्ळत्तोळ् मातृभूमि से पूछते हैं "आपका, सुन्दर चेहरा क्यों नीचे की ओर झुका हुआ है । आप क्यों रोती हैं ? दूसरों की भलाई चाहनेवाली आप की आँखों से आँसू, नहीं बहना चाहिए । और कवि माता को सान्त्वना देते हैं कि आप हमारे बारे में सोचकर व्याकुल मत हो जाइए। [2] "माडवराजवैराग्यम्" में भी कवि भारतमाता का यशोगान गाते हैं । भारतवर्ष की प्राचीन महिमा के बारे में भी यहाँ कवि, समकालीन जनता को बोधवान बनाते हैं । [3] इसी प्रकार "विजयिप्पूताका" में कवि भारत माता को अपनी माता से भी बढ़कर समझते हैं । [4] "कुडियान्मारुडे-प्रार्थना" में कवि मातृभूमि की स्तुति गाते हैं ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: 1- पृ. 8
2. -वही- 1-पृ. 42-43
3. -वही- 2-पृ. 16, 17
4. सा:म: -3- पृ. 1

"मातावे महादेवी, मंगलं वायृपूताक !
भूतधात्रियामङ्ङयुक्कसंख्यं नमस्कारम् " । [1]

{हे माते, महादेवी, तुम्हारा मंगल हो, सभी चराचरों की माते तुम्हें अनगिनत नमस्कार है । } इस कविता के अंत में कवि ने कृषकों द्वारा कहलाया है कि हमारे आगे के रास्ते में कभी भी कोई विघ्न नहीं होना चाहिए, हम अपने जीवन आप पर समर्पण करके चलने वाले हैं । [2] यहाँ कवि का तात्पर्य है जनता की रक्षा करना मातृभूमि का कर्तव्य है, याने आवश्यक धन एवं धान्य देकर जनता को संतुष्ट एवं समृद्ध करने का ध्येय भूमिदेवि का है । "मेरी कृतघ्नता" में भी कवि मातृभूमि की प्रशंसा करते हैं । यहाँ कवि अपने आप पूछते हैं कि मेरा नर जन्म, इस भूमि में क्यों हुआ है ? मैंने, यहाँ जन्म लेकर मातृभूमि की गोदी को अशुद्ध बनाया है । यहाँ कवि अपने को कृतघ्न समझते हैं कि वे मातृभूमि केलिए कुछ भी नहीं कर पाते । "मलयाल्त्तिन्टे तला" में कवि भारतभूमि का महान पुत्र शंकराचार्य, के त्याग का चित्रोपम चित्रण उपस्थित करते हैं । [3] "इतिले इतिले" में वळ्ळत्तोळ् भारतमाता के सम्मुख एक बच्चे की तरह हाथ जोडकर खडे रहते हैं । [4] "केरळम्" {केरल्} में वे केरलांबा का स्तुति गायन करके उन्हें भाग्य देवता की पीठ पर बिठाते हैं । यहाँ कवि केरल की रमणीय प्रकृति का भी जीता जागता चित्र खींचते हैं । "ओन्नामत्ते मतम्" में मातृभूमि के अमर गायक कवि कहते हैं ---

द्वैतवर्जितर् नम्मळोरोट्ट समुदायम्,
मातृ सेवनं नमुक्कोन्नामत्तेतां मतम् [5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-3, पृ. 33
2. -वही- पृ. 37
3. -वही-6, पृ. 92
4. -वही-9, पृ. 12
5. -वही-10, पृ. 65

§द्वैत का चिन्तन नहीं रखनेवाले हम एक ही समाज के हैं, मातृ सेवा ही हमारा प्रथम कर्तव्य है। § "मिकच्च मुळ्क्किरीटम्" §कांटों का किरीट§ में भारत और पाकिस्तान के विभाजन से हुई भारतमाता की वेदना का वर्णन किया गया है। जनता की इच्छा को मानते हुए माता को दो भागों में काट डाला। यह हिन्दू और मुसलमानों के मोक्ष के लिए किया गया काम है। भारत माता आज भी उस भयंकर वेदना से मुक्त नहीं हुई है। उस माता की शांति केलिए आज भी अपने भाईयों के लहू से हम इलाज करते हैं। [1] यहाँ कवि अहिंसा तत्व पर विश्वास रखते हुए ही भारतमाता की रक्षा की कामना करते हैं, जो गाँधीवादी दर्शन का भी परिचायक है। ईसा मसीह के अनुसार "मातृभूमि के चरणों में ही स्वर्ग है"। "मरक्काने पठिच्चु" कवि कहते हैं कि ईसा का उस वचन का अब क्या हो गया है। अब लोग आपस में लड-लडकर मरते हैं और स्वर्ग के स्थान पर नरक का स्थापन करते हैं। [2] यहाँ कवि आत्मविभोर हो उठते हैं। "दिवास्वप्नं" नामक कविता संग्रह की "पुतुवर्षम्" §नया साल§ कविता में कवि सबको संबोधित करते हुए कहते हैं-- "भाई इस संसार में अपनी मातृभूमि की सेवा से बढ़कर कौन सा कर्म है? [3] इसका "तिलकमण्डलम्" में कवि मातृभूमि का यशोगान करते हैं। "योरतिळ्युक्कणम्" में केरल की श्रेष्ठता का वर्णन करके कवि अपनी जन्मभूमि को संसार की सबसे सुन्दर एवं महान भूमि मानते हैं। [4] यहाँ कवि केरल की कला, नाट्य, आदि का भी प्रतिपादन करते हैं।

---

1. सा:न:-10- पृ. 104
2. -वही- 11-पृ. 36, 37
3. दिवास्वप्न- पृ. 15
4. दिवास्वप्न- पृ. 71

इसके अलावा साहित्य मंजरी के ही, "भारतप्पुष़ा" "तिरूर पोन्नानि-प्पुष़ा", "ओणम्", "दीपावलि", "सुदिनम" आदि कविताओं में भी कवि यत्र-तत्र-सर्वत्र मातृभूमि की गरिमा का प्रतिपादन करते हैं । इससे व्यक्त होता है कि वे मातृभूमि के प्रशक्त गायक हैं ।

6.4.2. अतीत का गौरव गान :-

चूँकि भारत का एक अतीव महान और समृद्ध भूतकाल था इसलिए भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के समय में उस प्राचीन भारत का यश गाकर प्रेरणा देने का प्रयत्न किया गया । भारतीय राष्ट्रीयता का विकास 19 वीं शताब्दी के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अंग के रूप में हुआ । इसलिए भारत के राष्ट्रीय काव्य में भी सांस्कृतिक महत्व के कारण अतीत का गौरव गाया गया है । उत्तर में गुप्तजी और दक्षिण में वळ्ळत्तोळ् भी राष्ट्रकवि होने के नाते इसके अपवाद नहीं रह सके । उनकी रचनाओं में अतीत का गौरव गान विस्तृत रूप में हुआ है ।

6.4.2.1. गुप्तजी के काव्य में अतीत का गौरव गान :-

"भारत-भारती" में हम अतीत गौरव को मुखर रूप में पा सकते हैं । "साकेत", "स्वदेश संगीत", "मंगल घर" आदि रचनाओं में भी अतीत के गौरव का जीता जागता चित्रण हुआ है । तत्कालीन भारत की स्थिति को महत्व-पूर्ण अतीत के आलोक में जाँच कर कवि समाज से और अपने आप से पूछते हैं -- "हम कौन थें , क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी । इस समस्या के बारे में सब के मिलकर सोचने की ज़रूरत पर कवि ज़ोर देते हैं । वे अभिमान करते हैं कि हमारे पूर्वज बडे महान थे , स्वतंत्र थे , संपन्न थे । कवि के मत में

पूर्वजों का वर्णन अपार और सीमाविहीन है । हमारे पूर्वज बड़े दार्शनिक थे । उनकी शक्ति से सभी पाप और दुःख दूर हो जाते थे । सब लोग उनके हितैषी थे और वे संसार की उन्नति चाहते थे । [1] वे धर्म रक्षक थे, धर्म उनकी भी रक्षा करता था । वे कर्म से ही कर्म का नाश करने वाले थे । उनके जीवन के बारे में गुप्तजी कहते हैं --"हँसते हुए आते न थे, रोते हुए जाते न थे" । [2] वे सद्भाव के मूर्तिमान रूप थे । उनका व्यवहार सुसंस्कृत था । संसार की सभी चीज़ों में वे ईश्वरीय सत्ता पाते थे । ईश्वर का स्मरण कर वे सदा ब्रह्मानन्द पाते थे । [3] "मन से, वचन से, कर्म से वे प्रभु स्तवन में लीन थे । वे परमार्थ में ही स्वार्थ पा लेते थे । दिन-रात वे समष्टि केलिए प्रयत्न करते थे । पड़ोसी का सुख वे अपना सुख मानते थे । [4] यह भारतीय संस्कृति के सार्वलौकिक सम्मान की एक प्रमुख बात है । एक आदर्श देश के रूप में भारत का स्थान आज भी अग्रगण्य है । भारत के आदर्श पुरुषों के नाम लेने में भी गुप्तजी अभिमान पाते हैं ----

> गौतम वसिष्ठ समान मुनिवर ज्ञान दायक थे यहाँ,
> मनु याज्ञवल्क्य-समान सत्तम विधि-विधायक थे यहाँ
> वाल्मीकि-वेदव्यास-से गुण-गान-नायक थे यहाँ
> पृथु- पुरु, भरत, रघु-से अलौकिक लोक नायक थे यहाँ । [5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1., 2, 3, "भारत-भारती" अ:ख- पृ. क्रमशः 20, 12, 25

4. -वही- प- 50-51

5. -वही- प- 31

हमारे पूर्वज तत्य के मार्ग ते चलनेवाले थे । अपने आदर्श और तच्चाई की रक्षा के लिए "भीष्म" ने जो धीरता दिखाई है वह तर्वतामान्य है । अर्जुन की धीरता का भी कवि वर्णन करते हैं ।[1] पूर्वजों के जैसे उनके पुत्र भी धीरता के उत्तम पात्र थे । पुरु, प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव आदि इसके उत्तम निदर्शन हैं ।[2] वीरता के क्षेत्र में भी हमारे पूर्वज अनन्य वीर रहे हैं ---

"थे कर्मवीर कि मृत्यु का भी ध्यान कुछ धरते न थे ,
थे युद्धवीर कि काल ते भी हम कभी डरते न थे ।
थे दानवीर कि देश का भी लोभ हम करते न थे ,
थे धर्मवीर कि प्राण के भी मोह पर मरते न थे ।[3]

ऐते निपुण शूर वीरों का जन्म तंतार में केवल भारतवर्ष में ही हुआ है । स्वाधीनता आन्दोलन के तमय लोगों को उत्तेजना देने केलिए गुप्तजी अनेक बार पूर्वजों के महत्व का प्रतिपादन करते हैं । शिवाजी, महाराणा प्रतापतिंह [4] आदि के बारे में लिखकर कवि तत्कालीन जनता को तंग्राम भूमि की ओर अग्रतर करने का तशक्त प्रयात करते रहे । पूर्वजों के आत्माभिमान के बारे में भी कवि तैकडों बार कहकर नवयुवकों को आगे बढ़ाने की कोशिश करते रहे । विज्ञान, कला, ताहित्य आदि के क्षेत्र में भी हमारे पूर्वज श्रेष्ठ रहे हैं । इत प्रकार तमृद्ध भारतवर्ष का गुणगान कवि करते हैं ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. 1, 2, 3, 4, "भारत-भारती"-
अ:ख, प-36, 36, 123, 238

हाँ वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिर मौर है ।
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ।
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भंडार है
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है । [1]

सारे विश्व में हमारा सम्मान होता था । "नर देव थे हम, और भारत देव लोक समान था । इसी प्रकार "साकेत" में भी कवि अतीत का गौरव गान गाते हैं । [2] "हिन्दू" में कहा गया है कि आर्यों की धूम समस्त भूमण्डल में मची हुई थी । तिब्बत, स्याम, चीन, जापान, लंका, यवद्वीप, ईरान, काबुल, रूस, रोम, यूनान सभी जगह आर्यों की आन थी । [3] "जयद्रथ-वध" में भी कवि अतीत के गौरव का स्मरण दिलाकर उद्बोधन का कार्य करते हैं । [4] सांस्कृतिक राष्ट्रीयता में विश्वास रखनेवाले कवि आशा करते हैं कि थोडे ही समय में स्वतंत्रता का प्रभात होनेवाला है , ऐसे अटल विश्वास का संचार जनता में कवि करना चाहते हैं । कवि के दुर्दमनीय आशावाद का रूप "पत्रावली" में झलकता है ---

"घोर क्या व्योम में हैं अविरत सोम की मेघमाला ?
होता है अंत में क्या वह प्रकट नहीं और भी निवाला ? [5]

6.4.2.2. <u>वळ्ळत्तोळ् के काव्य में अतीत का गौरव गान:-</u>

अतीत के गौरव का स्मरण हमें आगे बढ़ाने का साहस दे सकता है । नैतिकता तथा अध्यात्म से संबन्धित अतीत की कुछ अंतर्दृष्टियाँ आज भी उपयोगी हो सकती हैं । महाकवि वळ्ळत्तोळ् प्राचीन भारतीय संस्कृति को पुनः-पुनः क्यों उच्च स्थान दे रहे हैं ? इसका जवाब बस इतना है, कि अंग्रेज़ों का

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भा:भ:, अ:ख, पृ. 4
2. "साकेत"- पृ. 22
3. "हिन्दू"- पृ. 33
4. "जयद्रथ-वध"- पृ. 6, 8
5. "पत्रावली"- पृ. 5

आधिपत्य उनके शासन मात्र में सीमित नहीं रहनेवाला था । अधिकार की स्थापना के साथ साथ वे भारतीयों के आत्मवीर्य को नष्ट भी करते रहे थे और वे दावा करते थे कि उनके आगमन के पहले यहाँ केवल एक अपरिष्कृत जनता रहती थी और उस जनता केलिए कोई खास परंपरा भी नहीं रही ।[1] वळ्ळत्तोळ् का अतीत-गौरव-गान इस अपमान के खिलाफ एक युद्ध जैसा हो रहा है । लेकिन वह युद्ध हिंसात्मक नहीं है । "मातृवन्दना" में कवि कहते हैं -- अपने पूर्वजों ने तलवार से ही नहीं, विद्वत्ता से भी प्रतियोगियों को पराजित किया था । उनका रक्त हमारी नसों में थोडा बचा है , जिसकी गरमी से आज हमें आँख खोलने की शक्ति मिली है ।[2]

"मातृभूमि से" में कवि पूर्वजों की धीरता, वीरता एवं धार्मिक गरिमा आदि की चर्चा करते हैं । हमारे पूर्वजों ने सत्य और धर्म की रक्षा केलिए, सर्वस्व, नैतमकोय त्यागने वाले थे ।[3] ऐसा कहकर कवि समकालीन समाजवासियों को उद्बोधन देने का प्रयास करते रहे । उनकी प्रसिद्ध रचना "पुराण" में कवि भारत का अतीत वर्णन आत्माभिमान के साथ करते हैं ।

"भारतवर्षत्तिले पूर्वरामृषीन्द्रन्मार्,
परिनुळ्ळडिक्कल्लु पार्तु कण्डरिञ्ञवर्
यौगैक द्रविणम्मार् , अवरतन् वासड्.ड.ळो
पोट्टप्पुकळ् कोण्डुम् शष्कपत्रौघं कोण्डुम्
केट्टिमेञ्ञवयाय पाष्कुडिलुकळे ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. बालकृष्ण वारियर {सं}- "वळ्ळत्तोळ् शताब्दि स्मारकोपहारम्"-पृ. 99
2. सा:म:1-पृ. 16
3. 1- पृ. 44
4. -वही-2-पृ. 34

ऽभारतवर्ष के पूर्वी ऋषीन्द्र ऐसे महान व्यक्ति थे, जिन्होंने संसार के आधार से स्वयं साक्षात्कार किया था। वे योग निरत, भोग निस्पृह, परित्यागी कोटि के द्रविड़ और शून्य झोंपडों में रहते थे, जो मामूली व शुष्क घास-पात से बनाए गए थे। ऽ वे तत्वज्ञानी, पंडित एवं वरेण्य साहित्यकार थे। प्राचीन भारत प्रकृति रमणीय एवं शांत गंभीर महान राज्य था। वहाँ धर्म का पालन होता था और जनता सदैव सुखी रहती थी। "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" के अनुसार वळ्ळत्तोळ् कहते हैं - हमारे स्वतंत्र पूर्वज आपद्ग्रस्त लोगों की रक्षा केलिए हाथ में शस्त्र लेनेवाले थे। [1] "वेडिकोण्ड-पक्षि" में तत्कालीन पतन से आत्मविभोर होकर वे कहते हैं हे माँ, तुम्हारे पुराने पुत्र धीर, वीर थे और दूसरों की भलाई केलिए जीवन तक त्यागने वाले थे। लेकिन आज के तुम्हारे पुत्र स्वार्थलाभ केलिए जीने-मरने वाले हैं। [2] "किळिक्को चल्" में भी कवि अतीत का गौरव गान गाते हुए त्रेतायुग के मिथिलापुरी, दशरथ, राम, सीता आदि का प्रतिपादन करते हैं। "नम्मुडे-मत्मडि" में कहा गया है -" भारत मेरी जन्मभूमि है, मेरे पितामह धीर ऋषिश्रेष्ठ थे उपनिषद् और भगवत गीता के ज्ञान रूपी किरणें हमारे कुल-विद्या की संपत्ति थी। [3] "स्वागतम्" में पूर्वजों की निर्भयता, धर्मपालन आदि का चित्रण हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए शस्त्रहीन होकर अहिंसा युद्ध करने का आह्वान देनेवाले गाँधीवादी कवि कहते हैं ---

"आयुधविहीनर् पोलोन्नर नूट्टाण्डाय् नाँ
आयुधम् नमुक्केन्तिन्नारोमल् सहजरे,
दिव्यास्त्रङ्ङळे ब्रह्मदण्डोन्नालेडु
त्तव्यर्थं वाण मुनिश्रेष्ठन्टे नाट्टार् नम्मळ् [4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-3, पृ. 12
2. -वही- पृ. 92
3. -वही- 4, पृ. 33
4. -वही-7, पृ. 56

§हमारे निरायुध होकर ढ़ाई शताब्दी हो गयी है । भाइयों हमें शस्त्रों की क्या आवश्यकता ? श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रों को ब्रह्मदण्ड से भस्म बनानेवाले योगियों का यह जन्म स्थान है । हम भी उनके देशवासी हैं । § लेकिन आधुनिक युग में यह केवल बोलने योग्य शब्द मात्र हैं करने योग्य काम नहीं । "श्री नारायण भट्टपादर" में भी कवि भारत की प्राचीनता की महिमा का वर्णन करते हैं । "इन्द्ययुडे करच्चिल्" §भारत रुदन§ नामक सनाहार की "वास्तवं तन्नेयो" §क्या यह सच है § में कवि आर्य श्रेष्ठों की गरिमा का वर्णन करते हैं । [1] "कोच्चुसीता" में कवि कहते हैं -" कितना बडा गौरव है भारतवर्ष तुम्हारा" । तुम्हारे रणक्षेत्र में सुरभी का नारा है, शिकारी की कुटिया में भी ब्रह्मत्व की संपदा है और वेश्यालय में भी सदा सतीत्व रहता है । [2] पौराणिक रचनाओं में भारत का जो गौरव गान हुआ है उसका अध्ययन तीसरे अध्याय में हो चुका है

इस प्रकार कवि अतीत का गौरव गान एवं पूर्वजों का स्मरण कराके तत्कालीन मृतप्राय जनता में नई स्फूर्ति लाने का प्रयास करते हैं ।

### 6.4.3. मातृभाषा प्रेम :-

भाषा की समस्या भी राष्ट्रीय समस्या है । भारतेन्दु युग में "निज भाषा उन्नति अहै सब -सब उन्नति को मूल" कहकर भाषा के उद्धार की ओर प्रकाश डाला गया था । जहाँ गाँधीजी नव-युवकों को स्वतंत्रता-आन्दोलन में बडी कुशाग्र बुद्धि से भाग लेने का आमंत्रण दिए जा रहे थे , उसी तरह साहित्यकारों को भी अपनी निष्ठावान वाणी से प्रभावित किया था । [3]

---

1. "इन्द्ययुडे करच्चिल्"- पृ. 12
2. कोच्चु सीता- पृ. 5
3. राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, "भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति"- पृ. 38।

भारतीयों की सामान्य संस्कृति की तरह सामान्य भाषा भी होनी चाहिए। गाँधीजी ने हिन्दी को उस पद पर प्रतिष्ठित किया। 1938 में गाँधीजी ने अहिन्दी भाषा प्रान्तों केलिए हिन्दी प्रचार समिति वार्धा में खोली, जो बाद में राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति बन गई।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भी अपनी मातृभाषा के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में मत-भेद नहीं रखते थे। गुप्तजी के लिए मातृभाषा ही राष्ट्रभाषा बन गई है।

### 6.4.3.1. गुप्तजी के काव्य में मातृभाषा के प्रति प्रेम :-

गुप्तजी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के प्रेमी रहे हैं। हिन्दी की वर्तमान दशा से दुःखी होकर वे कहते हैं ---

"अहो मातृभाषे, दशा देख तेरी, न होती निराशा कभी दूर मेरी।
बड़ा कष्ट है तू अभी दीन है, सभी भाँति से हो रही हीन ही है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की ओर कवि का ध्यान बराबर रहा है और वे घोषणा करते हैं कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होने की अधिकारिणी है। देश में एक भाषा होने के सिद्धान्त पर बल देते हुए कवि कहते हैं ----

"इस योग्य हिन्दी है तदपि अब तक न निज पद पा सकी
भाषा बिना भावैकता अब तक न हममें आ सकी। [1]

ऐसी स्थिति में हिन्दी भाषा लोकप्रिय न होने पर कवि खेद प्रकट करते हैं।

---

1. भा:भा: पृ.-175

उनके विचार में हिन्दी भाषा को अपनाना राष्ट्रीय चेतना को विकास देना है । इसलिए राष्ट्रीयता के अन्य तत्वों के साथ कवि राष्ट्रभाषा को अपनाने की भी आशा करते हैं :--

"ग्राम ग्राम में ग्रन्थागार, करें ज्ञान-गुण का विस्तार ।
बढ़े हिन्दी-हिन्दी पर प्यार, भरें राष्ट्रभाषा भण्डार ।
फैलाओं हिन्दू साहित्य , युग युग का सहचर निज नित्य ।
निज भू, निज भूषा, निज वेष, निज भाषा, निज भाव अशेष । [1]

यहाँ कवि राष्ट्रीय एकता केलिए भाषाई एकता को अनिवार्य मानते हैं ।

6.4.3.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में मातृभाषा प्रेम :-

वळ्ळत्तोळ् अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम, साहित्यमंजरियों के द्वारा व्यक्त करते हैं । साहित्य मंजरी तीसरे भाग की "तिरूर पोन्नानिप्पुषा", पाँचवें भाग की "भक्ति और विभक्ति" "पुराने गीत" आदि कविताओं में कवि मातृभाषा की गरिमा का प्रतिपादन करते हैं । लेकिन उनकी अमर रचना "मेरी भाषा" में मातृभाषा की सुन्दरता एवं कोमलता का वर्णन कवि गौरव के साथ करते हैं । मलयालम, संस्कृत एवं तमिल की सुन्दरता से युक्त, गंभीर शैली एवं व्याकरण व्यवस्था से सज्जित, प्रसाद गुण, शब्द-शुद्धि और सुकुमारता वाली सुन्दर भाषा है । [2] आगे कवि कहते हैं ---

"मट्टुळ्ळभाषकळ् केवलन् धात्रिमार्
मर्त्यनु पेट्टम्म तन् भाषतान्" [3]

---

1. "हिन्दू"- पृ. 126
2, 3, सा:म:-7, पृ. 56, 57

॥दूसरी भाषाएं केवल धात्रियाँ है, मानव को अपनी माता की भाषा ही स्व-भाषा है ।॥ इससे अतृप्त कवि आगे स्पष्ट करते हैं

"एतोरु वेदवुमेतोरु शास्त्रवु मेतोरु काव्यवुमेतोराळुम्
हृत्तिल्पतियेणमेंकिल् स्वभाषतन् वक्त्रत्तिल् निन्नुतान् केळ्क्क वेणम्" [1]

॥कोई वेद, शास्त्र या काव्य कोई आदमी को, अगर हृदय में लग जाना है तो, वह मातृभाषा में ही सुनना होगा ।॥

जब तक किसी राज्य की मातृभाषा अशक्त रहेगी, तब तक वहाँ की जनता, अज्ञानी और अप्रशस्त रहेगी । दूसरी भाषा की मोहाब्दी में डूबनेवाली तुम्हारा काम व्यर्थ हो जाएगा । याने सब को मातृभाषा के ज़रिए मातृभूमि की सेवा करना ही सदैव अभिकाम्य है । मातृभाषा की सेवा हम नहीं करेंगे तो उसकी उन्नति असंभव है । मातृभाषा के आगे सिर झुकाए बिना, कैसे हमारे सिर ऊँचे हो सकते हैं । [2] ज़्यादा कहेने से क्या मतलब है ? आगे कोई केरल के गृहांगण में विद्या केलिए आ जाय तो वह विद्या संपन्न होकर ही लौट जाएगा । [3] यहाँ कवि के सीमातीत मातृभाषा प्रेम की रंगीन झलक उभर आयी है ।

"तरवाट्टम्मा" में भी वळ्ळत्तोळ् मातृभाषा के महत्व पर अभिमान करते हुए कहते हैं-" मातृभाषा अपनी दूसरी माँ है । [4] आगे वे कहते हैं कि दूसरी भाषा में बात करना होटल से खाना-खोने की तरह अरुचिकर है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-7, पृ. 57
2. 3. सा:म:-7, पृ. 60
4. सा:म:-9, पृ. 45

इस प्रकार मातृभाषा का प्रेम करनेवाले कवि, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के समर्थक हैं । वे लिखते हैं -" विश्व से संपर्क बनाए रखने केलिए भी हमें एक माध्यम चाहिए , यही अंग्रेज़ी का महत्व है । हमारी राष्ट्रभाषा होगी हिन्दी । संस्कृत भी नहीं, क्योंकि राष्ट्रभाषा केलिए एक जीवित भाषा का होना ज़रूरी है ।

हिन्दी को गाँधीजी ने न केवल अपनाया है बल्कि अनेक अवसरों पर स्वतंत्रता के संदेश का माध्यम भी बना दिया । बुढ़ापे ने मेरी आँखों को अभी इतना धुंधला नहीं कर दिया है कि मैं हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य की ओर न देख सकूँ । [1]

यहाँ यह व्यक्त होता है कि वळ्ळत्तोळ् मातृभाषा के बडे प्रेमी होते हुए भी राष्ट्रभाषा के बारे में चुप नहीं रहे हैं । यह उनके राष्ट्र प्रेम का द्योतक है ।

6.4.4. सामाजिक दुरवस्था :-

किसी समय भारत की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक स्थिति सर्वोच्च पद पर थी । बाद में क्रमशः उसकी अवनति की भी शुरूआत हुई । आधुनिक काल में आते आते भारत की स्थिति अतीव दयनीय हो गई । आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और अन्य सभी क्षेत्रों में स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई । ऐसी अवस्था में कविगण इससे अलग नहीं रह सके । भारत भर में इसकी चर्चा होने लगी । हिन्दी में गुप्तजी और मलयालम में वळ्ळत्तोळ् भी इसके अपवाद नहीं रह सकते थे । कविद्वय अपनी कृतियों में भारत की प्राचीन संपन्नता के

---

1. टी.पी. गोपालकृष्ण पिळ्ळै-'मैथिलीशरणगुप्त और वळ्ळत्तोळ् राष्ट्रीयता और संस्कृति के संदर्भ में अनुशीलन- 1988- पृ. 29

वर्णन के साथ-साथ तत्कालीन राष्ट्र की पतित अवस्था का विश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत करते हुए सुप्त जनता को जगाने का निरन्तर प्रयास करते हैं ।

6.4.4.1. गुप्तजी के काव्य में सामयिक दुरवस्था का चित्रण :-

भारत की चिरकालीन संपन्नता के बाद की अवनति को देखकर कवि कहते हैं -- "जैसे उठे थे, अन्त में हम ठीक वैसे ही गिरे " । कवि भारत के पतन के अनेक कारण प्रस्तुत करते हैं । महाभारत युद्ध, अनार्यों का आक्रमण, विविध धर्मों का उदय, उनमें मतभेद, रजवाड़ों का आपसी द्वेषभाव, मुसलमानों का आगमन, उसके बाद ब्रिटिश राज्य की स्थापना आदि ने राष्ट्र के अतीत गौरव को सर्वथा छिन्न भिन्न कर दिया ।[1] गुप्तजी देश की हीनावस्था का खूब चित्रण करते हैं । "भारत-भारती" के वर्तमान खण्ड की रचना अवनति के चित्रण केलिए ही हुई है । भारत की दुरवस्था पर कवि आँसू बहाते हैं --

"भारत तुम्हारा आज यह कैसा भयंकर वेष है ?
है और सब निःशेष केवल नाम ही अवशेष है ।[2]

आगे कवि प्रत्येक क्षेत्र के पतन के कारण और पतित अवस्था का वर्णन प्रस्तुत करते हैं । सर्व प्रथम वे आर्थिक हीनता से हमारा परिचय कराते हैं ।

4.4.1.1. आर्थिक पतन :-

भारत की पराधीनता का प्राथमिक प्रत्यक्ष परिणाम उसका आर्थिक शोषण था । जो देश कृषि, वाणिज्य एवं व्यवसायों में अत्युच्च दशा में था,

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भारत-भारती"- अवनति का आरंभ- पृ. 84
2. पृ. 152

और जो अनेक अन्य राज्यों को अपनी उत्कृष्ट वस्तुएं बेचकर विख्यात हुआ था। वह धीरे धीरे इन क्षेत्रों में क्षीण पडता गया। दरिद्रता एवं दुर्भिक्ष के कारण भयंकर यातनाएँ सहती हुई भारतीय जनता की दशा अत्यंत दयनीय थी --

"उडते प्रभंजन से यथा तप मध्य सूखे पत्र हैं,
लाखों यहाँ भूखे भिखारी घूमते सर्वत्र हैं।
है एक चिथडा ही कमर में और खप्पर हाथ में,
नंगे तथा रोते हुए बालक विकल हैं साथ में।। [2]

वर्तमान दुरवस्था का इससे बढ़कर यथार्थ चित्रण और कहीं नहीं मिल सकता। देश की आर्थिक दशा में सबसे अधिक दयनीय स्थिति किसानों और मज़दूरों की है। [3] आर्थिक कष्टता के कारण दलित वर्ग पूर्णतया अशिक्षित और असभ्य रहे हैं। उनका भी जीता जागता चित्रण "भारत-भारती" में किया गया है। [4] कृषकों की दयनीय स्थिति पर गुप्तजी के काव्य में व्यापक चर्चा हुई है। इसका विस्तृत अध्ययन आगे "आर्थिक सुधार" में हो रहा है। इसके अतिरिक्त भारत की आर्थिक अवनति का कारण व्यापार और कला कौशल का विनाश है। [5] जिस वस्तु को देखो उस पर "मेड इन इंग्लैंड", "मेड इन इटली" आदि लिखा गया है। रोज़ के व्यापार की वस्तुएं भी विदेश से आती थीं। "ऐसी दशा में देश की, भगवान ही रक्षा करें" यही कवि का करुण क्रन्दन है।

3.4.4.1.2. धार्मिक पतन :-

पराधीन भारत ने वैदिक परंपरा खो दी। उसके बदले अंधविश्वास पर आधारित कथाओं पर विश्वास रखा गया। ये सब अशिक्षा के कारण ही हो

---

1. भा:भा:वर्त:खण्ड- पद-9
2.3, -वही- पद-12, 33
4.5, -वही- पृ. 50, 98

रहा था । [1] जो धर्म व्यक्तिगत रूप में मानव के उत्थान का माध्यम है, और समष्टिगत रूप में पारस्परिक प्रेम, सहानुभूति और सहकरण का आधार है, वह क्रमशः जीर्ण जर्जरित होकर अपना उद्देश्य ही खो बैठा । स्वार्थ-लाभ के ध्येय से धार्मिक ग्रन्थों की नई व्याख्या की गयी और विविध पथों की स्थापना हुई । धर्म सामाजिक विघटन का उपकरण बन गया । [2] अब परस्पर प्रेम के स्थान पर विरोध और वैमनस्य का ही प्रचार हुआ ---

"हम आड लेकर धर्म की, अब लीन हैं विद्रोह में
मत ही हमारा धर्म है, हम पड रहे है मोह में ।" [3]

धर्म ग्रन्थों की दुर्व्याख्या और उनपर चिन्तन रहित अंधविश्वास इतने बढ़े कि दुराचारी एवं अविश्वासी लोग तक अपने स्वार्थ के निमित्त तथा दूसरों को उल्लू बनाने केलिए धर्म ग्रन्थों के उद्धारण का सहारा लेने लगे । गुप्तजी कहते हैं --"स्वार्थ सिद्धि केलिए वेद को लेते हैं नास्तिक भी नाम । [4] इस प्रकार की धार्मिक अवनति का चित्रण "हिन्दू" में भी हुआ है । [5] बडे बडे सभा-भवनों में धर्मोपदेश के भाषण स्वयं अधर्म-मार्ग का अनुसरण करनेवालों का ढोंग धर्माचार्यों और पंडों के अत्याचार, मन्दिर और महन्तों का अंधविश्वासों और सामाजिक कुकर्मों के पोषकों के रूप में पतन [7], चारों वर्णों का अपने अपने लिए विविध कर्मों का परित्याग कर धनलोलुपता के कारण अनुचित कर्म करना इत्यादि का गुप्तजी विस्तृत वर्णन करते हैं और इनकी निन्दा भी करते हैं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. भारत-भारती- वर्तमान खण्ड-पद-133
2. 3. पद-182, 184
4. "अंजलि और अर्घ्य"- पृ. 9
5. हिन्दू- पृ. 166
6. भा:भा, व:ख:-प-180-181
7. भा:भा, व:ख:- प-180-184

6.4.4.1.3. शिक्षा का पतन :-

हमारी पराधीनता का और एक कारण शिक्षा का पतन है । वर्ण-व्यवस्था के रूढ़िग्रस्त आचरण के कारण शिक्षा प्रसार अत्यंत सीमित रह गया था । ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद कुछ दृष्टियों से शिक्षा की अधिक अवनति हुई । यद्यपि अंग्रेज़ों ने सभी केलिए विद्या-मंदिर के द्वार खोल दिये तो वह शिक्षा भारतीयों की मानसिक शक्ति का विकास करनेवाली नहीं थी । इसका उद्देश्य भारत वासियों की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास कर उन्हें उत्कृष्ट जीवन केलिए तैयार करने से बढ़कर नौकरशाही के निम्न स्तरों की नौकरियों केलिए उन्हें तैयार करना था । [1] ऐसी शिक्षा केलिए भी अपरिमित व्यय करना पडता था । अल्पसंख्यक धनी, तथा उच्च वर्गीय व्यक्ति ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे । [2] इस शिक्षा का सबसे बडा दोष यही था कि वह सामान्य भारतीय जीवन से विलग थी और स्वतंत्र चिन्तन का हनन करके बौद्धिक तथा मानसिक शक्तियों को क्षीण बनाने वाली थी । विदेशों में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले भारतीयों के बारे में गुप्तजी कहते हैं ---

"शिक्षार्थ छात्र विदेश भी जाते अवश्य कभी कभी
पर वक्तृता ही झाडते हैं लौटकर प्रायः सभी

"जाकर विदेश अनेक अब तक युवक अपने आ चुके ,
पर देश के वाणिज्य-हित की ओर कितने हैं झुके ?
हैं कारखाने कौन से उनके प्रयत्नों से चले ?
क्या-क्या सु-फल निज देश में उनसे अभी तक हैं फले ? [3]

---

1. भा: भा: वर्तमान खण्ड-प- 140
2. - " " प-138
3. प-142, 144/149

विदेशी ढाँचे की शिक्षा ने भारतीयों को उनकी विश्वोत्तर संस्कृति से भी अनभिज्ञ बना दिया । इस प्रकार मानसिक परतंत्रता का पोषण करनेवाली शिक्षा के, कवि घोर विरोधी हैं । [1]

भारत के जो अस्सी प्रतिशत कृष जन हैं, और देश के जीवन के स्थाई आधार है, उनको इस शिक्षा पद्धति से कोई लाभ नहीं मिलता । इस दशा के बारे में "किसान" का किसान रोता है ---

"शिक्षा को हम और हमें शिक्षा रोती है,
पूरी बस वह घास खोदने में होती है
कहाँ यहाँ विज्ञान रसायन भी सोती है,
हुआ हमारे लिए एक दाना मोती है । [2]

इस प्रकार भारत में ब्रिटिश शासन में प्रचलित शिक्षा की दुर्बलताओं और हानियों को दिखाने पर भी गुप्तजी पाश्चात्य-चिन्तन-प्रणाली तथा उनके विज्ञान-क्षेत्र के विकास से अनभिज्ञ नहीं हैं । परम्परागत संस्कृति पर विश्वास करते हुए कवि चाहते हैं कि तत्कालीन वैज्ञानिक ज्ञान का भी सहारा लेकर हमें अपनी उन्नति की ओर आगे बढ़ना चाहिए । [3]

6.4.4.1.4. राजनैतिक पतन :-

गुप्तजी का विचार है कि विदेशियों के आने के पहले भारत की स्थिति बहुत उत्कृष्ट थी । सभी प्रकार से हमारी संस्कृति उन्नत थी। लेकिन धीरे-धीरे

---

1. भा:भा:-व:ख, प-142, 144/149
2. किसान- पृ. 8
3. "वैतालिक"- पृ. 28-30

पारस्परिक अनैक्य और फूट का विकास होता गया, जिससे विदेशियों को यहाँ आने का अवसर मिला । वस्तुत: हमारे ही लोगों ने अपने पारस्परिक वैमनस्य के कारण मुस्लिमों को निमंत्रण देकर अपनी स्वतंत्रता को नष्ट कर दिया ।

बढ़ने लगा विग्रह परस्पर क्रान्तियाँ होने लगीं ,
अनुदारता मय स्वार्थ के वश भ्रान्तियाँ होने लगीं ।
जिसमें हुआ कुछ बल वही अधिकार पर मरने लगा,
सौभाग्य भय खाकर भगा, दुर्भाग्य जय पाकर जगा " ।

जो हम कभी फूले-फले थे राम-राज्य वसन्त में ,
हा ! देखनी हमको पड़ी औरंगजेबी अन्त में !
है कर्म्म का ही दोष अथवा सब समय की बात है ,
होता कभी दिन है, कभी होती अँधेरी रात है । [1]

जयचन्द्र और पृथ्वीराज का वैमनस्य प्रसिद्ध है । इसके कारण मुसलमानों को यहाँ आकर शासन करने का अवसर मिला । यवन लोगों ने यहाँ आकर असंख्य लोगों का धर्म परिवर्तन किया, यहाँ की जनता को बहुत कष्ट दिए और नारियों तक के धर्म को नष्ट कर दिए । [2] गुप्तजी दिखाते हैं कि इस राजनैतिक पतन से देश का सांस्कृतिक पतन भी हो गया ।

मुसलमानों के अत्याचारों का खण्डन करने पर भी गुप्तजी उदार मुगल बादशाह अकबर की प्रशंसा की है, और उनके काल में हुई साहित्यिक उन्नति को दिखाया है । [3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. भा:भ: -अतीत खण्ड-प-218, 224
2. प-227-228
3. भा:भा:, अ:ख:- प- 234

6.4.4.1.5. अन्य क्षेत्रों में पतन :-

परतंत्र भारत की इन प्रमुख समस्याओं के अतिरिक्त राष्ट्रीय जीवन को दुर्दशा-ग्रस्त बनानेवाली अनेक अन्य बातों की भी चर्चा कवि करते हैं । गुप्तजी की दृष्टि सामाजिक कुरीतियों और अनाचारों पर अधिक केन्द्रित रही है । कवि भारत के चारित्रिक दृष्टि से पतित रईसों की दशा [1], उनके पुत्रों की दायित्वहीन उच्छृंखलता [2], उनके द्वारा शिक्षा की उपेक्षा [3], समाज में व्यापक रूप में दृष्टव्य अविद्या [4], सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना करने के कारण हुई साहित्य की दुर्दशा [5] उपदेशकों और धर्माचार्यों का चारित्रिक पतन [6], सभी प्रकार के लोगों की धन-लोलुपता [7], पारस्परिक कलह और मात्सर्य [8], अनावश्यक मिथ्याडंबर [9], आदि का विस्तृत वर्णन करके पराधीन भारत के समाज की दयनीय दुर्दशा का सामान्य रूप प्रस्तुत करते हैं । इस घोर पतन और सामाजिक जर्जरता को देखकर भी गुप्तजी आशान्वित हैं । निष्क्रियता या मानसिक कुंठा को प्रेरणा देनेवाली निराशा उन्हें अज्ञात है। भारत के गरिमामय भूत की स्मरण उनके हृदय में संचार करती है । वे जनता को भी भारत की गौरवान्वित सिद्धियों का परिचय देकर उनकी आत्म शान्ति को स्थिर रखना चाहते हैं ---

"निज पूर्वजों का वह अलौकिक सत्य शील निहार लो ।
फिर ध्यान से अपनी दशा भी एक बार विचार लो ।

...../-

---

1. भा:भा: व:ख, पृ. 102-105
2. पृ. 105-107
3. पृ. 107-108
4. पृ. 108- 112
5. पृ. 112-115
6. भा:भा:व:ख- पृ. 116-117, 118-120
7. पृ. 133-134
8. पृ. 137-138
9. पृ. 139-140

निज पूर्वजों के सद्गुणों को यत्न से मन में धरे,
सब आत्म-परिभव-भाव तज निज रूप का चिन्तन करो । [1]

इस प्रकार गुप्तजी का अविचल आशावाद से समन्वित यथार्थ चित्रण तत्कालीन वातावरण में जनता को जोश प्रदान करनेवाला था, तो आज हमारे लिए वह उस समय की सामाजिक दशा की विश्वसनीय ऐतिहासिक लेखा के रूप में मूल्यवान है ।

6.4.4.2. वळ्ळ ळ के काव्य में सामयिक दुरवस्था :-

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी राष्ट्र के तत्कालीन पतन पर आँसू बहाते हैं । "ओरु तीर्थयात्रा" में कवि राष्ट्र की समकालीन पतित अवस्था का वर्णन करते हैं । [2] अंग्रेजों के आगमन से सभी स्तरों में भारतीयों की अवनति हो गई है । "भार्गव स्वामिन् कै तोषाम्" में कवि केरल की पतित अवस्था का वर्णन करते हैं, जिसका जिक्र तीसरे अध्याय में हो चुका है । इस अवनति से अतीव दुःखी होकर कवि "परवश्यम्" में पूछते हैं ---

"अहो कलात्मावे, जगन्नियन्तावे, अखिलजगत् पितावायुळ्ळोवे,
इन्निवनेत्रनाड् किडक्कणं तव तनयर् अड्ड्. ळोयडिमच्चेर्क्कुडिल् ! [3]

(अहो कलात्मन, जगत् के संचालक और सभी चराचरों के पिता हमें - आपके

---

1. भा:भा, भविष्यत खण्ड-प-3, 9
2. सा:म:-3- पृ. 7-14
3. सा:म:-7- पृ. 96-97

पुत्रों अब कितने दिन इस परतंत्रता के गर्त में रहना पडेगा ? "ओन्नामत्ते-मतम्" में तत्कालीन पतन का चित्रण करते हुए दरिद्रता, परतंत्रता, रोग पीडा आदि पर प्रकाश डाले गए हैं । [1]

6.4.4.2.1. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में आर्थिक पतन का चित्रण :-

वळ्ळत्तोळ् के मत में भारत के आर्थिक पतन का कारण विदेशी शासन की अनीति है । "उण्णानिल्ल उडुप्पानिल्ल" में कवि दरिद्रता से तडपने वाला एक घर और घरवालों का मार्मिक चित्रण करते हैं । पैसों की कमी के कारण वह साधारण घर तहस-नहस हो गया है । दरिद्रता पिशाच की तरह घर को चूसती रहती है । [2] उस घर की माता केलिए पहनने का कोई वस्त्र तक बचा नहीं है । दरिद्रता से उसकी हालत क्या से क्या हो गई है । ऐसी स्थिति को देखकर कवि कहते हैं ---

"पोरिन्टे पीरंकि वमिच्च धूमं पूरिच्चियूरोप्पिले वानिनेक्काळ्
पारिच्चिरुण्डांडिहु भारताभ्रं, दारिद्र्य तत्परवासितोल्गमत्ताल् ।" [3]

{युद्ध में तोप से निकले हुए धूम ने योरोप को पूर्णरूप से आच्छादित किया, लेकिन उससे भी भयानक रूप में दरिद्रता ने भारतभूमि को ग्रस लिया है ।}
"विजयिप्पूताका" में कहा गया है कि भारत माते तुम्हारी धन संपत्ति से पार्श्व के कई देश संपन्न हो रहे हैं । [4] अर्थात उसी पैमाने पर भारत दरिद्र होते जाएगा । "कुडियान्मारुडे प्रार्थना" में केरलीय कृषकों की अवनति का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं कि गरीब कृषक गण दिन रात काम करते हुए भी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:न: - 10- पृ. 61
2. -वही- 2- पृ. 57
3. -वही- 2- पृ. 65
4. -वही- 3- पृ. 3

उन्हें रोज़ी रोटी की कमाई नहीं मिलती है । यह आर्थिक शोषण का कुफल ही है । "ऐव्यमे सेव्यात् सेव्यम्" में भी कवि इसी बात की ओर प्रकाश डालते हैं ।[1] अपनी प्रौढ़ रचना "माप्पु" में कवि आर्थिक अवनति का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करते हैं । यहाँ दरिद्रता के कारण एक मज़दूर रेलवे स्टेशन में तड़प-तड़प कर मरता है । उसकी ओर कोई देखता नहीं, और न कोई उसके बारे में बोलता भी है । अब कवि कहते हैं, मरना तो साधारण है, लेकिन इस प्रकार दरिद्रता से एकदम पीड़ित होकर मरना केवल अपने देश की दुःस्थिति के ही कारण हैं ।[2] गरीबों से कर वसूल करना भी उनकी दरिद्रता के कारण ही होता है । "ग्रीष्मसिसले ओरु रात्रि" में कवि इसकी ओर प्रकाश डालते हैं ।[3] "जातिप्रभावम्" में आर्थिक पतन का मार्मिक चित्रण हुआ है । इसका अध्ययन चौथे अध्याय में हो चुका है । "निलनिल्पु" नामक कविता में कहा गया है - संसार में अब जो युद्ध हो रहा है उसी के अनुसार भारत में भी एक युद्ध हो रहा है -" दरिद्रता के प्रति युद्ध" ।[4] इन सबके बावजूद कवि कई अन्य कारणों की ओर भी प्रकाश डालते हैं जो आर्थिक पतन का पोषण करते हैं । विदेशी वस्त्रों का उपयोग, भारतीय वस्त्रों एवं अन्य वस्तुओं का परित्याग, हमारे प्राकृतिक विभवों का विदेश जाना, आदि इस कोटि में आते हैं । "इन्द्रुयुडे करच्चिल्" में भी कवि आर्थिक पतन के विविध मुखों का रंगीन चित्र खींचते हैं ।[5]

6.4.4.2.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में धार्मिक पतन का चित्रण :-

परतंत्रता के कारण भारतीय जनता अपनी प्राचीन संस्कृति खो बैठी है । उनके नाम में अंधविश्वासों को छोड़कर अब कोई विश्वास नहीं बचा है । "ओरु तोन्नियाला" में कवि अंधविश्वास की ओर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि हमारे बीच में कोई ऊँच या नीच नहीं, हम सब एक ही ईश्वर के पुत्र हैं ।[6]

---

1. सा:म:-2 5- पृ. 90
2. -5 - पृ. 99
3. 6- पृ. 105
4. सा:म:-8- पृ. 86
5. इन्द्रुयुडे करच्चिल्- पृ. 9-11
6. सा:म:-3- पृ. 13

अब भारतवासी आपस में प्रेम के स्थान पर एक दूसरे से घृणा करते हैं । "ऐक्यमे सेव्यात् सेव्यम्" में कवि दुःख के साथ कहते हैं -" हमारी आर्य संस्कृति के मानसिक संस्कार, समभावना, त्याग, आध्यात्मिक चिंतन, ये सब अब कहाँ चले गए ? जब तक छुआछूत और जाति-पाँति के नाम पर मनुष्य मनुष्य को ही भगा देगा तब तक हम आर्य संस्कृति का महान संगीत नहीं सुन सकते । इस जातीयता कभी भी धार्मिक नहीं है । इसको बनाए रखनेवाले "उन्नत लोग" कैसे शुद्ध हो सकते हैं । [1]

अहिंसा के इस भारतवर्ष में धर्मांध मानव नरबलि, जन्तुबलि आदि पैशाचयज्ञ करते हैं । "पैशाचयज्ञ" में कवि इस अधर्म की ओर आवाज़ उठाते हैं । इसी प्रकार "नणल्काद्दु" में कवि धर्म की रक्षा केलिए नरबलि करनेवालों की ओर घोर व्यंग्य करते हैं । [2] "ओन्नामत्ते मतम्" में गीता की जन्मभूमि में होनेवाली अधार्मिक बातों की चर्चा करते हुए, स्वामि श्रद्धानन्द के कारुणिक अंत का चित्रण किया गया है । [3] यह केवल अंधविश्वास एवं धर्म बोध की कमी के ही कारण हुआ था ।

इस प्रकार अनेक स्थानों पर कवि धार्मिक पतन का चित्रण करके जनता को अपने समाज की असली स्थिति समझाने का प्रयास करते रहे ।

6.4.4.2.3. <u>वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राजनैतिक पतन का चित्रण :-</u>

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् का भी विचार है कि विदेशियों के आने के पहले भारत की स्थिति अत्यंत उन्नत थी । भारतीय राजाओं की आपसी

---

1. सा:म: -5- पृ. 91
2. -वही- 8-पृ. 59
3. -वही- पृ. 59-63

झगड़े के ही कारण , यहाँ विदेशियों के पैर जम गये । मुसलमानी सलतनत ने भारत को पूर्णरूप से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । हुमायूँ और अकबर के समय में भारत की स्थिति अच्छी रही है । लेकिन औरंगज़ेब ने हमारे राष्ट्र को अवनति के अगाध गर्तों में फेंक दिया । इन बातों की चर्चा कवि "काट्टेलियुडे कत्तु" (जंगली चूहे की चिट्ठी) में करते हैं । यहाँ शिवजी को ही जंगली चूहा कहा गया है । औरंगज़ेब ने शिवजी से युद्ध कराने केलिए जयसिंह को भेजने का निश्चय किया । यह जानकर शिवजी ने जयसिंह को एक खत भेजा । उसी खत के रूप में कवि प्रस्तुत कविता पेश करते हैं । औरंगज़ेब ने मर्यादा का पालन न करके जनता को अतीव कष्ट दिया है । उसके राज्य में सभी हिन्दुओं के घरों से रोज़ करुण क्रन्दन गूँज उठता था । [1] इस प्रकार राज्य करने वाले दुराचारी राजा केलिए युद्ध में आनेवाले जयसिंह से कवि पूछते हैं ---

> नामं कोण्डु नरेन्द्रनां कुमतिये, कूप्पित्तोषानुळ्ळतो,
> धीनन्, हे जयसिंह राज, भुजमन्टेताद युष्मत्करम् । [2]

(हे जयसिंह राजा क्या आपके पौरुष भरी बाहुएँ उस नाम मात्र के कुबुद्धि बादशाह को प्रणाम करने केलिए हैं ? यहाँ कवि का देश प्रेम और शिवजी के प्रति श्रद्धा की झलक मिलती है । यहाँ हम दोनों दो दिशाओं में रहें तो विदेशी जीत जाएगी । लेकिन हमें एक ही स्थान पर रहकर शत्रु से युद्ध करना होगा । अब हमारी एकता से ही मातृभूमि की रक्षा हो सकती है । [3] अब हमें क्षात्रधर्म का पालन एक साथ करना ही होगा । इस राजनैतिक पतन के

---

1. सा:न: -5- पृ. 69
2. 5-पृ. 69
3. - पृ. 70

अँधेरे से राष्ट्र को प्रकाश की ओर लाना ही होगा । यहाँ पर स्पष्ट है कि देश-भक्त कवि राजनैतिक पतन से कहाँ तक दुःखी रहे थे ।

आगे अँग्रेज़ी शासन के बारे में कवि "किळिक्कोंचल्" में व्यक्त करते हैं । शुरुआत में अँग्रेज़ी शासन भी अच्छा रहा । बाद में वह भी राष्ट्र की अवनति का कारण बन गया । कवि के शब्दों में "बन्धन चाहे, स्वर्ण के पिंजडे में ही सही, इस संसार में वह बन्धन ही है । [1] इससे मिलते जुलते भाव की अभिव्यक्ति भारतेन्दु ने भी की है -" अँग्रेज़ी राज सुख-साज सजै बहु भारी, पै धन विदेश चलि जात है इहै अति ख्वारी । यहाँ कवि का राजनैतिक परतंत्रताजन्य दुःख व्यक्त होता है ।

"विषुक्कणि" नामक कविता संग्रह की "पुलर्कालं एप्पोषो" 9 ﴾उषा कब है﴿ में कवि कहते हैं हमारे पुराने राजाओं के बीच यदि झगडा नहीं होता तो राष्ट्रीय स्थिति में ऐसा पतन नहीं होता । [2] याने राजनैतिक पतन का मूल कारण हम ही हैं ।

6.4.4.2.4. शिक्षा का पतन :-

राष्ट्रीय पतन की एक बहुमूल्य समस्या है शिक्षा की समस्या । भारत की तत्कालीन शिक्षा जनता को गुलाम बनानेवाली थी । ऐसी शिक्षा के बारे में वळ्ळत्तोळ् "ऐक्य ही सेव्यात् सेव्य" में कहते हैं ----

> वंपिच्च चिलमेंडिच्चिडिमप्पट्टं विल्कुम्
> कंपोलस्थलमल्लो नमुक्कु पळ्ळिक्कूडम्
> "उयर्न विद्याभ्यासं" उडुप्पिल्तुन्निच्चेर्कु-
> नुयर्न विद्याभ्यासं एत्र सांषूतीला नम्मे । [3]

---

1. सा:म: -4- पृ.42
2. "विषुक्कणि"- पृ. 30-31
3. सा:म:5-पृ. 92

}हमारा विद्यालय ऐसा हाट बाज़ार है , जहाँ बहुत अधिक दाम लेकर गुलामी का पदक बेचा जाता है । "हाय उँच शिक्षा"- पहनावे पर सिलाई गई ऊँची शिक्षा - हमें कितने नीचे तक ढ़केल चुकी है । "ओणप्पुडवा" में अशिक्षा और अज्ञान को "मन की दरिद्रता कहा गया है । [1] "ज्ञान" नामक कविता में कवि शिक्षा एवं ज्ञान को सर्वस्व मानते हैं । [2]

"सुल्तान" में कवि अशिक्षा के दुष्परिणामों का अंतर्राष्ट्रीय तार पर विश्लेषण करते हैं । अरेबिया के पुराने लोग, आँखों देखे सभी चीज़ों में ईश्वरत्व देखते थे । लेकिन बाद में वे नास्तिक बन गए । कवि कहते हैं इनका साथी सदैव अज्ञान का अँधेरा ही था । शिक्षा का छोटा सा प्रकाश भी वे सह नहीं सकते थे । [3] यहाँ कवि साबित करते हैं कि अज्ञान और अशिक्षा ही सभी अंधविश्वासों और सामाजिक अवनतियों का कारण है ।

यहाँ कवि अशिक्षा के कुपरिणामों का चित्रण करके, सामाजिक उन्नति केलिए शिक्षा की स्थापना करने की ओर संकेत करते हैं ।

6.5. राजनैतिक स्वांत्रता और स्वराज्य :-

राष्ट्रीय स्वतंत्रता की पहली सीढ़ी राजनैतिक स्वांत्रता होती है । जातीय संस्कृति को सुरक्षित रखकर जीवन का बहुमुखी विकास करने केलिए राजनैतिक स्वतंत्रता अनिवार्यतः आवश्यक है । यद्यपि इंडियन नेशनल कांग्रेस के आरंभ काल में हमारे नेताओं ने अंग्रेज़ी सरकार को तुरंत हटाकर देशीय सरकार की स्थापना की इच्छा नहीं प्रकट की, तो भी उनका अंतिम लक्ष्य यही था ।

---

1. सा:म:-6- पृ. 116  2. सा:म:-7- पृ. 1-5
3. 8- पृ. 14

बीसवीं शती की आरंभिक दशा में यह आशा प्रकट होने लगी । लोकमान्य-तिलक ने पूर्ण स्वराज्य की माँग प्रस्तुत करके भारतीय जनता की हार्दिक आकांक्षा को असन्दिग्ध रूप में स्पष्ट कर दिया । विदेशी शासन को हटाकर जनतंत्र शासन की स्थापना करना ही हमारी उस समय की आवश्यकता थी । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् इस समकालीन आन्दोलन से अवगत थे । देश और समाज के प्राचीन गौरव की तुलना में तत्कालीन पतन को देखकर विषण्ण, और हिन्दू समाज के पुनरुत्थान की ओर दत्तचित्त गुप्तजी न विदेशी सत्ता के बहिष्कार की सबल माँग कर सके, और न राज सत्ता के विरुद्ध प्रजातंत्र का समर्थन कर सके । इसके विपरीत वळ्ळत्तोळ् ने विदेशी शासन का सशक्त विरोध किया और प्रजातंत्र का समर्थन भी किया ।

## 6. 5. 1. गुप्तजी के काव्य में राजनैतिक स्वतंत्रता और स्वराज्य :-

स्वराज्य की स्थापना की आशा करनेवाले कवि कहीं भी प्रत्यक्ष रूप में विदेशी शासन को दूर करने की आवश्यकता नहीं बताते हैं ।[1] कवि देश की समकालीन दुर्दशा के मुख्य कारण हिन्दू जनता की आत्म विस्मृति और मुसलमानों के शासन को ही मानते थे । युग की पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ भी उनको सामाजिक संगठन एवं सुधार की ही प्रेरणा देती थी, राजनैतिक स्वतंत्रता की नहीं । यही प्रतीत होता है कि तिलक आदि नेताओं द्वारा संचालित स्वतंत्रता आन्दोलन से बढ़कर आर्य समाज के पुनरुत्थान आन्दोलन के प्रति गुप्तजी अधिक आकृष्ट थे । इसलिए उनकी रचनाओं में राजनैतिक स्वतंत्रता की प्रेरणा देनेवाले सशक्त शब्द नहीं मिलते ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. इसके विरुद्ध कहीं-कहीं कवि ब्रिटिश राज को "शान्ति" का शासन माना है, और उसे देश की उन्नति केलिए उपयुक्त काल माना है (भा:भा:- पृ. 164) उनका निश्चित मत है ब्रिटिश लोगों की "कृपा" से ही हम जागृत हुए (भा:भा: पृ. 165)

प्रजातंत्र और राज सत्ता से संबन्धित विचारों की विस्तृत चर्चा करने का अवसर, पौराणिक विषयों से संबन्धित रचनाओं के समय में कवि को मिला है। ऐसे संदर्भों में वे राजत्व के उच्च आदर्शों को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। "बक-संहार", "साकेत", "जय-भारत", "अनघ" आदि में कवि अनीति पूर्ण राज-शासन के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं, फिर भी कवि राज सत्ता का विरोध नहीं करते हैं इसकेलिए विपरीत राजा के प्रजाहित पालन करनेवाले आदर्शवान होने की ही आवश्यकता बताते हैं। उनके मत में राजा प्रजा केलिए है [1], प्रजा का प्रतिनिधि मात्र है [2] और वह प्रजा के प्रति अपने दायित्व की पूर्ति न करें तो त्याज्य है। [3] वस्तुत: राज हित के लक्ष्य से युक्त राजत्व भार-स्वरूप ही होता है उसके सम्यक निर्वहण केलिए प्राणों तक को अर्पित करना पड़ता है। इसके विपरीत राजत्व को सुख भोग का माध्यम बनाया जाय तो वह प्रजा केलिए अतीव दुःखदायी ही सिद्ध होता है। ऐसी दशा में राजत्व के विरुद्ध विद्रोह करना भी उचित होता है। [4]

राजत्व के उच्च आदर्शों को प्रस्तुत करनेवाले गुप्तजी कहीं कहीं राजत्व के लुप्त होने की भी चर्चा करते हैं। कहीं उनकी कल्पना साम्यवादी सिद्धान्त के अनुकूल शासनाधिकार के झड़ जाने की ओर इंगित करती है तो कहीं प्रत्येक मानव की जीवन-विकास का पूर्ण अधिकार और अवसर प्रदान करनेवाले प्रजातंत्र का समर्थन करती है ——

> "विगत हो नरपति रहे न नर मात्र।
> और जो जिस कार्य के हों पात्र
> वे रहें उस पर समान नियुक्त,
> सब जियें ज्यों एक ही कुल भुक्त।" [5]

---

1. 2, 3, "बकसंहार" - पृ. 22
4. "साकेत" - पृ. 200
5. "साकेत" - पृ. 201

और "एक श्रमिक जो आज भूमि ही खन सकता है,
कल सुयोग्य हो वही राष्ट्रपति बन सकता है।"[1]

"राजा-प्रजा" में गुप्तजी राज-सत्ता और प्रजा सत्ता के गुण-दोषों का निरूपण करते हैं। यद्यपि इसमें प्रजातंत्र के अनेक गुणों की चर्चा की गई है, तो भी कवि की आस्थाएँ राजत्व के ही चारों ओर चक्कर काटती दीखती है। "साकेत", "जयभारत" जैसे काव्यों में राजशासन के उच्च आदर्शों की जो प्रशंसा की गयी है, उसे इतिवृत्त के स्वाभाविक क्रम में स्वाभाविक माना जा सकता है। पर जब वे "राजा-प्रजा" में दोनों के तात्त्विक अन्तर का निषेध करते हैं तब कवि की बद्धमूल मानसिक संस्कृति ही प्रकट होती है ---

होगा क्या अब भी एक न जन रति-भाजन,
फिर कहो भले ही उसे न अब तुम राजन्।[2]

कहीं-कहीं गुप्तजी के शब्द प्रजातंत्र के विरुद्ध भी लगते हैं ---

राजतंत्र में पड़े कभी जीवन के लाले।
पड़े न कोई प्रजातंत्रवालों के पाले।[3]

इन पंक्तियों से यही प्रमाणित होता है कि अतीत कालीन संस्कृति का गौरवगान करते हुए गुप्तजी का मन परंपरा की शृंखलाओं से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सका है। उनकी व्यक्तिगत संचित संस्कृति जाति और राष्ट्र के पुनरुत्थान के आदर्शों से भी प्रबल रही है, और उन आदर्शों की सीमा निर्धारित करती

---

1. राजा-प्रजा- प्रथम सं- पृ. 26
2. पृ. 23
3. अजित -पृ. 36

रही है । "किसान" में कवि विदेशी शासन का विरोध करते हैं । अंग्रेज़ी शासन से पीड़ित भारतवासियों से कवि कहते हैं -" सावधान ! स्वदेश वासी, हाँ ! तुम्हारे देश में घूमते हैं दुष्ट दानव मानवों के वेश में ! यहाँ साम्राज्यवाद का विरोध करते हुए देशप्रेमी कवि प्रजातंत्र पर बल देते हैं । इस प्रकार कवि कहीं प्रजातंत्र का समर्थन करते हैं तो कहीं राजतंत्र का स्वागत करते हैं । याने दोनों की अच्छी पहलुओं से गुप्तजी प्रभावित रहे हैं ।

6, 5. 2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राजनैतिक स्वतंत्रता और स्वराज्य :-

वळ्ळत्तोळ् विदेशी शासन के परम विरोधी देशीय कवि हैं । गुप्तजी की तरह वे भी राष्ट्रीय पतन का मुख्य कारण हिन्दू जाति की आत्म-विस्मृति एवं मुसलमानी सल्तनत समझते हैं । तिलक आदि नेताओं द्वारा संचालित स्वतंत्रता संग्राम से कवि बहुत आकृष्ट थे । इसी लिए वे राजनैतिक स्वतंत्रता केलिए आवाज़ भी उठाते हैं ।

वळ्ळत्तोळ् प्रजातंत्र के पक्षपाती हैं । "माडवराज वैराग्यम्" में कवि प्रजा का अभीष्ट जानकर राज शासन करनेवाले राजा का चित्र प्रस्तुत करते हैं । यहाँ जब राजा अपने राज पद को छोड़कर, तपोवन जाना चाहते हैं तो प्रजा एकदम दुःखी हो जाती है । [1] यहाँ राजा सत्व गुण संपन्न एवं प्रजावत्सल हैं । प्रजातंत्र की स्थापना चाहनेवाले कवि अनीति पूर्वक राजशासन का पूर्णतः विरोध भी करते हैं । "वाट्टेलियुडे कत्तु" में कवि औरंगज़ेबी शासन का खुले रूप में विरोध एवं घृणा करते हैं । [2] यहाँ कवि शिवजी को सच्चे राजा के पद पर आसीन करते हैं । ठीक उसी प्रकार "गुरुदक्षिणा" में भी कवि शिवजी के सच्चे शासन की प्रशंसा करते हैं । शिवजी ने महाराष्ट्र से मुसलमानी दुष्ट शासकों को भगाकर वहाँ एक आदर्श राज की स्थापना की थी । इस ऐतिहासिक तथ्य

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म: -2- पृ. 25 2. सा:म: -5-पृ. 68

का वर्णन कवि भी करते हैं । [1] यहाँ व्यक्त होता है कि गाँधीवादी देश-भक्त कवि यहाँ प्रजातंत्र का स्वप्न देखनेवाले थे । कवि कहते हैं "शिवजी केलिए अपना तलवार महाराष्ट्र का तलवार था " । शिवजी की देश-भक्ति से कवि अत्यंत प्रभावित हुए हैं । "इन्नत्ते निघण्डुविल्" ॥आज के कोश में॥ में कवि ब्रिटिश शासन का विरोध, अनीति-पूर्व राज सत्ता का विरोध एवं प्रजाहित की ओर प्रकाश डालते हैं । भारत के प्रबल नेताओं ने जब विदेशी हाथों से भारत-माता को मुक्त कर दिया तब देशी राजाओं ने मुझे मुझे कहकर फिर से आवाज़ उठायी । [2] इसका कवि घोर विरोध करते हैं । जिन्होंने अथक प्रयत्न करके राष्ट्र को स्वतंत्र किया उनसे इन देशी नृपों को केवल घृणा है । तात्पर्य यह है कि वे प्रजापालक नहीं होकर राजपालक हैं । इन कृतघ्न देशवासियों की ओर कवि तीखा व्यंग्य करते हैं ---

> "अम्मरु कोय्मतन् कालृतलोडां तोषा,
> नम्मये प्पूजियुक्क पोरायुकयाणु पोल्" [3]

॥उस विदेशी शासकों का चरण स्पर्श करने और उनके आगे हाथ जोडने में वे हिचकते नहीं बल्कि माता की पूजा उनकेलिए असह्य है । ॥ यहाँ कवि विदेशी शासकों से ज़्यादा भारतीय कृतघ्न अशक्त राजाओं का विरोध करते हैं । ये सब स्वराज्य के प्रति प्रेम का स्पष्ट उदाहरण हैं । "इन्द्रनुं मावलियुम्" में भी कवि अन्यायी राज का विरोध करते हैं । भारत स्त्रीकळ् तन् भावशुद्धि" में कवि बादशाह हुमायूँ के आदर्श शासन की प्रशंसा करना भूलते नहीं हैं । [4] इसमें अपने मंत्री द्वारा हुई गलती केलिए आदर्श बादशाह एक साधारण कुलीन स्त्री से माफी माँगते हैं । बादशाह के शब्दों में ----

---

1. सा:म: -7- पृ. 35-40 2. सा:म: -8- पृ. 79
3. -वही- पृ. 80 4. -वही- 4- पृ. 91

"मैकै करयायृक: मालोकरकण्णीरे, द्
येंकोलि ताषियिलेयृक्कोषुक्कुम्" ।

(युवती रो नत, प्रजाओं के आँसू मेरी राज पद्वी को सागर में मिला देगी ।)
यहाँ कवि कितनी शक्ति से प्रजातंत्र पर बल देते हैं वह देखने लायक हैं । कवि कहीं भी कभी भी एक अन्यायी अत्याचारी शासन को देखना नहीं चाहते हैं । यह उनके देश प्रेम की चरम सीमा है ।

## 6.6. राष्ट्रीय एकता और अखण्ड भारत :-

स्वतंत्र भारत के स्वप्न देखनेवाले गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् देश की राजनैतिक स्वतंत्रता मात्र के अभिलाषी नहीं थे । आर्थिक और व्यावसायिक पराधीनता से भी बढ़कर बौद्धिक और मानसिक पराधीनता ने जनता की रचनात्मक शक्ति को भी नष्ट कर दिया था । अत: राष्ट्र की वास्तविक स्वतंत्रता के अभिलाषी आलोच्य दोनों कवियों की मनोदृष्टि के सामने स्वतंत्रता का जो रूप था, वह अत्यंत विशाल एवं बहुमुखी था । "स्वतंत्रता" शब्द में विदेशी शासन से मुक्ति के अतिरिक्त साम्प्रदायिकता तथा आर्थिक असंतुलन से मुक्ति भी समाहित है । किसी देश की जनता के स्वतंत्र अस्तित्व को सार्थक बनाकर उसे एक राष्ट्र के रूप में सुसंगठित बनानेवाली वस्तु उसकी आंतरिक एकता है । कविद्वय भारतीय संस्कृति की मूलभूत एकता को प्रकट करके अनेक धार्मिक एवं सामाजिक कारणों से उत्पन्न भिन्नता की निरर्थकता को स्पष्ट दिखाते हैं और उस एकता को अधिक दृढ़ बनाने की प्रेरणा देते हैं ।

---

1. सा: म. 4-2-91

6. 6. 1. गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीय एकता और अखण्ड भारत का चित्रण :-

गुप्तजी अनेक स्थानों पर भारत का "आर्यभूमि" के और उसकी जनता को "आर्य" नाम से उल्लेख करते हैं । इन नामों से वे किसी वर्ग विशेष की ओर संकेत नहीं करते संपूर्ण भारत एवं भारतीय जनता का ही परामर्श करते हैं । यद्यपि कवि हिन्दू धर्म पर विशेष आस्था रखते हैं , तो भी जहाँ भारतीय राष्ट्रीयता का प्रश्न आता है, वहाँ धर्म पर आधारित भिन्नता को निरर्थक मानते हैं । सभी धर्मों तथा संप्रदायों के लोगों में वे हिन्दू रक्त का अस्तित्व मानते हैं ---

वैष्णव, शैव, शाक्त, सिख जैन, हो कि न हो या कुछ हो ऐन,
पर तुम में है हिन्दू-रक्त , हो इस पुण्य भूमि के भक्त । [1]

इसकी विस्तृत चर्चा मानवतावाद में हो चुका है । राष्ट्रकवि के रूप में गुप्तजी की विशेष महत्ता इस बात में है कि वे भारत को एक मानते हैं और एक मानने की सबल प्रेरणा देते हैं । भाषा, प्रदेश या प्रान्त की सीमाओं के वे परे थे । देश भर की जनता को एक सूत्र में बाँधना तत्कालीन युग की मांग थी । कवि इस बात को समझकर प्रान्तीय सीमाओं को लाँघते हुए एक दूसरे के सुख दुःखों में भागी होने का आदर्श हमारे सामने रखते हैं ---

"वही पंचनद राजस्थान, प्राप्त जिन्हें है गौरव मान
वही बिहार, उडिया, वंग , हैं अक्षय भारत के अंग
युद्ध, मध्य पांचाल, पुलिंद, चेदि, कच्छ, काश्मीर, कुलिन्द,
द्रविड़, मद्र, मालव, कर्णाअ, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, विराट,..../-

---

1. "हिन्दू" - पृ. 57

कामरूप, किंवा आसाम, सातों पुरियों चारे, धाम,
अटक-कटक तक एक अभंग दुःख में सुख में सब हैं संग ।[1]

इस प्रकार कवि सभी विघटक शक्तियों का विरोध करके एक सर्वतंत्र स्वतंत्र राष्ट्र की कल्पना से ओतप्रोत विचारों से जनता को चेतनायुक्त और सजीव बनाए रखने का सच्चा प्रयास करते रहे । इसी सिलसिले में कवि ने पराधीन भारत में बहुत पहले कहा था कि भारतीय मेरे बान्धव हैं और सारा देश मेरा घर है ।[2] किसी भी देश में, वर्गों संप्रदायों आदि की आपसी आग देश को ही जला देती है । अतः कवि के विचार में यह आवश्यक है कि आपस की यह आग जलने से पहले ही बुझ जाय ।[3] एक राज्य के अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बाँटे जाने से राज्य दुर्बल हो जाता है । "साकेत" में कवि इसके दुष्परिणामों को प्रकाश में लाते हैं ।[4] इस प्रकार के राष्ट्रीय पतन को देखकर भी कवि निराश नहीं होते हैं । जिनका अतीत आज भी ललकार कर स्फूर्ति दे रहा हो, उन्हें निराश होने की क्या आवश्यकता है ? आखिर यहाँ क्या नहीं । आवश्यकता है लेने की और आँखें खोलने की । "हिन्दू" में कवि इस प्रकार उद्बोधन देते हैं ।[5]

भारत की साधारण जनता को इस प्रकार राष्ट्र की समसामयिक समस्याओं के बारे में अवगत कराके, कवि उन्हें राष्ट्रोन्नति केलिए आवश्यक कार्य करने का आह्वान देते हैं ।

---

1. "हिन्दू" - पृ. 46
2. "किसान" - पृ. 53
3. इन्द्रप्रस्थ - "जयभारत" - पृ. 119
4. "साकेत" - प्र:स:-पृ. 17

6.6.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय एकता एवं अखण्ड भारत का चित्रण :-

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी भारत को "आर्य भूमि" और उसकी जनता को आर्य कहते हैं । लेकिन वह किसी जाति विशेष का न होकर समस्त भारत-वासियों की ओर संकेत है । वळ्ळत्तोळ् केलिए सभी धर्म और सभी जाति के लोग भारत माता के पुत्र हैं, और वे विश्वास करते हैं कि सारी भारतीय जनता की नसों में अपने प्रतापी पूर्वजों के लहू की उपस्थिति भी मानते हैं । वळ्ळत्तोळ् वर्ण-व्यवस्था में भी विश्वास नहीं रखते थे । उनकेलिए मानवता का एक वर्ण मात्र है । "परस्परं सहायिप्पिन्" में कवि अखण्ड भारत की कल्पना करते हैं --

"अद्वैतं मानल्लो नम्मळ्क्कम्मि प्पाल् पिरवि तो-
ट्टद्वेषर् ना, मभेदर् ना, मनहंत्तर् नाम्!
एकतयिलून्निनिन्नु कैकळोन्नाय् चेर्त्तुपिडि-
च्चा कुष्ठियिल् निन्नुयर्त्तुक, स्मद्राज्यत्ते" [1]

{अद्वैत ही हमारे लिए माता का दूध है, जन्म से लेकर हम विद्वेषहीन, भेद-भाव रहित, एवं अहंभाव रहित मनुष्य हैं । अब हमें एकता में विश्वास करके, हाथ में हाथ मिलाकर, परतंत्रता के गर्त से हमारे देश को मुक्त करना है । } यहाँ कवि राष्ट्रीय एकता की ओर प्रयत्नशील दिखाई पडते हैं ।

वळ्ळत्तोळ् गाँधीजी की तरह विशाल राष्ट्रीय बोध के आदमी हैं । "पापमोचनम्" में कवि कहते हैं "- हे भारत माते, तुम इस कर्मयोगी गाँधीजी के पसीने रूपी पुण्य तीर्थ से मानव की आपसी लडाई के पाप को धोकर, पाप मुक्त हो जाओ । [2] यहाँ भी कवि का उद्देश्य जनता की एकता से राष्ट्रीय ऐक्य मात्र है । "वैशसं पोरुं पोरुम्" में भी इस बात का उल्लेख हुआ है । [3]

---

1. सा:म: -5- पृ. 110
2. सा:म:-6- पृ. 14
3. सा:म:-6-पृ. 19

मानवता पर विश्वास करनेवाले गाँधीवादी वळ्ळत्तोळ् "पारवश्यम्" में स्वामी श्रद्धानन्द की अपमृत्यु पर अतीव दुःखी होकर कहते हैं कि श्रद्धानन्द हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और सभी जाति के लोगों की एकता केलिए प्रयत्नशील रहे हैं । लेकिन हमने उन्हें उसी जाति के ही नाम पर मार डाला है ।[1] यहाँ कवि एकता के विरुद्ध काम करनेवाली सभी शक्तियों का विरोध करते हैं ।

इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् राष्ट्रीय एकता केलिए जातीय एकता को अनिवार्य मानते हैं क्योंकि इस प्रकार की राष्ट्रीय एकता से ही एक अखण्ड एवं सुन्दर भारत की स्थापना हो सकती है । यही महाकवि का विश्वास है । भारत की सातवाँ स्वतंत्रता दिवस के बारे में लिखी गई कविता है "एकुवयस्स्" में कवि व्यक्त करते हैं ---

"इन्नु मुप्पत्तारु कोडि मनुष्यरु मोन्नाणो, रे तरवाट्टुकारायुन्ना"
इन्नाल, नाळेयुं निच्चलुं निल्केणमेन्नल्लो घोल्लुन्नु, थामाट्टूर्यारवम्[2]

(आज हम सब 36 करोड मानव एक ही है, एक ही परिवार के सदस्य हैं । यही एकता आज, कल और सदैव बनी रहे, यही इस वाद्यघोष का संदेश है । )

यहाँ कवि राज्य की सीमाओं से पूर्ण रूप से बाहर आकर मानवता पर विश्वास करते हैं । "बाप्पूजी" में भी कवि गाँधीजी के निधन के बारे में व्यथा प्रकट करते हैं । भारत की एकता को बनाए रखने का उद्बोधन देते हैं ।[3]

---

1. सा:म:-7- पृ. 98
2. सा:म:-11- पृ. 95
3. "बाप्पूजी"- पृ. 22, 57

"इन्द्ययुडे करच्चिल्" में कवि प्रस्तुत बात का प्रतिपादन करके राष्ट्रीय एकता द्वारा एक अखण्ड भारत की स्थापना की आशा करते हैं ।[1]

## 6.7. राष्ट्र का नव निर्माण :-

राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्ति मात्र से जन-जीवन कल्याणमय नहीं हो सकता, विशेषकर जिसे देश के समाज को सैकडों वर्ष की आंतरिक शिथिलता तथा विदेशी शासन ने मिलकर, अकर्मण्य, निष्क्रिय, प्रज्ञाशून्य और अंत:शक्ति रहित बना दिया । जाति-पाँति पदवी आदि पर आधारित भेद-भाव को नष्ट करना सामाजिक संगठन और पुनर्निर्माण केलिए प्रथम आवश्यक है । देश की सांस्कृतिक परंपरा के मूल तत्वों को सुरक्षित रखते हुए और उस परंपरा के अनुकूल, परंपरा का अंधानुकरण किए बिना नव-निर्माण करना भी अत्यंत आवश्यक है । बाह्य परिवर्तन के पहले मानसिक वातावरण सज्जित करना भी अनिवार्य है । गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् इस सत्य से अभिज्ञ थे और देश के भविष्य को दृष्टि में रखकर नवनिर्माण की प्रेरणा देते थे । परंपरा का पूर्ण परित्याग किए बिना, विश्वजीवन के साथ यथायोग्य परिवर्तित होते हुए जीवन को सक्रिय और जीवंत रखना ही दोनों को अभीष्ट है । राष्ट्र के नव-निर्माण के सिलसिले में दोनों कवि प्राचीनता की नींव पर नवीनता की प्रतिष्ठा, शिक्षा, आर्थिक-स्थिति, कृषक जीवन आदि में सुधार की चर्चा करते हैं ।

## 7.1. गुप्तजी के काव्य में प्राचीनता की नींव पर नवीनता की प्रतिष्ठा :-

गुप्तजी भारतीय संस्कृति के उत्तम अंशों को सुरक्षित रखते हुए, ज्ञान क्षेत्र में अन्य देशों की सिद्धियों को भी स्वायत्त करना चाहते हैं । भारतीय सभ्यता की आध्यात्मिक साधनाओं पर उन्हें गर्व हैं , पर पाश्चात्य जगत ने जो भौतिक

---

1. "इन्द्ययुडे करच्चिल्"- पृ. 15

उन्नति प्राप्त की है उसकी वे अवहेलना नहीं करते । वे चाहते हैं --

"उसकी सी साधना रहे, अपनी आराधना रहे ।
उनका अथक परिश्रम हो, पर उनमें अपना क्रम हो ।
उनकी ऐसी कृति रखो, अपनी किन्तु प्रकृति रखो ।
उनका-सा आवेश रहे, पर अपना उद्देश्य रहे ।
उनका-प्रेम, श्रेय अपना, उनका गेय, ध्येय अपना ।
उनकी भी प्रगति, अपनी, उनकी उन्नति, मति अपनी ।
उनकी प्रस्तावना पगे, पर अपनी भावना जगे ।
उनका-सा उद्योग करो, किन्तु भोग में योग करो ।[1]

समाज निर्माण और सांस्कृतिक विकास के सम्बन्ध में प्राचीनता के साथ नवीनता का समुचित समन्वय करने का यह आग्रह गुप्तजी के दृष्टिकोण की एक विशेषता है।

6.7.2. वल्लत्तोळ् के काव्य में प्राचीनता की नींव पर नवीनता की प्रतिष्ठा :-

प्राचीनता के प्रति आस्थावान कवि, आधुनिक भारत में भी प्राचीनता प्रौढ़-गंभीर तत्वों की स्थापना के पक्ष-पाती है । वे चाहते हैं कि विश्वभर में जो नई--नई प्रगति होती है, उसी तरह हमारे भारत में भी हो, लेकिन वे सब अपने सांस्कृतिक मूल्यों के बनाए रखते हुए होनी चाहिए । "पण्डत्ते पाट्टुकळ्" (पुराने गीत) में कवि आशा करते हैं --

"नूतन नूतन संस्कारमोरोन्नु नालुतोरुम् उण्डाय् वरट्टे नाट्टिटल्" [2]

---

1. "वैतालिक" - पृ. 28-29
2. सा:म: -6- पृ. 78

(राज्य में हर रोज़ नए नए सांस्कृतिक परिवर्तनों का उदय हो ( यह परिवर्तन हमें नवीनता की ओर ले जानेवाले एवं प्राचीनता के मूल्यों पर टिकानेवाले अवश्य हों । )

"छान्दि वसनङ्.डळ् कैक्कोल्लुपिनेवरुम्" में कहा गया है कि भूतकालीन गौरव पर ही भावि की प्रतिष्ठा होनी चाहिए ।

"भूतकालत्तिन् प्रभावतन्तुक्कळाल् भूतिमत्तानोरु भाविये नेय्कनां
वासरान्तत्तिन् कतिर्कळिल् निन्नल्ली भासुरनाकुमुषस्सिन्टे-
युद्भवम् [1]

(भूतकाल के महत्व के कणों से हमें एक ऐश्वर्यपूर्ण भविष्य का निर्माण करना है । संध्या के अंतिम किरणों से ही सुन्दर प्रभात रश्मियों का उदय होता है । ) यहाँ कवि की प्राचीन सभ्यता के प्रति आस्था की अच्छी झलक मिलती है । ऐसा होते हुए भी वळ्ळत्तोळ् कभी भी प्राचीनता का अंधानुकरण नहीं करते और प्राचीनता के अप्रासंगिक अंशों से वे दूर भी रहते हैं । प्राचीनता की नींव पर नवीन संस्कृति एवं राष्ट्र का नव-निर्माण भी उन्होंने इस अभीष्ट है ।

6, 7. 3. <u>गुप्तजी के काव्य में शिक्षा का विकास :-</u>

विद्या मनुष्य केलिए मूल्यवान संपत्ति है और उसके अभाव में व्यक्ति और समाज अपने दायित्वों की पूर्ति समुचित रूप में कर नहीं पाते । अशिक्षित जनता न अपनी दुर्दशा के वास्तविक रूप को समझती है न जीवन को सुधारने का प्रयत्न करती है । अतः गुप्तजी शिक्षा का सुधार देश का प्रथम कर्तव्य मानते हैं । [2] कवि आगे कहते हैं कि जब तक इन शिक्षा का प्रचार-प्रसार नहीं करेंगे तब तक ज्ञान का क्षेत्र हमारे लिए अज्ञात ही रहेगा । संसार में अब वे ही देश उन्नत हैं जो शिक्षा को प्रधानता देते हैं । देश व्यापक शिक्षा प्रसार की

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:स:-7- पृ.46  2. "भारत-भारती"- भ:ख: पृ. 106

आवश्यकता और उस शिक्षा के स्वरूप के संबन्ध में भी कवि जनता को बोध कराते हैं । "जय-भारत" में एकलव्य द्वारा द्रोणाचार्य से यही कहलाया है कि विद्या सबके लिए हैं उसका दाम सीमित नहीं किया जा सकता -

"वेदों के वक्ता जो भी हो, विद्या सबके अर्थ
रख सकता है बान्धकला को, निज तक कौन समर्थ । [1]

यहाँ कवि शिक्षा को जाति, वर्ग और पदवी के परे मानते हैं । "भारत-भारती" में कवि देश की उन्नति केलिए नारी शिक्षा पर भी बल देते हैं । इसका विस्तृत अध्ययन पंचम अध्याय में हुआ है ।

6.7.4. <u>वळ्ळत्तोळ् के काव्य में शिक्षा का विकास :-</u>

समाज के सभी स्तरों के पतन का कारण , वळ्ळत्तोळ् शिक्षा की अपर्याप्तता ही मानते हैं । इसलिए कवि देश-भर में, शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना हमारा कर्तव्य मानते हैं । कवि प्राचीन शिक्षा प्रणाली में विश्वास रखनेवाले हैं । "गुरुनाथन्टे मुन्पिल्" नामक "विषुक्कणि" संग्रह की कविता में कवि इसका समर्थन करते हैं । यहाँ एक पिता अपने पुत्र को गुरु के पास ले जाकर उनसे कहते हैं --

"मेरे पुत्र के भविष्य को उज्ज्वल बनाइए" । इस प्रकार बच्चे को गुरु के हाथों में सौंपते देखकर कवि कहते हैं ---

"ओरु पनिनीर् मोट्टिटता, कात्तुनिल्पू
विरिच्चुवान् विद्याप्रसादोदयत्ते -
-"अते, विद्याभ्यास"- मतोन्नि चोन्नपो-
लि, "लिङ्ङ् डि.येन विवर्धितनेल्लाम् [2]

---

1. "जयभारत"- एकलव्य- पृ. 44
2. "विषुक्कणि" पृ. 34

॥यहाँ एक गुलाब की कली विद्याजन्य संस्कार के प्रभातकाल में प्रफुल्लित होने की प्रतीक्षा में है, वही विद्या"जो मसीनी [1] ने कहा था - इसमें मेरे मन की सभी बातें अंतर्निहित हैं । ॥ आगे कवि कहते हैं कि शिक्षा और ज्ञान अज्ञता रूपी अंधकार को हटाने का प्रकाश स्त्रोत है । हमें परतंत्रता रूपी जंजीरों को कोमल धागे की तरह तोड़कर फेंकना है तो शिक्षा की अनिवार्यता है । गुरु के दार्शनिक अध्यापन से हमारे मन को द्वैतबुद्धि एकाएक दूर होकर हमारे मन में समष्टि चिन्तन की स्थिर प्रतिष्ठा होगी । यही पौराणिक विधा-रीति से कवि का तात्पर्य है । इस प्रकार के चिंतन से ही राष्ट्रोन्नति हो सकती है । प्राचीन विद्या पद्धति से, प्राचीन विषयों जो सनातन गाथाओं वेद, उपनिषद् आदि से भी हम परिचित हो सकते हैं । [2] इस प्रकार के श्रेष्ठ ज्ञान से हम संसार के सभी लोगों को फिर से भारतीय गौरव का पाठ भी पढा सकते हैं । इससे भारत की कला, संगीत, साहित्य आदि की भी उन्नति हो सकती है । "युव विद्यार्थिकळोड्" में भी कवि सभी के शिक्षित होने की आवश्यकता की ओर इशारा करते हैं । हमारे चारों ओर अंधेरे में रहनेवाली अनेक झोंपडियाँ हैं । उन झोंपडियों को प्रकाश पूरित बनाने केलिए, तुम लोग अपनी विद्या-बुद्धि का इस्तेमाल करो । [3] एक शिक्षित समाज की सृष्टि से ही वे एकता में अधिष्ठित राष्ट्र का निर्माण करने चाहते हैं ।

## 6.8. आर्थिक क्षेत्र में गाँधीजी :-

गाँधीजी का आर्थिक सुधार एकदम विलक्षण तथा नवीन है । उनके अनुसार आर्थिक स्वाधीनता का अर्थ है हर एक केलिए आवश्यक वस्त्र, और दूध मक्खन

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. मसीनी- इटली का एक प्रसिद्ध दार्शनिक
2. विषुक्कणि - पृ.38
3. " - पृ 65

रहित पर्याप्त खाद्य ।[1] उनका मत है कि भारतवर्ष से धनी-गरीबों की अत्यधिक दूरी का कम होना आवश्यक है ।[2] इस उद्देश्य से उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में चर्खा, खादी और घरेलू उद्योग धंधों को काम दिया । डा. घोष ने बताया है - "उनकी आर्थिक नीति के कार्यक्रम के दो केन्द्र-बिन्दु थे, चर्खे से सूत कातना और खादी पहनना ।[3] गाँधीजी कहते थे कि विदेशी कपडा देश की अर्थ नीति की हानि का द्योतक है ।

गाँधीजी धन-संपत्ति को जमाकर रखने अथवा अपने आप उसे भोगने के विपक्ष में थे । वे देशीय जनता केलिए उसका उपयोग करना चाहते थे ।[4] उन्होंने संपत्ति एवं यंत्रों का विरोध नहीं किया । लेकिन वे पूँजीवाद के विरोध थे । पूँजीवादी समाज को एक सार्वजनिक समाज के रूप में बदल देने का उन्होंने निश्चय किया और "ट्रस्टीशिप", "सर्वोदय", "ग्रामीण धंधों का प्रचार" आदि की स्थापना की । इस प्रकार गाँधीजी ने भारत की आर्थिक स्थिति को नये मोड देने के पक्ष में सृजनात्मक कार्य किया है ।

गाँधीजी की आर्थिक-नीति से सहमत दोनों कवि, मानव की आर्थिक स्वतंत्रता के पक्ष में कार्य करते रहे । दोनों कवि, कृषक जीवन सुधार, पूँजीवाद का विरोध, खादी का प्रचलन, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि बातों पर बल देते रहे ।

## 6.8.1. गुप्तजी के काव्य में आर्थिक सुधार :-

सुधारवादी आन्दोलनों के फलस्वरूप राजनैतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में परिवर्तन आने लगी । तदनुसार आर्थिक क्षेत्र में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक था । प्राचीन संपन्न भारत की महिमा एवं वर्तमान अवस्था को दिखाकर गुप्तजी आर्थिक स्थिति में सुधार लाने का प्रयास करते हैं । आर्थिक विकास एवं अर्थ का

---

1.2, "महात्मा गाँधी"- पृ. 193/165.

3. पृ. 14

4. "महात्मागाँधी- 100 साल"- पृ. 60

संतुलित वितरण प्रत्येक राज्य के जीवन में विशेष महत्व रखता है । भारत की तत्कालीन आर्थिक स्थिति में सुधार लाने केलिए कवि वैश्य जाति से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने कार्य में लगे रहें । [1] आर्थिक सुधार के अंग के रूप में कवि औद्योगिक विकास की भी महत्वाकांक्षा रखते हैं । कवि कामना करते हैं ----

"विद्या, कला, कौशल्य में सबका अटल अनुराग हो ,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य अध का त्याग हो ।

और "आत्मावलंबन ही हमारी मनुजता का कर्म हो" । कवि ईश्वर से प्रार्थना करते हैं -" यह पापपूर्ण परावलंबन चूर्ण होकर दूर हो" । यों सब वास्तव में प्रायोगिक क्षेत्र से दूर हैं । औद्योगिक विकास के बारे में कवि दृढ़ता से किसी बात की चर्चा नहीं करते हैं । आर्थिक सुधार के सिलसिले में गुप्तजी ऋण-नीति का विरोध करते हैं । [2] "हिन्दू" में व्यक्त गुप्तजी के ये विचार युग सत्य को ही नहीं चिरंतन सत्य को व्यक्त करते हैं । राष्ट्र की अर्थ नीति के संदर्भ में भी यह बात उतनी ही सत्य है जितनी कि व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ में । [3]

## 6.8.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में आर्थिक सुधार :-

राष्ट्र की उन्नति एवं अस्तित्व केलिए जनता की आर्थिक स्थिति संतुलित होने की आवश्यकता पर वळ्ळत्तोळ् भी बल देते हैं । राज्य की आर्थिक स्थिति में , सुधार लाने केलिए कवि, कृषि, पशुपालन, वाणिज्य आदि की प्रतिष्ठा पर बल देते हैं । [4] चूषण मुक्त एवं नीतियुक्त समाज के निर्माण केलिए कवि ग्रामीण धंधों को प्रोत्साहन देते हैं । आर्थिक संभावना का साक्षात्कार का एक मार्ग परस्पर प्रेम भी है । "खादि वसनड्.ड.ळ् कैक्कोळ्ळुविनेवरुम्" में कवि इसका समर्थन करते हैं । [5]

---

1. "भारत-भारती--"पृ. 80
2. "हिन्दू"- पृ. 276
3. प्रेमचन्द विजय वर्गीय-"आधुनिक हिन्दी कवियों का सामाजिक दर्शन"-पृ. 336
4. सा:म:7-पृ. 19
5. सा:म:-7-पृ. 43

आर्थिक असमत्व को दूर करने केलिए कवि कृषक जीवन की समस्याओं को दूर करके उन्हें सुधारने चाहते हैं , साथ ही साथ वे पूँजीवाद का घोर विरोध भी करते हैं ।

## 6.9. पूँजीवाद का विरोध एवं कृषक जीवन सुधार:-

भारतीय समाज में आर्थिक शोषण के कारण उच्च-नीच की भावना प्रस्फुटित हुई । समाज में शोषित एवं शोषक वर्ग की अधिकता हुई । ऐसी स्थिति में आर्थिक सुधार केलिए किसानों की स्थिति में परिवर्तन की आवश्यकता अनिवार्य हो गई । अब पुँजीवाद का विरोध एवं कृषकों के उत्थान की दिशा में सामाजिक एवं साहित्यिक कार्य शुरू हुए । साहित्य के क्षेत्र में गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् ने इस क्षेत्र में परिवर्तन लाने का प्रयास किया । दोनों ने अपने काव्यों में पूँजीवाद का विरोध करके कृषकों एवं श्रमिकों की आर्थिक अवनति को सुधारने का मानवतावादी कार्य किया है ।

### 6.9.1. गुप्तजी के काव्य में पूँजीवाद का विरोध एवं कृषक जीवन सुधार:-

पूँजीवाद के विरोधी कवि ने "जयिनी" में मार्क्स से कहलाया है कि पूँजीपति का धन लूट का माल है क्योंकि वह श्रमिकों को ठग कर इकट्ठा किया गया है । कमाता श्रम जीवित है किन्तु खाता पूँजीपति है । अन्न उपजाने वाले को अन्न नहीं केवल भूसा मिलता है । ये पूँजीपति ही महाजन बनकर धराधिकारी और इस संसार के शासक बनकर, गरीबों को चूसते हैं और माँस रक्त पीकर उनकी हड्डियों तक को चूस लेते हैं ।[1] मानवतावादी कवि समझते हैं कि पूँजीवाद के प्रसार का कारण पैतृक रूप से प्राप्त धन होता है । इसीलिए गुप्तजी के मार्क्स

---

1. "पृथ्वी-पुत्र-जयिनी- पृ. 40-41

पैतृक संपत्ति के अधिकार का विरोध करते हैं । [1] किसानों की दलित, पीडित अवस्था पर सहानुभूति प्रकट करते हुए कवि कहते हैं -" दास प्रथा नित्य नया जन्म-सा यहाँ ले रहीं " । इससे अतृप्त कवि, विद्रोह की भावना प्रकट करते हैं ---

"जाता हूँ उठाने उन्हें - बुद्धि का वरण हो
जागो, श्रम जीवि जन, संघ के शरण हो । [2]

श्रमिक किसानों को संबोधित करते हुए कवि कहते हैं -"पानी बनाकर रक्त का कृषि, कृषक करते हैं यहाँ ।" "किसान" में कवि सूचना देते हैं कि जीवन की हीनता दर्शाकर कवि उसे युद्ध में बलिदान होते चित्रित करते हैं । [3] उनकी स्वतंत्र रचना कृषक-कथा में लिखा गया है -" पाया हमने प्रभो कौन सा त्रास नहीं है । क्या अब भी पूर्ण हमारा ह्रास नहीं है " [4] मानवतावादी कवि सदैव दलित एवं शोषितों के उन्नायक रहे हैं । "किसानी" काव्य में समकालीन किसानों के दुःख दैन्य का अत्यंत मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है । [5]

"भारत-भारती" में भी कवि कृषि के ह्रास का कारण चित्रित करते हैं । उनके अनुसार निर्यात तथा कर-वृद्धि ही इसके प्रमुख कारण हैं यथा---

"अब पूर्व की सी अन्न की होती नहीं उत्पत्ति है,
पर क्या इसी से अब हमारी घट रही है संपत्ति है ?
यदि अन्य देशों को यहाँ से अन्न जाना बन्द हो-
तो देश फिर संपन्न, क्रन्दन रुके आनन्द हो । [6]

---

1, "पृथ्वी पुत्र"- जयिनी-पृ. 44-45
2. -वही- पृ. 45
3. "किसान"- पृ. 52
4. "सरस्वती"-जुलाई-1925- पृ. 15
5. "किसान"- पृ. 6
6. "भारत-भारती"- पृ. 77

भारत में किसानों का जीवन पशु जीवन से भी अधम है । यहाँ उनका अपना वश नहीं चलता, यहाँ तो शिला शीश पर ला दे आजीवन हाँफना होता है । सेवा करते करते सेवक को ऐसी मनस्थिति या ऐसा संस्कार हो जाता है कि सेवक या भृत्य स्वामी के सम्मुख सदैव अपने आपको अपराधी ही समझने लगता है, क्योंकि उसके मन-मस्तिष्क में यह बात धरकर जाती है कि अंत: स्वामी स्वामी है और सेवक सेवक ।[1] यहाँ कवि किसानों से अपने आप में आत्माभिमान को धारण करने की ओर इशारा करते हैं । आत्माभिमान को धारण करने की ओर इशारा करते हैं । आत्माभिमान वाले ही स्वतंत्र एवं मानव-प्रेमी बन सकते हैं । समाज वासियों को कवि चेतावनी देते हैं कि कृषकों एवं कृषि की समृद्धि से ही राष्ट्र धन-धान्य और संपत्ति से धन्य हो सकता है । इसकेलिए परम आवश्यक है कृषकों एवं श्रमिकों का उद्धार ।

यहाँ मानवतावादी कवि पूँजीवादी शोषकों का विरोध करके शोषितों के सुख एवं समृद्धि की ओर प्रकाश डालते हैं । फिर भी कवि एक समत्व सुन्दर समाज की कामना करनेवाले हैं ।

### 6.9.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में पूँजीवाद का विरोध एवं कृषक जीवन :-

गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी शोषण एवं पूँजीवाद के खिलाफ हैं । "तिरूर पोन्नानिप्पुषा" में पूँजीवाद का विरोध करते हुए कवि कहते हैं - किसान और मज़दूर लोग अपनी भूख मिटाने केलिए खून पसीना एक करके काम करते हैं , लेकिन उसका फल केवल पूँजीपति को ही मिलता है, क्या यही मानव मैत्रि है ।[2] जब सुखों का अमृतपान करके पूँजीपति अपने दिव्य महल में आराम करते हैं तब उसकेलिए स्वर्ग का निर्माण करनेवाले, भूख के कारण जहाँ वहाँ गिर

---

1. "साकेत"- द्वितीय सर्ग- पृ. 36
2. सा:म:-3- पृ. 43

कर मर जाते हैं । [1] यहाँ अंग्रेज़ी शासन के ही कारण पूँजीवाद का उदय हुआ है । इसके मूल में भारतियों के अनैक्य एवं आपसी विरोध ही काम करता है । यहाँ मानवतावादी कवि, एक होकर पूँजीवाद से लडते हुआ उसका अंत करने की ओर इशारा करते हैं ।

"मून्नुकूट्टम्" [तीन बातें] में कवि दलित किसानों और मज़दूरों का वक्ता बनकर पूँजीवादियों से कहते हैं यह दलित, काम करने में ज़रा भी हिचकते नहीं, उनकी प्राण रक्षा केलिए रोज़ी रोटी के पैसे और सोने केलिए कुछ जगह देने का तुम लोग कष्ट क्यों नहीं करते । ये लोग कभी भी अत्याग्रही नहीं है । [2] यदि तुम लोग ऐसा नहीं करोगे तो , वे उनके हक पर लड़ने केलिए मज़बूर हो जाएँगे । पूँजीपतियों को चेतावनी देते हुए मानवतावादी कवि घोषणा करते हैं --

"कोडुक्कायृकिल् बलाल्क्कोडुप्पियृक्कुमिवर्
कोडुत्तालो निङ्ङळ्क्कुदारत काट्टाम्
अडिमकळाणि तोट्टिल्कारेन्नतिन्
कडपुषड्. डिप्पोयृ, पुतुक्कोडुंकाट्टिल् [3]

[नहीं दोगे तो वे बलपूर्वक छीन लेंगे , अगर दोगे तो तुम्हारेलिए उदारता दिखाएँगे । उनको गुलाम मत समझो । उनकी शक्ति रूपी तूफान में ऐसे विचार जड़ से निकाल दिए गए हैं । ]

कवि कृषकों और मज़दूरों को शिक्षित करके स्वावलंबी बनाने का प्रयास करते हैं । वळ्ळत्तोळ् अपने अनेक काव्यों में कृषकों और श्रमिकों के जीवन एवं समाज में उनके स्थान के बारे में वर्णन करते हैं । "मातृभूमियोड्" में कृषक जनता को भारत-रक्षक कहा गया है । [4] "काल्काण्डकर्षकन्" में उन कृषकों का जो गर्मियों में बारिश

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-5-पृ. 96-97
2. सा:म:-11-पृ. 50
3. सा:म:-1-पृ. 45
4. सा:म:-1-पृ. 45

की प्रतीक्षा में रहते हैं, वर्णन हुआ है । [1] इससे व्यक्त होता है कि दूसरों को खिलाने के अन्न पैदा करने में वे सदैव जागरूक रहते हैं , फिर भी उनका समाज में कोई स्थान नहीं है । इस दु:स्थिति को हटाने के कार्य में वळ्ळत्तोळ् लगे हुए हैं । "कृषिक्कारस्टे जीवितम्" में कहा गया है "जिसका अनुग्रह साम्राज्य श्री को राजदण्ड ऊँचा करने और सन्यासी जीवन को योग दण्ड उठाने तथा वाणिज्य लक्ष्मी को चाँदी सोने की मुद्राओं को अलग करके गिनने केलिए भुज-बल प्रदान करता है उनको मेरा प्रणाम " । [2] समाजवाद से भी ऊपर उठकर मानवतावादी कवि, राष्ट्र की समृद्धि केलिए कृषकों का उद्धार करने की आवश्यकता पर बल देते हैं ।

"मरिमायम्" {जादू} "एन्टे प्रयागस्नानम्", "नित्य कन्यका" आदि कविताओं में भी कवि कृषक जीवन से संबन्धित प्रस्तुत बातों को दुहराते हैं । [3] "प्रयाग स्नान", सन् 1928 के कांग्रेस अधिवेशन के बारे में लिखी गई है । यहाँ साधारण बात यह हुई कि अधिवेशन में हजारों की तादाद में कृषक-जन सम्मिलित हुए। यह असुलभ दृश्य देखकर कवि उसे असली प्रयाग स्नान समझते हैं । इससे व्यक्त होता है कि कवि कृषकों के बारे में कितने चिंतित हैं । "मेल्पोट्टु - नोक्कट्टे" {ऊपर देखने दो} में भी कृषक जीवन का चित्रण हुआ है । "वेल्लूताका" में कहा गया है कि कृषकों का वर्ग-बोध एवं वर्ग-प्रेम सार्वलौकिक उनका काम रेगिस्तान को भी समृद्ध कृषि भूमि बनाना है । भारतीय संस्कृति के अस्तित्व केलिए भी कृषकों का पुनरुत्थान अनिवार्य है । उनको कर्म कुशल और संसार की रीढ़ समझकर कवि उनको बधाई देते हैं । [4] कृषकों को उच्च स्थान देते हुए कवि प्रस्ताव करते हैं ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-3- पृ. 23-29
2. सा:म:-6-पृ. 67
3. सा:म:-8-पृ. 31,40
4. सा:म:-11- पृ. 71

"गवेषकरस्ते तलयु, माद्यरतन् द्रविणभाण्डवुं तोषिलाळतन् कैयुम्,
इव मून्नुमोन्निच्चिणङ्.डि. निन्नाले प्रवृत्तिक्कुल्लू, जगन्महायंत्रम्" ।

§जगत् रूपी महायंत्र को चलाने केलिए शोधकर्ताओं की बुद्धिशक्ति, अमीरों का धन एवं कृषकों का बाहुबल, इन तीनों के शुभ-मिलन की आवश्यकता है । §

इस प्रकार पूँजीवाद का विरोध, कृषकों की दैन्य स्थिति, मज़दूरों का राष्ट्र के प्रति समर्पण, उनके पुनरुत्थान की अनिवार्यता विश्व कल्याण में उनका दायित्व आदि बातों का वस्तुनिष्ठ चित्रण करके मानवतावादी कवि कृषक जीवन के सुधार एवं उद्धार का प्रशंसनीय कार्य करते हैं ।

6.10. राष्ट्रीय चेतना के विकास में गाँधीजी का योगदान :-

भारतीय समाज को सुधार करने केलिए सन् 1921 में गाँधीजी ने अपना असहयोग आन्दोलन शुरू किया । जालियांवाला हत्याकाण्ड के बाद गाँधीजी ने राष्ट्र की बागडोर संभाला और 5 नवंबर 1921 को प्रथम अहिंसात्मक राष्ट्रीय संघर्ष शुरू किया । असहयोग, विदेशी माल का बहिष्कार, सविनय अवज्ञा आन्दोलन आदि इस संघ के मुख्य कार्य थे । गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् भी गाँधीजी की इन प्रवृत्तियों से अवगत हुए और अपनी रचनाओं में इनको मुख्य स्थान भी दिया । गाँधीजी की राष्ट्रीय चेतना आदिकाल की राष्ट्रीय चेतना से एकदम भिन्न है । आधुनिक राष्ट्रीयता से मिली जुली, मानवतावादी राष्ट्रीयता है । गाँधीजी राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन लाने के पक्ष में प्रवृत्त रहे हैं । आलोच्य दोनों कवि भी गाँधीजी के सभी विचारों से अपने विचार मिलाने का प्रयास करते हैं ।

6.10.1. राजनीति एवं गाँधीजी :-

राजनैतिक क्षेत्र में गाँधीजी का प्रमुख उद्देश्य था, भारत की राजनीति को अराजकता एवं साम्राज्यवाद से मुक्त करके स्वराज्य प्राप्ति के बाद, रामराज्य की स्थापना । उन्होंने राजनीति को पूर्णतः आध्यात्मिक तत्वों से जोड़कर धर्म से संबन्धित करने का प्रयास किया । "यथा राजा तथा प्रजा" की नीति

1. सा:म:-1-पृ.53

देश की शासन रीति होनी चाहिए । देशोन्नति केलिए जनता में राष्ट्रीय भावना जागृत होनी चाहिए । राजनीति में गाँधीजी ने आत्म बलिदान को अत्यधिक प्रदान किया । [1] अँग्रेज़ी शासन से घटित विभिन्न समस्याओं को सुलझाने केलिए भारत की राजनीति में बडा परिवर्तन लाया गया । अनीतियों के विरुद्ध उनका सत्याग्रह अत्यंत महत्वपूर्ण था । इससे किसानों और मज़दूरों की स्थिति सुधरने लगी । इस क्षेत्र में उनका नमक सत्याग्रह प्रसिद्ध है । भारत की स्वतंत्रता की घोष्णा की वेला में वर्धा की कार्य समिति में गाँधीजी ने भारत-छोडो का प्रस्ताव पास किया और वे कैद किए गए । इसके विरुद्ध उन्होंने 10 फरवरी सन् 1943 से 21 दिन का उपवास प्रारंभ किया । उपवास में वे जीत गए । सन् 1946 को नोआखली में भयानक दंगे हुए और वहाँ के लोग भाग गए । वहाँ भी गाँधीजी ने शांति की स्थापना की । गाँधीजी के मत में देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ व्यक्ति-व्यक्ति की स्वतंत्रता की भी अनिवार्यता रही । यह स्वातंत्र्य कभी भी विघटनकारी नहीं रहा । यहाँ जाति, रंग तथा संप्रदाय के भेद भाव के बिना सबका स्वातंत्र्य है । [2]

गाँधीजी के राष्ट्रीय आन्दोलनों से गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् अत्यधिक प्रभावित थे । तत्कालीन समाज की दुरवस्था में सुधार लाना साहित्यकारों का दायित्व था । इस क्षेत्र में आलोच्य दोनों कवि अपना योगदान दे रहे थे । गुप्तजी उत्तर भारत के निवासी होने के कारण गाँधीजी के अधिक निकट रहे हैं । वळ्ळत्तोळ् का गाँधीजी से व्यक्तिगत संबन्ध कम ही रहा है । फिर भी उनके काव्य में गाँधीजी के राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर उज्ज्वल रूप में गूँजता है ।

---

1. गाँधी विचार रत्न- पृ. 191
2. -वही- पृ. 193

## 6.11. गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर :-

राजनैतिक क्षेत्र में गुप्तजी के विचार स्वतंत्रता और राष्ट्रीय जागरण के समर्थक हैं । इसीलिए झाँसी की पुलिस और झांसी के कलक्टर भड़क गए और उन्होंने गुप्तजी को कारावास दिया । विशेषकर "भारत-भारती" की मोहनी, अधिकारियों की उत्तेजना का कारण थी ।[1] कवि 17 अप्रैल 1941 ई0 को गिरफ्तार हुए और उन्हें झाँसी के जेल में रखा गया । 10 जून को वहाँ से आगरा के सेंट्रल जेल में भेजा गया । जेल में उन्होंने "जय-भारत", "अजित" और "कुणाल गीत" का बीजारोपण किया । उनकी इस सक्रिय क्रान्ति के बारे में महात्मा गाँधी ने लिखा है -" लेकिन सरकार की भी कभी-कभी बडी उदार हो जाती है । कुछ आदमियों को यों ही उठा ले जाती है । श्री मैथिली - शरण गुप्त भी वही है । वे भी बरबस पकड लिए गए । वे सुप्रसिद्ध कवि तो हैं, लेकिन कविता उनकी कलम से नहीं निकलती, वरन् उनके सूत के तारों से निकलती है ।[2] इसी प्रकार उनके आन्दोलन के बारे में डा. रामरतन भटनागर ने लिखा है --"गुप्तजी भारत के ही कवि नहीं, "भारत-भारती" के भी कवि हैं । "किसान" और "अजित" जैसे काव्यों में उन्होंने सामयिक राष्ट्रीय आन्दोलन के भीतर से अपने युग के उपेक्षित सामान्य, सब तरह से साधारण नए सत्याग्रही वीरों की मूर्तियाँ भी सजादी हैं ।[3]

तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में चलनेवाले आन्दोलनों की गति-विधियों के अनुकूल मानसिक वातावरण जनता में उत्पन्न करने का प्रयास कवि करते रहे । लोकमान्य तिलक, राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी राम तीर्थ, ईश्वर चन्द्र, जगदीश चन्द्र, गोखले, गाँधी,

---

1. अभिनन्दन ग्रन्थ- पृ. 5, 16
2. "खादी जगत मासिक पत्र", वर्धा-अक्तूबर-1941, पृ13
3. डा. रामरतन भटनागर- "मैथिली शरण गुप्त"- पृ. 22 (द्वि. सं.)

रवीन्द्रनाथ , अवनीन्द्र, रविवर्मा आदि महान लोगों की विविध क्षेत्रों की साधनाओं की ओर संकेत करते हुए गुप्तजी भारत में नवजागरण के स्पष्ट लक्षण देखते हैं । इन विराट प्रतिभाओं पर आस्था रखते हुए कवि राष्ट्रीय निर्माण की चेष्टा की प्रेरणा देते हैं । [1] इस प्रकार कवि "भारत-भारती" के द्वारा राष्ट्रीय क्रान्ति का शंखनाद फूँकते हैं और देश की महिमा को हृदय की समस्त ममता के साथ व्यक्त करते हैं ।

गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन की शुरुआत में एक नवचेतना देश भर में व्याप्त हो गई थी । गाँधीजी का व्यक्तित्व इतना महान था कि वे अपनी भृकुटि के बाके होने मात्र से ब्रिटिश सरकार में कंपन उत्पन्न कर सकते थे । उनके सत्याग्रह में शस्त्रों अस्त्रों को निःशस्त्र कर देने का बल था । गाँधीजी का प्रभाव "स्वदेश संगीत" में दर्शनीय है ---

"अस्थिर किया टोप वालों को गाँधी टोपी वालों ने
शस्त्र बिना संग्राम किया है इन भाई के लालों ने ।
अपने निश्चय पर यह दृढ़ हैं, मारो, पीटो, बन्द करो ,
अजब बाँकपन दिखलाया है इनकी सीधी चालों ने । [2]

"साकेत" में भी समकालीन घटनाओं का प्रभाव दिखाई पडता है । [3] राम के वन-गमन के समय प्रजा "बिनत विद्रोह" करती है । मार्ग में लेट जाती है । यहाँ असहयोग का प्रभाव दृष्टव्य है । प्रजा यह भी कहती है कि हमने राम को ही राजा चुना है । लोकमत को अनसुना नहीं करना चाहिए । [4] शत्रुघ्न भी नवयुग की विचारधारा का समर्थन करते हैं । उनका मत है कि यदि राज्य को हम लोग भोग्यवस्तु बना लें तो उस समय राजद्रोह धर्म हो जाता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "भारत-भारती"- भ:ख: प
2. "स्वदेश-संगीत"- पृ. 128-129
3. शिवदानसिंह चौहान- हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष"- पृ. 68
4. "साकेत"- पृ. 112/184, 115

राज्य प्रजा का व्यवस्थागार है । [1] यह भी असहयोग का प्रभाव है ।

गुप्तजी "अजित" में जेल जीवन का एवं ब्रिटिश राज्य के अत्याचारों का वर्णन करते हैं । रोटी, मिट्टी, कंकड़, घुन, अनाज एक साथ पीसकर बनाई जाती थी । प्राकृतिक देह-धर्म करने में परेशानी होती थी । [2] उनका "द्वापर" सत्याग्रह क्रान्ति की प्रतीकात्मक रचना है । यहाँ कृष्ण लोकनाथ और नारद सुधारवादी क्रान्ति के प्रणेता हैं । "अनघ" में कवि अहिंसात्मक आन्दोलन के माध्यम से समाज को लोक क्रान्ति का पथ दिखाते हैं । "सिद्धराज" में शान्ति और अहिंसा की मानवतावादी परिप्रेक्ष्य में एक राष्ट्र का प्रजातांत्रिक सपना देखा गया है वे संपूर्ण देश में अवश्य एक राज्य की कल्पना करते हैं क्योंकि वे एक राज्य में राष्ट्र का बल निहित मानते हैं । [3] गाँधीजी की तरह कवि भी रामराज्य की कल्पना करते हैं । उनकी कल्पना एकतंत्र के पुनर संस्थापन का सपना न होकर न्यायपरक सुशासन का एक स्पष्ट चित्र है । "साकेत" में अपने राजनैतिक मूल्यों का उल्लेख गुप्तजी करते हैं -- "न्यायार्थ क्यों उससे क्यों प्रजा लडती नहीं । और भी वे कहते हैं -- "यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है । "द्वापर" में कवि कंस के चरित्र को आज के कूटनीतिज्ञ साम्राज्यवादी के चरित्र के रूप में उपस्थित करते हैं, जिसने लाखों लोगों को मौत के घाट उतार, उनके रुधिर से अपने विशाल साम्राज्य की नींव डाली है ।

उनके काव्य की राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर सुनकर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी स्पष्ट करते हैं -" राष्ट्र की ओर युग की नवीन स्फूर्ति नवीन जागृति के स्मृतिचिह्न हमें हिन्दी में सर्वप्रथम गुप्तजी के काव्य में ही मिलते हैं । [4]

---

1. "साकेत"- पृ. 112/184, 115     2. "अजित" -पृ. 11
3. दयाकृष्ण विजय- "गुप्तजी की युग चेतना-स्मारिका- पृ. 53
4. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी-" हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी-पृ. 39

अब कहा जा सकता है कि गुप्तजी उसी समय के युग चेतना से इतने प्रेरित हुए थे कि वे अविरत भारतवासियों को प्रोत्साहित करने का सच्चा प्रयास करते रहे ।

राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रमुख प्रश्न था, सांप्रदायिक एकता । गुप्तजी इस समस्या को सर्वथा महत्वपूर्ण समझकर, लगभग सभी कृतियों में सर्व-धर्म-समन्वय की भावना और राष्ट्र हित केलिए एकता आदि का प्रतिपादन करते रहे । इसका जिक्र "मानवतावाद" में किया गया है । उनके "गुरुकुल", "मंगलघट", "हिन्दू", आदि की रचनाओं के समय में कांग्रेस के दिग्भ्रमित हो जाने के बीच अंग्रेजों के इशारे पर साम्प्रदायिक तत्वों ने खून की नदियाँ बहाईं और फूट बढ़ाई । डा. पट्टाभि सीता रामय्या ने "कांग्रेस का इतिहास" (भाग-3) में लिखा है -" 6 अप्रैल 1926 को लार्ड इरविन भारत आए । 6 हफ्ते तक कलकत्ता की सड़कों पर हत्याकाण्ड और अराजकता का नंगा नाच हो रहा था ।" गुप्तजी इससे क्षुब्ध होकर इसको हिन्दुओं की निर्बलता का चिह्न मानकर इन रचनाओं की ओर प्रवृत्त हुए । "जय हिन्दू" जय हिन्दुस्तान" की आंतरिक गुंजन के बीच, न उन्होंने हिन्दू समाज की दुर्बलताओं से आँखें मूँदी (विशेषकर हरिजनोद्धार के संदर्भ में) और न राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन केलिए हिन्दू-मुस्लिम एकता के महत्व का सूत्र भुलाया । इससे स्पष्ट होता है कि उनकी राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर मानवतावादी है ।

6.12. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर:-

गुप्तजी राष्ट्रीय आन्दोलन में इसलिए सक्रिय भाग ले सके हैं कि वे उत्तर भारत के रहनेवाले थे । सुदूर दक्षिण में रहनेवाले वळ्ळत्तोळ् स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग नहीं ले सके तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । फिर भी

जहाँ तक हो सके कवि उन आन्दोलनों के प्रभाव से , प्रान्तीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेते थे । गुप्तजी की तरह वळ्ळत्तोळ् भी समकालीन राजनैतिक तथा सामाजिक आन्दोलनों की गति-विधियों से सुपरिचित रहे और जनता की मानसिक स्थिति को कालानुकूल बनाने का सच्चा प्रयास करते रहे । कवि स्वयं दादाबाय नवरोजी से लेकर गाँधीजी तक के नेताओं की साधनाओं से अवगत थे । वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर सबसे पहले साहित्य-मंजरी के पहले भाग की कविता "दादाबाय नवरोजी" में मिलता है । यहाँ कवि समझते हैं कि नवरोजी भारतमाता के सिर पर स्वतंत्रता का मुकुट फिर से लगानेवाले पहले व्यक्ति हैं , वे ही इस कार्य के योग्य भी हैं । [1] सबसे पहले जिस कृषक ने स्वतंत्रता का बीजवापन किया उसकी अपमृत्यु हुई है । यह बड़े दुःख और लज्जा की बात है । उनकेलिए "मेरी मातृभूमि" से बढ़कर कोई बात मन में नहीं थी । वे आम जनता केलिए स्वतंत्रता की लडाई लडते थे । नवरोजी चाहते थे कि सारी जनता राष्ट्रीय क्रान्ति की मंगल ध्वनि से अवगत हो और भारतभूमि को स्वतंत्रता प्राप्त हो । [2]

भारत के कर्मठ नेता तिलक के निधन पर कवि "अत्याहित" की रचना करते हैं । उनकी मृत्यु स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए लडते-लडते हो गई । यहाँ कवि तिलकजी को "आर्य केसरी" कहकर सम्मानित करते हैं । [3] उनकी स्वातंत्र्येच्छा भी दूसरों को क्रान्ति की ओर अग्रसर कराने लायक थी । "तोट्टत्तिल् वच्चु" में कवि भारत के राजनैतिक नेताओं के कारावास का प्रतिपादन करते हैं । "निड्.ड.ळ् तन् पोक्कु विपरीतमाकोला" में कवि व्यंग्य करते हैं कि हम लोग प्राचीन संस्कृति रूपी घास भरे मैदान को छोडकर, विदेशी संस्कृति रूपी रेतीले

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-1- पृ. 90
2. सा:म:-1-पृ. 91
3. सा:म:-3-पृ. 51

मैदान की ओर जाते हैं । [1] यहाँ भी कवि जनता में राष्ट्रीय बोध की अनुपस्थिति के बारे में उन्हें सचेत करते हुए क्रान्ति की ओर अग्रसर कराना चाहते हैं ।

गाँधीजी को कवि अपने राष्ट्रीय गुरु के रूप में स्वीकार करते हैं । "एन्टे गुरुनाथन्" (मेरे गुरु) में कवि गाँधीजी के गुण-गान करते हुए कहते हैं -- गाँधीजी अपने प्रभाव से जनता को, यहाँ तक स्त्रियों को भी क्रान्ति के क्षेत्र में उतरने केलिए प्रेरित करते रहे हैं । [2] "चक्रगाथा" में भी यही कहा गया है कि गाँधीजी ने मृतप्राय जनता को नया जीवन देकर कालानुसार कार्य करने केलिए सशक्त बना दिया । [3] गाँधीजी की इन परिपाटियों से प्रेरित होकर केरल की जनता ने जाति, धर्म आदि भेदों को भूलकर एकतापूर्वक विदेशियों के विरोध में क्रान्ति शुरू की । ऐसी अवस्था में कोषिक्कोडु में स्वदेशी चीज़ों की पहली प्रदर्शिनी का संचालन हुआ । यह सरकार के प्रति एक चुनौती थी । समारोह में वळ्ळत्तोळ् मुख्य अतिथि थे । अचानक पुलीस आए और देशीय झंडा उठाना मना किया । अब महाकवि ने कहा -" हमारा झंडा उठाना गलत है तो हम एक साथ जेल जाएँगे । [4] आगे झंडा उठाया ही गया । अब जनता के मुँह से "पोरा पोरा" नामक कवि का झंडा गीत मुखरित होने लगा --

"पोरा, पोरा नाळिल् नाळिल् दूरदूर मुयरट्टे
भारतक्ष्मादेवियुडे तृप्पताककळ्
आकाशप्पोयकयिल्पुत्तुताकुमलयिळकट्टे ,
लोक बन्धु गतियक्कुट्ट मार्ग काट्टट्टे ! [5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-4- पृ. 71
2. -वही- पृ. 110
3. सा:म:-5-पृ. 25
4. वासुदेवन नायर-"वळ्ळत्तोळ् स्वतंत्र-गायकन्"- पृ. 123
5. सा:म:-6-पृ. 58

{नहीं, नहीं, दिन दिन में, दूर दूर तक फहराए, भारत भूमि की पवित्र तिरंगे झंडे । आकाश रूपी समुद्र में वह नई तरंगों की सृष्टि करे और विश्व बन्धुत्व के लिए अनुकूल मार्ग दर्शन करे । } इस गीत के साथ-साथ कवि वचन देते हैं -" हम अपने जीवन आप केलिए न्योछावर करते हैं, आप राष्ट्रीय गरिमा को स्वर्ग तक उठाइए । [1]

वळ्ळत्तोळ् का यह झंडा गीत "वन्देमातरम्" और "जनगणमना" से ज़रा भी कम मूल्यवान नहीं है । तत्कालीन केरलीय जनता में समरावेश पैदा करने में यह प्रशस्त गीत पर्याप्त रहा है ।

"काट्टेलियुडे कत्तु" में कवि शिवजी के मातृभूमि प्रेम के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कहते हैं -" अपनी मातृभूमि अपने भाई लोग आदि को किसी तरह का नुकसान पहुँचाए बिना रक्षा करने केलिए ही शिवजी ने तलवार उठायी है । अपनी नसों में जब तक एक बूँद लहू भी बचा रहेगा तब तक वे राष्ट्र की स्वतंत्रता केलिए क्रान्ति करते ही रहेंगे । [2] यह असल में कवि के मन की क्रान्ति का स्वर है । "पापमोचनम्" में कवि वैक्कम सत्याग्रह की ओर संकेत करते हैं, जहाँ सत्याग्रह के सिलसिले में गांधीजी आए थे । यहाँ गाँधीजी से कवि का पहली बार साक्षात्कार हुआ था, और उनको राष्ट्रीय क्रान्ति की दिशा में नई स्फूर्ति मिल गई थी । "वैशतं पोरं पोल्म्" में कवि इंडियन नेशनल कांग्रेस के अनैक्य के बारे में कहते हैं और इशारा करते हैं कि एकता से ही सफलता संभव है । उनसे कवि पूछते हैं "कितने दिन हुए अब तुम्हारी वीणा की तंत्रियों से स्वतंत्रता का मृदुगीत का शब्द सुनके " । पहले कई स्वार्थी लोगों ने मिलकर कांग्रेस की कर्म परिपाटियों को कुचल डाला था । अब उस प्रकार की अवनति की बातों

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-6- पृ. 61
2. सा:म:-5-पृ. 72

को दूर करके एकता के साथ संग्राम में भाग लेने का कवि आह्वान करते हैं। तिलक जी की "स्वराज्य" घोषणा से केरल के लोग प्रभावित हुए थे। इसके फलस्वरूप कई स्त्रियों "स्वराज्य निधि" केलिए अपने आभूषण तक दे दिए थे।[1] ये सब राष्ट्रीय क्रान्ति के ही फलस्वरूप हुआ है।

ब्रिटिश शासन को हमेशा-हमेशा केलिए भारत भूमि से भगाने की आशा कवि "ओरु किष्वन् पेराल्" में व्यक्त करते हैं। यहाँ उस पीपल से पूछा जा रहा है कि तुम सब से अब तक भारत में ब्रिटिश शासन को देखते रहे हो न? क्या अब तुम बता सकोगे कि भारत माता के हाथों और पैरों में जंजीरें डालने केलिए अंग्रेज़ों ने कितने लोहे का इस्तेमाल किया है।[2] यहाँ कवि भारत-माता को परतंत्रता की बेडियों से स्वतंत्र करने का प्रयत्न करते हैं और राष्ट्र में फिर से धर्मस्थापन करना चाहते हैं। आगे कवि उसी पीपल से पूछते हैं -" अब हमारे देश की मुक्ति में कितनी देर लगेगी ? कवि देश की परतंत्रता से इतने पीडित थे, कि वे राष्ट्र पर होनेवाले अत्याचारों को सह नहीं सकते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए भारत की जनता करोडों की तादाद में संग्राम भूमि की ओर सब कुछ त्यागकर जाती थीं ऐसी वेला में कुछ लोग कहने लगे -" हमारे स्वतंत्र होने का समय नहीं हुआ "। यह देश-भक्ति की कमी के ही कारण हुआ है। इन बातों पर कवि "पारवश्यम्" में प्रकाश डालते हैं।[3] दुष्प्रभुत्व के पराक्रम की ज्वाला में, सब कहीं चीज़ें जल जल कर राख हो जाती है। यह देखकर कवि दुःख से पूछते हैं "यह दाह कब तक रहेगा" ?[4]

वळ्ळत्तोळ् ने सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के आधार पर "शिप्पायि-लहळा" की रचना की है। इसमें कहा गया है कि सन् 1857 की गदर भारतभूमि पर आच्छादित घोर अंधकार में एक बिजली की चमक जैसी थी जो क्षणिक

---

1. सा:म:-6-पृ. 30-31 2. सा:म: -7- पृ. 65
3. -वही-7-पृ. 95 4. -वही- 8-पृ. 66

होते हुए भी तेज़ अवश्य थी । भारतीय जनता की उस एकता के सम्मुख ब्रिटिश लोग भयाक्रान्त हुए थे । परतंत्रता में जलनेवालों के लहू की गर्मी से विदेशी लोग स्तब्ध हुए । [1] इस लडाई की ओर संकेत करते हुए देश-भक्त कवि कहते हैं ---

लहळक्कारल्लन्नुमिन्नुं इन्द्यक्कारे, न्नाल्
सहिक्किल्लोरु नालुं परर्तन् कैय्येट्टत्ते
बृहदंगन्मार् निड्.ड.ळ् कंडिल्ले प्रियांग्लेय
सहजन्मारे दास्यदीनर् तन् पोरु वीरम् [2]

§भारतीय कभी झगडालू नहीं है, लेकिन वे किसी के आक्रमण को कभी भी सह नहीं सकते । हे बलवान अंग्रेज़ी भाईयों, आप लोगों ने अब दीन-जनता की शक्ति एवं वीरता को देखा है न ? §" यहाँ कवि अनीति और अत्याचार की ओर अपने शब्दों के बाण चलाकर, स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेते हैं । विदेशियों ने भारतीय नारियों को केवल गृहलक्ष्मी माना है, लेकिन कवि कहते हैं कि वे ऐसी वैसी नारियाँ नहीं है बल्कि धीर एवं आदर्श नारियाँ हैं । उदाहरण स्वरूप कवि झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को उनके सामने प्रस्तुत करते हैं । [3]

इस प्रकार कवि "मोट्टु सूचि" §आलपीन§ नामक कविता में भी ब्रिटिश शासन का खुले तौर पर विरोध करते हैं । यहाँ गाँधी-दर्शन से प्रभावित होकर कहा गया है -" भारत का शासन करनेवाले अंग्रेज़ नहीं हैं , नाकाम व्यक्तियों का राज किसको चाहिए ! दक्षिण आफ्रिका में , गाँधीजी को आफ्रिका वालों से मरवाया गया था फिर भी अब उनके मुँह में कुछ दांत बचे हैं । [4] अर्थात् गाँधीजी में अब भी जनता को संचालित करने की शक्ति है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-९-पृ.40
2. सा:म:-९-पृ.41
3. सा:म:-९-पृ.42
4. सा:म:-10-पृ.98

"दिवास्वप्न" की कविता "तिलक मण्डपम्" में कहा गया है --"अब अस्वतंत्रता की जंजीरों को तोडकर फेंकने का प्रयत्न हो रहा है , अब तक भारतीय किसी मोहनिद्रा में पडे थे । आगे ऐसा न होगा । जनता सचेत हुई है । अब कौन कहेगा कि भारतवासी भारत का शासन नहीं कर सकते ? हम उस देश के वासी हैं , जहाँ पर मीमांसा जन्म हुआ था । [1] यहाँ कवि का राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर सारे क्षितिज में गूँज उठता है ।

"बाप्पूजी" में गाँधीवादी कवि लिखते हैं कि गाँधीजी के पराधीनता-निवारण-मंत्र को कभी भी हम किसी भी अत्याचारियों को नष्ट करने नहीं देंगे । [2] गाँधीजी के दर्शाए गए मार्ग से चलकर स्वतंत्रता प्राप्त करने की कवि की आशा यहाँ पूर्ण रूप से व्यक्त होती है । "इन्द्ययुडे करच्चिल्" में भी कवि की राष्ट्रीय-क्रान्ति का स्वर गूँज उठता है ।

वळ्ळत्तोळ् गाँधीजी की सभी कर्म-परिपाटियों से प्रभावित रहे । गाँधीजी की हरेक चाल का कवि पर असर पडता था । "एन्टे गुरुनाथन्" यह सब व्यक्त करता है । महात्मजी मातृभूमि की इच्छा के अनुसार ही सर्वदा काम करते रहे लेकिन उनके शिष्य होकर स्वयं अभिमान करनेवाले उनके उपदेशों को कभी कभी हवा में उडाते रहे । [3] गाँधीजी के कारावास के समय पर उनकी एक शल्यक्रिया हुई थी । इसके बारे में कवि "मुरा" नामक कविता में उल्लेख करते हैं । [4] जेलवास के समय 1933 मई 8 को गाँधीजी ने 21 दिन के उपवास की घोषणा की, जब सरकार ने हरिजनों को हिन्दू समाज से पृथक बनाने का कानून बनाया था । इसके आधार पर कवि ने एक सशक्त रचना "नेडुनाळ् निलनिर्तुम्" का प्रणयन किया । इस उपवास पर आँसू बहाते हुए गाँधी-भक्त कवि कहते हैं ---

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "दिवास्वप्न" - पृ. 39 2. "बाप्पूजी" - पृ. 24

3. मूस्सत् . सी. के. -"महाकवि वळ्ळत्तोळ् जीवनी" - पृ. 637

4. "वळ्ळत्तोळ् की पद्य कृतियाँ" - भाग-2, पृ. 788

परमोपदेष्टावे, भवदेकालंबराय्
मस्वुं मुप्पत्तन्ु कोडियालुकळ्क्किता
निरम्प्लवं अड्.डु.न्नक्करे क्कडक्केण्डुम्
इस्मत्तोन्ु दिनं इस्मत्तोन्नु युगम् ।

{हे परम उपदेष्टा, आपके आश्रय में जीनेवाले 35 करोड लोगों के लिए आपके अहिंसा पूर्वक उपवास में रहने के "21" दिन, "21" युगों के समान है । }
हरिजनों के उद्धार केलिए गाँधीजी जीवन तक को त्यागने केलिए तैयार हो गए । इसका मार्मिक वर्णन भी कवि "एन्टे गुरुनाथन्" में करते हैं । सन् 1919 अप्रैल 13, को अमृतसर की हत्या के विरोध में गाँधीजी ने तीन दिन का उपवास किया । इसके बाद सन् 1921 नवंबर 19 को प्रिन्स आफ वेल्स के आगमन की वेला में जो वर्गीय कलाप हुआ, इसके विरोध में 5 दिन का उपवास हुआ । इस प्रकार के सभी संदर्भों का उल्लेख कवि "नेड्डुनाळ् निलनिर्तुम्" में करते हैं । उनके अनुसार "हे संसार शिष्यों केलिए गुरु के द्वारा किए जानेवाले प्रायश्चित्त रूपी उपवासों को फिर तुम कैसे देखते रह सकोगे । जिस उद्देश्य की पूर्ति केलिए उनका अवतार हुआ है , उसका पूर्तीकरण के बिना वे सत्यान्वेषी अपने कार्य बन्द नहीं करेंगे । स्वतंत्रता रूपी संपत्ति को समान रूप से सबके बीच बाँट दिए बिना वे अपने कर्तव्य मार्ग से हटनेवाले नहीं है । इस प्रकार कवि गाँधीजी की राष्ट्रीय क्रान्ति की परिपाटियों को अपनी रचनाओं में प्रमुख स्थान देकर जनता को कर्मण्य बनाने का स्तुत्य प्रयास करते रहे ।

वळ्ळत्तोळ् सच्चे देश-भक्त थे । सन् 1930 में उन्होंने वेल्स राजकुमार का दिए हुए रेशमी {शाल} और कंकण का तिरस्कार करके राष्ट्रीय क्रान्ति को शक्ति

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1."वळ्ळत्तोळ् की पद्य कृतियाँ"- भाग-2, पृ. 790

प्रदान की । इससे समकालीन केरलीय जनता बिलकुल प्रभावित हुई और उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में सशक्त रूप से भाग लिया ।

इस प्रकार वळ्ळत्तोळ् अपनी लेखनी का प्रयोग करके समकालीन जनता को राष्ट्रीय क्रान्ति में भाग लेने को उद्बोधित करते रहे । केरल में, वळ्ळत्तोळ् की तरह जनता को तत्कालीन राष्ट्रीय नीति के बारे में बोधवान बनानेवाला कोई कवि या साहित्यकार नहीं हुआ है । यही देशीय कवि के रूप में उनका महत्व है ।

## 6. 13. ग्रामोद्धार :-

राष्ट्र की प्रगति केलिए एकता की अनिवार्यता है । राष्ट्रीय एकता केलिए ग्रामीणों के उद्धार की भी अनिवार्यता है । गाँधीजी इस तथ्य से सदैव अवगत रहे हैं । उन्होंने भारत के ग्राम-ग्रामान्तरों में जाकर राष्ट्र की असली स्थिति को पढ़कर ही ग्रामोद्धार की परिपाटि को चलाने की आशा की है । अपरिष्कृत एवं संस्कृति से दूर रहनेवाली भारत की ग्रामीण जनता, आर्थिक क्षेत्र में भी पीडित थी । उनकी स्थिति में सभी प्रकार का सुधार लाना ही ग्रामोद्धार का लक्ष्य रही है । कविद्वय भी इस श्रेष्ठ कार्यक्रम के पक्षपाती रहे हैं । वे भी अपनी रचनाओं में जहाँ तक हो सके ग्रामीण जनता की उन्नति केलिए शब्दों का प्रयोग करते हैं ।

### 6. 13. 1. गुप्तजी के काव्य में ग्रामोद्धार :-

ग्रामीण जनता दूसरों की दृष्टि में गरीब एवं अछूत हैं । ग्रामीणों के प्रति जो घृणा की भावना है, उसे मिटाने एवं उनके उद्धार करने केलिए गुप्तजी प्रयत्न-शील रहे हैं । गाँधीजी का कथन है कि "अस्पृश्यता या जातिगत भेद-भाव हिन्दू धर्म के बिलकुल विरुद्ध है और ऐसा करना पाप है ।

ब्राह्मण और भंगी, पंडित और मेहत्तर भले ही के किसी भी जाति के हो, यदि इन सब में भगवान विद्यमान है तो न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा, सभी सर्वदा समान है । समान इसलिए कि सभी उसी की सृष्टि के प्राणी हैं ।[1] गुप्तजी भी इस दृष्टि से वंचित नहीं थे । "पंचवटी" में वे कहते हैं ---

गुह निषाद शबरों तक का मन रखते हैं प्रभु कानन में,
क्या ही सरल वचन रहते हैं, इनके भोले आनन में ।
इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी,
इनमें भी मन और भाव है, किन्तु नहीं ऐसी वाणी ।[2]

राज्य शासन पर निर्भर रहनेवालों से कवि पूछते हैं -" पर अपना हित आप नहीं क्या करता है, यह नर लोक ? कवि जानते हैं परिवर्तन ही प्रगति के मार्ग है, फिर भी उनको सीधे सच्चे पूर्व भाव ही पसंद थे ।[3] महात्मजी भी इन्हीं भावों को मानते थे "अनघ" में भी कवि ग्राम सुधार लोक-सेवा आदि गाँधीवादी आदर्शों का व्यावहारिक पक्ष "मघ" के कार्य क्षेत्र में चित्रित करते हैं ।

6. 13. 2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में ग्रामोद्धार :-

असल में भारत का जीवन गाँवों में ही गुज़रता है । इसलिए ग्रामोद्धार से ही शासन के विकास होना चाहिए । जब कभी अवसर मिले तब ग्राम्य जीवन के रेखा चित्र खींचने में वळ्ळत्तोळ् अत्यंत उत्सुक रहे हैं । "अंपाडियिल्-चेल्लुन्न अक्रूरन्" में कवि गोकुल के ग्राम परिवेश का रंगीन चित्र प्रस्तुत करते हैं ।[4]

---

1. "गाँधी विचार रत्न" पृ. 162
2. "पंचवटी" - पृ. 10
3. -वही- पृ. 16
4. "अनघ" - पृ. 58-64

यहाँ एक बात व्यक्त होती है कि भगवान ग्राम्य वातावरण ही ज़्यादा पसंद करते हैं । "ओणप्पुडवा" में कहा गया है कि अधःकृतों के उद्धार से वे भी लोकसेवा में तत्पर हो जाएँगे ।[1] उनकी अवनति का मुख्य कारण अशिक्षा है । इसलिए उन्हें शिक्षित बनाने से राष्ट्र की भलाई होगी ।

एक बार गाँधीजी के पास आकर एक आदमी ने उसकी लिखी गई एक पुरस्कृत रचना को गाँधीजी को दिखाना चाहा । उसने कहा -" आप यह पढ़कर देखिए, यह हज़ार रूपयों का पुरस्कार पा चुकी है ।" तब गाँधीजी शीघ्र बोले -" आधा हरिजनों को " । "प्रेमगीतम्" में इसी का वर्णन है ।[2] यह कवि के हरिजनोद्धार के प्रति प्रेम व्यक्त करता है । महात्मजी के ग्रामोद्धार एवं हरिजनोद्धार पर आकृष्ट होकर कवि "आ पोट्टिटच्चिरी" में उनकी प्रशंसा करते हैं । "शरि, बलिष्ठं तानसंख्याधःकृत प्परिशयेत्समुद्धरिक्कुम् - अक्करम्" {सच है , असंख्य पिछड़े हुए वर्गों का उद्धार करनेवाले वे हाथ अत्यंत बलिष्ठ है । } ग्रामोद्धार केलिए कवि कृषकों का भी उद्धार चाहते हैं । इसका विशद विश्लेषण आर्थिक सुधार में हुआ है ।

## 6.14. खादी और चर्खा :-

समाज सुधार के सिलसिले में भारत की आम जनता की आर्थिक स्थिति की उन्नति सबसे महत्वपूर्ण रही है । खादी का उपयोग एवं चर्खा यज्ञ से देश की गरीबी हटाना गाँधीजी का लक्ष्य था । गाँधीजी के विश्वास था कि खादी हिन्दुस्थान की आज़ादी का पोशाक है । इसलिए खादी पहनने का आह्वान उन्होंने किया । खादी वस्त्र छोडने के मतलब भारतवर्ष की आत्मा को छोड देना है । उनके अनुसार चर्खा लंगडे की लाठी, भूखे का दान और निर्धन -

---

1. सा:म:-6-पृ. 115
2. सा:म:-10-पृ. 39

स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने वाला किला है । [1] गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भी इस तत्व से प्रभावित होकर अपनी कृतियों में इसी बात का समर्थन कर लक्ष्य पूर्ति की ओर बढ़ने का अक्षीण प्रयास करते हैं ।

6.14.1. गुप्तजी के काव्य में खादी और चर्खों का महत्व :-

विदेशी वस्त्रों की अधिकाधिक खपत से देश की आर्थिक दुर्दशा बढ़ती जा रही थी । इसलिए कवि विदेशी वेष-भूषा पर श्रद्धा रखनेवालों पर तीखा व्यंग्य करते हैं । विदेशी वस्त्रों के स्थान पर स्वदेशी खादी का प्रयोग करने केलिए कवि आह्वान देते हैं । खादी और चर्खे का उपयोग करके स्वावलंबी बनने केलिए कवि जनता को उत्तेजित करते हैं --

"स्वावलंबन ही तो है स्वर्ग , उस पर सब कुछ हो उत्सर्ग ,
अपना ग्राम-ग्राम हे राम हो ज्यों एक एक सुख धाम । [2]

"साकेत" में कवि गाँवों को कुटीर उद्योग अपनाने का संदेश देते हैं । वहाँ गुप्तजी की सीता, युगानुरूप बनकर ग्रामीण बालिकाओं को सूत कातने और बुनने का अभ्यास कराती है ।

6.14.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में खादी और चर्खे का प्रतिपादन:-

वळ्ळत्तोळ् और गाँधीजी के पहले मुलाकात के अवसर पर गाँधीजी ने कवि से संदर्भवश पूछा-" आप लोग सब खादी पहनते हैं , क्या मैं एक बात पूछूँ ? आप सूत कातते नहीं ? कवि ने कहा "कवि लोग कल्पना के जगत में विचरण करने वाले हैं अलस हैं " । [3] ऐसे होते हुए भी वे खादी और चर्खे के बारे

---

1. अरविन्द जोशी-" हिन्दी साहित्य पर गाँधीजी का प्रभाव"- पृ. 85
2. "हिन्दू"- पृ. 162
3. मूत्तत्. सी.के. "महाकवि वळ्ळत्तोळ् जीवनी"- पृ. 632

में बहुत कुछ लिखते हैं । "एन्टे गुरुनाथन्" में कवि गाँधीजी के चर्खा-यज्ञ के बारे में कहते हैं -" भारत की दिन-दिन बढ़नेवाली नग्नता को हटाने केलिए वे अर्धनग्न, कर्मयोगी सूत कातते हैं । "चक्रगाथा" में चर्खे की तुलना श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र से की गई है ---

"यङ्.डातिमार्कळे प प्पिशाचिने
चक्रं तिरियुक्क तिरियुक्क नम्मळ् " [1]

{हे दोस्तों, दरिद्रता रूपी पिशाच को दूर हटाने केलिए हम चर्खा रूपी चक्र चलाएंगे । } "खादिवसनङ्.ङ.ळ् कैक्कोळ्ळुविनेवरुम्" में कहा गया है कि विदेशी वस्त्रों को त्याग कर, खादी वस्त्रों को अपनाने से ही हमारी उन्नति हो सकती है और हम स्वतंत्र बन सकते हैं । [2] "पोरा पोरा" में कवि खादी को अनीति का कफन मानते हुए कहते हैं -" हमारे हाथ से काते हुए सूत से, हमारे हाथ से बुने हुए कपडे से बना हुआ यह झंडा अनीति केलिए एक कफन है । [3] "दिवास्वप्न" की कविता "तिलकमंडपम्" में कवि घोषणा करते हैं -" हमारे लिए आवश्यक वस्त्र हम ही बनाएंगे । "अभिवाद्यम्" संग्रह के "अंचाम् पिरन्नाळ्" में भी कवि इसी बात की चर्चा करते हैं । [4]

गाँधीजी खादी और चर्खे के प्रयोग से देश की दरिद्रता एवं जनता की नग्नता को समाप्त करने का तीव्र यज्ञ करते रहे थे । इसका चित्र कवि "मातृहृदयम्" में प्रस्तुत करते हैं । [5] "सत्यभामयुडे वैधव्यम्" में विधवा सत्यभामा अपने जीवन को आगे बढ़ाने केलिए गाँधीजी के शरण में जाती है । वहाँ वह

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सा:म:-5- पृ. 21
2. सा:म:
3. सा:म:-5- पृ. 58-59
4. "अभिवाद्यम्"-पृ. 34
5. "वळ्ळत्तोळ् की पद्यकृतियाँ-भाग- पृ. 767

चर्खा चलाते हुए जीवनयापन करने का निश्चय कर लेती है । आगे वह खादी प्रचार का भी काम करके गाँधीजी की प्रिय-शिष्या बन जाती है ।[1]

यहाँ कवि खादी की महिमा करके खादी एवं चर्खे का प्रचार भी करते हैं । इससे उनका उद्देश्य राष्ट्र की आर्थिक एवं राष्ट्रीय स्थिति की उन्नति है।

## 6.15. भारतीय राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में :-

जिस प्रकार भारतीय राष्ट्रीयता, वस्तुतः कुछ सिद्धान्तों और आदर्शों पर आधारित है उसी प्रकार उसकी परराष्ट्र-नीति या विदेश-नीति भी विभिन्न सिद्धान्तों पर आधारित है । ये सिद्धान्त मूलतः प्राचीन भारतीय संस्कृति के सिद्धान्त और आदर्श हैं । भारतीय "अद्वैतवाद", सर्वात्मवाद {आत्मवत् सर्वभूतेषु"} और "वसुदैव कुटुंबकम्" जैसे दार्शनिक सिद्धान्त ही इसके मूल में हैं । अंतर्राष्ट्रीयता एवं विश्व बन्धुत्व भारतीय विदेश नीति में घुलमिल गए हैं ।

गाँधीजी भारतीय संस्कृति पर आधारित मानवतावादी अंतर्राष्ट्रीयता की कल्पना करते थे । भारत के नाश से अगर किसी दूसरे राष्ट्र की उन्नति हो सकती है तो गाँधीजी वह भी चाहते थे । उनकी राष्ट्रीयता, विश्वमानवता की स्थापना करने की ओर आह्वान देनेवाली थी । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् भी इस अंतर्राष्ट्रीय नीति के पक्षपाती रहे हैं । अपनी रचनाओं में वे एक मानवतावादी विश्व राष्ट्र की स्थापना की आशा को प्रमुखता देते हैं ।

### 6.15.1. गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में :-

अपनी रचनाकाल के अंतिम चरण में गुप्तजी संकुचित हिन्दू राष्ट्रवाद से व्यापक मानव मंगल, विश्वकल्याण और समस्त संसार की सुख-शांति की ओर

---

1. वळ्ळत्तोळ् की पद्य कृतियाँ- भाग-2- पृ. 792-93

अग्रसर हुए । "विश्ववेदना" में उन्होंने युद्ध विरोध किया, "राजा-प्रजा" में लोकतंत्र की समस्या का प्रश्न उठाया । वे मैत्री एवं करुणा में विश्वमंगल और विश्व बन्धुता में भी उसका प्राण मानते हैं । देश-काल, गुण-कर्म और स्वभाव शाखाओं के अलगाव मानते हुए भी उन्होंने मूल तक जाने की बात कही है । भिन्न-भिन्न आकृति, वर्ण तथा वेश-भूषा के बीच एक ही प्राण को अपनी अंतर्दृष्टि द्वारा देखने समझने की प्रेरणा वे देते हैं । [1]

गुप्तजी की अंतर्राष्ट्रीय नीति में स्वदेश की रक्षा हेतु अंतर्राष्ट्र के शोषण का भाव नहीं है । अंतर्राष्ट्रीयता में मानवतावाद का समावेश करना गाँधीजी की राष्ट्रीयता का लक्ष्य है । इसी को गुप्तजी "साकेत" में विभीषण के मुख से कहलवाते हैं -" वह तो हमारा देश नहीं बन सकता जो दूसरे देशों पर अन्याय करता है । विश्वबन्धुत्व की अनुभूति से प्रेरित होकर वह आगे कहता है - "एक देश केलिए नहीं बल्कि समस्त विश्व केलिए त्राण चाहता है ।" "साकेत" में गुप्तजी के राम, जन्म भूमि अयोध्या केलिए जो प्रेमपूर्ण उद्गार व्यक्त करते हैं वह केवल अयोध्या या भारत केलिए ही नहीं बल्कि विश्वराष्ट्र केलिए पोषित भद्र-भाव की अभिव्यक्ति है । कवि जन्मभूमि के महत्व पर अयोध्या के माध्यम से जो भाव राम के द्वारा अभिव्यक्त कराया है, वह केवल भारत केलिए ही नहीं, अपितु सारी पृथ्वी केलिए एक देश भक्त के द्वारा समर्पित भद्र-भावोद्गार है ।

"राज पथ ही क्यों न अब हट जाय ? लोभ मद का मूल ही कट जाय
कर सके कोई न दर्प न दंभ, सब जगत् में हो नया आरंभ,
विगत को नरपति रहे, नर मात्र । [2]

---

1. "कुणालगीत"- पृ. 111-112
2. "साकेत"- पृ. 185

जो देश विश्व रक्षा केलिए अपने स्वार्थों का बलिदान करता है, उसकी सीमा राज्याधिकार की नहीं परन्तु प्रेम के विस्तार की होती है । इसी विश्व-राष्ट्रीयता की अनुभूति से भारतीय आध्यात्म चिन्तन ओतप्रोत है । ठीक इसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में अपनी ही राष्ट्र-भावना को विशाल अंतर्राष्ट्रीयता में परिवर्तित करने से सर्वभूत-हित की प्रतिष्ठा होती है । राम का चरित्र इसी परिप्रेक्ष्य में खरा उतरता है । "साकेत" में कवि उस प्रजातंत्र की उदात्त व्याख्या करते हैं , जो गाँधीजी की समष्टिवाद की पुष्टि करता है । कवि के अनुसार राजा का भोग प्रजा का रोग बनता है , इस लिए उनका राम का भोग, योग बनकर, विश्वमात्र केलिए भोग बन गया । रावण का स्वार्थ विश्व का रोग बना हुआ था , तथा राम का परहित-रत भोग परंभाव का योग बन चुका था ।

"पृथ्वीपुत्र" में कवि समस्त मानव को विश्व-राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देते हैं । "अपना सोच मुझे क्या, तुमने औरों का दुःख भोगा, देश-विदेश में क्या, सारा विश्व हमारा " । "विश्वराज्य" गीत में वे लिखते हैं कि हम विश्व जननी के पुत्र हैं, इसलिए हमारे विश्व राष्ट्र में किसी को किसी का भय नहीं है । कवि की इस कल्पना में "न राज्यं न राजा आसीत्" वाली वैदिक कल्पना है , गुप्तजी की अंतर्राष्ट्रीयता में जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि का कोई व्यवधान नहीं है । उनके विश्व-राष्ट्र में सबका सम्मान और समान आदर है ।

"रंग में भंग" से लेकर "विष्णुप्रिया" तक की गुप्तजी की साहित्यिक यात्रा राष्ट्रीयता से अंतर्राष्ट्रीयता तथा विश्व मानवता की अतीव लंबी यात्रा है । इस प्रकार गुप्तजी अपनी पारिवारिक एवं हिन्दू सांस्कृतिक राष्ट्रीयता से धीरे-धीरे बाहर आकर अंतर्राष्ट्रीयता की सीमाओं तक पहुँच गए हैं । यहाँ कवि सभी स्वार्थों को भूलकर परार्थ केलिए संतुष्ट होकर तैयार रहते हैं ।

6.15.2. वळ्ळत्तोळ् के काव्य में राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में :-

वळ्ळत्तोळ् के जीवन के अंतिम भाग की रचनाओं में अंतर्राष्ट्रीयता का स्वर उभर आने लगा था । गाँधीवादी होने के नाते कवि की राष्ट्रीयता बहुत व्यापक अर्थ ले चुकी थी । वे विश्व शांति का वक्ता भी बन गए । रूस, चीन, जापान, मलेशिया आदि अनेक उन्नत राष्ट्रों में जाकर कवि समाधान का संदेश फैलाने का स्तुत्य प्रयास करते रहे । "इन्द्यपुडे करच्चिल्", "अभिवाद्यम्" "रष्यायिल्" (रूस में) आदि संग्रहों में उनकी अंतर्राष्ट्रीयता का स्वर प्रबल हो गया है । ऐसे होते हुए भी साहित्य मंजरी में संगृहीत प्रारंभिक कृतियों में ही अंतर्राष्ट्रीयता का बीजवपन हुआ है । "पोरा पोरा", "कृषिक्कारन्टे पाट्टु" आदि में यह स्पष्ट होता है । "एन्टे गुरुनाथन्" विश्वशान्ति, विश्वराज, एवं अंतर्राष्ट्रीयता का उत्तम निदर्शन है । कवि के शब्दों में ---

"लोकमे तर्वाट्टु तनिक्कीच्चेडिकळुम्
पुल्कळुं, पुष्पक्कळुं कूडित्तन् कुटुंबक्कार्" [1]

(उनके लिए सारा संसार ही अपना घर है । पौधे, घास और कीड़े मकोड़े सब अपने परिवार के अंक हैं ।) यह कवि का जीवन लक्ष्य है ।

स्वतंत्र भारत की विदेश नीति क्या होगी ? इस पर विचार करते हुए कवि "कृषिक्कारन्टे पाट्टु" में बताते हैं कि भारत स्वतंत्र होने पर अपने साथ के दूसरे देशों को जबर्दस्ती से पकड़कर मसल डालेगा नहीं, किंतु पीड़ाग्रस्तों की पीठ को प्रेम से सहलाएगा । [2] "इन्नत्ते निघंडुविल्" में भी कवि कहते हैं -

---

1. सा:म: -4- पृ. 103
2. सा:म:-7- पृ. 93

"स्वतंत्रता प्राप्ति से हाथ में आए ऐश्वर्य को सब मिलकर भोगें । [1]

संसार के सारे राष्ट्रों को स्वतंत्र बनाने का कवि प्रयास करते हैं । साम्राज्यवादियों ने जब फ्रान्स पर आक्रमण किया , तो कवि ने उस अनीति पर आवाज़ उठाई । "पिन्मारुविन्" {पीछे हटो} में कवि ब्रिटन से कहते हैं - "यदि तुम्हें स्वतंत्रता चाहिए तो उसका स्वाद अन्य गरीब राष्ट्रों को भी भोगने दो । स्वतंत्रता किसी की पैतृक संपत्ति नहीं है , शंका है तो नीति-शास्त्र में देखो । हंगरी में दूसरे राष्ट्र की सेना को पाँव रखने योग्य जगह नहीं है । यदि मानव रक्त का एक बूँद कहीं गिरेगा तो वह अग्नि का सागर बन जाएगा [2] यहाँ कवि की राष्ट्रीयता मानवता पर अधिष्ठित गाँधीवादी अंतर्राष्ट्रीयता हो जाती है । "इरट्टिप्पडि" {दुगुना भद्दा} में भी कवि अंतर्राष्ट्रीयता पर बल देते हैं । [3] "कन्नालिकळल्ला" {पशु नहीं} में साम्राज्यत्व का विरोध करते हुए प्रजातंत्र की स्थापना पर पूर्ण बल दिया गया है । कवि पडोसी राष्ट्रों से निवेदन करते हैं कि नासिज़म फासिज़म आदि पर अग्नि प्रहार करके उससे मिलनेवाले राख को प्रजातंत्र के पोषण केलिए इस्तेमाल करो । [4] अर्थात् जहाँ फासिस्ट एवं नास्टि का अंत हो वहाँ प्रजातंत्र का उदय भी होगा ।

घाना सन् 1957 मार्च छः को स्वतंत्र हुआ । घाना के लोग उस दिन को उत्सव का दिन मानते हैं । "वेळिच्चम्" {प्रकाश} में इसका प्रतिपादन करते हुए कवि विश्वास करते हैं कि जैसा जवहरलालजी ने भारत का उत्थान किया उसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त घाना का "नक्रूम" ही उत्थान करेंगे । [5] ऐसा कहकर कवि ने घाना को शुभकामनाएँ दी हैं ।

---

1. सा:म:-8- पृ. 81
2. सा:म:-9- पृ. 23
3. सा:म: -9- पृ. 29
4. सा:म: -पृ, 80
5. सा:म:-10- पृ. 69

सबसे पहले भारत ने ही सार्वलौकिक मैत्री का शब्द उठाया था । इसलिए हम भारतीयों को दूसरों को अपना भाई समझना अनिवार्य है । "नम्मडे अम्मा" [हमारी माँ] में कवि की अंतर्राष्ट्रीयता का स्वर गूँज उठता है--

"अवर् सोदरर् नमुक्कवर्तन् भ्राताक्कळ् ना-
मविभक्तमामोद्टत्तरवाडिब्भूगोळम्
"भवियुक्क पारिन्नेल्लां भावुकमोस्मोले "
न्नेवळो पाडि मुत्पाडवळ् नम्मुडेयम्मा ! [1]

[वे हमारे सहजात है, हमारे भाई है, हम सब अविभक्त हैं और यह सभी हमारेलिए एक ही परिवार है । जिस भूमि ने गाया है "सारे विश्व की समान रूप से उन्नति हो ", वही हमारी माता है । ] कवि के देश-प्रेम के साथ-साथ, मानवता प्रेम भी यहाँ उभर आया है । "पारीतिले क्रिस्तुमस्" में भी अंतर्राष्ट्रीयता पर प्रकाश डाला गया है ।

भारत की स्वतंत्रता को दूसरे राष्ट्रों की भी भलाई केलिए, काम में लाने का आग्रह कवि "कर्मभूमियुडे कैकळ्" [कर्म भूमि के हाथ] में व्यक्त करते हैं । यहाँ आगे कहा गया है कि इस कर्मभूमि के हाथ संसार से असमत्व को उखाड देने का प्रयत्न करेंगे । [2] "एषु वयस्तु" और "एक लोकम्" में भी इसका वर्णन हुआ है । [3]

अंतर्राष्ट्रीयता की चर्चा करते समय, कवि सौ की सदी व्यावहारिक बन जाते हैं । उन्होंने शांति स्थापना के सिलसिले में कई विदेशी राष्ट्रों में आयोजित संगोष्ठियों में भाग लिया है । दूसरे विश्व युद्ध के बाद "विश्व शांति परिषद" की स्थापना हुई । इसके पहले सम्मेलन में मादमक्यूरी ने महाकवि

---

1. सा:म:-10-पृ. 112
2. सा:म:-11- पृ. 80
3. सा:म:-11- पृ. 96

को स्वयं निमंत्रित किया। [1] वहाँ उन्होंने अपनी एक कविता सुनाई । उसका अनुवाद अंग्रेज़ी में किया गया । वहाँ से वे लंदन, पारिस और जनोवा चले । वहाँ भी उन्होंने विश्व शांति पर भाषण दिया । सन् 1951 में रूस की ओर से भारतीय कवियों और वैज्ञानिकों को निमंत्रण किया गया । भारतीय कवियों के प्रतिनिधि वळ्ळत्तोळ् थे । साम्यवादी तत्वों में विश्वास करनेवाले कवि रूस की समृद्धि पर उसको बधाई देते हैं । "वास्तवं तन्नयो" §क्या यह सच है§ में कवि रूस के नेता टालस्टाई को विश्व के नेता मानते हैं । [2]

"नवंबर एषु" §नवंबर सात§ "वायिच्चिट्टल्ला" §पढ़ा नहीं§ "स्टालिन हा", "लेनिन्टे शवकुटीरम्" §लेनिन का मकबरा§, "मूडप्पेट्टवर" "कलाविद्य", "कलकळुं विळयुन्नु" §कलाएं भी पलते हैं§ "मेलिले युद्धम्" §भविष्य का युद्ध§ आदि कविताओं में कवि रूस एवं साम्यवाद की महिमा की चर्चा करते हुए अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में उन बातों का महत्व बताते हैं ।

विश्व इतिहास में सन् 1917 नवंबर 7 का बडा महत्व है । उस दिन में विश्व में सबसे पहले प्रजातंत्र शासन की स्थापना हुई थी । उसका उल्लेख कवि "नवंबर एषु" में करते हैं । रूस ने अपनी विजय के तुरंत बाद जर्मनी से सख्य स्थापित किया और विश्व शांति केलिए दूसरे राष्ट्रों से युद्ध को समाप्त करने का आह्वान भी किया । [3] यहाँ कवि रूस और उसकी जनता का स्वागत करते हैं । "वायिच्चिट्टल्ला" में कवि अवनतिग्रस्त "उसबकिस्तान" की उन्नति की ओर प्रकाश डालते हैं । [4]

---

1. "अच्युतक्कुरुप्पु"-सी. - "वळ्ळत्तोळ् स्मरणकळ्" - पृ. 82
2. "इन्द्ययुडे करच्चिल्" - पृ. 13
3. "अभिवाद्यम" - पृ. 12
4. -वही- पृ. 19-25

स्टालिन के निधन पर सारा विश्व शोकग्रस्त हुआ । भारत को भी इस दुःख में भाग लेने का "स्टालिन हा" में मानवतावादी कवि उद्बोधन देते हुए कहते हैं -" विश्व प्रेम से भरपूर रूस, विश्व में ऐसा कौन राष्ट्र है, जो तुम्हारे पति वियोग के शोक में भाग नहीं लेता और राष्ट्र का झंडा दुःखातिरेक में स्वयं झुक नहीं जाता । हे भारत, तू भी इस पर रो, क्योंकि कोई दूसरा स्टालिन तो नहीं है ना ? [1] यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि वळ्ळत्तोळ् जितना गाँधीवाद से आकृष्ट थे उससे भी ज़्यादा साम्यवाद से । "लेनिन्टे शवकुटीरम्" में भी यह व्यक्त होता है । यहाँ गाँधीजी को चाँद समझनेवाले कवि लेनिन को सूरज समझते हैं । [2] कवि का यह कथन समकालीन साहित्य जगत में चर्चा का विषय बन गया था । इसी संबन्ध में कवि को रूस का गुप्तचर तक कहा गया । [3] वळ्ळत्तोळ् किसी भी हालत में किसी भी बात में भारत की निन्दा की बात सोच भी नहीं सकते थे । मोस्को के लेनिन के मकबरे के पास रहकर भी उनके विचार भारत के ही विषय में थे । भारत में भी हैं, ऐसे एक महान । वे गाँधीजी के सिवा और कोई नहीं । लेकिन उन दोनों में अंतर है । एक सदा समरोन्मुख थे, तो दूसरा सदा शांति प्रिय ।[4] रूस की जनता के कर्तव्यबोध से परिचित होकर कवि आशा करते हैं कि भारत की भी जनता ऐसी हों । "कडप्पेट्टवर्" (ऋणी) में रूस का एक राज्य जोर्जिया की समृद्धि का वर्णन हुआ है । यहाँ भी कवि की राष्ट्रीयता विस्तृत रूप धारण करके अंतर्राष्ट्रीयता में परिणत होती है ।

"अभिवाद्यम्" में कवि चीनी रिपब्लिक की विजय पर वहाँ के निवासियों को बधाई देते हैं । चीन में अब पुरानी दरिद्रता, अशिक्षा और अत्याचार

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. अभिवाद्यम"- पृ. 60
2. वळ्ळत्तोळ् की पद्य कृतियाँ-पृ. 769 (भाग-2)
3. पवनन्- "महाकवि वळ्ळत्तोळ् ओरु छाया चित्रम्"- पृ. 70
4. रश्मियिल्- पृ. 769

नहीं है । वहाँ भी कृषकों और मजदूरों के शासन की स्थापना हुई है । चीन की तुलना में भारत की अवस्था को देखकर कवि आत्मविभोर होते हैं ---

"गीतयिल्निन्नुपन्यासं वितयक्कद्टे
पूतमां नाक्किनाल् आर्षनाडिप्पोष्युम् ,
निन्मणिण्णलल्लो विळयुन्नु, निर्भरम्
कर्मयोगत्तिन् कनकक्कतिरुकळ् ।

{भारतीय आज भी अपनी पवित्र जिह्वा से गीता का पाठ करते रहते हैं , लेकिन कर्मयोग के सुवर्ण-फल तुम्हारी ही भूमि में होता है । } कवि का तात्पर्य है कि चीन के लोग कर्मोन्मुख एवं व्यावहारिक अधिक हैं । भारतीय अब भी उपदेशों एवं परंपराओं में विश्वास रखकर अलस बने रहते हैं ।

इस प्रकार कवि प्रजातंत्र एवं साम्यवाद पर बल देकर विविध राष्ट्रों की उन्नति के कारण का विश्लेषण करके भारत को भी उसी प्रकार विकसित कराने का, भारतवासियों को उद्बोधन देते हैं । इस तरह प्रयत्न करके सारे विश्व में समृद्धि एवं एकता लाने की कवि इच्छा करते हैं । कर्मयोग पर आधारित यह राष्ट्रीयता ही वळ्ळत्तोळ् की अंतर्राष्ट्रीयता की विशेषता है ।

## 6.16. निष्कर्ष :-

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् प्रथम दर्जे के देश-प्रेमी हैं । दोनों की राष्ट्रीय भावना का मूल प्राचीन संस्कृति है । उस संस्कृति में आत्म विभोर होकर दोनों कवि अतीत का गुण-गान भी करते हैं । वर्तमान की दुर्दशा में अतीत के खंडहरों के बीच में खड़े रहकर दोनों कवि सुन्दर भावी राष्ट्र निर्माण के सपने देखते हैं ।

---

1. "अभिवाद्यम्"- पृ. 3

दोनों कवि मातृभूमि एवं मातृभाषा के प्रति अतीव प्रेम रखनेवाले हैं । वळ्ळत्तोळ् की मातृभाषा मलयाळम् होते हुए भी वे हिन्दी की प्रतिष्ठा चाहते हैं । तत्कालीन राष्ट्रीय पतन का कारण दोनों कवि विदेशी शासन और अशिक्षा मानते हुए शिक्षा पर बल देते हैं । राष्ट्रीय क्रान्ति से दोनों कवि बिलकुल प्रभावित रहे हैं । दोनों कवि गाँधीजी के आदर्शों से प्रभावित थे । गाँधीजी को गुरु मानकर दोनों कवि राष्ट्र का नवनिर्माण की ओर प्रयास करते रहे । दोनों की सांस्कृतिक और मानवतावादी राष्ट्रीयता समाज के सभी स्तरों में सुधार लाने के पक्ष पर बल देती है । इसी सिलसिले में गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् पूँजीवाद का घोर विरोध करके कृषक जीवन में सुधार लाने का प्रयास करते हैं । वळ्ळत्तोळ् कृषक जीवन की ओर अधिक झुके हुए दीख पडते हैं । गाँधीजी के प्रभाव से दोनों कवि खादी, चर्खा, ग्रामोद्धार, आदि की ओर भी आकृष्ट रहे हैं । मानवता पर विश्वास रखने वाले दोनों कवि राष्ट्रीयता की प्रादेशिक सीमाओं को पारकर अंतर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़ते हैं । इस ओर गुप्तजी से कहीं ज़्यादा वळ्ळत्तोळ् विश्व-राज्य एवं अंतर्राष्ट्रीयता की स्थापना की अनिवार्यता पर बल देते हैं । गुप्तजी पूर्ण रूप में गाँधीवादी हैं तो वळ्ळत्तोळ् मार्क्सवादी ज़्यादा हैं । अपनी विदेशी यात्राओं के बाद वळ्ळत्तोळ् भारत को भी उन राष्ट्रों की तरह समृद्ध एवं उन्नत देखना चाहते हैं । इसी सिलसिले में वे जनता को कर्मोन्मुख रहने का उद्बोधन देते हैं । इस प्रकार गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् ने भारत-भर की जनता में राष्ट्रीय भावना फूँक दी । दोनों का स्वर एवं स्रोत एक था । दोनों की वाणी में जनता को जगाने की शक्ति थी । भाषा एवं क्षेत्र की भिन्नता के बावजूद भी दोनों कवि अपने लक्ष्य, आदर्श और प्रवृत्ति की एकता में अभिन्न हैं । उन दोनों का राष्ट्रीय दर्शन और संस्कृति मानवतावादी है । हम कह सकते हैं कि गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् हमारे राष्ट्रकवि निस्संदेह हैं ।

**************

*********

**

# उपसंहार

समाज परिवर्तनशील है इसलिए साहित्य भी । समाज के हरेक परिवर्तन की झलक तत्कालीन साहित्य में होती है । ऐसे साहित्य के साथ सांस्कृतिक मूल्यों का सम्मेलन भी स्वाभाविक है । कभी-कभी समाज अपने मूल्यों के साथ उन्नति के उत्तुंग शिखरों तक पहुँच जाता है , तो कभी-कभी मूल्य-च्युति के कारण अवनति के अगाध गर्तों में गिर जाता है । इस प्रकार की मूल्यच्युति के समय समाज के साथ मानव भी पतनोन्मुख हो जाता है । ऐसी स्थिति से जनता का उद्धार आसान नहीं है । इसकेलिए बहुत शक्ति और बुद्धि की आवश्यकता होती है । इस उद्धारक शक्ति और बुद्धि केलिए हमें अतीत के सांस्कृतिक खजानों की खोज में जाना पडता है । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के इतिहास में इसी प्रकार के एक चित्र की झलक हम पाते हैं।

भारतीय पौराणिक संस्कृति का खजाना अतीव श्रेष्ठ एवं मानवमूल्यों से भरा हुआ है । "रामायण", "महाभारत", "वेद", "उपनिषद", "पुराण", "सूक्त" आदि पौराणिक ग्रन्थ, भारत के अतीत संस्कार का प्रतिनिधित्व करते हैं । इन ग्रन्थों में प्रतिपादित मानव मूल्य, काल, प्रदेश, जाति-भेद के बिना समस्त जनता के जीवन से सदैव संबन्ध रखनेवाले हैं । आधुनिक युग में आते-आते इन मूल्यों से हमारी जनता दूर होती रही । इसका प्रमुख कारण विदेशियों का आक्रमण था । मुसलमानों के शासन से भारत की स्थिति अतीव दारुण हो गयी थी । उसके बाद अंग्रेज़ों ने भी भारतवासियों का खूब शोषण किया । फलस्वरूप भारतीय जनता, मानव मूल्यों से अनभिज्ञ होकर अपनी संस्कृति को भूलकर, आशाहीन जीवन बिताने लगी ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुप्त भारतवासियों के उत्थान के बारे में , कुछ महत्वाकांक्षी लोग सोचने लगे । इनमें राजाराम मोहन राय,

स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस आदि प्रमुख हैं । इन्होंने जनता को भारत के पौराणिक मूल्यों के बारे में समझाने और उनके पुनर्जागरण का महान कार्य किया । इन समाज सुधारकों और उनके द्वारा संचालित संस्थाओं से तत्कालीन साहित्यकार भी पूर्ण रूप से प्रभावित थे । उनकी रचनाओं में इसकी अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है । हमारे आलोच्य कवि गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् इस संक्रमण काल के साहित्यकार हैं ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् तत्कालीन जनता की अवनति से परिचित रहने के कारण, समाज सुधारकों और पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों से बिलकुल अवगत रहे । समाज में सांस्कृतिक मूल्यों की पुनस्थापना चाहनेवाले कविद्वय, अपनी रचनाओं में पौराणिक मूल्यों की बुद्धिवादी नई व्याख्या प्रस्तुत करने लगे । दोनों कवियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि सुसंस्कृत रहने के कारण वे प्राचीन संस्कृति के प्रति आस्थावान भी रहे । दोनों के पारिवारिक वातावरण और तत्कालीन शिक्षा प्रणाली के कारण उनपर, रामायण, महाभारत और अन्य पुराणों का भी बहुत प्रभाव पडा था । इन कारणों से गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की रचनाओं में इन सभी बातों का प्रभाव बडी मात्रा में द्रष्टव्य है । दोनों की पौराणिक कृतियों का ध्येय सांस्कृतिक मूल्यों की पुनःस्थापना के साथ-साथ एक मानवतावादी धर्मराष्ट्र की स्थापना है । दोनों कवियों ने रामायण महाभारत और पुराणों को उपजीव्य बनाकर अपने अधिकांश काव्य समान लक्ष्य को प्रस्तुत करने के लिए रचे हैं । दोनों राष्ट्र कवि थे और दोनों का लक्ष्य मूलतः राष्ट्र की प्रगति एवं उन्नति था ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति श्रद्धावान होने के कारण गाँधीजी के आदर्शों से भी अत्यधिक प्रभावित रहे । गाँधीजी का उद्देश्य भी भारतीय संस्कृति के मानवतावादी मूल्यों की पुनस्थापना था । गुप्तजी गाँधीजी से बहुत प्रभावित थे , वह इसलिए है कि दोनों उत्तर भारत के रहनेवाले थे । फिर भी सुदूर दक्षिण के वळ्ळत्तोळ् भी उनके तत्वों से आकृष्ट होकर गाँधीजी

को अपने गुरु मानते थे । वळ्ळत्तोळ् गुप्तजी से कहीं ज़्यादा मार्क्स और उनके आदर्शों से प्रभावित थे । वळ्ळत्तोळ् पर मार्क्स-वाद का प्रभाव गाँधीवाद के प्रभाव से कहीं अधिक नज़र आता है । वळ्ळत्तोळ् की विदेश यात्रायें इसकी द्योतक हैं । गाँधीवादी आदर्शों और कर्मपरिपाटियों से अवगत रहने के कारण गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से भी ज़्यादा अभिज्ञ रहे । अपनी रचनाओं में दोनों कवि उन समस्याओं का समाधान ढूँढते हुए दिखाई पडते हैं । ये समस्याएँ मानवतावाद की स्थापना, नारी-जागरण राष्ट्रीयता में सुधार, राष्ट्र का नवनिर्माण आदि थीं ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् निस्वार्थ एवं समष्टि की भलाई चाहनेवाले कवि थे । मानवतावाद का मूल तत्व ही निस्वार्थता है । मानवता की स्थापना चाहनेवाले दोनों कवि अपनी प्रत्येक रचना मानवतावादी तत्वों का प्रतिपादन करते हैं । अहिंसा की स्थापना, सत्य और नीति का पालन, जाति-पांति एवं वर्णाश्रम का विरोध, निष्काम कर्म पर बल, युद्ध-विरोध एवं विश्व-शांति की स्थापना आदि तत्वों की विस्तृत एवं व्यावहारिक चर्चा करते हुए दोनों कवि मानवतावाद की स्थापना का प्रयास करते रहे । वळ्ळत्तोळ् गुप्तजी से ज़्यादा अहिंसा पर बल देते थे । वे किसी भी प्राणी की हत्या नहीं सह सकते थे । मनुष्य की तरह वे समस्त जीवियों को प्यार करते थे । वळ्ळत्तोळ् केलिए एक ही जाति और एक वर्ण था वह मानव का था । लेकिन गुप्तजी वर्णाश्रम पर उतना ही विश्वास करते थे जितना कि वह मानव की उन्नति में सहायक हो । निष्काम कर्म करके स्वतंत्रता की स्थापना चाहनेवाले दोनों कवि एक युद्धरहित संसार की कल्पना करते थे । इससे उनका उद्देश्य विश्वशांति एवं विश्वमानवता की स्थापना था ।

मानवतावादी गुप्तजी एवं वळ्ळत्तोळ् समकालीन नारी जाति की पीडित अवस्था से अत्यंत दुःखी रहे । नारी की स्थिति में सुधार लाना, दोनों कवि

अपना दायित्व समझते थे । दोनों कवि नारी के विविध पारिवारिक एवं सामाजिक संबन्धों एवं समस्याओं का विश्लेषण करके उनकी स्थिति में सुधार लाने का कार्य करते थे । तत्कालीन नारी की पीडित अवस्था के साथ साथ कविद्वय आर्षभारत के स्त्रीत्व के प्रति श्रद्धा भी प्रकट करते थे । पौराणिक नारी की उच्च भावना का चित्रण करके दोनों कवि तत्कालीन नारी में आत्माभिमान पैदा करने का प्रयास करते थे । पौराणिक आदर्श नारी पात्रों को आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में , नूतन गुणों से युक्त प्रस्तुत करके गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् नारी जाति के पुनरुत्थान का बहुमूल्य कार्य करते रहे । नारी की चर्चा करते समय एक बात उल्लेखनीय है कि वळ्ळत्तोळ् स्त्री के भौतिक सौन्दर्य से अतीव आकृष्ट रहे हैं । उनकी नारी संबन्धी अधिकांश रचनाओं में स्त्री के शारीरिक सौन्दर्य का मांसल चित्रण है । इसका कारण शायद यह होगा कि सौन्दर्य चाहे वह किसी भी दशा में हो, जीवन का एक आकर्षक तत्व है । ऐसा होने पर भी महाकवि अपनी लक्ष्यपूर्ति के मार्ग से ज़रा भी विमुख न रहे । गुप्तजी इस तत्व में किसी भी प्रकार वळ्ळत्तोळ् से समता नहीं रखते थे । "रामचरित मानस" के अनुवर्ती होने के कारण उन्हें तुलसी के कर्कश नियमों का पालन ही अभीष्ट था । उनके काव्य में कहीं भी नारी सौन्दर्य का ऐसा नग्न चित्र उपलब्ध नहीं है

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की राष्ट्रीय चेतना मानवतावाद पर अधिष्ठित थी । उनकी मानवतावादी राष्ट्रीयता किसी विशेष विभाग की उन्नति की सूक्ष्म दृष्टि से सुदूर आम जनता की उन्नति की स्थूल कल्पना करती है । दोनों कवि गाँधीवादी होने के नाते राष्ट्रीय आंदोलनों से भी संबन्धित थे । इस प्रभाव से वे तत्कालीन जनता को अपनी असली राष्ट्रीय स्थिति के बारे में समझाकर उन्हें क्रान्ति की ओर अग्रसर होने का उद्बोधन देते रहे ।

इस उद्बोधन के साथ-साथ, पौराणिक सांस्कृतिक मूल्यों का भी वे प्रसंगानुसार प्रयोग करते रहे । यहाँ सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की स्थापना चाहनेवाले दोनों कवि, मातृभूमि, मातृभाषा आदि के प्रति भी आस्थावान रहते थे । भारत के तत्कालीन समाज की धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और अन्य क्षेत्रों के पतन का चित्रण करके दोनों कवि एक नए राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे, जो मानवतावादी संस्कृति पर अधिष्ठित हो । एक अखण्ड भारत की स्थापना चाहनेवाले कविद्वय किसी जाति, वर्ग या वर्ण पर बल न देकर, सर्वसम्मत, समत्व सुन्दर एवं प्रेम पर अधिष्ठित एक नव-भारत की कल्पना करते थे । ऐसे भारत के निर्माण केलिए शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र का विकास अनिवार्य है । आर्थिक विकास के सिलसिले में कविद्वय पूँजीवाद का विरोध करते हुए कृषक जीवन के सुधार पर ज़ोर देते हैं । ग्रामोद्धार एवं खादी के प्रचार पर भी यहाँ बल दिया गया है । इस प्रकार राष्ट्र के नव-निर्माण के बाद दोनों कवि अपनी स्वतंत्रता को दूसरे राष्ट्रों की उन्नति केलिए भी काम में लाने की आशा करते हुए राष्ट्रीयता से अंतर्राष्ट्रीयता की ओर कदम बढ़ाते हैं । वळ्ळत्तोळ् अंतर्राष्ट्रीयता और विश्व राज्य की कल्पना पर ज़्यादा बल देते हुए दिखाई पडते हैं । यहाँ ऐसा मालूम पडता है कि दोनों कवि भारतीय संस्कृति के "वसुधैव कुटुंबकम्" "लोका-समस्ता सुखिनो भवन्तु" आदि महान तत्वों की पुनस्थापना करने के स्वप्न द्रष्टा हैं ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् दो विभिन्न भाषाओं एवं प्रान्तों के होते हुए भी उनके साधन और साध्य एक ही थे । बाहर से कुछ असमान रहने पर भी उनकी मूल प्रवृत्ति एक ही थी । प्रस्तुत अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् उनके समय के महान कवि रहे थे । दोनों के श्रेष्ठ बनने के कारण, केवल उनका पारिवारिक

औन्नत्य एवं वैयक्तिक समर्पण मात्र ही नहीं , बल्कि समकालीन सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों का प्रभाव भी था । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् आर्य समाज एवं ब्रह्मसमाज से पूर्ण रूप से प्रभावित थे । उनकी रचनाओं में दिखाई पडनेवाले नारी जागरण, शिक्षा का विकास, आर्थिक उन्नति आदि इस प्रभाव के ही प्रतिफलन हैं । दोनों कवि भारतीय संस्कृति के महान मानवतावादी तत्वों से तत्कालीन चेतनाहीन जनता को अवगत कराते हुए, समकालीन शोषित एवं अधःपतित समाज के पुनरुत्थान का महान कार्य करते रहे । गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् नष्ट-भ्रष्ट एवं पतनोन्मुख मानव मूल्यों की पुनस्थापना करके अंतर्राष्ट्रीय भाईचारा एवं एक विश्व समाज की स्थापना करने की ओर इशारा करते थे । यही भारतीय पुराणों में प्रतिपादित एवं राष्ट्रपिता गाँधीजी के स्वप्न का "रामराज्य" है ।

इस प्रकार मैथिलीशरण एवं वळ्ळत्तोळ् नारायण मेनन ने एक ही पौराणिक स्रोत के महान आदर्शों के ज़रिए सारी भारतीय जनता की सांस्कृतिक राजनैतिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति का स्तुत्य प्रयास किया था । वे भारत के दो विभिन्न दिशाओं के होते हुए भी अपनी सांस्कृतिक भिन्नताओं की अपेक्षा ज़्यादातर एकता लिए हुए हैं । दोनों राष्ट्रकवियों का ध्येय एक ही था - भारतीय संस्कृति के महान तत्वों पर आधारित एक मानवतावादी धर्म-राष्ट्र की स्थापना । इन कारणों से हम कह सकते हैं कि गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् अपने समय के महान एवं प्रतिनिधि कवि रहे ।

गुप्तजी और वळ्ळत्तोळ् की रचनाएँ आज भी प्रासंगिक हैं । उन्होंने जिन-जिन बातों की चर्चा एक शताब्दी के पहले की थी, आज भी भारत की जाति, वर्ण, पूँजीवादी शोषण नीति राजनैतिक स्थिति आदि के क्षेत्र में बिलकुल प्रासंगिक रही है । इन कारणों से दोनों की रचनाएँ चिर नवीन हैं और भारत की अनेकता में भी एकता की लहर पैदा करनेवाली हैं ।

*************=

## सहायक ग्रन्थ-सूचि

### सृजनात्मक ग्रन्थ

### 1. गुप्तजी की रचनाएँ

#### मौलिक रचनाएँ

| क्रम | नाम | प्रकाशन संवत् | काव्य-रूप |
|---|---|---|---|
| 1 | "रंग में भंग" | 1966 | ऐतिहासिक खण्ड काव्य |
| 2 | "जयद्रथ वध" | 1967 | महाभारतीय खण्ड काव्य |
| 3 | "पद्य-प्रबन्ध" | 1969 | आख्यानक और निराख्यानक कविताओं का संग्रह |
| 4 | "भारत-भारती" | 1969 | उद्बोधनात्मक पद्य-निबन्ध |
| 5 | "शकुन्तला" | 1971 | अभिज्ञान शाकुन्तल पर आधारित खण्ड काव्य |
| 6 | "तिलोत्तमा" | 1972 | पौराणिक नाटक |
| 7 | "चन्द्रहास" | 1973 | पौराणिक नाटक |
| 8 | "पत्रावली" | 1973 | पत्र-गीतियों का संग्रह |
| 9 | "वैतालिक" | 1973 | उद्बोधन गीत |
| 10 | "किसान" | 1973 | सामाजिक खण्ड काव्य |
| 11 | "अनघ" | 1973 | बौद्ध कथाश्रित पद्य-नाट्य |
| 12 | पंचवटी | 1982 | रामायणीय खण्ड काव्य |
| 13 | स्वदेश-संगीत | 1982 | राष्ट्रीय गीति-संग्रह |
| 14 | हिन्दू | 1984 | उद्बोधनात्मक पद्य-निबन्ध |
| 15 | सैरन्ध्री | | |
| 16 | वन-वैभव | 1984 | महाभारतीय खण्ड काव्य |
| 17 | बक-संहार | | |

| क्रम | नाम | प्रकाशन संवत् | काव्य-रूप |
|---|---|---|---|
| 18 | शक्ति | 1984 | पौराणिक खण्ड काव्य |
| 19 | विकट-भट | 1985 | ऐतिहासिक आख्यानक काव्य |
| 20 | गुरुकुल | 1985 | ऐतिहासिक आख्यानक काव्य |
| 21 | झंकार | 1986 | गीति-संग्रह |
| 22 | साकेत | 1988 | रामायणीय महाकाव्य |
| 23. | यशोधरा | 1989 | बौद्ध कथाश्रयी मिश्र काव्य |
| 24 | सिद्धराज | 1993 | ऐतिहासिक खण्ड काव्य |
| 25 | द्वापर | 1993 | भगवतीय गीति काव्य |
| 26 | मंगल-घट | 1994 | आख्यानक और निराख्यानक-पद्य-संग्रह |
| 27 | नहुष | 1997 | महाभारतीय खण्ड काव्य |
| 28 | कुणाल-गीत | 1998 | बौद्ध कथाश्रयी गीति काव्य |
| 29 | अर्जुन और विसर्जन | 1999 | दो ऐतिहासिक कथा-काव्य |
| 30 | काबा और कर्बला | 1999 | ऐतिहासिक कथा काव्य |
| 31 | विश्व-वेदना | 1999 | समसामयिक समस्यामयी गीति |
| 32 | अजित | 2003 | सामाजिक खण्ड काव्य |
| 33 | प्रदक्षिणा | 2007 | रामायणीय कथा-काव्य |
| 34 | पृथ्वीपुत्र | 2007 | एकांकी नाट्य-संग्रह |
| 35 | हिडिम्बा | 2007 | महाभारतीय खण्ड काव्य |
| 36 | युद्ध | 2007 | |
| 37 | अंजलि और अर्घ्य | 2007 | शोक-गीत |
| 38 | जय भारत | 2007 | महाभारतीय प्रबन्ध-संकलन |
| 39 | भूमि-भाग | 2010 | सामाजिक गीति-संग्रह |
| 40 | राजा-प्रजा | 2013 | निराख्यात्मक निबन्ध-काव्य |

| क्रम | नाम | प्रकाशन संवत् | काव्य-रूप |
|---|---|---|---|
| 41 | विष्णु-प्रिया | 2014 | गीतात्मक खण्ड-काव्य |
| 42 | रत्नावली | 2017 | गीति काव्य |
| 43 | लीला | 2017 | रामायणीय गीति नाट्य |
| 44 | उच्छ्वास | 2017 | शोक-गीत |

अनूदित रचनाएँ (संस्कृत से)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1 | स्वप्न-वासवदत्ता | 1971 | भास-रचित नाटक |
| 2 | गीतामृत | 1982 | व्यास रचित-श्रीमद्भागवत गीता का द्वितीय अध्याय |
| 3 | दूत-घटोत्कच | 1912 | भास-रचित एकांकी |

(बंगला से)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 4 | विरहिणी व्रजांगना | 1971 | माइकेल मधुसूदन दत्त रचित विरह-गीति काव्य |
| 5 | प्लासी का युद्ध | 1971 | नवीनचन्द्र सेन कृत कथा-काव्य |
| 6 | वीरांगना | 1984 | माइकेल मधुसूदन दत्त रचित-पौराणिक पत्र गीतियाँ |
| 7 | मेघनाद वध | 1984 | माइकेल मधुसूदन दत्त कृत-महाकाव्य |
| 8 | वृत्र-संहार | 2019 | हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय कृत-महाकाव्य |

(अंग्रेजी से)

| | | | |
|---|---|---|---|
| 8 | रूबाइयात उमर खय्याम | 1988 | मुक्तक काव्य अंग्रेजी के रूपान्तर के आधार पर |

उपर्युक्त रचनाओं का प्रकाशन गुप्तजी की अपनी प्रकाशन-संस्था "साहित्य सदन, चिरगांव (झाँसी)" द्वारा हो रहा है ।

## वल्लत्तोल् की रचनाएँ: मौलिक रचनाएँ

| क्रम | नाम | प्रकाशन संवत् | काव्य-रूप |
|---|---|---|---|
| 1 | व्यासावतारम् | 1983 ई. | महाभारतीय निबन्ध काव्य |
| 2 | किरातशतक | 1993 | महाभारतीय निबन्ध काव्य |
| 3 | सल्लाप-पूरम् | 1935 | पद्यमय वार्तालाप |
| 4 | ऋतुविलासम् | 1900 | ऋतु-वर्णनात्मक काव्य |
| 5 | पंचतन्त्रम् | 1902 | नीति परक काव्य |
| 6 | तपती-संवरणम् | 1906 | महाभारतीय खण्ड काव्य |
| 7 | दण्डकारण्यम् | 1910 | पौराणिक खण्ड काव्य |
| 8 | बधिर विलापम् | 1910 | व्यक्तिनिष्ठ काव्य |
| 9 | चित्रयोगम् | 1913 | महाकाव्य |
| 10 | गणपति | 1913 | पौराणिक खण्ड काव्य |
| 11 | विलास लतिका | 1913 | एक श्रृंगारपरक रचना |
| 12 | ओरु कत्तु | 1914 | पौराणिक निबन्ध काव्य |
| 13 | अनिरुद्धन | 1914 | पौराणिक खण्ड काव्य |
| 14 | साहित्य मंजरी- प्रथम भाग | 1916 | गीतिबद्ध, आख्यानक तथा निराख्यानक पद्य संग्रह |
| 15 | शिष्यनुं मकनुं | 1918 | पौराणिक खण्ड काव्य |
| 16 | साहित्य मंजरी- दूसरा भाग | 1918 | गीतिबद्ध आख्यानक तथा - निराख्यानक पद्य संग्रह |
| 17 | मगदलन मरियम् | 1921 | ऐतिहासिक खण्ड काव्य |
| 18 | साहित्य मंजरी-तीसरा भाग | 1922 | |
| 19 | साहित्य मंजरी-चौथा भाग | 1924 | गीतिबद्ध आख्यानक तथा |
| 20 | साहित्य मंजरी- पाँचवाँ भाग | 1924 | निराख्यानक पद्य-संग्रह |
| 21 | साहित्य मंजरी-छठा भाग | 1927 | |

| क्रम | नाम | प्रकाशन संवत् | काव्य-रूप |
|---|---|---|---|
| 22 | कोच्चुसीता | 1928 | सामाजिक खण्ड काव्य |
| 23 | साहित्य मंजरी-सातवाँ भाग | 1930 | गीतिबद्ध आख्यानक और - निराख्यानक पद्य संग्रह |
| 24 | शरणमय्यप्पा | 1933 | भक्तिपरक गीति काव्य |
| 25 | अच्छनुं मकलुं | 1940 | अभिज्ञान शाकुन्तलम् पर - आधारित खण्ड काव्य |
| 26 | इंत्ययुटे करच्चिल् | 1943 } | |
| 27 | विषुक्कणि | 1943 } | |
| 28 | स्त्री | 1944 } | गीतिबद्ध आख्यानक तथा निराख्यानक पद्य-संग्रह |
| 29 | दिवास्वप्नम् | 1945 } | |
| 30 | वीर-श्रृंखला | 1945 } | |
| 31 | एन्टे गुरुनाथन | 1945 } | |
| 32 | परलोकम् | 1945 | शोक-गीतियों का संग्रह |
| 33 | साहित्य मंजरी-आठवाँ भाग | 1950 | गीतिबद्ध आख्यानक तथा-निराख्यानक पद्य-संग्रह |
| 34 | बापूजी | 1950 | शोक-गीति |
| 35 | भगवत्स्तोत्र-माला | 1951 | भक्ति-गीति-संग्रह |
| 36 | वल्लत्तोळ् रसचयिल | 1951 } | |
| 37 | अभिवाद्यम् | 1956 } | गीतिबद्ध आख्यानक तथा निराख्यानक पद्य-संग्रह |
| 38 | साहित्य मंजरी नवाँ भाग | 1956 } | |
| 39 | औषधाहरणम् | 1918 | आट्टकथा (कथकलि-काव्य) |
| 40 | त्रियामा | 1996 | संस्कृत काव्य |

| क्रम | नाम | प्रकाशन संवत् | काव्य-रूप |
|---|---|---|---|
| 41 | आरोग्य चिन्तामणि | 1901 | आयुर्वेद सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थ |
| 42 | वैद्य-भूषणम् | 1903 | आयुर्वेद सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थ |
| 43 | गर्भ रक्षा क्रमम् | 1903 | आयुर्वेद सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थ |

अनूदित रचनाएँ {संस्कृत से}

| क्रम | नाम | प्रकाशन संवत् | काव्य-रूप |
|---|---|---|---|
| 1 | भारत मंजरी {अन्तिम भाग} | 1904 | क्षेमेन्द्र कृत महाभारतीय काव्य |
| 2 | उन्मत्त राघवम् | 1905 | प्रेक्षणकम् |
| 3 | वाल्मीकि रामायणम् | 1905 | पुराण |
| 4 | मातंगलीला | 1909 | गज-पालन संबन्धी शास्त्र ग्रन्थ |
| 5 | मार्कण्डेय पुराणम् | 1915 | पुराण |
| 6 | वामन पुराणम् | 1915 | पुराण |
| 7 | मत्स्य पुराणम् | 1915 | पुराण |
| 8 | पद्म पुराणम् | 1915 | पुराण |
| 9 | ऊरु भंगम् | 1918 | भास कृत एकांकी |
| 10 | मध्यम व्यायोग | 1920 | भास-कृत रूपक |
| 11 | अभिषेक नाटक | 1920 | नाटक |
| 12 | भद्रावतारम् | 1920 | प्राचीन भक्तिपरक रचना |
| 13 | पंचरात्रम् | 1923 | समवकार |
| 14 | स्वप्न वासवदत्ता | 1925 | नाटक |
| 15 | अभिज्ञान शाकुन्तलम् | 1937 | कालिदास कृत नाटक |
| 16 | कपटकेलि | 1945 | वत्सराज कृत प्रहसन |
| 17 | कर्पूरचरितम् | 1946 | भाण |
| 18 | रुक्मिणीहरणम् | 1948 | ईहामृग |
| 19 | त्रिपुरदहनम् | 1948 | डिम |
| 20 | बोधि सत्त्वापदान कल्पलता | 1948 | क्षेमेन्द्र कृत जातक कथाश्रयी काव्य |
| 21 | ऋग्वेद | 1955 | वेद |

[illegible] रचना:-

| क्रम | नाम | प्रकाशन संवत् | काव्य-रूप |
|---|---|---|---|
| 22 | पथ्य-विहार | 1958 | निबन्ध संग्रह |

## सहायक ग्रन्थ सूची

**हिन्दी पुस्तक:-**

**आलोचनात्मक ग्रन्थ**



| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 1 | डा. अरविन्द जोशी | गाँधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव | जवाहर पुस्तकालय मथुरा (उ.प्र.) | 1973 |
| 2 | डा. उदयभानु सिंह | "महावीर प्रसाद द्विवेदी-और उनका युग" | लखनऊ विश्व-विद्यालय | सं. 2008 |
| 3 | उदयशंकर भट्ट | "नहुष निपात" | आत्माराम एण्ड-सन्स, दिल्ली | 1962 |
| 4 | डा. उमाकांत | "मैथिलीशरण गुप्त कवि-और भारतीय संस्कृति के आख्याता" | नेशनल पब्लिशिंग-हाउस, दिल्ली | 1966 |
| 5 | डा. कमलाकान्त पाठक | "मैथिलीशरण गुप्त - व्यक्ति और काव्य" | रणजित प्रिन्टेर्स - एण्ड पब्लिशेर्स, दिल्ली | 1960 |
| 6 | श्रीधर मेनोन | "कविश्री माला" | राष्ट्रभाषा समिति, वार्धा | 1962 |
| 7 | फादर कामिल बुल्के | "रामकथा" | हिन्दी प्रचार-परिषद प्रकाशन | 1962 |
| 8 | डा. कीर्तिलता | "भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन और हिन्दी-साहित्य" | हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद | 1967 |
| 9 | कुमारी शकुन्तला शर्मा | "आधुनिक काव्य में - सौन्दर्य भावना" | सरस्वती मंदिर, बनारस | 1952 समीक्षा सदन |
| 10 | कुलवन्त कोहली | "युगनिर्माता द्विवेदी" | वोरा एण्ड कंपनी पब्लिशेर्स (प्रा) लिमिटेड. बंबई | 1961 |
| 11 | केरल संस्थान-गाँधी शताब्दी कमेटी | "गाँधीदर्शन और जीवन | | |
| 12 | कृष्ण बिहारी मिश्र | "आधुनिक सामाजिक - आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य" | आर्य बुक डिप्पो, नई दिल्ली | |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 13 | डा. ए. न. गणेशन | "हिन्दी और तमिल काव्य की राष्ट्रीय धारा | ऐनल्स आफ ओरियन्टल रिसर्च | |
| 14 | चण्डी दास जोशी | "हिन्दी उपन्यासों का समाज शास्त्रीय अध्ययन" | | |
| 15 | डा. जनार्दन पांडेय | "मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति" | सरस्वती प्रकाशन 69, नया बैरहना, इलाहाबाद | 1982 |
| 16 | जीवनप्रकाश जोशी. एम. ए. | "आधुनिक प्रतिनिधि-कवि और उनका काव्य" | नवयुग प्रकाशन, दिल्ली-6 | 1964 |
| 17 | डा. शिवराम पाठक | आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास | राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद | 1976 |
| 18 | डा. त्रिभुवन सिंह | हिन्दी साहित्य एक - परिचय | हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी-1 | 1968 |
| 19 | डा. देवराज | "भारतीय संस्कृति" महाकाव्यों के आलोक में | हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश | 1966 |
| 20 | डा. द्वारिका प्रसाद - सक्सेना | "साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन" | विनोद पुस्तक मंदिर हॉस्पिटल रोड, आगरा | 1961 |
| 21 | नवीन चन्द्र सहगल | "साकेत सौरभ" | रीगल बुक डिप्पो-दिल्ली | 1956 |
| 22 | डा. नगेन्द्र | "मैथिलीशरण गुप्त पुनर्मूल्यांकन" | प्रभात प्रकाशन, दिल्ली | 1987 |
| 23 | डा. नगेन्द्र | "विचार और विश्लेषण" | नेशनल पब्लिशिंग-हाउस, दिल्ली | 1961 |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 24 | डा. नगेन्द्र | "साकेत एक अध्ययन" | साहित्यरत्न-भंडार, आगरा | 1964 |
| 25 | डा. नगेन्द्र (सं) | हिन्दी साहित्य का इतिहास | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली | 1983 |
| 26 | नन्ददुलारे वाजपेय | "हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी" | लोक भारती-प्रकाशन, इलाहाबाद | 1963 |
| 27 | पी. के. परमेश्वरननायर | "आधुनिक मलयालम्-साहित्य" | | 1984 |
| 28 | पी. के. परमेश्वरननायर (अनुवाद-सी. आर. नानप्पा) | "मलयालम साहित्य का इतिहास" | साहित्य अकादमी, नई दिल्ली | 1968 |
| 29 | पी. के. परमेश्वरन नायर | आधुनिक मलयालम - साहित्य | | 1984 |
| | | "मलयालम साहित्य का इतिहास" | | 1958 |
| 30 | डा. प्रफुल्लेन्द्र घोष | "महात्मा गाँधी" | मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद | 1965 |
| 31 | प्रेमचन्द्र विजयवर्गीय | "आधुनिक हिन्दी कवियों का सामाजिक दर्शन" | साफना प्रकाशन, जयपुर | 1972 |
| 32 | डा. चमनलाल गौतम (सं) (सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण) | "ब्रह्मांड पुराण" | संस्कृति संस्थान, बरेली. (उ. प्र) | 1988 |
| 33 | भक्तराम शर्मा | "द्विवेदीयुगीन काव्य पर आर्य समाज का प्रभाव" | वाणी प्रकाशन, दिल्ली | 1973 |
| 34 | भाई दयाल जैन | "गाँधी विचार रत्न" (गाँधी साहित्य-भाग-10) | सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली | 1963 |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 35 | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र | "भारत-दुर्दशा" | विनोद पुस्तक-मंदिर, आगरा | 1962 (तृ. सं.) |
| 36 | डा. के. भास्करन नायर | "मलयालम साहित्य-का इतिहास" | प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश | 1960 |
| 37 | क. एम. मणि | "मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् का तुलनात्मक अध्ययन" | नेशनल पब्लिशिंग-हाउस, दिल्ली-6 | 1966 |
| 38 | मधुरमालती सिंह | "आधुनिक हिन्दी-काव्य में विरह भावना" | आत्मा राम एण्ड-सन्स, दिल्ली | 1963 |
| 39 | मन्मथनाथ गुप्त (ले.)<br>बनारसीदास चतुर्वेदी (सं.) | "भारतीय क्रान्तिकारी-आन्दोलन का इतिहास | आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली | 1966 |
| 40 | महेन्द्रनाथ राय | "नव जागरण और -छायावाद" | राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली | 1973 |
| 41 | डा. यश गुलाटी (सं.) | "बृहत् साहित्यिक-निबन्ध | सूर्या प्रकाशन, नई-सड़क | 1981 |
| 42 | रवीन्द्र भ्रमर | "हिन्दी के आधुनिक-कवि (व्यक्तित्व और कृतित्व) | भारतीय साहित्य-मंदिर, फव्वारा, दिल्ली | 1964 |
| 43 | डा. रा. कुलकर्णी | "मैथिलीशरण गुप्त के पात्रों का मनो-विश्लेषणात्मक अध्ययन" | सरस्वती प्रकाशन, कानपुर | 1987 |
| 44 | आचार्य रामचन्द्र शुक्ल | "हिन्दी साहित्य का-इतिहास" | नागरी प्रचारिणी-सभा, काशी | स. 2022 |
| 45 | डा. एन. रामन नायर (सं.) | "अनुशीलन"-मैथिली-शरण गुप्त विशेषांक | हिन्दी विभाग-कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्व-विद्यालय कोचीन | 1988 |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 46 | रामबहोरी शुक्ल एवं भगीरथ मिश्र | "हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास" | हिन्दी भवन, इलाहाबाद | |
| 47 | के. रामदासन नायर (सं.) | "दक्षिण भारत" | दक्षिण भारत हिन्दी प्र:स:द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक साहित्य पत्रिका | जुलाई, अगस्त सितम्बर 1983 |
| 48 | रामधारीसिंह "दिनकर" | संस्कृति के चार अध्याय | उदयाचल, पटना | 1962 |
| 49 | रामरतन भटनागर | "मैथिलीशरण गुप्त-एक अध्ययन" | किताब महल, इलाहाबाद | 1948 |
| 50 | रामविलास शर्मा | "निराला की काव्य-साधना" | राजकमल प्रकाशन दिल्ली | 1971 |
| 51 | रामशिरोमणि होरिल | "आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप वर्णन" | नवयुग प्रेस, महावीर-गंज, अलीगर | 1979 |
| 52 | रामेश्वरलाल खण्डेलवाल | "आधुनिक हिन्दी - कविता में प्रेम और सौन्दर्य" | नेशनल पब्लिशिंग-हाउस, दिल्ली | 1958 |
| 53 | डा. लक्ष्मीनारायण लाल-गुप्त | "हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य-समाज की देन | लखनऊ विश्व-विद्यालय | सं. 2018 |
| 54 | डा. ललताप्रसाद सक्सेना-"ललित" | आधुनिक बोध और परंपरा | निर्मल प्रकाशन, जयपुर | 1975 |
| 55 | डा. वल्लभदास तिवारी | "हिन्दी काव्य में - नारी" | जवाहर पुस्तकालय मथुरा | 1974 |
| 56 | वाचस्पति गैरोला | "संस्कृत साहित्य का-इतिहास" | चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी | 1960 |
| 57 | डा. वासुदेवशरण अग्रवाल | "राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त अभिनंदन ग्रन्थ" | राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त-अभिनन्दन-समिति-कलकत्ता-6 | 1959 |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 58 | डा. विजयेन्द्र स्नातक | "समीक्षात्मक निबन्ध" | नेशनल पब्लिशिंग- हाउस, दिल्ली | 1957 |
| 59 | डा. एन. ई. विश्वनाथय्यर | "आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य" | नेशनल पब्लिशिंग- हाउस, दिल्ली | 1970 |
| 60 | डा. एन. ई. विश्वनाथय्यर | "वळ्ळत्तोळ् व्यक्तित्व- और कृतित्व" | | 1978 |
| 61 | विद्यानाथ गुप्त | "हिन्दी कविता में राष्ट्रीय- भावना | साहित्य मंदिर- फव्वारा, दिल्ली | 1966 |
| 62 | वीणा शर्मा | "निराला की काव्य- साधना" | हिन्दी साहित्य- संसार, पटना | 1965 |
| 63 | शंभुनाथ सिंह | "हिन्दी काव्य की- सामाजिक भूमिका" | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी | 1966 |
| 64 | डा. के. के. शर्मा | "हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास" | नवयुग प्रकाशन, 136, मालवीय- नगर, भोपाल | 1970 |
| 65. | शिवकुमार शर्मा | "हिन्दी साहित्य युग- और प्रवृत्तियाँ" | अशोक प्रकाशन दिल्ली | 1966 |
| 66 | शिवदान सिंह चौहान | "हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष" | राजकमल प्रकाशन | 1954 |
| 67 | डा. सरला देवी | "हिन्दी साहित्य में नारी" | केरल हिन्दी - साहित्य मंडल, कोचिन | 1971 |
| 68 | डा. सावित्री डागा | "आधुनिक हिन्दी - मुक्तक काव्य में नारी" | देवनागर प्रकाशन जयपुर | 1977 |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 69 | डा. सुधाकर शंकर कलवडे | "आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना" | पुस्तक संस्थान, कानपुर | 1973 |
| 70 | डा. सुधीन्द्र | "हिन्दी कविता में - युगान्तर | आत्माराम एण्ड-सन्स, दिल्ली | 1957 |
| 71 | डा. एल. सुनीता | "मैथिलीशरण गुप्त का काव्य (संस्कृत स्रोत - के संदर्भ में" | हिन्दी विभाग- कोचिन विश्व- विद्यालय | 1984 |
| 72 | डा. हरवंशलाल शर्मा | "भागवत दर्शन" | भारत प्रकाशन- मंदिर, अलीगढ़ | सं. 2020 |
| 73 | हुकुम चन्द | आधुनिक काव्य में - नवीन जीवन-मूल्य | भारतीय संस्कृत- भवन, जालन्धर | 1970 |
| 74 | अच्युतक्कुरुप्पु | "वळ्ळत्तोळ् स्मरणकळ्" | ड. सी. बुक्स, कोट्टयम | 1982 |
| **मलयाळम पुस्तकें** | | | | |
| 75 | अच्युत मेनन | वळ्ळत्तोळ् की साहित्य- साधना | | |
| 76 | उण्णिकृष्णन नायर | "वळ्ळत्तोळ् | | |
| 77 | किट्टुण्णि नायर- कुट्टिप्पुरत्तु | "महाकवि वळ्ळत्तोळ् | वळ्ळत्तोळ् ग्रन्थालयं त्रिशूर | 1960 |
| 78 | किट्टुण्णिनायर- कुट्टिप्पुरत्तु | "वळ्ळत्तोळ् कविता" | वळ्ळत्तोळ् ग्रन्थालय् त्रिशूर | 1960 |
| 79 | कुन्जन पिल्लै शूरनाट्टु (प्र.सं.:भास्करन नायर) | "कैरळी समक्षम्" | जया प्रिन्टेर्स तिरुवनन्तपुरम | 1979 |
| 80 | केरल कलामंडलम् | "वळ्ळत्तोळ् पौर्णमि" | वळ्ळत्तोळ् नगर- चेरुतुरुत्ति | 1980 |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 81 | के. एम. जोर्ज (सं.) | "भारतीय साहित्य चरित्रम्" | केरल साहित्य-अकादमी | 1982 |
| 82 | जोसफ मुडश्शेरि | "वळ्ळत्तोळ् ओरु पठनम्" | मंगलोदयम, त्रिशूर | 1971 |
| 83 | एन. आर. नायर | "महाकवि वळ्ळत्तोळ्-कुछ महान स्मरण" | | |
| 84 | नारायणप्पणिक्कर-कावालम् | "वळ्ळत्तोळ् कत्तुकळ्" | डी. सी. बुक्स, कोट्टयम | 1978 |
| 85 | पवनन | "महाकवि वळ्ळत्तोळ्-ओरु छाया चित्रम्" | प्रतिभा प्रिन्टिंग-एण्ड पब्लिशिंग कंपनि तिरुवनन्तपुरम | 1983 |
| 86 | डा. के. भास्करन नायर | "मलयालम साहित्य-का इतिहास" | प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर-प्रदेश | 1960 |
| 87 | भास्करनुण्णि | "वळ्ळत्तोळ् कविता" | प्रभातं प्रिन्टिंग एण्ड-पब्लिशिंग कंपनी-तिरुवनन्तपुरम | 1980 |
| 88 | माधव वारियर-मडश्शेरि | "वळ्ळत्तोळ् | विद्यार्थी मित्रम्-कोट्टयम | 1959 |
| 89 | सी. के. मूस्सत् | "वळ्ळत्तोळ् जीव-चरित्रम्" | | |
| 90 | शंकरन् चंगरम् कुमरत्तु | "वळ्ळत्तोळ् साहित्यम्" | सिद्धार्थ बुक हाउस, त्रिशूर | 1966 |
| 91 | शंकरन् तायाट्टु | "वळ्ळत्तोळ् नवयुगत्तिन्टे कवि" | वळ्ळत्तोळ् विद्यापीठम इडप्पाळ्, केरलम् | 1986 |
| 92 | ए. श्रीधर मेनन | केरल चरित्रम | | 1978 |
| 93 | एम. श्रीधर मेनोन (सं. - अनुवादक) | कविश्री माला-मलयालम | राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, वर्धा | 1962 |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 94 | एम. के. सानु -अध्यक्ष (पत्राधिप समिति) | "साहित्यलोकम् त्रैमासिकम्" | केरल साहित्य-अकादमी, त्रिशूर | 1988 |
| 95 | | "वळ्ळत्तोळ् उपहार ग्रन्थम्" | | |
| 96 | | "मलयालम् भाषा विश्व-विज्ञान कोश" | | 1972 |

अंग्रेज़ी पुस्तकें

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 97 | Arya Pratinidhi Sabha, Rajastan | "The Philosophy of Dayananda" | | 1938 |
| 98 | DUTT.C.C. | "The Culture of India as envisaged by Arabindo" | Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay | 1960 |
| 99 | Jawaharlal Nehru | "Independance and After" | | |
| 100 | Radhakrishnan.S.DR. | "Mahatma Gandhi - 100 years" | Gandhi Peace Foundation, New Delhi | 1968 |
| 101 | Rene Wellek and Austin Warren | "Theory of Literature" | Penguin books | 1966 |
| 102 | Vipin Chandra | Modern India" | NCERT Publication | 1971 |
| 103 | | | | |

पत्र-पत्रिकाएँ :-

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 104 | | "खादी जगत मासिक" | वर्धा | 1941 |
| 105 | गोपालकृष्ण पिल्लै | "मैथिलीशरण गुप्त और वळ्ळत्तोळ् राष्ट्रीयता और संस्कृति के संदर्भ में" | अनुशीलन | 1988 |

| क्रम | लेखक का नाम | पुस्तक का नाम | प्रकाशक | प्रकाशन संवत् |
|---|---|---|---|---|
| 106 | रमेश दत्त शर्मा (सं) | "खेती" (मासिक पत्रिका) | भारतीय कृषि-अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली-111012 | नवंबर 1988 |
| 107 | रविवर्मा (सं) | "मैथिलीशरण गुप्त-विशेषांक" | साहित्य मंडल पत्रिका | 1986 |
| 108 | डा. रमेश चन्द्र शर्मा (सं) | "मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन साहित्यिक-परिवेश"-स्मारिका त्रिदिवसीय संगोष्ठी | राजकीय महाविद्यालय झालावाड | 1987 |
| 109 | | सरस्वती | | जुलाई-1925 |

**संस्कृत ग्रन्थ :-**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1 | महाभारत | गीताप्रेस, गोरखपुर | संवत् | 2014 |
| 2 | रामायण | " " | " | 2017 |
| 3 | महाभागवत | | | 1997 |
| 4 | महाशिवपुराण | | | |
| 5 | पद्म पुराण | " | " | 2015 |
| 6 | "ब्रह्माण्ड पुराण" (प्रथम खण्ड) | संस्कृति संस्थान, बरेली, उत्तर प्रदेश | | 1988 |